श्री आचार्य देशभूषण मुनि महाराज ग्रन्थ माला का ९ वां पुष्प

श्री रत्नाकर कवि विरचित

भरतेश वैभव

प्रथम भाग

भोग विजय (प्रथम खंड)

कन्नड काव्य के

हिन्दी अनुवादक व सम्पादकः—

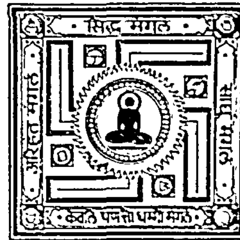
श्री १०८ आचार्य देशभूषण मुनि महाराज

तथा

अंग्रेजी अनुवादकः—

प्रो० श्यामसिंह जैन

एम० ए० (इतिहास) एम० ए० (राजनीति) एल० एल० बी



संशोधक-श्री वीर निर्वाण सम्वत् २६१६, प्रचलित-श्री वीर निर्वाण सम्वत् २४७८

का० शु० १
वि० सं० २००८

मूल्य १०)

प्रथम आवृत्ति
११००

प्रकाशकः—
श्री दिगम्बर जैन समाज,
मुकाम टिकैतनगर,
ज़िला वारावंकी।

मुद्रकः—
किशोरीलाल जैन,
द्वारा
जनता प्रेस, वारावं
में छपा।

Shri Acharya Deshbhusan Muni Maharaj Granth Mala Ka 9th of the series

BHARTESH VAIBHAV

16th Century Kannad Classic

By

Ratnakar Varni

Part Ist Bhog Vijai

Vol. 1st.

HINDI VERSION

By

Shri 108 Acharya Deshbhushan

JAIN MUNI

ENGLISH VERSION

Prof. Shyam Singh Jain M. A. (Hist) M. A. (Pol. Sc.) L. L. B.

Subhash College UNNAO



Actual Shri Veer Nirvan Sambat 2616.

Present Shri Veer Nirvan Sambat 2478.

K. S.
V. S. 2008

Price Rs. 10/-

1st. Edition
1100

Published by
Shri Digamber Jain Samaj,
Tikaitnagar,
Dist:—Barabanki.



Printed by
Kishori Lal Jain
at the
Janta Press,
Barabanki.

"भरतेश वैभव" भोग विजय प्रथम खंड में भूमिका, शास्त्र तथा चित्रों का सूची पत्र

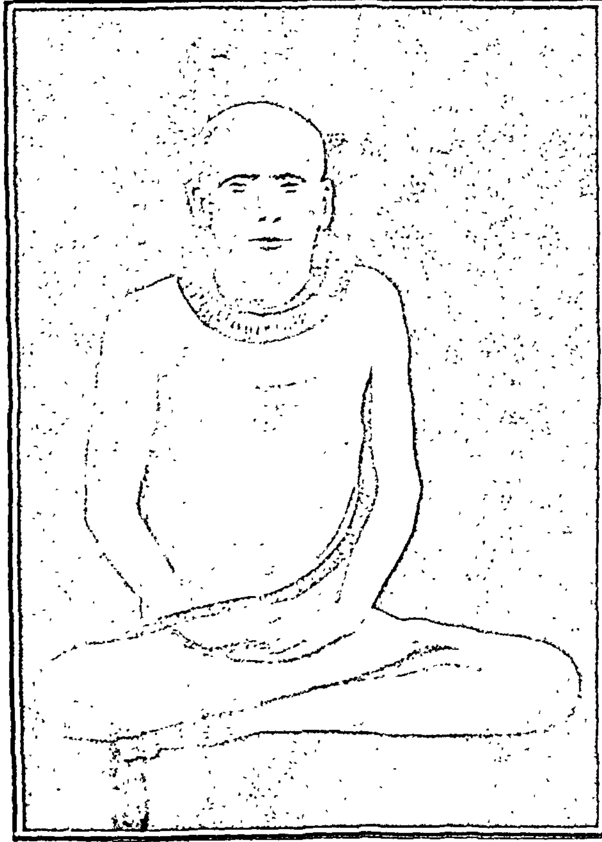
"भूमिका सूची पत्र"

"शास्त्र सूची पत्र"

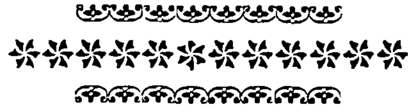
"भूमिका में चित्र सूची पत्र"

"शास्त्र में चित्र सूची पत्र"





चरित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शांतिसागर जी मुनि महाराज



अंग्रेजी अनुवाद कर्ता श्री श्याम सिह जी जैन सुपुत्र-श्री भगवान दास जी जैनी, लखनऊ

श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज हिन्दी अनुवाद कर्त्ता

अंग्रेजी सहायक अनुवाद कर्त्ता श्री भगवानदास जी जैनी लखनऊ

श्री भरतेश्वर वैभव ग्रन्थ के बारे में पूज्य आचार्य विद्यालंकार श्री १०८ देशभूषण जी महाराज के दो शब्द

यह भरतेश्वर वैभव महान् ग्रन्थ है, श्री रत्नाकर कवि ने महापुराण के आधार पर महाराजा भरत के चरित्र वैभव, शारीरिक सौंदर्य का वर्णन कनाडी भाषा की कविता में इस शैली से किया है कि इसे सुन कर योगी तथा भोगी सभी इसमें प्रफुल्लित होकर मग्न हो जायँ। इस ग्रन्थ का प्रथमवार सरल हिन्दी अनुवाद "वर्द्धमान पार्श्वनाथ न्याय तीर्थ पण्डित जी ने किया था" परन्तु उसमें सरल हिन्दी न होने व त्रुटि रहने के कारण पाठकों को पढ़ने में रुचि बहुत कम होती थी और इसी से उससे पूर्ण लाभ नहीं उठा सकते थे। कुछ महानुभावों की यह भी प्रेरणा थी कि ग्रन्थ का सरल हिन्दी के साथ साथ अङ्गरेजी भाषा में भी अनुवाद किया जावे पर हमें बहुत समय तक हिन्दी तथा अङ्गरेजी दोनों का एक साथ अनुवाद करने का साधन नहीं मिला। श्रीसम्मेदशिखर जी की यात्रा करके जब उत्तर प्रान्त में भ्रमण करने लगे तब यह शुभो-वसर उपलब्ध हुआ। सबसे प्रथम तो आरा में चतुर्मास कर के जैन सिद्धान्त सरस्वती भवन में अति ही लाभ हुआ वहाँ अनेक ग्रन्थों के परिचय तथा स्वाध्याय करने का अवसर मिला। वहाँ पर ज्योतिषाचार्य पं० नेमचन्द्र शास्त्री ग्रन्थों की देखभाल व अनुवाद किया करते थे। वहाँ ही हमें श्री नयसेन आचार्य द्वारा रचित कनाडी काव्य धर्मामृत का तथा रत्नाकर कवि विरचित रत्नाकर शतक का हिन्दी अनुवाद करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् चतुर्मास समाप्त होने पर बनारस, प्रयागादि नगरों में विहार करते हुए उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में हमारा आना हुआ और लगभग एक मास तक यहाँ रहना हुआ क्योंकि यहाँ की जैन व अजैन समाज ने प्रवचन सुनने में अति ही रुचि दिखलाई। सभा मण्डप सदा श्रोताओं से भरा रहता था, यह क्षेत्र धर्मोन्नति के लिए अति ही उत्तम जान पड़ा क्योंकि बहुतों ने धर्म लाभ लिया। यहाँ के प्रसिद्ध आफिसर श्री भगवानदास जैनी एम० ए० डिप्टी कमिश्नर लैंड रिफार्मस (भूमि व्यवस्थापक) लखनऊ ने विशेष रूप से धर्म लाभ में रुचि ली और उन्होंने रत्नाकर शतक का हिन्दी में अनुवाद देखकर भरतेश्वर वैभव के कनाडी से हिन्दी में अनुवाद होने के लिए आग्रह किया और अङ्गरेजी में स्वयं अनुवाद करानेका आश्वासन दिया और अपने पुत्र प्रो० श्यामसिंह जी जैन एम० ए० एल-एल० बी० के द्वारा इस शास्त्र का अङ्गरेजी में अनुवाद कराने की व्यवस्थाकी और तब यह कार्य आरम्भ कर दिया गया और भगवानदास जी जैनी ने बड़े उत्साह व भाव पूर्वक भाग लिया यहाँ से पुनः हमारा विहार बाराबङ्की, टिकैतनगर, दरियाबाद, गनेशपुर, प्रयाग को हो गया, इधर लखनऊ वालों ने अति ही आग्रह चतुर्मास करने के लिए किया। इन नगरों में विहार करते हुए लखनऊ में ही चतुर्मास हो गया। जिससे हमें भरतेश्वर वैभव का अनुवाद पूर्ण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ क्योंकि यहाँ भगवानदास जी का पूर्ण सहयोग था आप वास्तविक इस काल में एक अति ही धार्मिक सत्यमार्गी, सरल स्वाभावी तथा परोपकारी व्यक्ति हैं इतने बड़े अफसर होते हुए भी और अवकाश न मिलने पर भी इस कार्य को पूर्ण करने का ही भरसक यत्न हीं नहीं किया, किन्तु कितने ही व्रतादि भी लिएयज्ञोपवीत ग्रहण किया और शूद्र जलादि का भी त्याग कुछ मर्यादा तक किया और आप प्रतिदिन देव, दर्शन, पूजन, स्वाध्याय, सामायिक उचित समय पर करते हैं इस प्रकार श्रावक के पूर्ण व्रत पालते हैं।

इस ग्रन्थ में मूल कनाडी श्लोक तथा हिन्दी व उसके नीचे अङ्गरेजी में अनुवाद किया गया है। अङ्गरेजी में अनुवाद भोग विजय का समाप्त हो चुका है और आगे के भागों का अङ्गरेजी में अनुवाद किया जा रहा है, यह ग्रन्थ पाँच भागोंमें विभाजित होनेके कारण एक एक भागमें दो-दो खण्डके रूपमें किया गया है। राजा भरत की दिन चर्या का जो विषय है उसके बारे में सुन्दर २ चित्र भाव भरे हुए दिए गए हैं जिनसे अवश्य ही पाठकों के हृदय पर राजा भरत के सर्व ही कार्यों का प्रभाव पड़ेगा। अङ्गरेजी अनुवाद केवल इस अभिप्राय से किया गया है कि अन्य देशवासी भी जो कनाडी व हिन्दी भाषा से अनभिज्ञ हैं उन्हें भी इस भारतवर्ष के महान चक्रवर्ती तथा जैन शासन का पूर्ण परिचय मिल जाय और उनके भाव भी इस अहिंसा मई धर्म में लगें। इस लिए भगवानदास को हमारा आशीर्वाद है कि वे सर्व सांसारिक विघ्नों के ऊपर विजय पाकर आत्म कल्याण करें।

ग्रन्थ संशोधन में पं० बन्शीधर जी त्रिपाठी व्याकरण साहित्य तथा आयुर्वेदाचार्य और पं० सत्येशदत्त मिश्रा व्याकरणाचार्य वस्ती निवासी तथा केशरचन्द्र जैन (मैनेजर जनता प्रेस बाराबङ्की) का सहयोग मिला है। और लिखने में पं० जगन्नाथ पांडे की सहायता मिली जो कि अलमोड़ा जिले के रहने वाले हैं। इसलिये सभी को हमारा आशीर्वाद है।

इस प्रकार एक महान ग्रन्थ के एक भाग के अनुवाद का कार्य लखनऊ में पूर्ण होने से यह चतुर्मास अति ही उल्लेखनीय हो गया है। यहां के सब ही श्रावकों ने धर्मलाभलिया। बाराबङ्की जो यहांसे लगभग १८ मील है वहां से प्रायः प्रति दिवस ५०-६० स्त्री पुरुष प्रवचन सुनने आते रहे। उन सब के लिए हमारा आशीष है उन्हें धर्म वृद्धि होवे।

इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में १६ अध्याय हैं जिसमें से एक खंड ८ अध्याय का पूर्ण हो चुका है जो कि पाठकोंके हाथमें है इसलिए जो प्राणी इस ग्रन्थ को मन लगाकर राजा भरतके भोग व योग का वर्णन सुनेगा वह राजा भरत के समान अतुल सम्पत्ति व वैभव प्राप्त करेगा इसमें सन्देह नहीं है। इस ग्रन्थ के अनुवाद करने में कोई त्रुटि हो तो उस त्रुटि पर ध्यान न देवें किन्तु इसमें जो महान पुरुषों का वर्णन है उसके सार को ग्रहण करें। बाकी के खण्ड अभी प्रेस में है जैसे २ यह ग्रन्थ मुद्रित होकर आ जायेगा वैसे ही वह दाताओं के हाथ में पहुँच जायेगा। जिन महानुभावों ने अपना अमूल्य द्रव्य लगाकर इस ग्रन्थ को प्रकाशित कराया अथवा चित्र लगवाये उन्हें हमारा बार २ आशीष है। प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य है कि वह निज धर्म (आत्म धर्म) को न भूलें और उसे उज्ज्वल बनाने का प्रयत्न करें क्योंकि मनुष्य भव बार २ नहीं मिलता। इस ग्रन्थ को सब पाठक विनय पूर्वक मनन करें जिससे ज्ञान ज्योति प्रकट हो ऐसा हमारा आशीर्वाद है।

जिन महानुभावों ने इस ग्रन्थ में सहायता व जो कुछ भी मदद किया है उनके लिये हमारा पूर्ण आशीर्वाद है।

"देशभूषण"

श्री १०८ आचार्य पायसागर मुनि महाराज जी के संघ से प्रेषित भक्तवर इन्द्रचन्द्र जैन (लखनऊ) को शुभाशीर्वाद !

श्री १०८ देशभूषण मुनि महाराज जी द्वारा भरतेश वैभव का किया हुआ हिन्दी अनुवाद सरल भाषा में होने के कारण उत्तर प्रदेशीय व दक्षिण प्रदेशीय जनता को समझाने के लिए बहुत सुगम हो गया है।



(श्री १०८ आचार्य श्री पायसागर जी मुनि महाराज)

भरत जी के इतिहास से मालूम पड़ता है कि राजनीति का कार्य वर्णाश्रम के अनुसार श्रावक धर्म को किस प्रकार चलाना चाहिए। ये सभी बातें उसमें कूट कूटकर भरी हुई हैं। इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करने वाले प्राणियों को इस लोक व पर लोक के सुख प्राप्त करने का ज्ञान हो जायगा। ऐसे योग-भोगको तत्वज्ञान युक्त तथा मार्मिक नवरस सहित श्रावकों को बतलाने वाले अन्य किसी ग्रन्थों में नहीं मिलते।

इसका कारण यह है कि गृहस्थ धर्म में रहते हुए भी आध्यात्मिक श्रावक धर्म का साधन किस प्रकार करना चाहिए।

समय समय में अशुभ कर्मों को रोककर सम्यक् श्रद्धा ज्ञान के अनुसार आत्म हित के साध्य साधक का विवेचन भली भाँति इस ग्रन्थ में किया गया है।

कर्णाटक प्रान्त के जैन व अजैन दोनों मत के विद्वानों ने इस भरतेश वैभव नामक ग्रन्थ को सर्व प्रथम स्थान दिया है। इस ग्रन्थ में आत्म धर्म की आत्मानुभूति का लक्षण अच्छे प्रकार से बतलाया है। इसलिए इस ग्रन्थ की मान्यता प्रत्येक प्राणियों में अधिक है।

इस ग्रन्थ में अङ्गरेजी अनुवाद भूमि व्यवस्थापक डिप्टी कमिश्नर श्री भगवानदास जी जैनी लखनऊ उत्तर प्रदेश ने सहयोग देकर अपने सुपुत्र प्रोफेसर श्री श्यामसिंह जी एम० ए० एल एल बी० के द्वारा जो सरल रूप में किया है, वह आधुनिक काल के अङ्गरेजी प्रिय नवयुवकों के लिए बहुत हितकारी है। इस लिए श्यामसिंह जैन को हमारा शुभाशीर्वाद प्राप्त हो।

इस अङ्गरेजी अनुवाद को पढ़ने से बम्बई प्रान्त के माँगूर ग्राम वासी श्री अरविन्द नरेन्द्र पाटिल एम० ए० एल-एल बी० और सौभाग्यवती सुमता ताई अरविन्द पाटिल बी० ए० एल-एल० बी को बहुत आनन्द प्राप्त हुआ, क्योंकि ये दोनों बहुत धार्मिक वृति वाले मनुष्य हैं। इस ग्रन्थ की पूर्ति होना परमावश्यक है। यह जैन धर्म का साहित्य तथा सत्य धर्म का प्रसार होना नितान्त आवश्यक है।

इस ग्रन्थ का लखनऊ, बाराबङ्की, टिकैतनगर इत्यादि स्थानों के धर्म प्रिय दाताओं ने इसके प्रकाशनार्थ जो आर्थिक सहायता प्रदान कर रहे हैं उन समस्त दाताओं को भी हमारा शुभ आशीर्वाद हो। और यह कार्य निर्विघ्नता पूर्वक समाप्त हो जाय यह हमारा शुभाशीर्वाद है।

पोस्ट माँगूर जिला बेलगाँव
प्रान्त बम्बई

माँगूर
ता० २-१२-५१



PREFACE

Bhartesh Vaibhav literally means the glory of Bharat. This has been very beautifully described in this book.

Bharat was the eldest son of the first Tirthankar Lord Adinath or Rishab Deva. Bharatvarsha, our mother land, derives its name from him. He was the first of the twelve chakravarties. These Chakravarties as a rule used to undertake the conquest of six regions of the world. Each region was perhaps as big as the present known world. This was done to stablize the governments in those regions to make the rulers there to feel their responsibilities towards the subjects so that the administration might be carried on with efficiency and justice and there should be no discontent among the people.

Raja Bharat also undertook the same conquest.

The compilation has three part known as - (1) Bhog Vijay (2) Dig Vijay (3) Yog-Vijay, Moksha Vijay and Arikirti Vijay. The Bhog Vijay has 19 chapters, Dig Vijay 34, Yog Vijay 17, and Moksha Vijay and Arikirti Vijay 27. The first part, Bhog Vijay describes the daily conduct of the king, his enjoyments and pleasures, The second deals with his conquest, the third with his renunciation of the worldly acquisitions and those of other members of his family, their penances and attainment of Moksha. The main tenets of jainism have been beautifully explained in the last part.

There is a special reason why the glory of this king has been the subject of this composition. He was a Raja Yogi. He had realized the individuality of his soul as distinct from the non-soul, his body and material acquisitions. All his actions were marked with this special characteristic. He was an ideal king and an ideal man. He was the most efficient of the administrators and highest of the saints at the same time. To all he looked as engrossed in the pleasure of senses, but he did not feel any attachment to them. He had 96 thousand most charming queens and inspite of the pleasures of their company he had no heart in the sense pleasure. The special feature was that he was thorough in both his duties, worldly and spiritual.

The author of this compilation which is in Canarese was Shri Ratnakar a poet who lived in the sixteenth century A. D. in Madras Province. He was a very learned author and wrote several plays and religious books. He had also acquired high psychic powers. He has based this on the Maha Puran an authoritative work of ancient days. The other compilation is Ratnakar Shatak. Other works were destroyed by communal frenzy.

The author was so much fascinated with this unique conduct of the king that he has tried to bear the fact out in almost every chapter and this is the reason why this compliation is specially interesting. It is held in high esteem by the Jains and even non-Jains. It has been due to this reason that Shri 108 Acharya Desh Bhushan, Jain saint, has undertaken to translate the book from the Canarese language in to Hindi and under his directions English translation has also been rendered. If the book is read, bearing in mind the object behind it, it will be useful to all. The work has been undertaken in great hurry and might contain numerous errors. I crave reader's indulgence for it.

Shri 108 Acharya Desh Bushanji, who has translated this work in to Hindi, is a Jain Muni of high order. He attained the rank of Acharya three years back. He has proficiency in several languages, Sanskrit, Canarese, Marathi, Hindi, Gujrati. He also knows Bengali. He has translated some old authoritative works suchas Dharma by Acharya Kalyan Kiriti, Ratnakar Shatak by Ratnakar, Pramatma Prakash in Canarese verses, one part of Bhartesh Vaibhav in Marathi verses, and Vidya Anuvad by Mallisen Acharya His original works are, 1) Niranjan Stuti in Marathi, 2) Ahinsa-ka-Sandesh, 3) Grihasta Dharma, Prachin Arbachina.

He developed the sense of renu ciation in his early age and adopted the vows of the Jain ascetic when he was hardly 19. Since then he has performed severe penances and has covered a large part of this country.

Lucknow has been fortunate that Shri Desh Bhushan stayed here during the rainy season for his 'Chaturmas', as it was during this period that this laborious work of translating Bhartesh Vaibhav was undertaken by him.

I have no adequate words to express my devotion to him. It is due to the inspiration which I derived from him that I made this virgin attempt to translate a religious work.

I acknowledge that the translation is crude as I do not possess suitable ability in rendering such works. I crave my readers indulgence for it. They may kindly look to the object under lying the work and overlook my mistakes.

I acknowledge with gratitude the assistance which I got from different gentlemen.

I owe my gratitude to my respected father, Shri B. D. Jaini. Dy. Commissioner Land Reforms, who inspite of heavy duties found time to help me in my efforts and who has been a source of inspiration.

Shyam Singh Jain

शास्त्र और उसके लेखक का परिचय



इस ग्रंथ के नाम को देखकर कोई ऐसी कल्पना करे कि यह कथानक अयोध्या पति श्री रामचन्द्रजी के लघुभ्राता भरत जी का चरित्र है अथवा महाराज दुष्यंत के पुत्र भरत का भरतेश वैभव है परंतु नहीं इन दोनों बातों में से एक भी ठीक नहीं है और न इस ग्रंथ में उपरोक्त दोनों भरत में से किसी एक का भी चरित्र नहीं है। अपितु श्री आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती का यह चरित्र है जो कि प्रथम चक्रवर्ती १६ वे मनु अयोध्या नाथ, राज राजेन्द्र महाराजाधिराज षटखंडाधिपति नाम से विख्यात हैं।

महान् ऋषियों का जन्म स्थान, अनेक ग्रंथों का साहित्य स्थान प्रायः कर्नाटक प्रांत ही है बड़े २ विद्वान व शास्त्रज्ञ और ग्रन्थ रचयिता अधिकांश में इसी प्रदेश में उत्पन्न हुये हैं जिनके द्वारा विपुल जैन साहित्य गद्य, पद्य रचनावों में प्रायः कर्नाटकीय भाषा में ही रचा गया है प्रस्तुत "भरतेश वैभव" काव्य भी इसी भाषा में लिखा गया है।

यह महाकाव्य पांच विभागों में रचा गया है। प्रथम भोगविजय, द्वितीय दिग्विजय, तृतीय योगविजय, चतुर्थ मोक्षविजय और पंचम अर्क कीर्ति विजय क्रमशः पांच कल्याणांगों में रचित हैं, इस महाकाव्य में ८४ संधि और ८४ प्रकरण थे किन्तु प्रस्तुत महाकाव्यानुवाद ८० प्रकरणों में नौ हजार नौ सौ साठ श्लोकों में प्राप्त काव्य का ही किया गया है।

सुनने में आया है ४ प्रकरण जो अनुपलब्ध हैं उन में भरत महाराज के बाल्यकाल का पवित्र चरित्र अङ्कित है, और दक्षिण में किसी स्थान पर भोजपत्र और ताड़पत्र पर लिखी हुई मौजूद हैं जो मिल भी गई हैं जो किसी समय सुविधानुसार प्रकाशित की जायेंगी।

इस महाकाव्य के रचयिता महाकवि रत्नाकर वर्णी थे जो कि क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुये थे जिन्होंने स्वयम् अपने शब्दों में इस भाँति परिचय दिया है, अर्थात् जगत में मेरा क्षत्रिय वंश ही कहने में आता है परन्तु यह हमारा विशेषण नहीं है सिद्धपद के प्रति यह विशेषण नहीं है परन्तु सिद्ध पद की प्राप्ति के लिये मैं मुग्ध होकर "रत्नाकरसिद्ध" अपने प्रति नियोजित कर लिया है।

शुद्ध निश्चय नय से मैं तो निरंजन सिद्ध हूं, जन्म, मरण, रोग, शोक, से युक्त माता पिता के परिचय से अपना परिचय देना उचित नहीं समझता हूँ क्योंकि यह वास्तविक माता पिता न होकर मुझे दुःख ही देने वाले हैं इसलिये मैं इन लोगों का परिचय देना अच्छा नहीं समझता हूं। मेरे वास्तविक माता पिता श्रीमंधर स्वामी हैं और उन्हें ही पिता कहने में मुझे अन व आनन्द मिलता है। मेरा जीवन एक रहस्य है। सिद्धांत तत्वों को जानकर संसारकी अनेकप्रकार की दुःख-

दाई अवस्थाओं से विरक्त सा हूं क्योंकि उस कार्य से ऊँचा स्थान प्राप्त नहीं हो सकता है और न वह ऊँचा कहला सकता है, जगत में प्राणीमात्र को उच्च स्थान देनेवाले "आत्महित" को जो देने में समर्थ हैं वही मुझे इष्ट हैं और मेरे लिये योग्य है।

मेरे गुरू योगीन्द्र चारुकीर्ति हैं परन्तु मोक्ष गुरू तो हंसनाथ सिद्ध भगवान हैं परन्तु उन्होंने दीक्षा लेने के बाद अपने जीवन का उल्लेख कदाचित उन्होंने उपरोक्त प्रकार से किया था किंतु देवचन्द्र के राजा बलि कथा से यह मूड़बिद्री के सूर्य वंशीय राजकुलीय देवराज के पुत्र प्रतीत होते हैं उन्होंने ही उनका नाम रत्नाकर रखा था अनुमानतः मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि दीक्षा लेने के बाद वर्णी अन्य सिद्ध यह जो विशेषण आये हैं वे दीक्षा लेने के बाद योगाभ्यास के द्वारा सिद्धत्व को प्राप्त करने की इच्छा अधिक रहने के कारण मिले होंगे।

महाकवि रत्नाकरने बाल्यावस्था में ही काव्यालंकार लक्षण शास्त्रों में प्रवीणता प्राप्त करली थी केशववर्णी कृत सारत्रय की व्याख्या को श्री कुंदकुंदाचार्य प्रणीत अध्यात्म सिद्धांत को तथा प्रभेन्दु द्वारा की हुई टीका को श्री पूज्यपादाचार्य के समाधि शतक को और अमृत चंद्राचार्य कृत समयसार नाटक को तथा योगरत्नाकर, नियमसार, अध्यात्मसार पद्मनंदी कृत स्वरूप संबोधन, इष्टोपदेश अध्यात्मनाटक इत्यादि ग्रंथोंको उद्धत पूर्वक जानकर कवीश्वर हुये उससमयके राजा भैरव की राज सभामें शृङ्गार कविकी उपाधिसे विभूषित किया था और वे सभी विद्वानोंमें श्रेष्ठगिने जाते थे और उनकी निरंजनसिद्ध नाम की पदवी है कवियों का मत है निरंजनसिद्ध, चिदम्बर पुरुष उनको इच्छित देव के अङ्कितनाम अनेक तरफ गुरुवे निरंजन सिद्ध, गुरुवे चिदंबर पुरुष बारंबार आने से स्पष्ट होता है कि महाकवि को शृङ्गार कवि देशराज इत्यादि पदवी इसी काव्य के लिखने पर उन्हें प्राप्त हुई होगी।

महाकवि रत्नाकर ने अपने त्रैलोक्य शतक में मणिसेलम् गतिइन्दु शालिवाहन शकमें रचना किया है इसप्रकार इस महाकाव्य का समय शालिवाहन शक १४७९ अर्थात् ईसवी सन् १५५७ होता देवेन्द्रचन्द्र ने ऐसा समझाया है, यह भरतेशवैभव पूर्ण होने के बाद इसमें ५० पद्य अधिक हैं वे पद्य अन्य कृत हैं इनकी शैली से ही यह विदित होता है परन्तु जिन्होंने लिखा है वह इस काव्य का एक अङ्ग है ऐसा समझकर भ्रम से अन्त में प्रवेश कर दिये हैं।

उसमें रहने वाले एक वाक्य से यह ग्रन्थ शक १५८२ अर्थात् सन् १६६० ई० में रचित है ऐसे भ्रम में लोग पड़े हुये हैं त्रिलोक शतक को सन् १५५७ ई० में लिखा है अतएव १६८० में रहना असंभव होने के कारण इस ग्रन्थ के प्रतिको निकले हुये समय (१६६०) की है ऐसा व्यक्त होता है।

इस कवि के द्वारा ग्रन्थ में लिखे हुए संदर्भ को लेकर देवचन्द्र ने निम्नलिखित कथा का वर्णन किया है। रत्नाकर कवि राजा भैरव की राजसभा के स्थायी कवि होकर बहुत ख्याति को प्राप्त किया। उसकी प्रसिद्धि देखकर राजा भैरवकी पुत्री कवि रत्नाकर पर मोहित होगई और उस

के साथ समागम करने को उत्कंठित होगई। कवि रत्नाकर ने इसकी पूर्ति के लिए योगाभ्यास द्वारा दशों वायु की साधना की और उनके द्वारा अर्थात् वायु द्वारा राज महल पर चढ़कर खिड़की के मार्ग से भीतर प्रवेशकर राजकन्या के साथ भोग भोगने लगा। यह वात जव राजा भैरव को मालूम हुई तो राजा ने कवि रत्नाकर को वन्दी वनाकर राज दरवार में उपस्थित करने की आज्ञा जारी कर दिया जव कवि रत्नाकर को यह राजाज्ञा मालूम हुई तो उसने उसी रात्रि में अपने निज गुरू महेन्द्रकीर्ति से अणुव्रत धारण कर के दीक्षित होगया और आगम शास्त्र में अति निपुण होकर अध्यात्म तत्व में हमेशा रत रहने लगा। वहां विजयकीर्ति नामक पट्टाचार्य के शिष्य विजयन्न ने द्वादशानुप्रेक्षाओं को कन्नड भाषा में संगीत रूप से रचकर और उस ग्रन्थ को हाथी के ऊपर रखकर जुलूस के साथ प्रभावना करते हुये निकाला। इसे देखकर रत्नाकर कवि ने "भरतेश वैभव" की रचना किया और हाथी के ऊपर जुलूस के साथ निकालने की आज्ञा पट्टाचार्य से मांगी। पट्टाचार्य ने कहा उसमें दो तीन शब्द विरोध युक्त हैं अतएव ऐसी आज्ञा हम नहीं दे सकते और कहा कि सात सौ श्रावकों में से किसी को भी कवि रत्नाकर का आदर सत्कार नहीं करना चाहिए। इस आज्ञा के होने पर रत्नाकर अपनी व ि न के घर पर ही भोजन करने लगा और जैन धर्म के ऊपर घृणा करने लगा। सोचने लगा कि आत्मज्ञानी को जाति कुल समान ही है ऐसा कहते हुए गले में रुद्राक्ष धारण करके शैव होगया और शैव शास्त्रों की रचना करके वसु पुराणादि अनेक शास्त्रों को वनाकर उसी मार्ग पर चलने लगा।

रत्नाकर कवि के सम्बन्ध में:-

रत्नाकर अल्पवय में ही संसार से विरक्त होगये थे। इन्होंने चारुकीर्ति योगी से दीक्षा ली थी। दिन रात तपस्या और योगाभ्यास में अपना समय व्यतीत करते थे। इनकी प्रतिभा अद्भुत थी, शास्त्रीय ज्ञान भी निराला ही था। थोड़े ही दिनों में रत्नाकर की प्रसिद्धि सर्वत्र हो गयी। अनेक शिष्य उनके उपदेशों में शामिल होने लगे। रत्नाकर प्रतिदिन प्रातःकाल अपने शिष्यों को उपदेश देते थे। शिष्य दो घड़ी रात शेष रहते ही इनके पास एकत्रित होने लगते थे। कवि प्रतिभा इन्हें जन्म जात थी, जिससे राजा महाराजाओं तक इनकी कीर्ति कौमुदी पहुँच गयी थी।

परन्तु अन्य कविलोग इनके प्रति हमेशा द्वेष बुद्धि से जलते थे और एक दिन ऐसे मौन देखकर कलंक लगाया। इसलिये कवि को अपना स्थान छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ा। यद्यपि अनेक लोगों ने उनसे वहीं रहने की प्रार्थना की, पर उन्होंने किसी की वात नहीं सुनी। कुछ दूर चलने पर कवि को एक नदी मिली। इसने इस नदी में यह कहते हुए डुबकी लगायी कि मुझे जैन धर्म की आवश्यकता नहीं है, मैं आज इसे तिलाञ्जलि देता हूं कवि स्नान आदि से निवृत्त होकर आगे चला। उस रास्ते में हाथी पर एक शैवग्रन्थ का जुलूस गाजे वाजे के साथ आता हुआ मिला। कवि ने इस ग्रन्थ को देखने को मांगा और देखकर कहा इसमें कुछ सार नहीं है। लोगों ने यह समाचार राजा को दिया, राजा से उन्होंने कहा कि एक कवि ने सार रहित कहकर इस ग्रन्थ का अपमान किया है। राजा ने

दूत भेजकर रत्नाकर कवि को अपनी सभा में बुलाया और उससे पूछा कि इसमें सार क्यों नहीं है ? तुमने इस महाकाव्य का तिरस्कार क्यों किया ?

हमारी सभाके सभी पण्डितों ने इसे सर्वोत्तम महाकाव्य बताया है, फिर आप क्यों अपमान कर रहे हैं ?

आप का कौन सा रस मय महाकाव्य है ?

रत्नाकर कवि—महाराज ! नौ महीने का समय दीजिए तो मैं आपको रस क्या है ? यह बतलाऊँ ।

राजा से इस प्रकार समय मांगकर कवि ने नौ महीने में भरतेश वैभव ग्रन्थ की रचना की और सभा में उसको राजा को सुनाया । इसे सुनकर सभी लोग प्रसन्न हुए, राजा कवि की अप्रतिम प्रतिभा और दिव्य सामर्थ्य को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और कवि से शैव धर्म को स्वीकार करने का अनुरोध किया । कवि ने जैन धर्म छोड़ने का निश्चय पहले ही कर लिया था, अतः राजा के आग्रह से उसने शैव धर्म ग्रहण कर लिया । मरण काल निकट आने पर कवि ने पुनः जैन धर्म ग्रहण कर लिया । उसने स्पष्ट कहा कि मैं यद्यपि ऊपर से शिव लिंग धारण किये हूं पर अन्तरंग में मैं सदा से जैन हूं । अतः मरने पर मेरा अन्तिम संस्कार जैनाम्नाय के अनुसार किया जाय । उपर्युक्त दोनों कथाओं का समन्वय करने पर प्रतीत होता है कि कवि जन्म से जैन धर्मानुयायी था बीच में किसी कारण से शैव धर्म को उसने ग्रहण कर लिया था, पर अन्त में वह पुनः जैनी बन गया था ।

कवि का उद्देश्य—

इस काव्य (भरतेश वैभव) की रचना मत्सर बुद्धि से होने पर भी दूसरों के लिए मत्सर बुद्धि का उपदेश इसमें नहीं दिया गया है । रत्नाकर कह रहे हैं कि इस काव्य में मैंने अपने गुरू हंसनाथ की आज्ञा से अपनी आत्म लीला का वर्णन किया है ।

जिस प्रकार पुष्प स्वेच्छा से विकसित होकर आत्म प्रशंसा से रहित हो कर अपना दिव्य सुगंध परोपकार के लिये वायु में फैलाता है उसी प्रकार आत्म प्रशंसा से रहित होकर मैंने पुष्प सुगन्ध के समान इस काव्य की रचना लोक हितार्थ ही किया है । भिन्न भिन्न प्राणिओं की भिन्न भिन्न भावनायें हैं अतः जिसकी इच्छा हो वह ग्रहण करे और जिसकी इच्छा न हो वह छोड़ दे इसमें मुझे लेशमात्र भी हर्ष व विषाद नहीं है क्योंकि मैं निराकांक्षी हूं ।

इस काव्य को पढ़कर बहुत से लोग परमानन्दित हुये, किन्तु कुछ ईर्ष्या द्रोही कुकवियों ने आत्म प्रशंसा की वृद्धि के निमित्त से इस काव्य की निंदा करते हुए इसे अधूरे में ही छोड़ दिया । इस अपमान से मुझे तो कुछ कष्ट नहीं हुआ पर राजा ने इस बात से रुष्ट होकर उन लोगों को राजसभा से पृथक कर दिया ।

यह काव्य विद्वानों व त्यागियों के लिए ही बनाया गया है जिससे कि वे दत्तचित्त होकर इसका मनन करें।

कवि का समय और गुरु परम्परा

इस कवि ने अपने त्रिलोक शतक में "मणि शैलंगति इन्दु शालीशतकं" का उल्लेख किया है, जिससे ज्ञात होता है कि, शालिवाहन शक १४७९ (१५५७ ई०) में शतकत्रय की रचना की है। भरतेश वैभव में एक स्थान पर उसका रचना काल शक सं० १५८२ (१६६० ई०) बताया है। पर यह समय ठीक नहीं जंचता है। पहली बात तो यह है कि त्रिलोक शतक और भरतेश वैभव के समय में १०३ वर्ष का अन्तर है, अतः एक ही कवि १०३ वर्ष तक कविता कैसे करता रहा होगा। इसलिये दोनों ग्रन्थों में से किसी एक ग्रन्थ के समय का प्रमाण मानना चाहिये अथवा दोनों के रचयिता दो भिन्न कवि होने चाहिये।

रचना शैली आदि की दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि भरतेश वैभव में लगभग ५० पद्य प्रक्षिप्त हैं, जिन्हें लोगों ने भ्रमवश रत्नाकर कवि का समझ लिया है। उपर्युक्त समय भी प्रक्षिप्त पद्यों में ही आया है, अतः यह प्रक्षिप्त पद्यों का रचना समय है, भरतेश वैभव का नहीं। त्रिलोक शतक तथा सोमेश्वर शतक में दिये गये समय के आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि इस कवि का समय ईस्वी सन् की सोलहवीं शताब्दी का मध्य है।

इस कवि के दो गुरु प्रतीत होते हैं। एक देवेन्द्रकीर्ति और दूसरे चारुकीर्ति, इस कविकी विरुदावलि में श्रृङ्गार कवि राज हंस ऐसा उल्लेख आता है, जिससे कुछ लोगों का अनुमान है कि श्रृङ्गार कवि राज हंस यह कोई स्वतन्त्र कवि है, इनके गुरु देवेन्द्रकीर्ति थे तथा रत्नाकर के गुरु चारुकीर्ति थे। पर विचार करने पर यह ठीक नहीं जंचता, श्रृङ्गार कवि राजहंस यह विरुदावली कवि रत्नाकर की ही है। क्योंकि भरतेश वैभव श्रृङ्गार रस की खान है, अतः "श्रृङ्गार कवि राज हंस" यह उपाधि कवि को मिली होगी। राजा वली कथा के अनुसार देवेन्द्रकीर्ति और महेन्द्रकीर्ति एक ही व्यक्ति के नाम हैं।

रत्नाकर शतक में कविने अपने गुरु का नाम महेन्द्रकीर्ति कहा है। देवेन्द्रकीर्ति नाम की पट्टावली हुम्बुच के भट्टारकों की है और चारुकीर्ति पट्टावली मूडबिद्री के भट्टारकों की थी। कवि ने प्रारम्भ में चारुकीर्ति भट्टारक से दीक्षा ली होगी। मध्य में शैव हो जाने पर वह कुछ दिन इधर-उधर रहा होगा। पश्चात् पुनः जैन होने पर हुम्बुच गद्दी के स्वामी महेन्द्रकीर्ति या देवेन्द्रकीर्ति से उसने दीक्षा ली होगी।

जैन धर्म से विरत होकर, शैव दीक्षा लेने पर इसने सोमेश्वर शतक की रचना की है। इस शतक में समस्त सिद्धांत जैन धर्म के हैं, केवल अन्त में "हरहरा सोमेश्वरा" जोड़ दिया गया है। नमूने के लिये देखिये:—

श्लोक—वर सम्यत्त्वसुधर्म जैनमत दोल्लतां पुट्टिया दीक्षयं ।
धरिसीसन्नुत काव्य शास्त्र गळलनुं निर्माणमं माडुतं ॥
वर रत्नाकर योगि येंदु निरुत वैराग्य वंदे रत्नां ।
कर दीक्षा व्रतना देनै हरहरा श्री चेन्न सोमेश्वरा ॥

इससे स्पष्ट है कि कवि ने अपने जीवन में एक बार शैव दीक्षा ली थी, पर जैन धर्म का महत्व उसके हृदय में बना रहा था, इसी कारण अन्त समय में उसे पुनः जैन बनने में विलम्ब नहीं हुआ।

कथा सार

कौशल देश की अयोध्या नगरी में प्रथम तीर्थंकर के प्रथम पुत्र भरतेश षट्खंडाधिपति होकर सत्कथा, विनोद के साथ राज्य का पालन करते थे। वे अनेक प्रकार के कवियों एवं गायकों के साथ नाना प्रकार की कविता तथा संगीत कला के द्वारा सुन्दर प्रभात काल को व्यतीत करते थे। मध्याह्न काल में मुनि भुक्ति नियमों को पालन करके रनिवास में जाकर अपनी ९६००० (छियानवे हजार) रानियों के साथ भोग-योग करते हुये राजयोग नामक कीर्ति को प्राप्त किया।

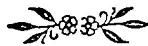
१—पहले अध्याय में राज दरबार का वर्णन है।
२—दूसरे अध्याय में द्विविज कलाधर नामक कवि के द्वारा राजाभरत के प्रति उनके गुणों का वर्णन तथा अध्यात्म का वर्णन किया गया है।
३—तीसरे अध्यायमें राजा भरतकी दिनचर्या का वर्णन व मुनि भुक्ति आहार दान का वर्णन किया गया है।
४—चौथे अध्याय में राजा भरत के अपनी रानियों सहित भोजन करने का वर्णन किया है।
५—पांचवें अध्याय में रानियों द्वारा भेंट तथा गायन कला सेवा का वर्णन किया गया है।
६—छठवें अध्याय में राजा भरत की अत्यन्त प्रेम पात्र कुसुमा जी रानी द्वारा एक तोते के साथ राजा का गुण गान किया है।
७—सातवें अध्याय में तोते के द्वारा राजा भरत और कुसुमा जी रानी का वर्णन।
८—आठवें अध्याय में राजा भरत अमराजी सुमनाजी तथा कुसमाजी पर मुग्ध होकर आलीङ्गन रूप में सन्मान करना
९—नवमें अध्याय में सरस वार्तालाप और कुसुमाजी बहन मकरन्दा जी से वार्तालाप

इस प्रकार प्रथम खण्ड के नौ अध्याय पूर्ण होते हैं।



श्री ऋषभदेव तीर्थंकर के जीवन के विषय में श्रीमद्भागवत व जैन शास्त्रानुसार दोनों में से संक्षिप्त वर्णन

भागवत् में श्री ऋषभदेव जी का चरित्र



श्री शुकदेव जी बोले—राजन् ! आग्नीध्र के पुत्र नाभि के कोई सन्तान न थी इसलिए उन्होंने अपनी भार्या मरु देवी के सहित पुत्र की कामना से एकाग्रता पूर्वक भगवान यज्ञ पुरुष का भजन किया। यद्यपि श्री भगवान द्रव्य, देश, काल, मंत्र ऋत्विज, दक्षिणा और विधि इन यज्ञ के साधनों से सहज में नहीं मिलते, तथापि वे भक्तों पर तो कृपा करते ही हैं। इसलिए जब महाराज नाभि ने श्रद्धा पूर्वक विशुद्ध भाव से उनकी आराधना की तो उनका चित्त अपने भक्त का अभीष्ट कार्य करने के लिए उत्सुक होगया यद्यपि उनका स्वरूप सर्वथा स्वतन्त्र है तथापि उन्होंने प्रवर्ग्य कर्म का अनुष्ठान होते समय उसे मन और नयनों को आनन्द देने वाले आवयवों से युक्त अति सुन्दर हृदयाकर्षक मूर्ति में प्रकट किया। उनके श्री अङ्ग में रेशमी पीताम्बर था, वक्षस्थल सुमनोहर श्री वत्स चिंह सुशोभित था, भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा गले में वन माला और कौस्तुभ मणि की शोभा थी। सम्पूर्ण शरीर अङ्ग प्रत्यङ्ग की कान्ति को बढ़ाने वाले किरण जाल मण्डित मणि-मय मुकुट,कुण्डल,कङ्कण,करधनी, हार, बाजू बन्द और नूपुर आदि आभूषणों से विभूषित था। ऐसे परम तेजस्वी चतुर्भुज मूर्ति पुरुष विशेष को प्रकट हुआ देख ऋत्विज सदस्य और यजमान आदि सभी लोग ऐसे आह्लादित हुये जैसे निर्धन पुरुष अपार धन राशि पाकर फूला नहीं समाता। फिर सभी ने सिर झुकाकर अत्यन्त आदर पूर्वक प्रभु की अर्घ द्वारा पूजा की और ऋत्विजों ने उनकी स्तुति की।

ऋत्विज बोले—पूज्यतम ! हम आपके अनुगत भक्त हैं, आप हमारे पुनः पुनः पूज्यनीय हैं। किन्तु हम आपकी पूजा करना क्या जाने ? हम तो बार बार आपको नमस्कार करते हैं बस इतना ही हमें महापुरुषों ने सिखाया है। आप प्रकृति और पुरुष से भी परे हैं फिर प्राकृत गुणों के कार्य भूत इस प्रपंच में बुद्धि फँस जाने से आपके गुण गान में सर्वथा असमर्थ ऐसा कौन पुरुष है ? जो प्राकृत नाम रूप एवं आकृति के द्वारा आपके स्वरूप का निरूपण कर सके ? आप साक्षात् परमेश्वर हैं। आपके परम मङ्गलमय गुण सम्पूर्ण जन समूह के दुखों का दमन करने वाले हैं। यदि कोई उन्हें वर्णन करने का साहस भी करेगा तो केवल उनके एक देश का ही वर्णन कर सकेगा। किन्तु प्रभो ! यदि आपके भक्त प्रेम गद्गद् वाणी से स्तुति करते हुए सामान्य जल विशुद्ध पल्लव तुलसी और दूब के अंकुर आदि सामग्री से ही आपकी पूजा करते हैं तो भी आप सब प्रकार सन्तुष्ट हो जाते हैं। हमें तो अनुराग के सिवा इस द्रव्य कालादि अनेकों अङ्गों वाले यज्ञ से भी आपका कोई प्रयोजन नहीं दिखलाई देता क्योंकि आपके स्वतः ही क्षण क्षण में जो सम्पूर्ण पुरुषार्थ का फल स्वरूप परमानन्द स्वभावतः ही निरन्तर प्रादुर्भूत होता रहता है आप साक्षात् उसके स्वरूप ही हैं। इस प्रकार यद्यपि आपको इन यज्ञादि से कोई प्रयोजन नहीं है, तथापि अनेक प्रकार की

कामनाओं की सिद्धि चाहने वाले हम लोगों के लिए तो मनोरथ सिद्धि का पर्याप्त साधन यही होना चाहिए। आप ब्रह्मादि परम पुरुषों की अपेक्षा भी परम श्रेष्ठ है। हम तो यह भी नहीं जानते कि हमारा परम कल्याण किसमें है और न हमसे आपकी यथोचित पूजा ही बनी है, तथापि जिस प्रकार तत्वज्ञ पुरुष बिना बुलाये भी केवल करुणावश अज्ञानी पुरुषों के पास चले जाते हैं, उसी प्रकार आप भी हमें मोक्ष संरक्षक अपना परमपद और हमारी अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करने के लिए अन्य साधारण यज्ञ दर्शकों के समान यहां प्रकट हुए हैं। पूज्यतम्! हमें सबसे बड़ा वर तो आपने ये ही दे दिया कि ब्रह्मादि समस्त वरदायकों में श्रेष्ठ होकर भी आप राजर्षि नाभि की इस यज्ञशाला में साक्षात् हमारे नेत्रों के सामने प्रकट होगए। अब हम और वर क्या मांगें।

प्रभो! आपके गुण गणों का गान परम मङ्गलमय है। जिन्होंने वैराग्य से प्रज्वलित हुई ज्ञानाग्नि के द्वारा अपने अन्तःकरण के राग-द्वेषादि सम्पूर्ण मलों को जला डाला है, अतएव जिनका स्वभाव आप ही के समान शान्त है; वे आत्माराम मुनिगण भी निरन्तर आपके गुणों का गान ही किया करते हैं। अतः हम आपसे यही वर मांगते हैं कि गिरने, ठोकर खाने, छींकने अथवा जम्हाई लेने और सङ्कटादि के समय एवं ज्वर मरणादिक की अवस्थाओं में आपका स्मरण न हो सकने पर भी किसी प्रकार आपके सकल कलिमल विनाशक "भक्तवत्सल" "दीनबन्धु" आदि गुण द्योतक नामों का हम उच्चारण कर सकें।

इसके सिवा कहने योग्य न होने पर भी एक प्रार्थना और है। आप साक्षात् परमेश्वर हैं स्वर्ग अपवर्ग आदि ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे आप न दे सकें। तथापि जैसे कोई कंगाल किसी धन लुटाने वाले परम उदार पुरुष के पास पहुँच कर भी उससे भूसा ही मागें उसी प्रकार हमारे यजमान ये राजर्षि नाभि सन्तान को ही परम पुरुषार्थ मानकर आप ही के समान पुत्र पाने के लिए आपकी आराधना कर रहे हैं। परन्तु यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आपकी माया का पार कोई पा नहीं सकता और न वह किसी के वश में ही आ सकती है। जिन लोगों ने महापुरुषों के चरणों का आश्रय नहीं लिया उनमें ऐसा कौन है जो उनके वश में नहीं होता उसकी बुद्धि पर उसका पर्दा नहीं पड़ जाता और विषय रूप विष का वेग उसके स्वभाव को दूषित नहीं कर देता? हे, देव! आप भक्तों के बड़े बड़े काम कर देते हैं। हम मन्द मतियों ने कामनावश इस तुच्छ कार्य के लिए आपका आवाहन किया यह आपका अनादर ही है। किन्तु आप समदर्शी हैं अतः हम अज्ञानियों की इस धृष्टता को आप क्षमा करें।

श्री भगवान बोले—ऋषियो! बड़े असमंजस की बात है। आप सब सत्यवादी महात्मा हैं आपने मुझसे यह बड़ा दुर्लभ वर मांगा है कि राजर्षि नाभि के मेरे समान पुत्र हो। मुनियो! मेरे समान तो मैं ही हूँ क्योंकि मैं अद्वितीय हूं। तो भी ब्राह्मणों का वचन मिथ्या न होना चाहिए, द्विजकुल मेरा ही तो मुख है इसलिए मैं स्वयं ही अपनी अंशकला से आग्नीध्रनन्दन नाभि के यहां अवतार लूँगा क्योंकि अपने समान मुझे कोई और दिखाई ही नहीं देता।

श्री शुकदेव जी कहते हैं—महारानी मरुदेवी के सामने ही उसके पति से इस प्रकार कहकर भगवान अन्तर्धान होगए। परीक्षित्! उस यज्ञ में महर्षियो द्वारा इस प्रकार प्रसन्न किए जाने पर श्री भगवान महाराज नाभि का प्रिय करने के लिए उनके रनिवास में महारानी मरुदेवी के गर्भ से दिगम्बर सन्यासी और अर्ध्वरेता मुनियों का धर्म प्रगट करने के लिए शुद्ध सत्वमय विग्रह से प्रकट हुए। उनके लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं समझनी चाहिए, क्योंकि तुम्हें याद ही होगा कि उन्होंने गर्भ के अन्दर तुम्हारी रक्षा की थी।

ऋषभदेव जी का राज्य शासन

श्री शुकदेव जी कहते हैं—राजन्! नाभिनन्दन जन्म से ही भगवान विष्णु के वज्र-अंकुश आदि चिन्हों से युक्त थे, समता, शान्ति, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि महा विभूतियों के कारण उनका प्रभाव दिनों दिन बढ़ता जाता था। यह देखकर प्रजा, मन्त्री, ब्राह्मण और देवताओं की यह उत्कृष्ट अभिलाषा होने लगी कि ये ही पृथ्वी का शासन करें। उनके सुन्दर और सुडौल शरीर विपुल कीर्ति तेज, बल, ऐश्वर्य, यश पराक्रम और शूर वीरता आदि गुणों के कारण महाराज नाभि ने उनका नाम "ऋषभ" (श्रेष्ठ) रक्खा।

एक बार भगवान इन्द्र ने ईर्ष्यावश उनके राज्य में वर्षा नहीं की। तब योगेश्वर भगवान ऋषभ ने इन्द्र की मूर्खता पर हंसते हुए अपनी योगमाया के प्रभाव से अपने वर्ष भरत नाम खण्ड में खूब जल बरसाया। महाराज नाभि अपनी इच्छा के अनुसार श्रेष्ठ पुत्र पाकर अत्यन्त आनन्द मग्न होगए और अपनी इच्छा से मनुष्य शरीर धारण करने वाले पुराण पुरुष श्री हरि का सप्रेम लालन करते हुए, उन्हीं के लीला विलास से मुग्ध होकर 'वत्स! तात!' ऐसा गद्गद् वाणी से कहते हुए बड़ा सुख मानने लगे।

महाराज नाभि लोम तक का बड़ा आदर करते थे। जब उन्होंने देखा कि पुरवासी और मंत्रिगण ऋषभदेव को बहुत मानते हैं, तो उन्होंने उन्हें धर्म मर्यादा की रक्षा के लिए राज्याभिषिक्त करके ब्राह्मणों की देख रेख में छोड़ दिया। आप अपनी पत्नी मरुदेवी सहित बदरिकाश्रम को चले गये। वहां अहिंसा वृत्ति से कठोर तपस्या और समाधि योग के द्वारा भगवान वासुदेव के नर नारायण रूप की आराधना करते हुए समय आने पर उन्हीं के स्वरूप में लीन होगये।

पाण्डुनन्दन! राजा नाभि के विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

राजर्षि नाभि के उदार कर्मों का आचरण दूसरा कौन कर सकता है जिनके शुद्ध कर्मों से संतुष्ट होकर साक्षात् श्री हरि उनके पुत्र होगये थे। महाराज नाभि ब्राह्मणों में भक्ति भी बहुत रखते थे। इसी कारण ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर इन्हें विष्णु भगवान के दर्शन करा दिए।

भगवान ऋषभदेव भरत खण्ड को कर्मभूमि मानकर लोक संग्रह के लिए कुछ काल गुरुकुल में वास किया। गुरुदेव को यथोचित दक्षिणा देकर गृहस्थ में प्रवेश करने के लिए उनकी आज्ञा ली। पुनः देवराज इन्द्र की कन्या जयन्ती से विवाह किया तथा श्रौत स्मार्त्त दोनों प्रकार के शास्त्रोपदिष्ट कर्मों का आचरण करते हुए उसके गर्भ से अपने ही समान गुण वाले सौ पुत्र

उत्पन्न किए। उनमें महायोगी भरत जी सबसे बड़े और सबसे अधिक गुणवान थे। उन्हीं के नाम से लोग इस भरत खण्ड को "भारतवर्ष" कहने लगे। उनसे छोटे कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट ये नौ राजकुमार शेष नब्बे भाइयों में बड़े एवं श्रेष्ठ थे। उनसे छोटे कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन ये नौ राजकुमार भागवत धर्म का प्रचार करने वाले बड़े भगवद्भक्त थे। इनसे छोटे इक्यासी जयन्ती कुमार पिता की आज्ञा का पालन करने वाले, अति विनीत महान वेदज्ञ और निरन्तर यज्ञ करने वाले थे। वे पुण्य कर्मों का अनुष्ठान करने से शुद्ध होकर ब्राह्मण होगए थे।

भगवान् ऋषभदेव, यद्यपि परम स्वतन्त्र होने के कारण स्वयं सर्वदा ही सब प्रकार की अनर्थ परम्परा से रहित, साक्षात् ईश्वर ही थे, तो भी अज्ञानियों के समान कर्म करते हुये उन्होंने काल के अनुसार प्राप्त धर्म का आचरण करके उसका तत्त्व न जानने वाले लोगों को उसकी शिक्षा दी। साथ ही सम, शांत, सुहृद और कारुणिक रहकर धर्म, अर्थ, यश, सन्तान भोग-सुख और मोक्ष का संग्रह करते हुये गृहस्थाश्रम में लोगों को नियमित किया, क्योंकि महापुरुष जैसा जैसा आचरण करते हैं, दूसरे लोग उसी का अनुकरण करने लगते हैं। यद्यपि वे सभी धर्मों के सार रूप वेद के गूढ़ रहस्य को जानते थे, तो भी ब्राह्मणों की बतलाई हुई विधि से साम-दामादि नीति के अनुसार ही प्रजा का पालन करते थे। उन्होंने शास्त्र और ब्राह्मणों के उपदेशानुसार विधि पूर्वक सुसम्पन्न सभी प्रकार के सौ-सौ यज्ञ किये। भगवान् ऋषभदेव के शासन काल में कोई भी पुरुष उनसे अनुराग के अतिरिक्त किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता था। एक बार भगवान् ऋषभदेव घूमते-घूमते ब्रह्मावर्त देश में पहुँचे। वहां प्रेम से युक्त होकर पुत्रों को शिक्षा देने के लिये इस प्रकार कहाः—

श्री ऋषभदेव जी का पुत्रों को उपदेश और स्वयं अवधूत वृत्ति ग्रहण करना

श्री ऋषभदेव जी बोले पुत्रो! इस मृत्यु लोक में नर देह पाकर जीव को दुःखमय विषय भोगों में ही नहीं फँसे रहना चाहिये। ये भोग तो विष्ठा भोजी सूकर कूकरादि को भी मिलते ही हैं। इस शरीर के द्वारा तो दिव्य तपही करना चाहिये, जिससे अन्तः करण शुद्ध हो और अनन्त ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो सके शास्त्रों ने महा पुरुषों की सेवा को मुक्ति का और स्त्री संगी कामियों के संग को नरक का द्वार बताया है। महा पुरुष वे ही हैं जो समान चित्त, परम शान्त तथा प्राणी मात्र के शुभ चिन्तक हैं। मनुष्य जो प्रमादी होकर कुकर्म करने लगता है, उसकी वह प्रवृत्ति इन्द्रियों को तृप्त करने के लिये ही होती है।

जब तक यह लौकिक वैदिक कर्मों में फँसा रहता है, तब तक मन में कर्म की वासनाएं भी बनी ही रहती हैं और इन्हीं से देह बन्धन की प्राप्ति होती है। अतः जब तक उसकी मुझ वासुदेव में प्रीति नहीं होती, तब तक वह देह बन्धन से छूट नहीं सकता। स्वार्थ में पागल जीव जब तक विवेक दृष्टि का आश्रय लेकर इन्द्रियों की चेष्टाओं को मिथ्या नहीं देखता, तब तक आत्मस्वरूप की स्मृति खो बैठने के कारण वह अज्ञान वश विषय प्रधान गृह आदि में आसक्त रहता है और तरह तरह के क्लेश उठाता रहता है।

स्त्री और पुरुष इन दोनों का जो परस्पर दाम्पत्य भाव है, इसी को पण्डित जन उनके हृदय की दूसरी स्थूल एवं दुर्भेद्य ग्रन्थि कहते हैं। पुत्रो ! संसार सागर से पार होने में कुशल तथा धैर्य, उद्यम एवं सत्त्वगुणविशिष्ट पुरुष को चाहिये की सबके आत्मा और गुरुस्वरूप मुझ भगवान् में भक्ति भाव रखने से, घर में मैं मेरे पन के भाव को त्यागने की इच्छा से, मन के पूर्ण संयम से, ब्रह्मचर्य से, कर्त्तव्य कर्मों में निरन्तर सावधान रहने से, वाणी के संयम से, सर्वत्र मेरी ही सत्ता देखने से, अनुभव ज्ञान सहित तत्त्व विचार से और योग साधन से अहङ्कार रूप अपने लिंग शरीर को लीन कर दे। इस प्रकार अविद्या के कारण पड़ी हुई कर्मोंकी बीज रूप इस हृदय ग्रन्थ को पूर्वोक्ति साधनों द्वारा सावधानी से पूर्णतया नष्ट करके फिर इन साधनों से भी निवृत्त हो जाय।

पुत्रो ! तुम संपूर्ण चराचर भूतों को मेरा ही शरीर समझकर शुद्ध बुद्धि से पद-पदपर उनकी सेवा करो, यही मेरा पूजन होगा। ऋषभदेवजी के पुत्र यद्यपि स्वयं ही सब प्रकार सुशिक्षित थे, तो भी लोगों को शिक्षा देने के उद्देश्य से महाप्रभावशाली परम सुहृद भगवान् ऋषभ ने उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया।

ऋषभदेव जी का देहत्याग

राजा परीक्षित् ने पूछा—भगवन् ! योग रूप वायु से प्रज्वलित हुये ज्ञानाग्नि से जिनके रागादि कर्म बीज दग्ध हो गये हैं। उन आत्माराम मुनियों को दैववश यदि स्वयं ही अणिमादि सिद्धियां प्राप्त हो जायं, तो वे उनके राग-द्वेषादि क्लेशों का कारण तो किसी प्रकार हो नहीं सकती। फिर भगवान् ऋषभने उन्हें स्वीकार क्यों नहीं किया ?

श्री शुकदेव जी कहते हैं—तुम्हारा कहना ठीक है, किंतु संसार में जैसे चालाक व्याध अपने पकड़े हुये मृग का विश्वास नहीं करते, उसी प्रकार बुद्धिमान् लोग इस चंचल चित्त का भरोसा नहीं करते। ऐसा ही कहा भी है "इस चंचल चित्त से कभी दोस्ती नहीं करनी चाहिये। देखो, इसमें विश्वास करने से ही मोहनी रूप में फंसकर महादेव जी का चिरकाल का संचित तप क्षीण हो गया था। जैसे व्यभिचारिणी स्त्री जार पुरुषों को अवकाश देकर उनके द्वारा अपने में विश्वास रखने वाले पति का वध करा देती है उसी प्रकार जो योगी मन पर विश्वास करते हैं, उनका मन काम और उसके साथी क्रोधादि शत्रुओं को आक्रमण करने का अवसर देकर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर देता है काम, क्रोध, मद, लोभ मोह और भय आदि शत्रुओं का तथा कर्म-बन्धन का मूल तो यह मन ही है, इस पर कोई भी बुद्धिमान कैसे विश्वास कर सकता है ?

इसी से भगवान् ऋषभदेव यद्यपि इन्द्रादि सभी लोक पालों के भी भूषण स्वरूप थे, तो भी जड़ पुरुषों की भांति अवधूतों के-से विविध वेष, भाषा और आचरण से अपने ईश्वरीय प्रभाव को छिपाये रहते थे। अन्त में उन्हों ने योगियों को देह त्याग की विधि सिखाने के लिये अपना शरीर छोड़ना चाहा। इस प्रकार लिंग देह के अभिमान से मुक्त भगवान् ऋषभदेव जी का शरीर योग-माया की वासना से केवल अभिमानाभास के आश्रय ही इस पृथ्वीतल पर विचरता रहा। वह कर्णाटक देश में गया और मुंह में पत्थर का टुकड़ा डाले तथा बाल बिखेरे उन्मत्त के समान दिग-

भ्वर रूप से कुटकाचल के वन में घूमने लगा। इसी समय वायु वेग से झूमते हुये वासों की रगड़ से प्रवल दावाग्नि प्रकट हुई। उसने उस वन को जलाते हुये उसी के साथ ऋषभदेव जी के शरीर को भी भस्म कर दिया।

भरत-चरित्र

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि हे राजन्! महाराज भरत बड़े ही भगवद्भक्त थे। जब भगवान् ऋषभदेव ने उन्हें पृथ्वी की रक्षा करने के लिये नियुक्त करने का विचार किया, तो उनकी आज्ञा से उन्हों ने विश्व रूप की कन्या पञ्चजनी से विवाह किया। जिस प्रकार तामस अहंकार से शब्दादि पांच भूततन्मात्र उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार पञ्चजनी के गर्भ से उनके सुमति, राष्ट्रभृत् सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु नामक पांच पुत्र हुये जो सर्वथा उन्हीं के समान थे। इस वर्ष को जिसका नाम पहले अजानवर्ष था, राजा भरत के समय से ही 'भारतवर्ष' कहते हैं।

महाराज भरत सभी विषयों के ज्ञाता थे। वे अपने अपने कर्मों में लगी हुई प्रजा का अपने वाप-दादों के समान स्वधर्म में स्थित रहते हुये अत्यन्त वात्सल्यभाव से पालन करने लगे। एक करोड़ वर्ष वीत जाने पर उन्हों ने राज्य भोग का प्रारब्ध क्षीण हुआ जानकर अपनी भोगी हुई वंश परम्परागति संपत्ति को यथा योग्य पुत्रों में बांट दिया। फिर अपने सर्वसंपत्ति संपन्न राजमहल का मोह छोड़कर वे पुलहाश्रम (हरिहर क्षेत्र) में चले आये। इस पुलहाश्रम में रहने वाले भक्तों पर भगवान् का बड़ा ही वात्सल्य है। राजर्षि भरत के पवित्र गुण और कर्मों की प्रशंसा भक्तजन भी करते हैं उनका यह चरित्र बड़ा कल्याणकारी, आयु और धन की वृद्धि करने वाला, लोक में सुयश बढ़ानेवाला और अन्त में स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला है। जो पुरुष इसे सुनता या सुनाता है अथवा इसका आदर करता है उसकी सारी कामनायें स्वयं ही पूर्ण हो जाती हैं; दूसरों से उसे कुछ भी मांगना नहीं पड़ता।

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि राजन्! भरत जी का पुत्र सुमति था, वह पहले कहा जा चुका है। उसने ऋषभदेव जी के मार्ग का अनुसरण किया। उसकी पत्नी वृद्धसेना से देवताजित नामक पुत्र हुआ। देवताजित के असुरी के गर्भ से देवद्युम्न, देवद्युम्न के धेनुमती से परमेष्ठी और उसके सुवर्चला के गर्भ से प्रतीह नामक पुत्र हुआ। इसने अन्य पुरुषों को आत्मविद्या का उपदेश कर स्वयं शुद्ध चित्त होकर परम पुरुष श्री नारायण का साक्षात् अनुभव किया था। महाराज "गय" के गयन्ती के गर्भ से चित्ररथ, सुगति और अवरोध नामक तीन पुत्र हुये। उनमें चित्ररथ की पत्नी ऊर्णा से सम्राट का जन्म हुआ। सम्राट के उत्कला से मरीचि और मरीचि के विन्दुमतीसे विन्दुमान् नामक पुत्र हुआ। उनके सरघा से मधु, मधु, के सुमना से वीरव्रत और वीरव्रत के भोजा से मन्थु और प्रमंथु नामक दो पुत्र हुये। उनमें से मन्थु के सत्या के गर्भ से भौवन, भौवन के दूषणा के उदर से त्वष्टा, त्वष्टा के विरोचना से विरज और विरज के विसूची नाम की भार्या से शतजित् आदि सौ पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ। विरज के विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है—जिस प्रकार

जैन शास्त्रों के अनुसार ऋषभदेव के चरित्र का थोड़ा बहुत संक्षेप में परिचय दिया जाता है जो पाठक गण तथा वैदिक लोग अलग अलग उनके बारे में जो कल्पना करते हैं उसका खुलासा संक्षेप में दिया जारहा है।

मोक्ष पुरुषार्थ के उपयोगी धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग की कथा ही वास्तविक कथा कहलाती है। उसमें भी जब मुख्यतः स्वर्ग और मोक्षदायक धर्म कथा का निरूपण किया जाता है उसे सत्कथा या धर्मकथा कहते हैं। धर्म के फलस्वरूप जो जो अभ्युदय प्राप्त होते हैं, उनमें अर्थ और काम भी मुख्य हैं। अन्यथा धर्म शून्य अर्थ कथा और काम कथा कुकथा कहलाती हैं, जिससे केवल पापाश्रय होता है। जो कथा दुराचार छुड़ाकर सदाचार के सम्मुख करे, जो अधर्म रूप दुराचारों का दुष्फल नरकादि गमन और धर्मानुराग युक्त सत्आचरणों का शुभफल स्वर्गमोक्षादि प्राप्ति के लिये एक या अनेक उदाहरणों द्वार धार्मिक कार्यों में रुचि और धर्म विरुद्ध कार्यों में अरुचि उत्पन्न करे और जो आत्मा में रत्नत्रय धर्म अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र उत्पन्न करने के लिये कारण भूत हो, वही कथा वास्तव में "सद्धर्म कथा" है। इसके द्रव्य, क्षेत्र, तीर्थ, काल, भाव, फल, और प्रकृति ये सात अङ्ग हैं।

२—पुराण लक्षण

जिस धर्म कथा में या धर्म कथाके ग्रंथमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलिभद्र, नारायण, प्रतिनरायण इन महा पुण्याधिकारी शलाका पुरुषों के चरित्र तथा इनके सम्बन्ध में अन्य पदवी धारक पुण्य पुरुषों अथवा अन्यान्य प्रसिद्ध पुरुषों की कथा का या पुरातन इतिहास का निरूपण हो उसे पुराण कहते हैं। पुराण के मुख्य अङ्ग पांच हैं। क्षेत्र (त्रिलोक), काल (त्रिकाल), तीर्थ (रत्नत्रय धर्म), सत्पुरुष (शालाका पुरुष) और सत्पुरुषों की क्रियायें (सच्चरित्र)।

३—वक्ता के लक्षण

सद्धर्म कथा कहने वाला सद्वक्ता कहलाता है। वक्ता के अन्य नाम वद, वदावद और वक्तृ भी हैं। उसके लक्षण ये हैं कि शिथिलाचार रहित सदाचारी हो, जिसकी सभी इन्द्रियां समर्थ हों। जिसके अङ्ग सुडौल और सुन्दर हों, जिसके वचन मिष्ट स्पष्ट सर्व प्रिय और निर्दोष हों, जिसकी चित्तवृत्ति सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत आगम रूपी महासमुद्र के वाक्यार्थ रूपी जल से धुली हुई अति निर्मल हो, जो तेजस्वी और अनेक सभा विजयी हो, प्रतिष्ठित और यशस्वी हो, प्रत्येक विषयमें जिसकी बुद्धि प्रवेश कर सकती हो, अनेक प्रश्नों तथा अनेक तर्क कुतर्कों को सहन करने वाला हो, निरभि-

श्वर रूप से कुटकाचल के वन में घूमने लगा। इसी समय वायु वेग से झूमते हुये वासों की रगड़ से प्रबल दावाग्नि प्रकट हुई। उसने उस वन को जलाते हुये उसी के साथ ऋषभदेव जी के शरीर को भी भस्म कर दिया।

भरत-चरित्र

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि हे राजन्! महाराज भरत बड़े ही भगवद्भक्त थे। जब भगवान् ऋषभदेव ने उन्हें पृथ्वी की रक्षा करने के लिये नियुक्त करने का विचार किया, तो उनकी आज्ञा से उन्हों ने विश्व रूप की कन्या पञ्चजनी से विवाह किया। जिस प्रकार तामस अहंकार से शब्दादि पांच भूततन्मात्र उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार पञ्चजनी के गर्भ से उनके सुमति, राष्ट्रभृत् सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु नामक पांच पुत्र हुये जो सर्वथा उन्हीं के समान थे। इस वर्ष को जिसका नाम पहले अजानवर्ष था, राजा भरत के समय से ही 'भारतवर्ष' कहते हैं।

महाराज भरत सभी विषयों के ज्ञाता थे। वे अपने अपने कर्मों में लगी हुई प्रजा का अपने बाप-दादों के समान स्वधर्म में स्थित रहते हुये अत्यन्त वात्सल्यभाव से पालन करने लगे। एक करोड़ वर्ष बीत जाने पर उन्हों ने राज्य भोग का प्रारब्ध क्षीण हुआ जानकर अपनी भोगी हुई वंश परम्परागति संपत्ति को यथा योग्य पुत्रों में बांट दिया। फिर अपने सर्वसंपत्ति संपन्न राजमहल का मोह छोड़कर वे पुलहाश्रम (हरिहर क्षेत्र) में चले आये। इस पुलहाश्रम में रहने वाले भक्तों पर भगवान् का बड़ा ही वात्सल्य है। राजर्षि भरत के पवित्र गुण और कर्मों की प्रशंसा भक्तजन भी करते हैं उनका यह चरित्र बड़ा कल्याणकारी, आयु और धन की वृद्धि करने वाला, लोक में सुयश बढ़ानेवाला और अन्त में स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला है। जो पुरुष इसे सुनता या सुनाता है अथवा इसका आदर करता है उसकी सारी कामनायें स्वयं ही पूर्ण हो जाती हैं; दूसरों से उसे कुछ भी मांगना नहीं पड़ता।

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि राजन्! भरत जी का पुत्र सुमति था, यह पहले कहा जा चुका है। उसने ऋषभदेव जी के मार्ग का अनुसरण किया। उसकी पत्नी वृद्धसेना से देवताजित नामक पुत्र हुआ। देवताजित के असुरी के गर्भ से देवद्युम्न, देवद्युम्न के धेनुमती से परमेष्ठी और उसके सुवर्चला के गर्भ से प्रतीह नामक पुत्र हुआ। इसने अन्य पुरुषों को आत्मविद्या का उपदेश कर स्वयं शुद्ध चित्त होकर परम पुरुष श्री नारायण का साक्षात् अनुभव किया था। महाराज "गय" के गयन्ती के गर्भ से चित्ररथ, सुगति और अवरोध नामक तीन पुत्र हुये। उनमें चित्ररथ की पत्नी ऊर्णा से सम्राट का जन्म हुआ। सम्राट के उत्कला से मरीचि और मरीचि के बिन्दुमतीसे बिन्दुमान् नामक पुत्र हुआ। उनके सरघा से मधु, मधु, के सुमना से वीरव्रत और वीरव्रत के भोजा से मन्थु और प्रमंथु नामक दो पुत्र हुये। उनमें से मन्थु के सत्या के गर्भ से भौवन, भौवन के दूषणा के उदर से त्वष्टा, त्वष्टा के विरोचना से विरज और विरज के विषूची नाम की भार्या से शतजित् आदि सौ पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ। विरज के विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है-जिस प्रकार

जैन शास्त्रों के अनुसार ऋषभदेव के चरित्र का थोड़ा बहुत संक्षेप में परिचय दिया जाता है जो पाठक गण तथा वैदिक लोग अलग अलग उनके बारे में जो कल्पना करते हैं उसका खुलासा संक्षेप में दिया जारहा है।

मोक्ष पुरुषार्थ के उपयोगी धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग की कथा ही वास्तविक कथा कहलाती है। उसमें भी जब मुख्यतः स्वर्ग और मोक्षदायक धर्म कथा का निरूपण किया जाता है उसे सत्कथा या धर्मकथा कहते हैं। धर्म के फलस्वरूप जो जो अभ्युदय प्राप्त होते हैं, उनमें अर्थ और काम भी मुख्य हैं। अन्यथा धर्म शून्य अर्थ कथा और काम कथा कुकथा कहलाती हैं, जिससे केवल पापाश्रय होता है। जो कथा दुराचार छुड़ाकर सदाचार के सम्मुख करे, जो अधर्म रूप दुराचारों का दुष्फल नरकादि गमन और धर्मानुराग युक्त सत्आचरणों का शुभफल स्वर्गमोक्षादि प्राप्ति के लिये एक या अनेक उदाहरणों द्वार धार्मिक कार्यों में रुचि और धर्म विरुद्ध कार्यों में अरुचि उत्पन्न करे और जो आत्मा में रत्नत्रय धर्म अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र उत्पन्न करने के लिये कारण भूत हो, वही कथा वास्तव में "सद्धर्म कथा" है। इसके द्रव्य, क्षेत्र, तीर्थ, काल, भाव, फल, और प्रकृति ये सात अङ्ग हैं।

२—पुराण लक्षण

जिस धर्म कथा में या धर्म कथाके ग्रंथमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलिभद्र, नारायण, प्रतिनरायण इन महा पुण्याधिकारी शलाका पुरुषों के चरित्र तथा इनके सम्बन्ध में अन्य पदवी धारक पुण्य पुरुषों अथवा अन्यान्य प्रसिद्ध पुरुषों की कथा का या पुरातन इतिहास का निरूपण हो उसे पुराण कहते हैं। पुराण के मुख्य अङ्ग पांच हैं। क्षेत्र (त्रिलोक), काल (त्रिकाल), तीर्थ (रत्नत्रय धर्म), सत्पुरुष (शालाका पुरुष) और सत्पुरुषों की क्रियायें (सच्चरित्र)।

३—वक्ता के लक्षण

सद्धर्म कथा कहने वाला सद्वक्ता कहलाता है। वक्ता के अन्य नाम वद, वदावद और वक्तृ भी हैं। उसके लक्षण ये हैं कि शिथिलाचार रहित सदाचारी हो, जिसकी सभी इन्द्रियां समर्थ हों। जिसके अङ्ग सुडौल और सुन्दर हों, जिसके वचन मिष्ट स्पष्ट सर्व प्रिय और निर्दोष हों, जिसकी चित्तवृत्ति सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत आगम रूपी महासमुद्र के वाक्यार्थ रूपी जल से धुली हुई अति निर्मल हो, जो तेजस्वी और अनेक सभा विजयी हो, प्रतिष्ठित और यशस्वीहो, प्रत्येक विषयमें जिसकी बुद्धि प्रवेश कर सकती हो, अनेक प्रश्नों तथा अनेक तर्क कुतर्कों को सहन करने वाला हो, निरभि-

मानी, दयालु, प्रेमी, सुबुद्धि, दूरदर्शी, विचक्षण, अधीनी, अर्थात् अध्ययन विशिष्ट और अनेक विद्या निपुण हो। जो नाना भाषा विशारद नानोपाख्यान कुशल और नाना शास्त्र कला सुविज्ञ हो; उसे वक्ता कहते हैं। ऐसे वक्ता के द्वारा सुनने वाले भव्य जीवों का कल्याण हो सकता है। इसी प्रकार श्रोता का लक्षण नीचे कह रहे हैं।

४—श्रोता के लक्षण

धर्म कथा श्रवण करने वालों को श्रोता कहते हैं। इनके उत्तम, मध्यम, जघन्य और अधम ये चार भेद हैं। उनके लक्षण यह हैं—संसार के जन्म, जरा मरणादि अनेक कष्टों को देखकर जिसका मन इन कष्टों से छूटने का उत्सुक हो सरल स्वभावी, कोमल चित्त भद्र परिणामी सन्मार्गान्वेषी, सद्धर्मग्राही हो। अपने हिताहित को पहचानने वाला तथा ज्ञेय व उपादेय पदार्थों और उनके स्वरूप को जानने वाला हेय को त्यागने व उपादेय को ग्रहण करने में उद्यमी हो। गुणग्राही व अवगुण त्यागी हो, हठग्राही छिद्रान्वेषी कलह प्रिय कृतघ्नी प्रलापी बकवादी, और ठठोल न हो। इस प्रकार जो भव्य प्राणी गुणों से युक्त है, वह उत्तम श्रोता कहलाता है।

मध्यम श्रोता के लक्षण:—

जो सम्यक् दर्शन रहित, सदाचारी अथवा कुसंगवश सदाचार रहित हैं, जो मन्द बुद्धि और अति अल्पज्ञ है, जल मिश्रित होने पर कोमल व पश्चात् सूखकर कठिन हो जाने वाली मिट्टीके समान जो धर्म कथा सुनने के समय कोमल चित्त व बाद में कठोर चित्त हो जाय, जो तोते के समान स्वयं अज्ञान है पर बिना समझे धर्मोपदेश सुनकर या दूसरे को देखकर जो धर्मानुसरण करता है, वह मध्यम श्रोता है।

जघन्य श्रोता—

जो अति मन्द बुद्धि व अति अल्पज्ञ है, जिसकी स्मरण शक्ति अति मन्द है, जिनमें धर्म कथा सुनने की कभी रुचि उत्पन्न नहीं हुई, किन्तु वक्ता या अन्य श्रोताओं की प्रेरणा से धर्म कथा का श्रवण करते हैं वह बकरे के समान अति कामी और विषयासक्त हैं वे जघन्य श्रोता हैं।

अधम श्रोता—

जो उपरोक्त गुणोंसे शून्य हैं तथा चलनी के समान सार वस्तु को त्यागकर असार वस्तु को ग्रहण करते हैं, जो बिल्ली के समान दुष्ट चित्त व पर घातक हैं, जो बक के समान बाहर से कोमल चित्त व त्याग व्रतादि युक्त सुशील जान पड़े,परन्तु जिनका अन्तरंग अतिशय मलिन हो, जिनका मन बार बार धर्म कथा सुनने पर भी पाषाण के समान कठोर हो और कभी किसी हितकारी बात को ग्रहण न करे, जो दुग्ध पीकर भी सर्प के समान गुण युक्त बातों में भी सदा अवगुण ही निकाले अथवा उस सारको असार व सीधे को उल्टा ही समझे, जो किसी जलाशयमें प्रविष्ट होकर निर्मल जल को मलिन करने वाली भैंस के समान व्याख्यान में उपद्रव मचावे व फूटे घड़े के समान जिसके हृदय में कोई भी उपदेश न ठहर सके, जो डांस, मच्छरों के समान सभा जनों को व्याकुल करे, जो स्तनों के दुग्ध को त्याग कर केवल रुधिर ही पीने वाले अवगुण ग्राही

व गुण को त्यागने वाले निकृष्ट श्रोता हैं। इसके अतिरिक्त जो श्रोता नेत्र, तुला, दर्पण व कसौटी के समान गुणदोष को ज्यों का त्यों यथार्थ रूपसे पहिचानने व देखने दिखानेमें समर्थ हैं वे ही धर्म कथा रूपी रत्नके परीक्षक हैं और जिनका अभिप्राय सदा वितण्डा वाद या ठठोली आदि करने में ही हो उनकी गणना किसी भी श्रोता में नहीं है और उनकी गति भी नहीं है। श्रोताओं के मुख्य गुण सुश्रुषा (उपासना सेवा व श्रवणाकांक्षा) श्रवण, ग्रहण, धारण, स्मृति ऊह (अनुसन्धान या खोज और अपूर्व विचार) अपोह (तर्क वितर्क पूर्वक हेय का त्याग और उपादेय का ग्रहण) और निर्णीति (शोधन या निर्णय करने की रुचि) ये आठ हैं।

चौवीस तीर्थंकरों की धर्मोपदेश सभा के मुख्य श्रोता क्रम से (१) भरत (२) सगर (३) सत्यवीर्य (४) मित्रभव या राजमित्र (५) मित्रवीर्य या भावमित्र (६) यज्ञदत्त या धर्म वीर्य (७) दान वीर्य (८) मेघव्रत (९) शुद्धवीर्य (१०) सीमन्धर (११) त्रिपृष्ट प्रथम नारायण (१२) द्विपृष्ट द्वितीय नारायण (१३) स्वयंभू तृतीय नारायण (१४) पुरुषोत्तम चतुर्थ नारायण (१५) पुरुष पुंडरीक या पुरुषसिंह पंचम नारायण (१६) पुरुषदत्त या सत्यदत्त या हरिकीर्ति (१७) कुनलराय (१८) गोविन्द राय सुभौन (१९) सुलूमाराय सार्वभौम (२०) अजितराय या अजितंजय (२१) विजयराय (२२) उग्रसेन या (नवम नारायण कृष्ण) (२३) महासेन या (अजितराय द्वितीय) (२४) श्रेणिक विम्बसार ये चौवीसों तथा अन्य तीर्थंकरों की सभा के अन्यान्य अनेक मुख्य श्रोता भी सर्वोत्कृष्ट श्रोता हैं।

५—काल द्रव्य

जो जीव पुद्गलादि षट् द्रव्यों को एक पर्याय से अन्य पर्याय रूप परिणव में असाधारण निमित्त कारण हो ऐसे "वर्तना" लक्षणयुक्त पदार्थ को "काल द्रव्य" कहते हैं। यह काल द्रव्य एक प्रदेशी है। यद्यपि काल द्रव्य के कालाणु सर्व लोकाकाश में व्याप्त असंख्यात हैं तथापि जीवादि शेष पाँच द्रव्यों के समान इसके एक एक प्रदेशी कालाणु एक पिंड रूप या कायरूप कभी नहीं होते किन्तु आकाश द्रव्य के प्रत्येक प्रदेश पर एक एक कालाणु व्याप्त रहकर सर्व कालाणु सदैव भिन्न भिन्न ही रहते हैं। अतः पिंड या कायरूप न होने से कालद्रव्य "अकाय" कहलाता है। यही "निश्चय कालद्रव्य" है। समय, आवली, विपल, पल, घटिका, मुहूर्त्त, अहोरात्रि, सप्ताह, पक्ष, मास, वर्ष, आदि उस निश्चय कालद्रव्य की पर्याय हैं जिनका निमित्त कारण ज्योतिष चक्र है। कालद्रव्य की इन पर्यायों ही को "व्यवहार काल" कहते हैं। इस व्यवहार काल के एक बहुत बड़े विभाग या चक्र का नाम कल्पकाल है। इस कल्पकाल चक्र के दो अङ्ग अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नाम से प्रसिद्ध हैं। जिसमें मनुष्यों तथा तिर्यंचों के बल, आयु देह परिमाण आदि क्रम से घटते जाँय। पृथ्वी का परिमाण भी संकुचित होता जाय, वनस्पति आदि पार्थिव पदार्थों की सुन्दरता, रसास्वाद और शक्ति आदि गुण कम पड़ते जायँ सूर्य चंद्र की उष्णता व शीतलता तथा वनस्पति आदि पदार्थों के पोषण करने की शक्ति आदि का ह्रास होता जाय, उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं। इसके विरुद्ध जिस काल विभागमें इन सबकी क्रमसे वृद्धि होती जाय उसे 'उत्सर्पिणी काल" कहते

हैं। इन दो काल के विभागों में से प्रत्येक का परिमाण दश कोड़ा कोड़ी सागरोपम काल है और प्रत्येक विभाग छह छह उप विभागों में विभाजित है।

सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमा-दुःषमा, दुःषमा-सुषमा, दुःषमा, दुःषमा-दुःषमा, ये छह एक दूसरे के पश्चात् क्रम से वीतने वाले अवसर्पिणी के उपविभाग हैं और दुःषमा-दुःषमा, दुःषमा, दुःषमा-सुषमा, सुषमा-दुःषमा, सुषमा, सुषमा-सुषमा, ये छह एक दूसरे के पीछे क्रम से वीतने वाले उत्सर्पिणी के विभाग हैं। काल विभाग के ये सब नाम सार्थक हैं। अवसर्पिणी के उपविभाग क्रमसे ४, ३, २ कोड़ा कोड़ी सागरोपम ४२ सहस्र वर्षघाट एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम, २१ सहस्र वर्ष और २१ सहस्र वर्ष के होते हैं। इसी प्रकार उत्सर्पिणी के उपविभाग क्रम से २१ सहस्र वर्ष २१ सहस्र वर्ष ४२ सहस्र वर्ष घाट एक कोड़ा कोड़ी, २, ३, ४, कोड़ा कोड़ी सागरोपम काल के होते हैं। जिस प्रकार पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणें कृष्णपक्ष में १५ दिन तक प्रतिदिन अथवा प्रतिक्षण क्रम से घटती जाती हैं और फिर शुक्ल पक्ष प्रारम्भ होकर जिस क्रम से किरणें घटी थीं ठीक उसी प्रकार से १५ दिन तक प्रतिदिन अथवा प्रतिक्षण वढ़ती जाती हैं। और इस प्रकार चान्द्र मास का एक छोटा काल चक्र पूर्ण होकर फिर उसी प्रकार दूसरा वैसा ही काल चक्र घूमने लगता है और ऐसे कालचक्र एक चान्द्र वर्ष में १२ घूम जाते हैं। तव चांद्रवर्ष नाम का एक वड़ा कालचक्र पूर्ण हो जाता है। अथवा जिस प्रकार एक सौरिवर्षचक्र के दो अङ्ग या विभाग दक्षिणायन और उत्तरायण हैं और इनमें से प्रत्येक के ऋतु नाम के तीन तीन उपविभाग या सौरमास नाम के छह छह उपविभाग हैं जिनमें से दक्षिणायन के छह उपविभागों में उत्तरी देशों में नित्य प्रति दिन का परिमाण क्रम से घटता जाता है और फिर उत्तरायण प्रारंभ होकर ठीक उसी क्रम से दिन का परिमाण वढ़ता जाता है और इस प्रकार सौर वर्ष का एक काल चक्र पूर्ण होकर फिर उसी प्रकार दूसरा वैसा ही कालचक्र घूमने लगता है, ठीक इसी प्रकार कल्प काल नाम का एक वहुत वड़ा चक्र अपने १२ उपरोक्त उपविभागों के यथा क्रम वीतने पर पूर्ण हो जाता और फिर दूसरा वैसा ही वड़ा कालचक्र घूमने लगता है।

ये कल्प काल नामक वड़े वड़े कालचक्र जव असंख्य वीत जाते हैं तव एक महाकल्प काल नाम का महाकालचक्र पूर्ण होता है जिसको कोई २ अवसर्पिणी काल या "हुँडावसर्पिणीकाल" कहते हैं। जिस प्रकार सौरवर्ष चक्र सदैव सव एक से नहीं वीतते, किन्तु गणित ज्योतिषके नियमानुकूल कोई कोई वर्ष चक्र अतिवृष्टि या अनावृष्टि आदि दोषों से युक्त अथवा चन्द्रग्रहण, सूर्य ग्रहण, धूम्रकेतु आदि युक्त असाधारण रीति से वीतता है। इसी प्रकार वहुत से कल्प काल के चक्र वीतने पर कभी कभी कोई अवसर्पिणी काल असाधारण रीति से वीतता है। ऐसे ही असाधारण अवसर्पिणी काल को "हुँडावसर्पिणी" काल कहते हैं।

आज कल हमारे भरतक्षेत्र के आर्यखंड में इसी हुँडावसर्पिणी काल का पांचवां विभाग "दुःषमा" नामक काल वर्त रहा है जो २१ सहस्र वर्ष का है और जिसका प्रारंभ श्री वीर निर्वाण दिन से ३ वर्ष ८॥ मास पीछे श्रावण कृ० १ से हुआ है। प्रत्येक "दुःषमा-सुषमा" काल में जो

अवसर्पिणी का चौथा और उत्सर्पिणी का तीसरा उपविभाग है इस भरतक्षेत्र के आर्यखंड में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलिभद्र ९ नारायण, ९ प्रति नारायण, ये ६३ महापुण्य-पुरुष तथा २४ कामदेव, ११ रूद्र, ९ नारद, आदि अन्य भी निकट भव्य पुण्य पुरुष उत्पन्न होते रहते हैं। प्रत्येक अवसर्पिणी के तीसरे उपविभाग "सुखमा दुःखमा" नामक काल के अन्तमें जब एक पल्योपम काल का अष्टम भाग शेष रह जाता है, और प्रत्येक उत्सर्पिणी के "दुषमा" नामक दूसरे उपविभाग के अन्त में जब केवल एक सहस्र (१०००) वर्ष शेष रह जाते हैं तब कुलकर या मनु पदवी धारक १४ (या १६) पुण्यपुरुष थोड़ा थोड़ा अन्तराल देकर एक दूसरे के पश्चात् उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक सुषमा-सुषमा काल में उत्तम भोग भूमि, सुषमा में मध्यम भोगभूमि और सुखमा दुःखमा में जघन्य भोगभूमि की रचना और शेष तीन विभागोंमें कर्मभूमि की रचना रहती है।

६—भोगभूमि व कर्मभूमि

जिस भूमिमें पुण्योदय से मनुष्यों और पशुओंको विना किसी परिश्रमके सर्व प्रकारकी भोग-सामग्री कल्पवृक्षों द्वारा प्राप्त हो उसे भोगभूमि कहते हैं। जिस भूमिमें असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और विद्या या सेवा, ये आजीविकार्थ षट्कर्म तथा पूजा, दानादि धार्मिक नित्य नैमत्तिक षट् कर्म करने की आवश्यकता पड़े उसे कर्मभूमि कहते हैं सर्व मनुष्य क्षेत्र (अढ़ाई द्वीप) में ५ देव कुरु और ५ उत्तर कुरु क्षेत्र उत्तम भोगभूमि के क्षेत्र हैं। ५ हरि और ५ रम्यक क्षेत्र मध्यम के, और ५ हैमवत व ५ हैरण्यवत क्षेत्र जघन्य भोगभूमि के क्षेत्र हैं। इस प्रकार यह ३० क्षेत्र नित्य भोगभूमि के हैं। ५ विदेह क्षेत्र और ५ भरत व ५ ऐरावत, इन १० क्षेत्रों के ५० म्लेच्छ खंड तथा उनके दसों विजयार्द्ध पर्वतों की श्रेणियां नित्य कर्मभूमि के क्षेत्र हैं जिनमें "दुःखमा सुखमा" नामक काल सदैव वर्तता है। और शेष ५ भरत और ५ ऐरावत क्षेत्रों के दस आर्यखंड अनित्य भोगभूमि और कर्मभूमि दोनों के क्षेत्र हैं, अर्थात् इनमें अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के उपरोक्त बारहों उपविभाग एक दूसरे के पश्चात् क्रम से वर्तते रहते हैं। उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमियों में से प्रत्येक के प्रारंभ में मनुष्यों की उत्कृष्ट शरीरावगाहना क्रम से ३, २, १ कोश की, और उत्कृष्ट आयु ३, २, १ पल्योपम काल की होती है और क्रम से घटती हुई उन्हीं उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमिजों में से त्येक के अन्त में जघन्य शरीरावगाहना क्रम से २ कोश १ कोश ५०० धनुष और जघन्य आयु २ पल्योपम, १ पल्योपम और १ कोटि पूर्व की होती है। उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमिजों का आहार क्रम से ३ दिन, २ दिन, १ दिन का अन्तर देकर हर पांचवें, चौथे और तीसरे दिन केवल बेर, बहेड़ा और आँवला प्रमाण होता है।

कर्मभूमि के दुःषमा-सुषमा, दुःषमा और दुःषमा-दुःषमा कालोंके प्रारम्भमें मनुष्यों की उत्कृष्ट शरीरावगाहना क्रम से ५०० धनुष ७ हाथ, २ हाथ की और उत्कृष्ट आयु क्रम से एक कोटी पूर्व, १२० वर्ष २० वर्ष की होती है। अन्त में उत्कृष्ट शरीरावगाहना क्रम से ७ हाथ २ हाथ १ हाथ की और उत्कृष्ट आयु क्रम से १२० वर्ष २० और १५ वर्ष की होती है। आहार क्रम से नित्य प्रति प्रायः एक बार, अधिक बार, अति अधिक बार किया जाता है।

अर्थ—भोगभूमिजों की अकाल मृत्यु नहीं होती, वे सदा निरोग रहते हैं, उन्हें मल मूत्र की बाधा भी नहीं होती, न उनके शरीर पर पसीना आता है। उनकी आकृति स्वाभाविक ही बड़ी सुन्दर, चेष्टा चतुर और वाणी मिष्ट होती है। उनके शरीर का संस्थान समचतुरस्र और संहनन वज्रवृषभ नाराच होता है। तूर्यांग, पात्रांग, भूषांगणांग, पान, आहारांग, पुष्पांग, ज्योतिरांग, गृहांग, वस्त्रांग, दिपांग इन दश प्रकार के कल्पवृक्षों से भोगभूमिजों को सर्व प्रकार की भोगोपभोग सामाग्री प्राप्त होती है। उन्हें असि, मसि, कृषि आदि कोई कर्म आजीविका के लिये नहीं करना पड़ता, उनमें राजा प्रजाका भेद नहीं होता, न परस्पर कोई कलह, विरोध, या लड़ाई दंगा नहीं होता है। सर्व ही सरल स्वभावी, सत्यवादी सन्तोषी और सुशील होते हैं।

आयु के अन्त में स्त्री को केवल एक बार गर्भ रहता है जिससे स्त्री-पुरुष का एक युगल जन्म पाकर और तुरन्त ही माता को छींक और पिता को जम्हाई आकर बड़े सुख पूर्वक माता पिता की एक साथ मृत्यु हो जाती है। सन्तान को माता पिता का या माता पिता को सन्तान का, तथा स्त्री पुरुष को परस्परका वियोग देखना नहीं पड़ता। स्त्री पुरुष दोनों ही को शरीर त्याग कर नियम से देवगति होती है। मृतक शरीर कपूर-सम तुरन्त उड़कर वायु में मिल जाता है। वे युगल बालक अपने जन्म के प्रथम सप्ताह में स्वच्छ पृथ्वी पर पड़े हुए अपना अंगुष्ठ चूस-चूसकर जीवित रहते हैं, दूसरे सप्ताह में ऊर्ध्वमुख करके कुछ सरकने लगते हैं। तीसरे सप्ताह में खड़े होकर लड़खड़ाते हुये और चौथे, सप्ताह में स्थिरता से भले प्रकार चलने फिरने लगते हैं, पांचवें सप्ताह में वे अनेक कलागुण सम्पन्न हो जाते हैं, छठे सप्ताह में पूर्ण युवावस्था प्राप्त कर लेते हैं और सातवें सप्ताह में कल्पवृक्षों से प्राप्त हुए वस्त्राभूषणों से सुशोभित होकर स्त्री पुरुष (पति-पत्नी) बन जाते हैं।

७—१४ कुलकर या मनु

भोगभूमि का समय नष्ट होने के चिन्ह प्रकट होने पर जो महापुरुष अपने पूर्व जन्म संस्कार वश अन्य भोगभूमिज मनुष्यों से अधिक ज्ञानी और बुद्धिमान उत्पन्न होते हैं, जिन्हें या तो जाति-स्मरण या अवधिज्ञान होता है और जो अपनी इस ज्ञान शक्ति द्वारा अन्य भोगभूमिज मनुष्यों को यथा आवश्यक शिक्षा देते, उनका भय दूर करते, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए योग्य विधि बताते और कुल बनाकर अर्थात् थोड़े थोड़े इकट्ठे होकर मेल मिलाप के साथ रहने का उपदेश देते और उस प्रकार कुलों या वंशों की उत्पति के स्थापक होते हैं उन्हें "कुलकर" या "कुलधर" (कुलस्थापक) कहते हैं। बिना शिक्षा पाये अपने मनो बल से उत्पन्न होने वाली शक्ति द्वारा जीवन का उपाय जानने के कारण उन महापुरुषों को "मनु" भी कहते हैं। जम्बूद्वीपान्तर्गत भरत क्षेत्र के हमारे आर्यखन्ड में जब वर्तमान हुँडावसर्पिणी काल के प्रथम, द्वितीय और तृतीयकाल में क्रम से उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमि का लगभग ९ कोड़ा कोड़ी सागरोपम काल सुख पूर्वक बीतने पर जब सुषम-दुषम नामक जघन्य भोगभूमि के दो कोड़ा कोड़ी सागरोपमकाल में से केवल एक पल्योपम काल का आठवां भाग शेष रह गया तब कर्मभूमि के चिंह प्रकट होने प्रारम्भ हो जाने पर कुलकर और मनु संज्ञाधारक (१) प्रतिश्रुति, (२) सन्मति, (३) क्षेमंकर, (४) क्षेमंधर, (५) सीमंकर, (६) सीमंधर, (७) विमलवाहन, (८) चक्षुष्मान, (९) यशस्वान, (१०) अभिचन्द्र, (११) चन्द्राभ

(१२) मरुदेव, (१३) प्रसेनजित, (१४) नाभिराय ये १४ महापुरुष एक ही सन्तान में एक दूसरे के पीछे संखों वर्षों का अन्तराल दे देकर उत्पन्न हुये। ये सब कुलकर अपने पूर्वभव में विदेह क्षेत्रों में अतिशय पुण्यवान् पुरुष थे। उस जन्म में इन्होंने सुपात्र दान दिये, व्रताचरण आदि अनुष्ठान किये, जिनके पुण्यफल में इन्हों ने अपनी आयु भोगभूमि में जन्म लेने की बांधी। अन्त में इन्हें श्री जिनेन्द्र देव के निकट क्षायक सम्यक्त्व की और पूर्ण श्रुतज्ञान की भी प्राप्ति हो गई थी। नवीन युग के प्रारंभ में ये ही पुरुष प्रतापी और अधिक बुद्धिमान होने से ये "युगादि पुरुष" भी कहलाते थे। इनके पश्चात् श्री नाभिराय कुलकर के पुत्र "श्रीऋषभदेव" तीर्थंकर भी और कुलकर भी थे। तथा श्री ऋषभदेव के पुत्र भरतराज चक्रवर्ती भी और कुलकर भी थे। दोषी मनुष्यों को दंड देने के लिये इनमें से पहले पांच कुलकरों ने शोक सूचक "हा" यह एक दंड, अगले पांच ने शोक सूचक "हा" और निन्दा या निषेध सूचक "मा" ये दो दंड और उनसे अगले ५ ने शोक निन्दा या निषेध और धिक्कार सूचक "हा", "मा" और "धिक" ये तीन प्रकार के दंड नियत किये और इस प्रकार "राजनीति" बनाने की प्रथा चलाई।

उपर्युक्त १४ कुलकरों की आयु क्रम से एक पल्योपम काल का दसवां भाग, सौवां भाग, सहस्रवां भाग, दस सहस्रवां भाग, एक लाखवां भाग, दस लाखवां भाग, एक करोड़वां भाग, दस करोड़वां भाग, एक अरबवां भाग, दस अरबवां भाग, एक खर्ववां भाग, दस खर्ववां भाग, एक नीलवां भाग, और एक कोटि पूर्व थी। इन १४ कुलकरों के १३ अन्तराल क्रम से एक पल्योपम काल का अस्सीवां भाग, आठ सौवां भाग, आठ सहस्रवां भाग, अस्सी सहस्रवां भाग, आठ लाखवांभाग, अस्सीलाखवां भाग, आठ कोटिवां भाग, अस्सी कोटिवां भाग, आठ अर्बवां भाग; अस्सी अर्बवां भाग, आठ खर्बवां भाग, अस्सी खर्बवां भाग, और आठ नीलवां भाग था। इन चौदहों कुलकरों की उपरोक्त आयु और उनके अन्तराल काल का जोड़ एक पल्योपम काल के आठवें भाग से केवल एक पल्योपम काल का अस्सी लाख करोड़वां भाग अर्थात् आठनीलवां भाग कम और एक करोड़ पूर्व काल है जो लगभग एक पल्योपम काल के आठवें भाग के बराबर ही है।

८—कर्मभूमि और "ऐतिहासिक" काल का प्रारम्भ

भोगभूमि की अन्तसूचक जब कल्पवृक्षों की सामर्थ्य दिन पर दिन घटने लगी और ज्योतिरांग जाति के कल्पवृक्षों का प्रकाश अतिशय मन्द पड़ गया तो सबसे प्रथम अषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सायंकाल में पूर्व दिशा की ओर से उदय होता चन्द्रमा और पश्चिम दिशा में अस्त होता हुआ सूर्य ये दो अपूर्व पदार्थ भोगभूमिजों को दिखाई पड़े जिनसे वे अति सरल स्वभावी आर्य बहुत भयभीत हुये। इन आर्य पुरुषों में एक महापुरुष अन्य सबसे अधिक तेजस्वी ज्ञानी और बुद्धिमान थे। इन्हें अपने पूर्व जन्म की स्मृति थी जिसकी सहायतासे इन्होंने अन्य सब भोगभूमिजों के भय को दूर कर दिया और समझा दिया कि ये चन्द्र और सूर्य ज्योतषी देवों के विमान हैं जो सदैव अपने अपने समय पर उदय और अस्त होते रहते हैं। ये

कोई नवीन और डरावनी वस्तु नहीं हैं। ज्योतिरांग जाति के कल्पवृक्षों की ज्योति इनकी ज्योति से अधिक थी। इसी से ये दृष्टिगोचर नहीं होते थे। अब उन वृक्षों की ज्योति अति मन्द पड़ जाने से ये दिखाई देने लगे हैं। इस प्रकार भय दूर हो जाने पर सर्व भोगभूमिज उसे विशेषज्ञ समझ कर अपना पथ-प्रदर्शक और शासक मानने लगे। उस महापुरुष के मुख से अपना भय दूर करने वाले प्रिय वचन श्रवण करने और आगे को कर्मभूमि के प्रारंभ होजाने आदि का सारा भविष्य वृतान्त सुनने के कारण उसे "प्रतिश्रुति" नाम से पुकारने लगे। युग परिवर्तन के नियमों को यथार्थ रूप से जानने वाला यही महापुरुष वर्तमान अवसर्पिणी काल का सबसे पहला "कुलकर" या "मनु" है। इसी के समय से शासक और शास्य अर्थात् राजा और प्रजा का भेद और आवश्यकता पड़ने पर "राजनीति" के कुछ नियम नियत करने का प्रारम्भ हुआ। उपर्युक्त मिती से पहले चन्द्र सूर्य दिखाई न पड़ने और इस लिए रात दिन का कोई भेद न होने से तिथि, पक्ष, मास आदि का किसी को भी कुछ ज्ञान न था और न कोई भोगभूमिज किसी विशेष नाम से नामाङ्कित था, किंतु सब ही छल कपट मायाचारादि दुर्गुणों से सर्वथा रहित अति सरल चित्त होने से केवल "आर्य" नाम से पुकारे जाते थे। अतः इसी प्रथम मनु या कुलकर के समय से "इतिहास काल" का प्रारंभ उपर्युक्त मिति आषाढ़ शुक्ल १५ के सायंकाल से हुआ।

इस प्रतिश्रुत मनु के पश्चात् शंखों वर्षों का अन्तर दे देकर उपरोक्त नामवाले "सन्मति" आदि नाभिराय पर्यन्त १३ मनु एक दूसरे के पश्चात् और हुये जिन्होंने शनैः शनैः कल्पवृक्षों का सामार्थ्य घटते जाने और अन्त में उनके नष्ट होते जाने पर अपने अपने जाति स्मरण (पूर्व जन्म की स्मृति) या अवधिज्ञान के बल से प्रजा को यथा आवश्यक जीवन का उपाय आदि बता कर उनकी सभी आवश्यकताओं की यथायोग्य पूर्ति की। परस्पर के किसी झगड़े को मेटने के लिए शोक, निन्दा और धिक्कार सूचक "हा" "मा" "धिक" ये तीन दण्ड नियत किये। चौदहवें कुलकर श्री नाभिराय के, पश्चात् तृतीय काल ही में जन्म पाने से इनके पुत्र और पौत्र श्री ऋषभदेव तीर्थंकर और भरत चक्रवर्ती भी पन्द्रहवें व सोलहवें कुलकर कहलाये।



भगवान् विष्णु देवताओं की शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार इस प्रिय-व्रत वंश को इसमें सबसे पीछे उत्पन्न हुये राजा विरज ने अपने सुयश से विभूषित किया था।

इस प्रकार उनके महान् भाव पुन्य आत्मा ऋषभदेव तीर्थंकर और उनके सुपुत्र राजा भरत के विषय में अलग अलग अन्य कथायें प्रचलित हैं यत्र तत्र किया गया है। उनकी महानुभाव की कथा को जैन शास्त्र के आधार पर असंगत होने के कारण संक्षेप में दिया जारहा है पाठकगण इसे सुनकर सच्चे चरित्र का अनुभव करें।



श्री ऋषभदेव तीर्थंकर के दश पूर्व भव के अवतार

१—मध्यलोक के बीचो बीच नृलोकान्तर्गत जम्बूद्वीप के ठीक मध्य में जो अतिशय ऊँचा सुदर्शन नामक मेरु पर्वत है उसके पश्चिम-विदेह क्षेत्र में स्वर्ग पुरी समान एक गन्धिला नाम का देश है। उसमें इन्द्र पुरी समान एक सिंहपुर नाम की नगरी में "श्रीषेण" नाम का एक राजा किसी अति प्राचीन समय में राज्य करता था। उसकी सुन्दरी नामक रानी के गर्भ से "जयवर्मा" और "श्रीवर्मा" नाम के दो पुत्र थे। छोटे पुत्र श्रीवर्मा पर माता पिता का स्नेह तथा उसी को युवराज पद दिया देखकर और इससे अपनी भारी अवहेलना समझकर जयवर्मा को अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हुआ। अपने दुष्कर्मों और अभाग्य को धिक्कारता हुआ श्री स्वयंप्रभु मुनि के समीप मुनि-दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगा। नवीन दीक्षित होने से जयवर्मा ने एक दिन महीधर नामक विद्याधर को अपनी पूर्ण विभूति के साथ आकाशमार्ग में जाता देखकर उसी के समान विद्याधर कुल में जन्म पाने के लिये निदान वन्ध कर लिया और उसी विचार में अकस्मात् एक सर्प से डसा जाकर प्राण त्याग किये।

२—इसी जम्बूद्वीपस्थ पश्चिमी विदेह क्षेत्र के गन्धिला देश में जिसकी पूर्व दिशा में "देवमाल" (देवाद्रि) नाम का वक्षार पर्वत, दक्षिण में "सीतोदा" नदी पश्चिम में "उर्मिमालिनी" नामक विभंगा नदी और उत्तर में "नील" पर्वत है, उस देश के ठीक मध्य में सीतोदा नदी से नील पर्वत तक देश की चौड़ाई की बराबर लम्बा एक विजयार्ध नामक पर्वत रजत समान श्वेतवर्ण का है। इस पर्वत पर दो समतल भूमि उत्तर श्रेणी और दक्षिण श्रेणी नाम से प्रसिद्ध हैं। उन दोनों श्रेणियों में विद्याधरों के रमणीय सुन्दर निवास स्थान और बड़े बड़े नगर हैं। उत्तर श्रेणी में इन्द्र पुरी को लज्जित करने वाली एक अलिका नाम की बड़ी सुन्दर नगरी है जिसके चारों ओर आकाश से बातें करने वाला एक ऊँचा कोट और कोट के गिर्दा गिर्द उज्वल जल से भरी हुई प्रफुल्लित कमलों से सुशोभित खाई है।

किसी समय उस अलकापुरी का अधिपति "अतिवल" नाम का विद्याधर था जिसकी "मनोहरा" नाम की सुशीला रानी के गर्भ से वह जयवर्मा मुनि का जीव वहाँ से शरीर त्याग कर अतिशय भाग्यशाली "महाबल" नाम का पुत्र हुआ। सर्व कार्यों में कुशलता, युद्ध में वीरता, दान में उदारता तथा बुद्धि, क्षमा, दया, धैर्य, सत्य, शौच, आदि उसके स्वाभाविक गुण थे। पिता के विरक्त होकर मुनि व्रत धारण कर लेने पर राजपद प्राप्त किया, बड़े विद्वान् और दीर्घदर्शी इसके चार मन्त्री महामति, संभिन्नमति, शतमति और स्वयंबुद्ध थे जिन में से स्वयंबुद्ध मन्त्री बड़ा धर्मज्ञ और शुद्ध सम्यक्दृष्टी था और अन्य तीनों मिथ्यादृष्टि थे। धार्मिकदृष्टि से मतभेद होने पर भी स्वामी के हितसाधन में वे चारों ही सदा उद्यत रहते थे और सर्वसामाजिक व राज प्रबन्धादि कार्यों में परस्पर मैत्री भावयुक्त मिलजुलकर काम करते थे। एक दिन महाबल का जन्म दिन आने पर वर्षगांठ

के महोत्सव के समय अवसर पाकर महाराज को धर्म में अधिक दृढ़ करने तथा सर्व सभा जनों पर सम्यक्‌धर्म का महत्व प्रकट करने के लिये स्वयंबुद्ध ने दयामूलक धर्म का लक्षण और स्वरूपादि निरूपण करके सर्व राज्य विभूति पाने और ऐसे शुभ महोत्सव का शुभ अवसर प्राप्त करने को पूर्वोपार्जित पुण्य का फल बताया तथा आगे को स्वर्ग व मोक्षफल प्राप्ति के लिये सम्यक्‌दर्शन पूर्वक यथाशक्ति सुचरित्र पालन करने की ओर सर्व उपस्थित मण्डली का चित्त आकर्षित किया। परन्तु अन्य तीनों जड़वादी, विज्ञान द्वैतवादी और शून्यवादी मन्त्रियों ने अपने अपने पक्ष का समर्थन और स्वयंबुद्ध के वचनों का खण्डन करके राजा के सन्मुख सर्व उपस्थित सभाजनों से कहा कि वास्तव में जीव ही की कोई अलग सत्ता कभी किसी की दृष्टिगोचर न होने से जब जीव पदार्थ ही कुछ नहीं ठहरा तो पुण्य पाप का कर्त्ता कौन और उनके फल सुख दुःखादि कौन भोगे। तथा परलोक या स्वर्ग नरकादि क्या वस्तु रही; यह सब मिथ्या कल्पनाएँ हैं। नास्तिकवाद का पोषण और सत्यार्थ आस्तिक वाद का खण्डन करने पर स्वयं बुद्ध मन्त्री ने बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ अनेक युक्तियों तथा नय, प्रमाणों और कई प्रत्यक्ष उदाहरणों अर्थात् राजा अरविन्द, मणिमाली, शतबल और सहस्र बल की कथाओं द्वारा जीवत्व की सिद्धि करके उन तीनों ही को निरुत्तर और अवाक् कर दिया जिससे सम्पूर्ण सभा सन्देह रहित होकर बड़ी सन्तुष्ट हुई और सभाधिपति राजा महाबल भी अति प्रसन्न हुये। सभा ने स्वयंबुद्ध की बड़ी प्रशंसा की।

कुछ दिन पश्चात् स्वयंबुद्ध मंत्री सुदर्शन मेरु पर्वत पर के अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना करने गया। वहां उसे आदित्यगति और अरिंजय नाम के दो चारण ऋद्धिधारी अवधिज्ञानी दिगम्बर मुनियों के दर्शन हुए। श्री आदित्य गति के मुख से मन्त्री को ज्ञात हुआ कि "राजामहाबल" भव्य है। इस भव से दशवें भव में तीर्थंकर पद पाकर निर्वाणपद प्राप्त करेगा। यह पूर्व भव में सिंहपुर नरेश श्रीषेण का "जयवर्मा" नाम का बड़ा पुत्र था। अब इसकी आयु केवल एक मास की शेष है। आज प्रातःकाल उसने दो स्वप्न देखे हैं। पहला स्वप्न आगामी काल में होने वाले सुखों का सूचक है और दूसरा आयु अतिअल्प रहजाने का सूचक है। इन वचनों को सुनकर और श्री मुनि की आज्ञानुसार स्वयंबुद्ध ने निज नगर आकर राजा को मुनि द्वारा जाना हुआ सारा वृत्तान्त सुनाया जिससे राजा महाबल को धर्म पर और भी अधिक दृढ़ श्रद्धान हुआ। आयु का अन्त जान कर यथा विधि समाधि मरण पूर्वक शरीर परित्याग करने का निश्चय किया। अष्ट दिन तक आष्टाह्निक महायज्ञ अपने उद्यान के जिनालय में बड़ी भक्ति के साथ कराया। पश्चात् अतिबली पुत्र को राज्य देकर और तुरन्त परम पूज्य "सिद्ध कूट" चैत्यालय में जाकर सिद्ध पूजा की और गुरू की साक्षी पूर्वक आयु के अंत तक के लिये सर्व प्रकार के आहार और शरीर से ममत्व का त्याग कर दिया। स्वयंबुद्ध मन्त्री ही को अपना निर्यापकाचार्य बनाया। वीर सन्यासन धारण किया। बाह्याभ्यन्तर सर्व परिग्रह से ममता त्याग दी। चारों आराधना पूर्वक "प्रायोपगमन" नामक सन्यास धारण कर लिया।

इस प्रकार २२ दिन तक निराहार धर्म ध्यान में बिताकर और परिणामों की निरन्तर बढ़ती हुई विशुद्धि पूर्वक महाबल ने सुख से शरीर परित्याग किया।

३--महाबल का जीव विशुद्ध परिणामों से शरीर परित्याग करके ईशान नामक दूसरे स्वर्ग के श्रीप्रभ नामक विमान में बड़ी ऋद्धि का धारक "ललितांग" नामका उत्तम देव हुआ। यहां इसने लगभग एक सागरोपम काल तक दिव्य भोग भोगे। जब इसकी आयु में पांच पल्योपम कालसे कुछ अधिक समय शेष रहा तब एक स्वयंप्रभा नाम की देवी ने पूर्व की इसी नाम की देवी की आयु पूर्ण हो चुकने पर उसके स्थान पर जन्म लिया। ललितांग देव को यह अति प्रिय थी और इसे भी ललितांग से असाधारण अतिशय स्नेह था। ललितांग देव ने धर्म ध्यान पूर्वक जब शरीर त्यागा उस समय स्वयंप्रभा की आयु में केवल ६ मास शेष थे कुछ दिनों तक इसे ललितांग का वियोग का बड़ा शोक रहा। ६ मास बीतने पर इसने भी ध्यान पूर्वक शरीर छोड़ा परन्तु अन्त समय में भी ललितांग का स्नेह उसके मन से न छूटा।

४--ईशान स्वर्ग से शरीर त्याग कर ललितांग देव तो इसी जम्बूद्वीपस्थ पूर्व विदेह क्षेत्र के पुष्कलावती देशान्तर्गत उत्पलखेट नगर में राजा वज्रबाहु और रानी वसुन्धरा का "वज्रजंघ" नाम का पुत्र हुआ। और स्वयंप्रभा देवी उससे लगभग ६ मास पश्चात् उसी पूर्व विदेह क्षेत्र के पुष्कलावती देश की राजधानी पुंडरीकिणी नगरी में श्री यशोधर तीर्थ कर के पुत्र वज्रदन्त चक्री की महारानी लक्ष्मी मती के उदर से "श्री मती" नाम की अतिशय सुन्दर पुत्री हुई। कई पूर्व जन्मों के संस्कार वश इसका विवाह "वज्रजंघ के साथ हुआ। पिता वज्रबाहु और उनके साथ अपने सर्व ९८ पुत्रों के मुनिदिक्षा ग्रहण कर लेने पर वज्रजंघ ने पिता का स्थान लिया। अपने मतिवर मंत्री, अकंपन सेनापति, आनन्द पुरोहित और धनमित्र सेठ से इसे अति स्नेह था।

एक बार शष्प सरोवर के तट पर वज्रजंघ और श्री मती ने अवधिज्ञान श्री दमवर और सागर सेन चारण मुनियों को जो इनके लघु पुत्र थे नवधाभक्ति पूर्वक निरन्तरायशुद्ध आहार दिया। इस अवसर पर भाग्योदय से चार जंगली पशु सिंह, सूकर वानर और नकुल ने भी जाति स्मरण हो जाने से हर्ष पूर्वक उस शुभ दान की मन ही मन में भी बारम्बार अनुमोदन की। वज्रजंघ और श्रीमती दोनों ने आयु के अन्तमें अपने शय्याग्रह में सुख पूर्वक शयन करते हुये सेवकोंकी भूलवश कृष्णा गुरु की सुगन्धित धूप के धूम्र से मूर्छित होकर प्राण त्याग किये और मतिवर, अकंपन आनन्द तथा धनमित्र ने वज्रजंघ व श्रीमती के वियोग में अति शोकातुर होकर श्रीदृढ़ धर्माचार्य के समीप मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली।

५--वज्रजंघ और श्रीमती ने उत्तम सुपात्र दान के महान् पुण्योदय से इसी जम्बूद्वीपके मध्य सुदर्शन मेरु की उत्तर दिशा में स्थित उत्तर कुरु नामक उत्तम भोगभूमि में जन्म पाया। सुपात्र दानानुमोदना के पुण्योदय से उन सिंह, शूकर वानर और नकुल के जीवों ने भी अपनी अपनी आयु के अन्त में प्राण त्याग कर उसी भोगभूमि में मनुष्य जन्म पाया। स्वयंबुद्ध मंत्री के जीव ने

अपनी तीसरी पर्याय में "प्रीतंकर" नाम का राज पुत्र होकर और फिर तपोबल से अवधिज्ञान और चारण ऋद्धि पाकर पूर्व जन्म के स्नेह वश महाबल के जीव के पास इस उत्तर कुरु भोगभूमि में आकर उसे और उसकी स्त्री को धर्मोपदेश द्वारा शुद्ध सम्यग्दर्शन ग्रहण कराया। सिंह शूकरादि चारों प्राणियों के जीओं को भी इस शुभ अवसर पर सम्यकुदर्शन प्राप्ति का आस्वाद प्राप्त हुआ। पश्चात् महान् सुख पूर्वक वहां की तीन पल्योपम काल की आयु पूर्ण करके छहों ने शरीर परित्याग किया।

६—वज्रजंघ का जीव भोगभूमि की तीन पल्योपम काल की आयु पूर्ण कर के ईशान नामक द्वितीय स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में "श्रीधर" नाम का ऋद्धिधारी देव हुआ। और श्रीमती का जीव भी सम्यक्दर्शन के माहात्म्य से स्त्रीलिंग छोड़कर उसी स्वर्ग के उसी विमान में 'स्वयंप्रभ' नाम का उत्तम देव हुआ। इसी प्रकार सिंह, शूकर वानर और नकुल के जीव भी उसी स्वर्ग में बड़ी बड़ी ऋद्धियों के स्वामी देव हुये। सिंह का जीव चित्रांगद विमान में "चित्रांगद" देव, शूकर का जीव नन्द नामक विमान में "मणि कुंडल" देव, वानर का जीव नन्द्यावर्त विमान में "मनोहर" देव, और नकुल का जीव प्रभाकर विमान में "मनोरथ" देव हुये। और मतिवर, अकम्पन, आनन्द धनमित्र के जीव, जो क्रम से वज्रजंघ के मंत्री, सेनापति, पुरोहित और सेठ थे, उग्र तपश्चरण के प्रभाव से समाधिमरण कर अधोग्रैवेयिक में अहमिन्द्र हुये।

७—दूसरे स्वर्ग की आयु पूर्ण होने पर श्रीधर देव का जीव वहाँ से चलकर इसी जम्बू द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में महावत्स देश के सुसीमा नगराधीश सुदृष्टि की रानी सुन्दर नन्दादेवी के गर्भ से "सुविधि" नाम का प्रतापी सर्वकला निधान पुत्र उत्पन्न हुआ। युवा होने पर अपने मातुल अभयघोष चक्री की पुत्री मनोरमा से विवाहित हुआ। वज्रजंघ की स्त्री श्रीमती का जीव जो दूसरे स्वर्ग में स्वयंप्रभ नामक देव था इसी राजपुत्र सुविधि की इस मनोरमा स्त्री के गर्भ से "केशव" नाम का पुत्र हुआ। और सिंह शूकर, वानर व नकुल के जीव जो उसी स्वर्ग में चित्रांगद, मणि-कुंडल, मनोहर और मनोरथ नाम के उत्तम देव थे, ये चारों ही जीव स्वर्ग से चलकर उसी महावत्स देश में राज पुत्र हुये।

सिंह का जीव महाराज विभीषण की रानी प्रियदत्ता से "वरदत्त" नाम का पुत्र हुआ। शूकर का जीव महाराज नन्दिषेण की रानी अनन्तमती से "वरसेन" नामक पुत्र हुआ। वानर का जीव राजा रतिषेण की रानी चन्द्रमती से चित्रांगद नाम का पुत्र हुआ। और नकुल का जीव राजा प्रभंजन की रानी "चित्रमालिनी से "प्रशान्त मदन" नाम का पुत्र हुआ।

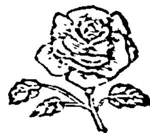
इन चारों ही राजपुत्रों ने अपने अपने पिता के राज्य का राज्य-सुख भोग कर सुविधि के मातुल अभयघोष चक्री के साथ मुनि दीक्षा लेकर महान् तप किया। परन्तु सुविधि ने अपने पिता का राज्य पाने के पश्चात् अपने परम प्रिय पुत्र केशव के अति गाढ़ स्नेह वश मुनि दीक्षा न ली, किन्तु अनुक्रम से श्रावक के ११ वीं प्रतिमा तक के श्रावक के उत्कृष्ट व्रत धारण कर कठिन तपश्चरण किया।

८—सुविधि ने ११ वीं प्रतिमा तक के श्रावक के उत्कृष्ट व्रत शुद्ध भावों से पालन कर आयु के अन्त समय वाह्याभ्यन्तर सर्व परिग्रह रहित होकर और विधि पूर्वक समाधि मरण से शरीर त्याग करके १६ वें स्वर्ग में "अच्युतेन्द्र" हुआ। पिता के पश्चात् केशव ने भी मुनिव्रत सम्वन्धी अनेक उग्रोग्र तप करके उसी १६ वें अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र पद पाया। सिंहादि के जीव वरदत्त आदि चारों मुनि भी अपनी अपनी आयु के अन्त में समाधि मरण पूर्वक शरीर त्यागकर उसी स्वर्ग में इन्द्र के समानऋद्धिधारक सामानिक जाति के देव हुए।

९—सोलहवें स्वर्ग में अच्युतेन्द्र ने २२ सागरोपम काल तक महान् सुख भोगकर आयु के अन्त में धर्मध्यान पूर्वक शरीर परित्याग किया और इसी जम्बू द्वीपस्थ पूर्व विदेह के पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी में राजा वज्रसेन तीर्थंकर की रानी श्रीकान्ता के गर्भ से "वज्रनाभि" नाम का पुत्र हुआ। इसके शरीर का वर्ण स्वर्ण के समान देदीप्यमान था। सिंह, शूकर, वानर और नकुल के जीव जो वरदत्तादि राजा होकर उसी १६ वें स्वर्ग में सामानिक देव हुए थे वे भी धर्म ध्यान पूर्वक शरीर त्याग कर उन्हीं राजा वज्रसेन और रानी श्री कान्ता के क्रम से विजय, वैजयन्त जयन्त और अपराजित नाम के पुत्र वज्रनाभि के लघु भ्राता हुए। तथा इस वज्रनाभि की पूर्व पर्याय (वज्रजंघ) के मतिवर मन्त्री, अकम्पन सेनापति आनन्द पुरोहित और धन मित्र सेठ के जीव जो अधोग्रैवेयिक में अहमेन्द्र हुये थे वे भी क्रम से उन्हीं राजा रानी के सुवाहु, महावाहु, पीठ और महापीठ नामक प्रभावशाली पुत्र (वज्रनाभि के लघुभ्राता) उत्पन्न हुए। श्रीमती का जीव जो राजा सुविधि का पुत्र केशव था और १६ वें स्वर्ग में अच्युतेन्द्र हुआ था वहाँ से चल कर उसी पुण्डरीकिणी नगरी में सेठ कुवेर दत्त की अनन्तमती स्त्री से धनदेव नाम का भाग्यशाली पुत्र हुआ। जव राजकुमार वज्रनाभि के पिता श्री वज्रसेन तीर्थंकर ने अपना राज्य भार वज्रनाभि को देकर स्वयं एक सहस्र अन्य राजाओं सहित मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली तो कुछ ही समय पीछे वज्रनाभि की आयुधशाला में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। पश्चात् दिग्विजय द्वारा पुष्कलावती देश का छहों खण्ड की सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने अधिकार में लाकर ३२ सहस्र मुकुट वद्ध राजाओं, १४ रत्नों, ९ निधियों आदि वहु सम्पत्ति का अधिपति चक्रवर्ती राजा हुआ और श्रीमती का जीव धन देव (सेठ कुवेरदत्त का पुत्र) चक्रवर्ती के १४ रत्नों में से एक गृहपति रत्न हुआ। दीर्घकाल तक चक्रवर्ती पद के महान् सुख भोगकर वज्रनाभि चक्री ने विषय भोगों से अत्यन्त विरक्त होकर अपने पुत्रवज्रदन्त को राज्य सिंहासन दे दिया और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, सुवाहु, महावाहु, पीठ और महा पीठ इन आठों लघु भ्राताओं और धनदेव गृहपति तथा १६ सहस्र मुकुट वद्ध राजाओं और एक सहस्र पुत्रों सहित अपने पिता श्री वज्रसेन तीर्थंकर के समीप जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली। तत्पश्चात् पंच महाव्रत पंचसमिति और तीनों गुप्तियों का शुद्ध भावों से पालन करते हुए अपने पिता के ही निकट तीर्थंकर पद प्राप्ति की अद्वितीय कारण भूत दर्शन विशुद्धि आदि १६ कारण भावनाओं का उसने वारम्वार चिन्तन किया। उग्रोग्र तपश्चरण द्वारा वुद्धि ऋद्धि के १८ भेदों में से निर्मल कोष्ठ वुद्धि, वीज वुद्धि, पदानुसारिणी वुद्धि और सम्भिन्न श्रोत्र वुद्धि, ये

चार ऋद्धियां तथा क्रिया, विक्रिया, तप, बल आदि ऋद्धियों के भेदों में से भी कई कई प्रकार की ऋद्धियाँ उसे प्राप्त होगईं। विशुद्ध परिणामों द्वारा उपशम श्रेणी मांड़कर और मोहनीय कर्म का उपशम करता हुआ ११ वें गुण स्थान तक पहुँचकर अन्तमुहूर्त में फिर सप्तम गुण स्थान में आगया। तदनन्तर द्वादशांग पाटी श्रुतकेवली होकर आयु के अन्त समय में "श्रीप्रभ" पर्वत पर सिंह निष्क्रीडित व्रत पूर्वक प्रायोपगमन सन्यास (अन्य नाम प्रायोपवेशन, प्रायेणोपवेशन, प्रायेणोपगम, प्रायेणोपगमन, प्रायेणोपगम सन्यास) धारण करके शरीर और आहार से सर्वथा ममत्व त्याग कर दिया। एक मास बीतने पर अब एक बार फिर उपशम श्रेणी मांडकर ११ वें गुण स्थान में पहुँचा और "पृथक्त्व वितर्क विचार" नामक शुक्ल ध्यान का प्रथम चरण पूर्ण कर मोहनीय कर्म का सम्पूर्ण उपशम किया। अतिशय विशुद्ध और पूर्ण निर्मल परिणाम युक्त अन्तर्मुहूर्त काल इस गुण स्थान में रहकर शरीर परित्याग कर दिया।

१०—श्री वज्रनाभि मुनि ने प्रयोपगमन संयास पूर्वक अतिशय विशुद्ध भावयुक्त शरीर त्याग कर पंचानुत्तर विमानों में से मध्य के "सर्वार्थ सिद्धि" नामक विमान में अहमेन्द्र पद प्राप्त किया। इसी प्रकार वज्रनाभि के उपरोक्त आठों लघु भ्राताओं और धनदेव गृहपति ने भी उग्रोग्र तपश्चरण द्वारा अनेक अशुभ कर्म-प्रकृतियों की निर्जरा कर अपने अपने पुण्य कर्मोदय से उसी "सर्वार्थसिद्धि" विमान में अहमेन्द्र पद पाया। ३३ सागरोपम काल पर्यन्त वहां के इन्द्रिय विषय रहित अलौकिक और अनुपम सुखों का अनुभव किया।



श्री ऋषभदेव का गर्भ महोत्सव

(आदि पुराण पर्व १२)

वर्तमान अवसर्पिणी (हुँडावसर्पिणी) काल के ६ विभागों में से जब "सुषमा-दुषमा" नामक तृतीय विभागके दो कोड़ा-कोड़ी* सागरोपम काल में से केवल एक पल्योपम काल का आठवां भाग शेष रहा तब "प्रतिश्रुति" आदि नाभिराय पर्यन्त १४ कुलकर या मनु एक दूसरे के पश्चात् यथा समय उत्पन्न हुये जिनके नाम और आयु आदि आदि का वर्णन पहले किया जा चुका है।

तृतीय काल के लगभग अन्त में कल्प वृक्षों के नष्ट हो जाने पर इन्हीं पुण्यात्मा दंपत्ति के महान् पुण्योदय से प्रेरित होकर अपने अवधिज्ञान के द्वारा जानकर के ये पुण्याधिकारी दंपत्ति वर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर के माता पिता होने वाले हैं। सौधर्मेन्द्र ने अपने आज्ञाकारी देवों द्वारा १२ योजन लम्बी व ९ योजन चौड़ी स्वर्गपुरी समान अनेक शोभायुक्त व अति रमणीक श्री अयोध्यापुरी की रचना कराई। वर्तमान अवसर्पिणी काल में हमारे आर्य खंड की सबसे पहली या पाचीन यही नगरी है। जो प्राकृतिक ऐतिहासिक काल के लगभग प्रारंभ में रची गई। ये दिव्य नगरी, कोट, खाई, राजमन्दिर और राज सिंहासनादि सर्व सुख सामग्री युक्त बड़ी मनोहर रची गई। इन्द्रकी आज्ञानुसार शुभ मुहूर्त्त में पुण्याहवाचन मंत्रादि पूर्वक बड़े हर्ष व उत्सव के साथ इस देवोपनीत नगरी को महाराज नाभिराज का निवास स्थान बनाया गया। और उसी दिन से उनके राजभवन में नित्य प्रति तीन बार कुबेर के द्वारा रत्नवर्षा होती रही। इस शुभ दिनसे पूरे ६ मास पश्चात् श्री मरुदेवी ने शुभमिती आषाढ़ कृ० २ उत्तराषाढ़ नक्षत्र के अन्तिम पहर में श्री तीर्थंकर भगवान के गर्भ में आने का सूचक १६ शुभ स्वप्न देखे। जिसका अलग अलग शुभ फल उनके प्राणपति श्री नाभिराय ने अपनी अवधिज्ञान द्वारा पूर्णरूप से जानकर श्री मरुदेवी को सुनाया। उन्होंने कहा कि वज्रनाभि चक्रवर्ती का जीव सर्वार्थ सिद्धि विमान से अपनी ३३ सागरोपम काल की आयु पूर्ण करके गत रात्रि में तुम्हारे गर्भ में आया है। यह बात सुनते ही मरुदेवी को अपार हर्ष हुआ। इन्द्रादिक देवों ने भी यहां आकर बड़े हर्ष पूर्वक भगवान् का गर्भ महोत्सव किया। उसी दिन से श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी की अर्थात् शोभा लज्जा, धैर्य, यश, प्रभुत्व, और वैभव को बढ़ाया। सीपी के संपुट में मुक्ता के समान माता के गर्भाशय में नाभि

नोट—इन ही चौदहवें कुलकर (श्री नाभिराय की धर्म पत्नी का नाम "मरुदेवी" था। यह मरुदेवी जम्बू द्वीप के ऐरावत् क्षेत्र के प्रथम तीर्थङ्कर के पिता की युगलिनी थी। जो सौधर्मेन्द्र द्वारा लाई जाकर श्री नाभिराय से व्याही गई। इसी प्रकार इस क्षेत्र के प्रथम तीर्थङ्कर के पिता श्री नाभिराय की युगलिनी इन्द्र द्वारा ऐरावत क्षेत्र पहुँचाई जाकर तीर्थङ्कर के पिता के साथ व्याही गई थी।

* एक कोटि संख्या को एक कोटि से गुणाकरने पर जो गुणनफल आवे उसे एक कोड़ा-कोड़ी कहते हैं।

कमल पर स्थित भगवान् का शरीर असाधारण सुख पूर्वक पोषित व वृद्धित हो रहा था। ५६ दिक्कुमारी देवियाँ अपने २ नियोगानुसार रातदिन माता की सेवा टहल करती रहीं कि जिससे माता के गर्भ का संपूर्ण समय अतिशय प्रसन्नता और आनन्द के साथ चर्चा पूर्वक व्यतीत हो। गर्भ के ९ मास में वे देवियाँ अतिशय बुद्धि पूर्वक कूट श्लोकों, गूढ़ प्रश्नोत्तरों व अनेक अन्तरालापिका प्रहेलिका, वहिलारापिका आदि द्वारा माता का चित्त विशेष रूप से प्रसन्न रखती थीं। पूर्व जन्मों के उत्तम संस्कार व तपोवल से भगवान को गर्भावस्था से ही मति, श्रुति और अवधि ये तीन् ज्ञान प्राप्त थे। भगवान् के गर्भ वास के समय अन्य स्त्रियों के समान माता का शरीर न तो कृश पति या पीड़ित हुआ न उदर वृद्धि हुई न त्रिबली भंग हुई और न स्तनों के मुख पर कालिमा आई उनके शरीर तथा मुख की आकृति सर्व प्रकार से सुन्दर ही बने रहे। जिस समय भगवान् ऋषभ देव माता के गर्भ में आये उस समय सुषमा दुःषमा नाम का तीसरे काल में कई वर्षाधिक चौरासी लक्ष पूर्व वर्ष शेष थे।

भगवान् ऋषभदेव का जन्म महोत्सव व बाल-विनोद

(आदि पुराण पर्व १३, १४)

भगवान् ऋषभदेव को गर्भ में आये ९ मास ७ दिन वीतने पर शुभ मिती चैत्र कृष्ण ९ के दिन प्रातः काल सूर्योदय के समय उत्तराषाढ़ नक्षत्र के अंतिम पाद अभिजित् नक्षत्र और ब्रह्म महायोग में मति, श्रुत और अवधि इन तीनों ज्ञानों से युक्त श्री ऋषभदेव भगवान् का जन्म हुआ। (Wireless Teleyrd graphy द्वारा) विद्युत् लहर सर्वत्र व्याप्त होकर अभीष्ट स्थान पर के यंत्रों के विशेष पुर्जे स्वयं चलाय मान होते हैं ठीक उसी प्रकार भगवान् ऋषभदेव के जन्म काल में प्राकृतिक रीति से त्रिलोक भर में एक ऐसी आनंद भरी विद्युत् लहर फैली जिस से प्राणी मात्र को (नारकी जीवों तक को) क्षण भर के लिये अपूर्व साता उत्पन्न हुई।

इन्द्रादिक देवों के आसन अकस्मात् कंपायमान होगये। कल्पवासी देवों के विमानों में घंटा वजने लगा। ज्योतिषियोंके विमानोंमें सिंहनाद होने लगा। व्यन्तरों के आवासोंमें भेरी वजने लगी। और भवन वासी देवों के भवनों में शंख ध्वनि होने लगी। इन अकस्मात् होने वाले चिन्हों से सर्वेन्द्रादिक देवों ने अपने अपने अवधिज्ञान के द्वारा जान लिया कि अयोध्यापुरी में वर्तमान अव-सर्पिणी काल में भगवान का जन्म हुआ है। उसी समय सभी अपने अपने विमानों पर चढ़कर वड़ी धूमधाम से समस्त सेना के साथ अयोध्या नगरीमें आये। भक्तिपूर्वक नगर की तीन प्रदक्षिणा दी सौधर्मेन्द्र की शची देवी ने वड़े हर्ष के साथ गुप्त रूप से प्रसूति गृह में जाकर भगवान व उनके माता का दर्शन किये और तीन प्रदक्षिणा करके नमस्कार पूर्वक उनकी स्तुति की, माता को मायामय निद्रा में सुलाकर भगवान को अपनी गोद में उठा लिया और माता की गोद में एक अन्य वालक मायामय सुला दिया। बड़ी भक्ति व विनय के साथ भगवान को गोद में लिए हुये इन्द्राणी इन्द्र के निकट पहुँची। अष्ट मङ्गल द्रव्यों को लिए हुए दिक् कुमारी देवियां भी सर्व प्रकार के उत्तमोत्तम मङ्गलों को देनेवाले उन मङ्गलस्वरूप भगवान के आगे आगे गईं।

इन्द्र ने भगवान् के दर्शन करके अपना जन्म सफल माना और वड़ी विनय से उन्हें अपनी गोदमें उन्हें लेकर उनकी स्तुति की। तथा अपनी सवारीके ऐरावत हाथी पर बैठकर अन्य इंद्रादिक देवों को संकेतकर सुदर्शन मेरु की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में भगवान् के सिरपर ईशान इन्द्र ने छत्र लगाया सनतकुमार व महेन्द्र ने चमर ढुलाये। इस प्रकार अनेक नृत्य गानादि पूर्वक मेरु गिरि पर पहुँचे। सुमेरु गिरि के पांडुक वन में स्थित १०० योजन लम्बी व ५० योजन चौड़ी तथा ८ योजन मोटी अर्ध चन्द्राकार महा पवित्र पांडुक शिला पर रक्खे हुये ३ सिंहासनों में से मध्य सिंहासन पर भगवान को पूर्वाभिमुख विराजमान करके क्षीरो दधि नामक पंचम समुद्रसे १००८ स्वर्ण कलशों में अगणित देवों द्वारा लाये निर्मल जलों से भगवान् का अभिषेक यथाविधि उत्सव के साथ किया गया। जिस समय सौधर्मेन्द्रऔर ईसानेन्द्र स्वच्छ जलधारा भगवान् के मस्तक पर डालते थे सनतकुमार और माहेन्द्रये दो इंद्र भगवान् के सिर पर चमर डोलाते थे और शेष इन्द्रादि देव वड़े हर्ष के साथ उछलते, कूदते, गाते, वजाते हुए दिशाओं को गुंजार कर रहे थे अभिषेक क्रिया के समाप्त होते ही इंद्रादिक देवों ने भगवान् न्हवन के सुगंधित जल को अपने २ मस्तक में लगाया व सवों ने मिलकर अष्ट द्रव्यों से भगवान का पुजन किया, इन्द्राणी ने वस्त्राभूषणों से उन्हें अलंकृत किया। इन्द्र ने भगवान् के उस समय के अद्भुत् रूप को देखते २ अतृप्त होकर वैक्रियक शक्ति द्वारा अपने एक हजार नेत्र कर लिये। भगवान् के यथार्थ गुण वाचक १००८ नामोच्चारण करके वड़ी भक्ति से वारंवार स्तुति कीं। तदनंतर अतिशय प्रसन्नता पूर्वक सर्वइन्द्रादिक देव पूर्ववत् नृत्य गानादि महोत्सव के साथ अयोध्या पुरी में लौट आये। इन्द्राणी ने माया से माता की निद्रा दूर कर दी तथा मायामय वालक को अदृष्ट करके भगवान् को सौंपकर स्तुति किया। उसके वाद मेरु गिर पर किये जाने की सारी कथा सुनाकर माता पिता को परम हर्षित किया उसके वाद नाभिराय ने अपने पुत्र का आनन्द के साथ जन्मोत्सव किया तथा शुभ दिन व शुभ मुहूर्त्त में उनका नाम ऋषभनाथ रक्खा।

युवावस्था और विवाह संस्कार

(आदि पुराण पर्व १५।५१-६६)

कुमार अवस्था में २० लक्ष पूर्व (८४ लाख ८४ लाख २० लाख १४११२०००००००००००००००० वर्ष) व्यतीतहोने पर भगवान्ऋषभ जव युवावस्था को प्राप्तहुये तो पिता नाभिराय ने उनसे विवाह करने का परामर्श किया। तव सर्व अन्य मनुष्यों को अपने आदर्श चरित्र के अनुकूल चलाने व पूज्य पिता की आज्ञा न उलंघन करने के विचार से आपने केवल "ॐ" अक्षर का उच्चारण कर अपनी स्वीकृति दी पिता ने सुरेन्द्रानुमति लेकर "कच्छ' "और महाकच्छ' इन दो राजाओं की दो महासती सुशीलवर, सुलक्षणा व रूपवती कन्याओं के साथ देवकृत मंगलोत्सव पूर्वक शुभमुहूर्त्त में विवाह कर दिया। इन कन्याओं का नाम 'यशस्वती' और 'सुनन्दा' था।

ब्राह्मी और सुन्दरी पुत्रियों तथा भरतादि पुत्रों का विद्याध्ययन

(आदि पुराण पर्व १६।७२–१२७)

किसी शुभ दिन सुखपूर्वक सिंहासन पर विराजे हुए श्री ऋषभदेव के चित्त में अनेक प्रकार की कलाओं और विद्याओं के प्रचार करने का विचार हो रहा था कि अकस्मात् दैवयोग से उनकी दोनों बड़ी विनयवान और सुशीला पुत्रियाँ "ब्राह्मी" और "सुन्दरी" मंगलाभूषण पहने हुए उनके समीप आईं। इस समय ये दोनों बाल्यावस्था व्यतीत करके किशोरावस्था को प्रारम्भ कर चुकी थीं। उन्हें सर्व प्रकार सुयोग्य जानकर बड़े प्रेम से अपनी गोदी में बिठाया। पहले कुछ विद्याध्ययन का मुहूर्त समझाकर उन्हें मौखिक उपदेश किया। पश्चात् स्वर्ण पट्टिका पर 'नमः सिद्धेभ्यः' पूर्वक अ आ आदि अक्षर मालिका लिखकर उन्हें लिखना पढ़ना सिखाना प्रारम्भ कर दिया। पश्चात् अनुक्रम से उन्हें इकाई आदि अङ्कों के द्वारा संख्या का भी ज्ञान कराया। श्री ऋषभदेव दायें हाथ से अक्षर और बायें हाथ से अङ्क लिखकर उन्हें सिखाये। "अक्षरावली" में अधिक नैपुण्य बड़ी पुत्री "ब्राह्मी" ने और अङ्कावली में विशेष नैपुण्य छोटी पुत्री "सुन्दरी" ने प्राप्त किया।

श्री ऋषभ भगवान ने शब्द रूप तथा अर्थ रूप समस्त वाङ्मय अर्थात् व्याकरण, छन्द और अलङ्कार आदि विद्याओं और स्त्रियोपयोगी गानादि अनेक कलाओं की उन्हें भले प्रकार शिक्षा दी। पूर्व जन्मों के उत्तम संस्कार से उन्होंने इन सर्व विद्या और कलाओं को थोड़े ही काल में अति शीघ्र सीख लिया। धर्म शास्त्र में भी उन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त करली।

पश्चात् भरत आदि १०१ पुत्रों को भी श्री ऋषभदेव ने अनेक विद्याओं और धर्मशास्त्र की भले प्रकार शिक्षा दी। यद्यपि उन्होंने अपने सर्व ही पुत्रों को सर्व ही विद्या आदि की शिक्षा दी तथापि "भरत" को नीति शास्त्र और नृत्य कला का, "वृषभसेन" को गन्धर्व शास्त्र अर्थात् संगीत शास्त्र और वादित्र कला का "अनन्त विजय" को नाट्य शास्त्र, वास्तु विद्या और चित्रकला का बाहुबली को वैद्यक शास्त्र, धनुर्वेद विद्या, काम शास्त्रान्तर्गत स्त्री पुरुषों के शुभाशुभ लक्षण, पशु परीक्षा और रत्न परीक्षा का ज्ञान विशेष रूप से कराया। इसी प्रकार अन्य सर्व पुत्रों को भी यथा योग्य किसी एक एक विद्या या कला में विशेष नैपुण्य प्राप्त कराया। पश्चात् इन सब विद्याओं और कलाओं का प्रचार यथा अवसर शनैः शनैः सर्व साधारण में होगया।

प्रजा के लिये आजीविका का उपाय, क्षत्रिय आदि तीन वर्णों की स्थापना और इन्द्र द्वारा ग्राम नगरादि का बसाना

(आदि पुराण पर्व १६।१२८–१६०)

श्री ऋषभदेव के कुमार काल के २० लाख पूर्व बीतने पर जब कल्पवृक्ष रहे सहे भी सर्व नष्ट हो चुके तो उसके बाद जो कई प्रकार के धान्य व फलादि पृथ्वी में स्वयं उत्पन्न हुए थे और जिन्हें काम में लाने की विधि श्री ऋषभदेव के पिता "श्री नाभिराय" ने प्रजा को बताई थी वे

धान्य और फलादि भी काल के प्रभाव से प्रायः नीरस, अल्प वीर्य और अपवध रह रहकर पृथ्वी ही में नष्ट होने लगे, इधर प्रजा भी सन्तानाधिक से कुछ वृद्धि को प्राप्त होने लगी तो प्रजा भूख आदि के कष्ट से व्याकुल होकर अपनी दुःख निवृत्ति का उपाय पूछने के लिए श्री नाभिराय पास आई । श्री नाभिराय ने प्रजा के मुखियाओं को श्री ऋषभदेव के पास जाने की आज्ञा दी। श्री ऋषभदेव ने प्रजा के कष्ट निवारणार्थ उसे बहुत कुछ आश्वासन देकर पहले तो इन्द्र द्वारा अनेक मंदिर, ग्राम और नगर आदि की रचना कराई । उनमें रहने सहने आदि का यथोचित प्रबंध किया । अनेक राज्य स्थापन कर राजाओं को नीति शास्त्र की शिक्षा दी । प्रजा को "राजनीति" के अनुकूल चलने के लाभादि बताये और साथ साथ ही आजीविका सम्बंधी असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प इन षट कर्मों की शिक्षा देकर सुगमता के लिये उसे तीन वर्णों में विभाजित कर दिया । शस्त्र धारण कर असिकर्म द्वारा आजीविका करने वाले क्षत्रिय कहलाये। स्याही से शुद्ध और सुन्दर ग्रंथादि लेखन क्रिया कर मसि कर्म द्वारा, या कृषि कर्म अर्थात् खेती द्वारा, या वाणिज्य व्यापार द्वारा, या पशु पालन द्वारा आजीविका करने वाले अर्य्य, ऊरुय, ऊरुज या वणिक और पश्चात् वैश्य नाम से प्रसिद्ध हुए ।

नृत्य गानादि विद्या या कला सिखाने द्वारा, अथवा शिल्प अर्थात् अनेक प्रकार की हस्त कलाओं अर्थात् दस्तकारी आदि द्वारा आजीविका करने वाले अथवा जो लोग क्षत्रिय या वणिकों की किसी न किसी प्रकार की सेवा सुश्रूषा कर अपनी आजीविका करते थे वे जघन्य, अवर, वृषल और पश्चात् शूद्र नाम से प्रसिद्ध हुए । जिस दिन नगर ग्रामादि बसने के पश्चात् यह वर्ण व्यवस्था स्थिर की गई उसी दिन से एक नवीन युग का प्रारम्भ माना जाता है । इस दिन आषाढ़ कृ० १ तिथि थी । यद्यपि भोग भूमि संबंधी सुषमा दुःषमा नामक तृतीय काल में अभी लगभग ८४ लाख पूर्व काल शेष था तथापि "हुँडावसर्पिणी" काल दोष से इतने समय पहले ही भोग भूमि का अंत होकर इसी तिथि (आ० कृ० १) से कर्म भूमि का प्रारम्भ पूर्ण रूप से हो गया।

श्री ऋषभदेव का राज्याभिषेक

[आदि पुराण पर्व १६।१९१–२४)

इस काल में पूर्वोक्त षट कर्मों की प्रवृत्ति से जब प्रजा की स्थिति सुधर गई सब प्रजा शान्ति से रहने लगी तब आदि ब्रह्मा भगवान् ऋषभदेव को सम्राट पद पर स्थापन करने के लिये इन्द्रादि देवों ने आकर शुभ मुहूर्तमें बड़े समारोह और महोत्सव के साथ उनका राज्याभिषेक किया जिस सयम भगवान को स्थापित किया उस समय के सर्व क्षत्रिय राजे उन्हें अपना स्वामी मानकर सम्मिलित हुये । उस समय उनके पिता "श्री नाभिराय" ने सर्व उपस्थित मण्डली के सन्मुख "समस्त मुकुट बद्ध राजाओं आदि के पालन करने वाले भगवान् ऋषभदेव हैं, मैं नहीं हूं", यह कह कर अपने हाथ से अपने मस्तक का मुकुट उतार कर भगवान के मस्तक पर रक्खा और उनके ललाट पर पट्टबन्ध स्थापन किया । तत्पश्चात् उसी अवसर पर इन्द्र ने बड़े ही आनन्द के साथ उसी सभा रूपी रंग-भूमि में सर्व सभाजनों को रिझाने वाला "आनन्द नाटक" किया । तदन्तर आदि ब्रह्मा श्री ऋषभदेव भगवान की आज्ञा लेकर सर्व इन्द्रादिक देव अपने-अपने स्थान को वापस चले गये ।

भरत चक्रवर्ती का जन्म

(आदि पुराण पर्व १५।१००–२२४)

कुछ काल भोगोपभोग में बीतने पर एक रात्रि को सोते समय रात्रि के अन्तिम पहर में "श्री ऋषभ भगवान्" की बड़ी स्त्री "यशस्वती" ने ४ शुभ स्वप्न देखा (१) मेरु पर्वत द्वारा सारी पृथ्वी का निगल जाना, (२) चन्द्र सूर्य सहित मेरु पर्वत, (३) श्वेत हंसों सहित सरोवर, (४) चंचल लहरों सहित समुद्र इन चारों स्वप्नों का अपने पूज्य द्वारा यह फल सुनकर कि षट्खंड पृथ्वी को अपने अधिकार में लाने वाला, तेज और कान्ति युक्त, मत्स्य आदि अनेक शुभ लक्षणों का धारक और इसी जन्म में संसार समुद्र से पार उतरनेवाला ऐसे महाप्रतापी पुत्र का जन्म तुम्हारे उदर से होगा, श्रीमती "यशस्वती" अपने हृदय में बड़ी हर्षित हुई । पश्चात् ९ मास व्यतीत होने पर श्री ऋषभ देव की जन्म तिथि के समान ही चैत्र कृ० ९, उत्तराषाढ़ नक्षत्र, मीन लग्न, ब्रह्मयोग और धन राशि के चन्द्रमा युक्त शुभ मुहूर्त महातेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम "भरत" रक्खा गया ।

पूर्वोक्त राजा अतिगृद्ध का जीव जिसने क्रम से नरक सिंह, द्वितीय स्वर्ग में दिवाकर प्रभदेव वज्रजंघ का मंत्री मतिवर, ग्रैवेयिक विमान में अहमिन्द्र, वज्रनाभि चक्री का लघु भ्राता सुवाहु और सर्वार्थ सिद्धि विमान में अहमिन्द्र, ये अन्य सात जन्म धारण किये थे वही अपने नवें जन्म में यशस्वती के गर्भ से "भरत" उत्पन्न हुआ ।

भरत के ९९ लघुभ्राताओं और १ बहिन "ब्राह्मी" का जन्म

(आदि पुराण पर्व १६।१–५)

भरत के जन्म से कुछ समय पश्चात् क्रम से (१) वृषभसेन, (२) अनन्त विजय, (३) महासेन (दीक्षित नाम अनन्त वीर्य,) (४) अच्युत (दीक्षित नाम अच्युत,) (५) वीर (दीक्षित नाम गुणसेन), (६) वरवीर (दीक्षित नाम जयसेन) ये छह पुत्र श्रीमती "यशस्वती" के गर्भ से उत्पन्न हुये ।

पूर्वोक्त राजा प्रतिवर्द्धन के मंत्री का जीव जिसने क्रम से उत्तर कुरु भोग भूमिज आर्य, द्वितीय स्वर्ग के कांचन विमान में कनक प्रभ नाम का देव, वज्रजंघ का पुरोहित आनन्द, ग्रैवेयिक में अहमिंद्र, वज्रनाभि का लघु भ्राता पीठ और सर्वार्थ सिद्धि विमान में अहमिंद्र ये अन्य छह जन्म धारण किये थे वही अपने आठवें जन्म में भरत का लघु सहोदर "वृषभसेन" हुआ । राजा प्रीति वर्द्धन के पुरोहित का जीव जिसने क्रम से उत्तरकुरु भोगभूमिज आर्य, द्वितीय स्वर्ग के रुपित विमान में प्रभंजनदेव, वज्रजंघ का राजश्रेष्ठी धनमित्र, ग्रैवेयिक में अहमिंद्र वज्रनाभि चक्री का लघु भ्राता महापीठ, और सर्वार्थ सिद्धि में अहमिंद्र ये छह जन्म धारण किये थे वह अपने आठवें जन्म में वृषभसेन का लघु सहोदर "अनन्त विजय" हुआ ।

वैश्य पुत्र उग्रसेन का जीव जिसने क्रम से सिंह, भोगभूमिज आय, द्वितीय स्वर्गके विमान में चित्रांगद देव, वरदत राजा, १६वें स्वर्गमें सामानिक देव, वज्रनाभि चक्री का लघुभ्राता विजय और सर्वार्थ सिद्धि विमान में अहमिंद्र, ये अन्य सात जन्म धारण किये थे वही वैश्य पुत्र का जीव अपने नवें जन्म में अनन्त विजय का लघु भ्राता "महासेन" (अनन्त वीर्य) हुआ।

राज पुत्र हरिवाहन का जीव क्रम से शूकर, भोगभूमिज आर्य, दूसरे स्वर्गमें मणि कुंडल देव, वरसेन राजा १६ वें स्वर्ग में सामानादिक देव, वज्रनाभि चक्री का लघु भ्राता वैजयन्त, और सर्वार्थ सिद्धि विमान में अहमिंद्र, ये सात अन्य जन्म पाकर अपने ९ वें जन्म में महासेन का छोटा भाई "अच्युत (श्रीषेण) हुआ।

वैश्यपुत्र नागदत्त का जीव क्रम से वानर, भोगभूमिज आर्य, दूसरे स्वर्ग में मनोहर देव, राजा चित्रांगद, १६ वें स्वर्ग में सामानिक देव, वज्रनाभि चक्री का लघु भ्राता जयन्त, और सर्वार्थ सिद्धि विमान में अहमिन्द्र ये सात अन्य भव धारण कर अपने नवें जन्म में श्रीषेण का लघु भ्राता "वीर" (गुणसेन) हुआ।

लोलुप हलवाई का जीव क्रम से नकुल (न्योला) भोगभूमिज, दूसरे स्वर्ग में मनोरथ देव, राजा शांत मदन, १६ वें स्वर्ग में सामानादिक देव, वज्रनाभि चक्री का छोटा भाई अपराजित, और सर्वार्थ सिद्धि विमान में अहमिंद्र, ये सात अन्य जन्म लेकर अपने नवें जन्म में वीर का छोटा भाई "वरवीर" (जयसेन) हुआ।

"भरत" के इन तद्भव मोक्षगामी छह लघु भ्राताओं के अतिरिक्त यथा समय ९३ अन्य सहोदर (भाई) और "ब्राह्मी" नामक एक लघु सहोदरा (वहिन) ये सब श्रीमती "यशस्वती" के उदर से और जन्मे। इस प्रकार सौ पुत्र और एक पुत्री सर्व १०१ संतति का जन्म श्रीमती "यशस्वती" के गर्भ से हुआ।

वाहुवली और उसकी लघु सहोदरा "सुन्दरी" का जन्म

(आदि पुराण पर्व १६।६–२६)

पूर्वोक्त राजा "प्रीति वर्द्धन" के सेनापति का जीव उत्तरकुरु भोगभूमिज आर्य, दूसरे स्वर्ग के प्रभा नामक विमान में प्रभाकर देव, वज्रजंघ का सेनापति अकम्पन, ग्रैवेयिक में अहमिंद्र, वज्रनाभि का लघु भ्राता महावाहु, और स्वार्थ सिद्धि विमान में अहमिंद्र, ये अन्य छह भव धारण करे आठवें भव में श्री ऋषभदेव भगवान् की दूसरी स्त्री "सुनंदा" के उदर से "वाहुवली" नाम का अतिशय-रूपवान वलवान और गुणवान पुत्र हुआ। कुछ समय पश्चात् इसी सुनंदा देवी के गर्भ से "सुंदरी" नाम की एक पुत्री का जन्म हुआ।

भगवान ऋषभदेव का वैराग्य और मुनि दीक्षा ग्रहण

(आदि पुराण १७)

भगवान ऋषभ देव" जब लगभग २० लाख पूर्व कुमार अवस्था में और लगभग ६३ लाख पूर्व राज्य शासन के सुख भोगने में, अर्थात् अपनी आयु के सर्व लगभग ८३ लाख पूर्व (४४४५२८०००००००००००००० वर्ष छह अंक १५ शून्य, सर्व २१ स्थान प्रमाण वर्ष) व्यतीत कर चुके और लगभग एक लाख पूर्व की उनकी आयु जब शेष रही तब एक दिन पूर्ण राज्य विभूति संयुक्त राज्य सभा में रत्न जड़ित सिंहासन पर बड़े सुख पूर्वक विराजे थे कि अचानक गन्धर्व जाति के देवों और अनेक सुन्दर रूपवान अप्सराओं को साथ लिये हुये पूजन की सामाग्री संयुक्त "सौधर्मेन्द्र" ने भगवान की सेवार्थ राज्य सभा में प्रवेश किया। अतिशय भक्ति वश होकर भगवान का पूजन आराधन करने के लिये अप्सराओं का नृत्य कराना प्रारंभ कर दिया। भगवान ऋषभ जिस प्रकार राज्य और भोगों से विरक्त होके यही सोचकर इंद्र ने उस समय नृत्य में नीलांजना नामक एक ऐसी अप्सरा (नृत्य करने वाली देवांगना) को खड़ा किया कि जिसकी आयु लगभग पूर्ण हो चुकी थी अर्थात् एकादि क्षण ही की शेष थी। वह अतिशय रूपवान सुंदरी अनेक प्रकार से हाव, भाव, विभ्रम तथा रस, ताल, पाद संचारादि युक्त सर्व सभाजन के मन को मोहित करने वाली नृत्य करते करते आयु के पूर्ण हो जाने से चंचल विजली के समान एक दम नष्ट (अदृश्य) हो गई। उसके अदृश्य होते ही नृत्य के रस का भङ्ग न हो इस भय से इन्द्र ने तुरन्त ही अपनी देव माया से उसकी जगह हूवहू वैसी ही दूसरी "नीलांजना" रचकर ज्यों की त्यों नृत्य करती हुई खड़ी करदी। सभाजनों में से किसी ने इस परिवर्तन को न पहचाना, किन्तु "भगवान ऋषभ" अपने असाधारण ज्ञानबल से इस परिवर्तन को पूर्णरूप से ताड़ गए। नीलांजना देवी के समान जगत की माया और सर्व राज्य वैभव आदि को क्षण स्थायी और विनश्वर विचारते हुए तुरन्त ही भोगो से विरक्त हो गये और संसारकी असारता का स्वरूप विचारते हुए वारम्बार द्वादशानुपेक्षाओं का चिंतन करने लगे। इन्द्र ने अपने "अवधिज्ञान" से जगतगुरु भगवान ऋषभ के अन्तःकरण में संचार करते हुये अतिशय संवेग और वैराग्य रूप विशुद्ध भावों को जान लिया।

उसी समय नियोगानुसार भगवान् को वैराग्य में अधिक दृढ़ करने के विचार से तथा तप कल्याण की पुजा के लिये "लौकान्तिक देव" भी "ब्रह्म लोक" से आगये और अत्यन्त विनम्रता युक्त भक्ति भाव से उनका स्तवन आदि कर उन्हें पूर्णरूप से दृढ़ता के साथ तपश्चरण ग्रहण करने के संमुख कर दिया और अपने स्थान को लौट गये। इतने ही में आसन कंपायमान होने पर अपने अपने अवधिज्ञान द्वारा भगवान् के तप ग्रहण करने का अवसर जानकर सब इंद्रादिक देव अनेक विक्रिया युक्त आने लगे और आकर अयोध्यापुरी के चारों ओर ठहर गये।

तदनंतर इंद्रादिक देवों ने भगवान के निष्क्रमण अर्थात् तपश्चरण धारण करने का महा कल्याणकोत्सव करने के लिये क्षीरसागर के पवित्र जल से उनका महाभिषेक कर उन्हें दिव्य वस्त्राभूषणादि से अलंकृत किया। पश्चात् उसी समय भगवान् ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को अभि-

षेक पूर्वक अपने साम्राज्य पद पर स्थापन कर वाहुवली को "युवराज" पद दिया। अन्य पुत्रों को भी अपनी राज्य संपत्ति का यथा योग्य बंटवारा कर दिया।

तदनंतर जगत् गुरू भगवान् ऋषभदेवने अपने पिता "नाभिराय" तथा माता "मरुदेवी" आदि कुटुम्बी जनों से पूछकर सुदर्शना नामक दिव्य पालकी में पदार्पण किया जिसे वड़ी भक्ति भाव से पहले तो राजा लोग पृथ्वी पर सात पेंड़ तक, फिर विद्याधर लोग आकाश में सात पेंड़ तक ले चले। पश्चात् इंद्रादिक देव वड़ी प्रसन्नता के साथ जय जय कार करते हुये आकाश मार्ग से ले जाकर और १२ योजन लम्बी ९ योजन (१ योजन ४ कोश या १६ सहस्र गज का अथवा ८ मील से कुछ अधिक होता है।) चौड़ी अयोध्यापुरी से कुछ ही दूर दक्षिण की ओर के निकट वर्ती "सिद्धार्थक" नामक विशाल वन में पहुँचकर (जहां आजकल का इलाहावाद या प्रयाग नगर वसा है उसके निकट उसकी उत्तर दिशा की ओर) भगवान की पालकी देवों द्वारा पहले ही से स्थापित एक चंद्रकांत मणि की स्वच्छ और उन्नत गोलाकार शिला पर उतरी। भगवान् पालकी से उतरकर उस शिला पर विराजे। जिस तिथि और नक्षत्र में भगवान ऋषभ का जन्म हुआ था वही तिथि और नक्षत्र अर्थात् चैत्र कृ० ९ तिथि और उत्तराषाढ़ नक्षत्र तथा शुभ लग्न और शुभ मुहूर्त इस समय विद्यमान थे। सायंकाल का समय था जब कि भगवान् ने वट वृक्ष के तले पद्मासन से पूर्व मुख वैठकर और सिद्धों को नमस्कार कर के वड़े हर्ष और परम उत्साह के साथ पहले पंचमुष्टि केश लोंच किये, मानो काले केशों के आकार में फैली हुई मोह कर्म की वेलों के समूह ही को अपने सिर से उखाड़ कर फेंक दिया। पश्चात् वहिरंग और अन्तरंग दोनों प्रकार के सर्व परिग्रह त्याग कर और दिगम्बर रूप धारण कर मुनि दिक्षा ग्रहण कर ली। भगवान् के सिर से उतरे हुए वे पंचमुष्टि केश "सौधर्मेन्द्र" ने वड़े आदर और भक्ति भावसे एक रत्न पिटारेमें रख कर "क्षीरसमुद्र" में प्रवाहित कर दिये। जिस समय भगवान् ने मुनि दीक्षा ग्रहण की उसी समय उनके साथ उनके सेवक चार सहस्र अन्य राजाओं ने भी विना समझे केवल उनको अटल भक्तिवश उनके अनुकरण रूप मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। इन्द्रादिक देव भगवान् की पूजा स्तुति आदि कर अपने अपने स्थान को चले गये। भगवान् के पुत्र भरत आदि भी पूजा स्तुति कर अयोध्या को लौट आये।

भगवान ऋषभ का तपश्चरण और एक वर्षोपवास के पश्चात् प्रथम पारणा

(आदि पुराण पर्व १८,१९,२०।३--२१७)

भगवान् ने मुनि दीक्षा धारण करते समय षट् मासोपवास व्रत की अर्थात् छह महीने के लिए अन्न जलादि आहार ग्रहण करने के त्याग की प्रतिज्ञा की। और चित्त के समस्त संकल्प विकल्प रोक कर कायोत्सर्ग धारण कर के चन्द्र कांत शिला पर खड़े हुये नासाग्र-दृष्टि युक्त मन एकाग्र करने के प्रयत्न में लग गये। उसी समय विशुद्ध परिणामों के वल से भगवान् को 'मनः पर्य्ययज्ञान' की भी प्राप्ति हो गई।

जिन "कच्छ" "महाकच्छ" आदि ४ सहस्र राजाओं ने मुनि व्रत पालने के स्वरूप और

नियमादि को समझे विना ही भगवान् के साथ साथ मुनि दीक्षा ग्रहण की थी, वे भूख प्यासादि के कष्ट को अधिक समय तक सहन न कर सके। दो तीन मास भी अपने धैर्य को स्थिर न रख सके। वन के कन्द मूल फल आदि खाकर अपनी क्षुधा निवृत्ति करने लगे। स्त्री व राज्य वैभव आदि अनेक भोगोपभोग जन्य सुखों का वारम्वार चिंतन करते हुये अधिक कष्ट न सहन कर सकने से अपने अपने नगर को लौट जाना चाहते थे; परन्तु अज्ञानवश यह समझ कर न लौटे कि भगवान् अपना संकलिपत कोई महान् कार्य सिद्धि कर के कुछ न कुछ दिन पीछे अवश्य घर को लौटेंगे ही, तब हमारी इस धृष्टता और भक्ति विमुखता के लिए हम से अवश्य प्रसन्न हो जायंगे। अथवा भगवान् को अकेले वन में छोड़ जाने से महाराज भरत अवश्य कोपित होंगे। अतः वन ही में रहकर वन फल खाते, सरोवरों का जल पीकर अन्त में दिगम्बर वेश को भी त्याग कर कोपीनादि ग्रहण कर भगवान के लौट चलने की प्रतीक्षा करने लगे। अपनी अपनी इच्छानुसार किसी ने अपने शरीर पर भस्म लगा ली, कोई इकदंडी और कोई त्रिदंडी वन गये, किसी ने वृक्षों की छाल आदि को अपने वस्त्र वना कर शरीर को ढका, कोई पत्तों व टहनियों की झोपड़ियां वनाकर उनमें निवास करने लगे। यह सव कुछ अयोग्य कार्य करने पर भी जल पुष्पादि से भगवान के चरणों का पूजन करते हुये अपना भक्तिभाव प्रकट करते रहे।

जव कि भगवान कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये ध्यानारूढ़ थे उसी अवसर में भगवान के श्वशुर, "कच्छ" "महाकच्छ" के सुकुमार तरुण पुत्र (भगवान के साले) "नमि" "विनमि" भोगाभिलाष वश भगवान के पास आये और उनके चरण पकड़कर वड़ी विनय के साथ वारम्वार कहने लगे—"भगवान्! आपने अपने भरतादि पुत्रों को तो अपना साम्राज्य वाँटा, परन्तु हमको भूल ही गये। उस समय तो हमें कुछ न दिया, अव तो प्रसन्न होकर हमें कुछ दीजिये।" भगवान ध्यानावस्थ थे, कुछ न वोले। परन्तु भगवान के ध्यान में विघ्न पड़ता देखकर और उनके चरणों में उनकी अति प्रशंसनीय गाढ़ भक्ति पाकर नागेन्द्र ने उन्हें विजयार्द्ध पर्वत पर अपने विमान पर ले जाकर और उसकी दक्षिण श्रेणी की ५० और उत्तर श्रेणी की ६० विशाल नगरियों तथा सारे पर्वत की मनोहारिणी शोभा भले प्रकार दिखाकर उन्हें उन सर्व नगरियों का अधिपति और वहाँ के सर्व विद्याधर राजाओं का शिरोमणि वना दिया। दक्षिण श्रेणी में पूर्व दिशा की ओर से २३ वें नगर "रथनूपुर चक्रवाल" में ले जाकर राज्याभिषेक पूर्वक "नमि" को दक्षिण श्रेणी का और "विनमि" को उत्तर श्रेणी का अधिपति वनाया। चलते समय वह नागेन्द्र उन दोनों को विधिपूर्वक "गान्धार पदा" और "पन्नग पदा" ये दो विद्यायें भी दे गया। इधर जव अपनी प्रतिज्ञानुसार भगवान ऋषभ को छह मास निराहार तपश्चरण में वीत गये तो वे आहार ग्रहण करने का मार्ग प्रकट करने और सुख पूर्वक शरीर की स्थित द्वारा अपना इष्ट कार्य अर्थात् मोक्षप्राप्ति का साधन सिद्ध करने के विचार से शुद्ध आहार ग्रहण करने के लिये ईर्यापथ-शुद्धि पूर्वक वस्ती की ओर चले। मुनियों को आहार देने की विधि न जानने और भगवान के मन का अभिप्राय न पहचानने से ग्राम नगरादि निवासी लोग वड़ी प्रसन्नता और भक्ति पूर्वक उनके

सम्मुख आ आकर उनसे पूछते थे "भगवान" किस कार्य के लिये आप यहां पधारे हैं? हमारे योग्य हमें कोई सेवा कार्य बताइये।" यह सुनकर भी जब भगवान मौन धारण किये आगे बढ़ जाते तो कुछ लोग कुछ दूर तक उनके पीछे पीछे जाते। कोई बहुमूल्य रत्न आदि लाकर भेंट स्वरूप उनके सम्मुख रखते कोई उत्तम से उत्तम अश्व, गज, वस्त्र आभूषण और कन्या आदि ला लाकर भगवान से उन्हें ग्रहण करने की प्रार्थना करते और कोई कोई स्नान करने की सामग्री के साथ साथ नाना प्रकार की भोजन-सामग्री लाकर उन्हें बड़े विनय के साथ चरणों में मस्तक नवा नवा कर स्नान व भोजन कराने का प्रयत्न करते थे। भगवान ऋषभ इन सब क्रियाओं को अन्तराय मानकर मौनावलम्बी हुये आगे को बढ़ जाते अथवा बस्ती में से वन को लौट आते और ध्यानारूढ़ हो जाते थे।

इस प्रकार यथाविधि निरंतराय आहार ग्रहण करनेके लिये विहार करते भगवानको छह मास से अधिक और भी व्यतीत हो गये, अर्थात् निराहार तप करते एक वर्ष से अधिक समय बीत गया। तब भगवान ऋषभ विहार करते हुए एक दिन कुरुजांगल देश की राजधानी हस्तिनापुरी में पहुँचे। हस्तिनापुर नरेश "सोमप्रभ" के लघु भ्राता "श्रेयांस" को भगवान के दर्शन करते ही जाति स्मरण (पूर्व भव की स्मृति) हो जाने से उसे मुनियों को नवधा भक्ति पूर्वक शुद्ध आहार देने की सब विधि स्मरण हो आई। अतः इसने नवधा भक्ति पूर्वक भगवान को निरंतराय इक्षुरस का शुद्ध आहार कराया। तपश्चरण ग्रहण करने के शुभ दिन से १३ मास और ९ दिन पीछे शुभ मिती वैशाख शु० ३ के दिन भगवान ऋषभ का पहला पारणा हुआ। जिसके अतिशय पुण्य से उसी समय वहां देवोकृत पंचाश्चर्य हुये और जिस रसोईघर में भगवान ने इक्षुरस ग्रहण किया था वहां उस दिन के लिये अक्षय अर्थात् अटूट भोजन हो गया। इसी लिये यह शुभ तिथि वैशाख शु० ३ उसी दिन से "अक्षय तृतीय" या "अखय तीज" के नाम से प्रसिद्ध हुई। आहार दिवस की पूर्व रात्रि के अन्तिम प्रहर में राजकुमार "श्रेयांस" ने भगवान के शुभागमन सूचक सात शुभ स्वप्न भी देखे थे। यह "श्रेयांस" कुमार भगवान ऋषभदेव के पूर्वभव धारी राजा वज्रजंघ की अतिशय प्रिय रानी "श्रीमती" का जीव था। (देखो पृष्ठ ४४।२)

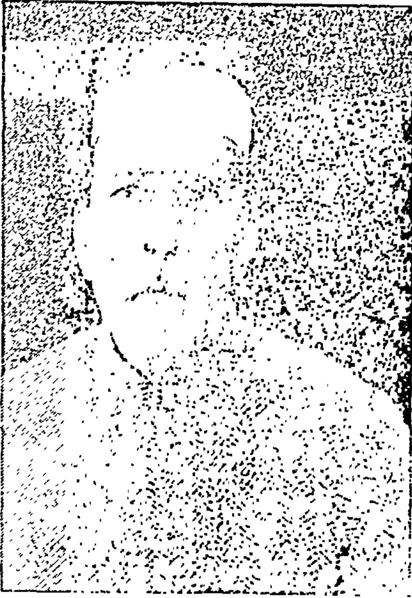
निरन्तराय आहार हो जाने के पश्चात् भगवान वन में जाकर तपश्चरण करने लगे। पंच महाव्रत, पंचसमिति, पंचेन्द्रिय निरोध, षडावश्यक और केशलुंच आदि सप्त प्रकीर्णक, ये २८ मूलगुण पूर्ण रूप से पालन करते थे। १८ सहस्र भेदरूप मैथुन कर्म के दोषों से बचकर अष्टादश सहस्र शीलांग और चौरासी लक्ष उत्तर गुणों के पालनार्थ प्रतिक्षण पूर्ण प्रयत्न-शील थे। अष्टांग सम्यक्दर्शन, अष्टांग सम्यक्ज्ञान और त्रयोदश सम्यक् चारित्र के धारक भगवान ऋषभ पंचाचार द्वादश तप, द्वाविंशति परीषहजय, दशलक्षण धर्म, द्वादशानुप्रेक्षा चिंतन, इत्यादि को यथाविधि त्रिशल्य रहित पालन करने में प्रतिक्षण तत्पर रहते थे। आवश्यकता के समय ३२ प्रकार के अन्तराय रहित और ४६ दोष वर्जित शुद्ध आहार भी ग्रहण करते थे। इन सर्व व्रत और नियमादि को यथा विधि पालन करते हुये आर्त्त और रौद्र ध्यानों के त्यागी वे भगवान ऋषभ यथा अवसर

पिन्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत, इन चार प्रकार के धमध्यान द्वारा अनेक शुभ कर्मों की निर्जरा कर रहे थे।

इस ग्रन्थ में "भगवान ऋषभ देव" का जीवन चरित्र सूक्ष्म रूप में दिया गया है और इनके पुत्र "भरत" "बाहुबली" इन दोनों के चरित्र का वर्णन विस्तृत रूप से "भरतेश वैभव" इत्यादि ग्रंथों में दिया गया है।



भरतेश वैभव के प्रथम भाग के छपाने वाले दानदाताओं के चित्र



ला० नेमदास जी जैन सुपुत्र ला० धनकुमार दास जी जैन मु० टिकैतनगर ज़िला बाराबङ्की



धर्मपत्नी ला० पुत्तीलाल जी जैन मु० टिकैतनगर ज़ि० बाराबङ्की

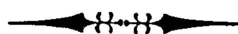


ला० बाबूलाल जी जैन सुपुत्र ला० जैचन्द जी जैन मु० टिकैतनगर ज़िला बाराबङ्की



ला० पन्नालाल जी जैन सुपुत्र लाला शीतलप्रसाद जी मु० टिकैतनगर ज़िला बाराबंकी

जि० बाराबङ्की स्थान टिकैतनगर निवासियों के कुछ धनी-मानी दानदाताओं का संक्षिप्त परिचय



(ला० नेमदास जी जैन)

लाला नेमदास जी के पिता का नाम ला० धनकुमारदास था आप टिकैतनगर जिला बाराबङ्की (अवध) के निवासी हैं अपने गांवमें यह सबसे अधिक धनीमानी व्यक्ति गिने जाते हैं सम्मेद शिखर की तीर्थ यात्रा आपने कई बार किया और भी तीर्थ स्थानों की यात्रायें आपने कीं अपने गांव में कई बार रथयात्रा महोत्सव करवाया अयोध्या धर्मशाला में यात्रियों के ठहरने के लिए कोठरी बनवाई स्थानीय जैन मन्दिर में एक उच्च अवगाहनाकी पद्मासन ऋषभदेव की धातु निर्मित मूर्ति पधराई वैसी मूर्ति किसी बड़े तीर्थ स्थान पर ही देखने को मिल सकती है समयानुसार आपने बराबर दान देकर अपने द्रव्य को सार्थक किया अपने गांव में सबसे पहिले और सबसे अधिक आपही की रकम लिखी जाती थी ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी की प्रेरणा से स्थानीय जैन पाठशाला के स्थायीफंड में १५००) आपने प्रदान किया इनके सुयोग्य पुत्र ला० नेमदास जी भी धर्म में रुचिवान व्यक्ति हैं तीनों समय जिन दर्शन करने की आपकी प्रतिज्ञा है कई साल तक आप आनरेरी मजिस्ट्रेट भी रहे आपके तीन पुत्र अजितप्रसाद, साहेबलाल, कस्तूरचन्द हैं जो सभी व्यवसाई हैं और परिश्रमी हैं इन्होंने भरतेश वैभव ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ १०००) रुपया प्रदान किया है धार्मिक चन्दा देने में पूरा सहयोग देते हैं।

(ला० जैचन्द जी जैन)

ला० जैचन्द जी के पिता का नाम ला० विमलदास था बाल्यावस्था में ही माता का देहान्त हो जाने से इनका पालन पोषण ला० नेमदास (ला० विमलदास के परिवार के ही थे) के यहां हुआ ला० नेमदास जी के कोई पुत्र नहीं था। अतएव यह ला० नेमदास के दत्तक पुत्र हुये और ये ही उनके उत्तराधिकारी हुए ला० नेमदास यद्यपि विशेष पढ़े लिखे नहीं थे, परन्तु आप धर्म के अच्छे मर्मज्ञ थे शास्त्र सभा में आप विशेष सहयोग देते थे और छंदोबद्ध ग्रन्थों का अर्थ करके श्रोतागणों को आप ही समझाते थे इस तरह प्रतिभाशाली व्यक्तियों में आपकी गिनती थी यद्यपि आप अधिक धनवान नहीं थे तो भी समयानुसार आप सहर्ष दान करते रहते थे। स्थानीय जैन

मंदिर में मकराने के पत्थर की वेदी लगवाने में आपने भी दान दिया था ला० जैचन्द जी ने जबसे दूकान का कारोबार सम्भाला दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि होने लगी इन परोपकारी मिलनसार स्वभाव को देखकर सभी वर्ग के आदमी इनको अपना हितैषी मानने लगे गरीब दुखियों की सहायता अन्न वस्त्रादि से हर समय आपका करना ध्येय है एक औषधालय भी इन्हों ने खोला था किन्तु प्रद्युम्नकृष्ण शास्त्री का परलोकवास हो जाने के कारण बंद हो गया अपने अध्यवसाय सच्चरित्रता परोपकारितादि गुणों के कारण व्यापार में खूब उन्नति की इस समय आप धन शाली प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति समझे जाते हैं दान देने में सदैव सबसे आगे रहते हैं और सर्वाधिक देते हैं इनके एक मात्र सुयोग्य पुत्र चि० राजेन्द्रकुमार उर्फ बाबूलाल जी अपने पिता के समान ही धर्मात्मा प्रतिभा सम्पन्न गुणज्ञ और व्यवसायी कुशल पुरुष हैं प्रति वर्ष तीर्थयात्रा आपलोग अवश्य करते हैं भरतेश वैभव प्रकाशनार्थ के लिए आपने १००१) दान दिया है अयोध्या तीर्थ के पुनरुद्धार ला० जैचन्द जी के परिश्रम और अध्यवसाय का फल है एक समय था जबकि तीर्थ पर रहने के लिये गंदी कोठरियां थीं ठहरने की इच्छा नहीं होती थी आज एक विशाल स्वच्छ धर्मशाला बनकर तैयार है और ठहरने में आनंद आता है प्रतिवर्ष चैत्रकृष्ण नवमी को रथ यात्रा का प्रबंध विशेषकर आपकेही द्वारा होताहै स्थानीय जैन पाठशाला के एक स्थायीफंड में १०००) आपने प्रदान किया था रत्नपुरी की धर्मशाला बनने में आपने २५१) प्रदान किया और बराबर सहयोग देते रहते हैं।

(ला० पुत्तीलाल जी जैन)

पुत्तीलाल जी के पिता का नाम प्रभूदयाल था, धर्मात्मा और परोपकारी पुरुषों में इनकी गिनती थी बहुत ही सरल स्वभावी व धन सम्पन्नशाली भी थे, समयानुसार दान भी करते रहते थे अयोध्या जी के धर्मशाला में कोठरी यात्रियोंके लिये बनवाई थी, स्थानीय जैन पाठशालामें आपने १०००) स्थाईफंड में दिया जिसका व्याज पाठशाला में खर्च होता है और पाठशाला की प्रबंधकारिणी के मेम्बर व ट्रस्टी भी थे इनके देहावसान के पश्चात् इनके पुत्र पुत्तीलाल जी उत्तराधिकारी हुए इन्हों ने भरतेश वैभव के प्रकाशन में ५००) दान दिया है (आपके तीन पुत्र ज्ञानचन्द बच्चूलाल नपेन्द्रकुमार है) समयानुसार दान भी आप करते रहते हैं।

(ला० पुत्तीलाल कन्हईलाल जी जैन)

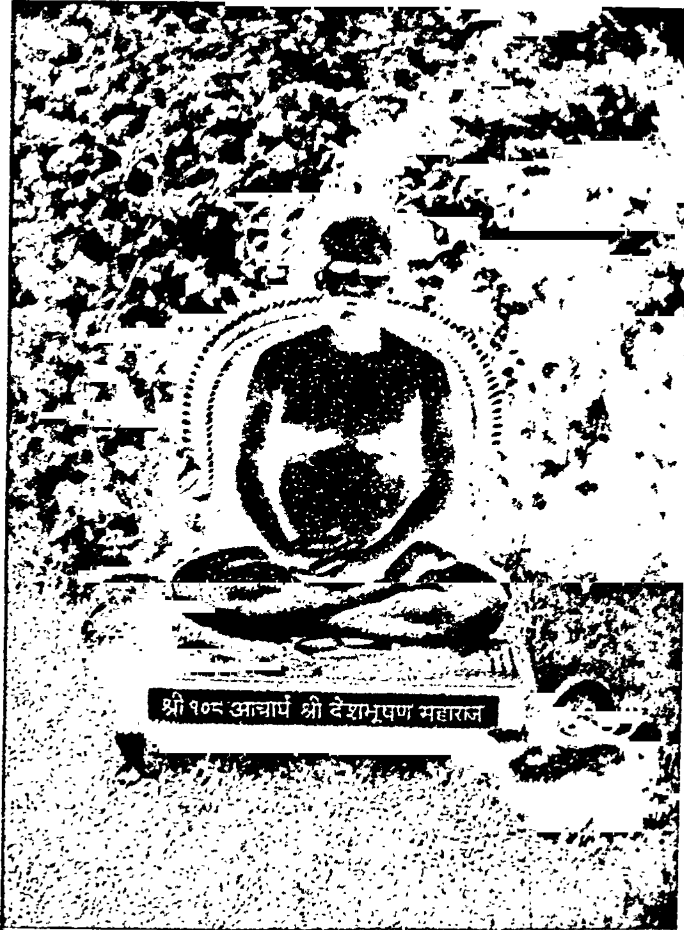
पुत्तीलाल कन्हईलाल के पिता का नाम धनपतिराय था इनकी गिनती प्रतिष्ठित और धनाढ्य एवं प्रतिभाशाली मनुष्यों में थी और सदैव धर्म साधन में तत्पर रहते थे और समयनुसार दान भी करते रहते थे, पुत्तीलाल कन्हईलाल की बाल्यावस्था में ही पिता का देहान्त होजाने के कारण इनके ताऊ लाला धरमदास ने इनका यथोचित् कारोबार सम्भाला और जब वयस्क हुये तो स्वयं दोनों भाई अपना कारोबार करने लगे और प्रामाणिक व्योहार के कारण अच्छी ख्याति प्राप्त की स्थानीय जैन पाठशाला के स्थाईफंड में आपने भी दान दिया था तीर्थयात्रा भी किया भरतेश वैभव के प्रकाशनार्थ में ५०१) आप लोगों ने प्रदान किया है।

(ला० पन्नालाल जी जैन)

पन्नालाल के पिता का नाम शीतलप्रसाद था यह साधारण श्रेणी के मनुष्य थे और वैष्णव धर्मावलंबी थे किंतु जैन उत्सवों में बराबर शरीक होते थे पन्नालाल की माता जैन धर्मावलंबनी थी इन्हीं का प्रभाव अधिकतर पड़ने से पन्नालाल की रुचि जैन धर्म के ऊपर बढ़ती गई और पं० लोकमणिदास फिरोजाबाद वालों के संसर्ग से जैन धर्म पर गाढ़ श्रद्धा हो गई संस्कृत का विद्याध्ययन भी इन से प्राप्त किया जैन धर्म की प्रभावना का सदैव ध्यान रखते हैं। बुद्धि की तीक्ष्णता के कारण बुद्धिशाली होने में देर नहीं लगी अंग्रेजी, फारसी, बंगला का भी ज्ञान प्राप्त किया और पिता के देहावासन के पश्चात् व्यापार में कुशलता प्राप्त करके प्रामाणिक व्यवहार के कारण व्यापार की अच्छी उन्नति की तथा यश भी उपार्जन किया स्थानीय जैन पाठशाला में ३०१) स्थाई फंड में दिये और उसके मंत्री बनाये गये आज भी उसी पद पर प्रतिष्ठित हैं और एक प्रभावशाली धर्मज्ञ प्रतिष्ठित मनुष्य गिने जाते हैं जिस समय कांग्रेस की मिनिस्ट्री हुई थी यह सर्किल कांग्रेस कमेटी टिकैतनगर के प्रेसीडेंट निर्वाचित हुये और उसी समय तहसील कांग्रेस का विशेष अधिवेशन आपने करवाया जिसका जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा अयोध्या तीर्थ क्षेत्र कमेटी के कोषाध्यक्ष हैं और प्रत्येक अवसर पर अयोध्या तीर्थ का कार्य सम्भालते रहते हैं भरतेश वैभव के प्रकाशन में ३०१) आपने प्रदान किया है रत्नपुरी के धर्मशाला में ५००) आपने दिया है और बराबर सहयोग देते रहते हैं।



श्री १०८ आचार्य देश भूषण मुनि महाराज जी



यह चित्र धर्मपत्नी लाला कपूरचन्द जी जैन सुपुत्र लाला सरजू प्रसाद जी जैन के द्वारा छपा।

जनता प्रेस, बाराबंकी

॥ धन्यवाद ॥

लखनऊ निवासी ला० मुन्नेलाल कागजी के सुपुत्र ला० जुगुलकिशोर जी अहियागंज, अनन्तदास इन्द्रचन्द जैन चौक, जम्बू प्रसाद सुपुत्र धर्मचन्द जैन अमीनाबाद, लाभचन्द जैन चौक इत्यादि और बाराबंकी निवासी ला० सरजू प्रसाद जी के सुपुत्र कपूर चन्द जैन व ला० झम्मन लाल जी के सुपुत्र ला० महावीर प्रसाद व पदम कुमार जी जैन व ला० मथुरादास जी के सुपुत्र ला० हुकुमचन्द जी जैन व ला० गुलाब राय जी के सुपुत्र ला० धर्मचन्द जी जैन इत्यादि व बनारस निवासी ला० किशोरीलाल जी इत्यादि ने महाराजजी के विहार में अपने कुटुम्ब सहित रहकर धर्मलाभ ले करके वापस लौटकर लखनऊ में चतुरमास कराया और अपने तन, मन, धन, कुटुम्ब सहित सेवा की वह अवर्णनीय है इसलिये मेरी यह तुच्छ भावना है कि ऐसी ही सब श्रावकों को मुनि सेवा करना चाहिये और यही इहलोक और परलोक में लाभदायक है और जन्म सार्थक है। इस प्रथम भाग का टिकैटनगर निवासी श्री नेमदासजी' श्री बाबूलाल जी, श्री पुत्तीलाल जी (फूलसाह) श्री कन्हैयालाल जी, श्री पुत्तीलाल जी, श्री पन्नालाल जी जैन इत्यादि ने छपाने का भार उठाया है और द्वितीय भाग के अलग अलग खंड लखनऊ निवासी श्री लादूलाल लाल जी के सुपुत्र श्री सुमेरचन्द जी जैन पाटनी श्री रामचन्द जी कागजी के सुपुत्र श्री कपूरचन्द जी कागजी तथा श्री मूलचन्द जी जैन करवीवाले ने उठाया है ऐसे धर्मात्मा दानियों को हमारा धन्यवाद है।

केशरचन्द्र जैन
बाराबङ्की।

* श्री जिनायनमः *





श्री आचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी कृत "भरतेश वैभव" का

मँगलाचरण

मंगलमय सिरि मंगलगान । पंच परम गुरू है महान् ॥
जिनवाणी मन में लाऊँ ध्यान । मो हरे कर्म दुष्ट बलवान ॥ १ ॥
सिद्धन के गुण गाँऊ गान । भक्ति सहित उर धाँरू ध्यान ॥
आचारज पाठक साधु जान । इन्हें करूँ नमन शिवशुख मान ॥ २ ॥
सूरि महागुण शान्ति बखान । पाय सिन्धु मुनि श्रेष्ट जान ॥
जय कीरत की है कीरत महान् । हरो गुरू मम कर्म थान ॥ ३ ॥
इन चरणन में शीश नमाव । श्री देशभूषण मनधर भाव ॥
मम हरे मन की तिमिर कुभाव । देवो बुद्धि मम होय सुभाव ॥ ४ ॥
आदि प्रभू का पुत्र सुजान । जिसे कहते हैं भरत महान् ॥
उनकी कथा कर्नाटक जान । हिन्दी में अब करूँ बखान ॥ ५ ॥
रचना करने का मुझको न ज्ञान । भविजन सुनो लगाकर ध्यान ॥
छंद अलंकार का नहिं मुझे भान । इस रचना की लय लगी जान ॥ ६ ॥
हिन्दी का मुझमें है अभाव । मैं तो जानूँ कर्नाटक भाव ॥
नहीं जानूँ शुद्धाशुद्ध भाव । रचना करने का लिए चाव ॥ ७ ॥
भरत भूप का यह यशोगान । यह है तदभव मोक्ष जान ॥
कटे कर्म भव भव के महान् । आदिपुत्र सम मिले आत्मज्ञान ॥ ८ ॥
मिल जाय मुक्ति पद मन में ठान । करूँ आरम्भ कथा सुन लग ध्यान ॥
यह है भरतेश वैभव महान् । भविजन को तारण तरणहि जान ॥ ९ ॥
न शोधें अवगुण ज्ञानी गुणवान । इसको सार ग्रहण करें महान ॥
कहते मुनि देशभूषण बखान । सुनो भविजन दे लगा कान ॥ १० ॥

॥ श्रीवीतरागायनमः ॥



रत्नाकर कवि विरचित

भरतेश वैभव

(भोग विजय, प्रथम भाग)

कन्नड़ काव्य

का

आचार्य श्री १०८ देशभूषण मुनि महाराज कृत

सरल हिन्दी अनुवाद,

तथा

श्यामसिंह जैन, एम. ए. एल-एल. बी.

द्वारा

अंगरेज़ी अनुवाद

पद्य—परम परंज्योति कोटि चंद्रादित्य । किरण सुज्ञान प्रकाश ॥
सुरर मकुट मणि रंजित चरणाब्ज । शरणागु प्रथम जिनेश ॥ १ ॥

अर्थ–करोड़ों चन्द्र और सूर्यों से भी अधिक तेज मय केवल ज्ञान रूपी उत्कृष्ट ज्योति को धारण करने वाले देवताओं के मौलि मुकुटों से प्रति बिंबित श्री ऋषभदेव के चरण कमल हमारी रक्षा करें।

भावार्थ–जिन्होंने अपनी ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों को नष्ट करके चन्द्र तथा सूर्य से भी अधिक केवल ज्ञान प्रकाश को प्राप्त किया है तथा ऐसे प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ भगवान के पवित्र चरण कमल जो देवताओं के मस्तक के उत्कृष्ट रत्न जटित श्रेष्ठ किरीटों से प्रतिबिंबित होरहा है हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

I bow my head to the feet of Lord Rishab Dev, the dazzling

power of whose sacred light is stronger than that of thousands of Suns and Moons and the reflection of the crown of Davendra can be seen in the glow of light emanating from his feet (that is the Devendra has bowed his head at the feet of Lord Rishab Deo) . (1)

पद्य—सिद्धर सतत विशुद्धर बोधस । मृद्धर नेनेदु नानीग ॥
सिद्धरसदोळु लोहवनद्दिदंतात्म । सिद्धिय पडेवे निन्नेनु ॥ २ ॥

अर्थ-अष्ट कर्मों से रहित होने से तथा शुद्ध एवं केवल ज्ञान सम्पत्ति के अधिपति सिद्ध परमेष्ठी को मैंने नमस्कार किया है इसलिए सिद्ध रस में व पारस रस में डूबे हुए लोहे के समान अब मैं आत्म सिद्धि को प्राप्त करूंगा । अतः अब मुझको किस बात की चिन्ता है । इस बात को कवि वर्णन करता है ॥ २ ॥

भावार्थ-कर्म आठ प्रकार के हैं, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय वेदनीय, नाम, गोत्र, अन्तराय, आयु इन आठों से रहित होने के कारण जो सिद्ध परमात्मा विविक्त है, चरम शरीर से किंचित ऊन होने से परिणामों से घट बढ़ नहीं सकते इसलिए अव्यय अवस्थित है । विद्वान लोग उनके अनुपम बोध की स्तुति व प्रशंसा करते हैं एवं समस्त पदार्थों के जानने वाले हैं, इसलिए बुद्ध हैं, अविनाशी होने से ध्रुव और पापों से रहित होने के कारण विकल्मष हैं । ऐसे सिद्ध परमात्मा को उनके स्वरूप को प्राप्त करने के लिए मैं नमस्कार करता हूँ । वह (परमात्मा) मेरे अन्दर भी अनादि काल से कर्म के भीतर लिप्त होकर द्रव्यार्थिक नय से सिद्ध परमात्मा मौजूद है । वह आत्म रूप में व्यक्त होकर सिद्ध पद को प्राप्त कर सिद्ध शिला में जाकर विराजमान होते हैं । इसलिए उन सिद्ध भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

May such Lord Rishab Deo bestow his protection and I may derive inspiration from him. After making obeisance to Siddh Bhagwan I pray that He may repose in my heart. (2)

पद्य—व्यवहार निश्चयवरिदु तम्मात्मत । त्ववनेम्मि निजव साधिसुवा ॥
नवकोटि मुनिगळु भूवरिल्लेनलु । टवरडिगळिगेरगुवेनु ॥ ३ ॥

अर्थ-व्यवहार और निश्चय को जानकर फिर अपनी आत्मा को पहिचान कर आत्म साधन करने वाले ऐसे तीन कम नव करोड़ मुनियों के चरणों में मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ-अढ़ाई द्वीप में एक समय में अधिक से अधिक इतने मुनि हो सकते हैं कि छठे गुण स्थान में ५९३९८२०६, सातवें गुन स्थान में उससे आधे अर्थात् २९६९९१०३, आगे उपशम श्रेणी के आठवें नवें दशवें और ग्यारहवें इन चार स्थानों में सब मिलकर ११९६ अर्थात् प्रत्येक में २९९ और

क्षपक श्रेणी के आठवें नवें दशवें बारहवें चौदहवें गुण स्थानों में मिलकर २९९० अर्थात् प्रत्येक में ५९८ और तेरहवें गुन स्थान में ८९८५०२ सबका योग ८९९९९९७, होता है यानी इससे अधिक मुनि एक काल में नहीं हो सकते। इसलिए उन सभी मुनि वृन्द को हम नमस्कार करते हैं ॥ ३ ॥

I bow to nine crores less three saints who have acquired faith in their soul and maintain soul's glory after gaining mastery over Vyavhar (un-real) and Nischaya (real) aspects. (3)

पद्य—परब्रह्म त्रिभुवनसार चिदंबर। पुरुष निरंजन सिद्धा ॥
दुरितंजय हंस नाथ नमो नमो। गुरुवे प्रत्यक्ष वागेनगे ॥ ४ ॥

अर्थ-हे आत्मन्! तुम परब्रह्म हो! तीनों लोकों में तुम्हीं श्रेष्ठ हो! ज्ञान ही तुम्हारा वस्त्र है सर्व कर्म कलंक रहित हो! और पापों को जीतने वाले हो! इसलिए तुमको नमस्कार है। विशेष क्या! ॥ ४ ॥

Oh, Par Brahma, Oh! Tribhawan Sar, Oh! Chidamber, Oh! Purush, Oh! Niranjan, Oh! Sidh, Oh. Destroyer of Karms, Destroyer of Sins, Oh! Hansnath, I bow to you again and again. (4)

पद्य—विन्नह गुरुवे ध्यानके बेसरादाग। निन्नादियमाडिकोंडु ॥
कन्नडदोळगोदुं कथेय पेळुवेन दु। निन्नाज्ञे कंडानन्नोडेया ॥ ५ ॥

अर्थ-मेरे साक्षात् गुरु तुम्हीं हो! मुझे दर्शन दो आपसे एक प्रार्थना है कि जिससमय चित्त की एकाग्रता न रहेगी, उसी समय मन स्थिति के लिये आपका स्मरण करके आपकी आज्ञा से कर्नाट की भाषा में कथा कहूँगा ॥ ५ ॥

My Guru, give me light so that I may be able to concentrate on my work and sing your qualities in Canarese. (5)

पद्य—कब्बिगरोदु गब्बव हाडुगब्बव। कब्बदोळोरे बरेवेरडु ॥
कब्बिवनंतिरबेकू बिदिरंते रचिसले। कब्ब हेळ्ळेले सरस्वतिये ॥ ६ ॥

अर्थ-काव्य ईख के समान सरस और बांस के समान नीरस इस तरह दो प्रकार के होते हैं। इसलिए हे सरस्वति मेरा यह काव्य सरस या नीरस जिस प्रकार का आप बनवाना चाहती हो वैसी बुद्धि मुझे देने की कृपा करो तथा यह काव्य सरस या नीरस बनाना चाहती हो तो मुझे वैसी बुद्धि दो ॥ ६ ॥

I beg your permission for the same. I invoke Goddess Sarswati. May

she bestow on me strength and ability to compose the poem sweet and juicy like sugarcane. (6)

पद्य—अय्यय्या चेन्नादुदेने कन्नडिगडिगरू। रय्या मंचिदियेने तेलुगा ॥
अय्यय्य एंच पोलों डेंदु तुळुवरु। मेय्युब्बि केळ्वेकरणा ॥ ७ ॥

अर्थ-अय्या यस्ट्ठ, चन्नाई तप्पा, ऐसे कर्नाटकी लोग, अय्या मँचिदी तैलंगी लोग, अय्या एंच पोलॉड्ठ ऐसे तुलु भाषा के लोग (तेलंगी) ये काव्य कितना अच्छा हुआ है ऐसा कहते हुए उत्साह से समस्त भाषा भाषी मन लगाकर इसे सुने, पढ़े और इसका मनन करे ॥७॥

भावार्थ-भाषाकार देशभूषण सूरि की भी यह इच्छा है कि भव्यजीव महाकवि "रत्नाकर" निर्मित इस महाकाव्य का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करें तथा हिन्दी भाषा भाषियों को राजा भरत के वैभव को अवगत कराने के लिये यह टीका कर रहा हूँ इसे पढ़कर हिन्दी साहित्य प्रमी आत्म कल्याण करें। ऐसी मेरी भावना है ॥ ७ ॥

May my poem be so charming that on hearing it the Canarese may applaud it with "Ahya", "Ahya" the Telegus with "Rhya","Rhya" monch Jiami, the Tamils with "Anch Pur Land. (7)

पद्य—रळकुळ शिथिलसमास मुंतादव। रोळगिल्लि केलवुळरुंटु ॥
केलबिल्लादरु बिल्लवेकेंदरवरको। टलेयेके हाडुगब्बदोटु ॥ ८ ॥

पद्य—सकल लक्षण वु वस्तुकके वर्णककिल्दु। विकल वादरु दोंपविल्ल ॥
सकल लक्षणकिवु बिरुसुमाडिदरे पु। स्तकद वदने कायहुदु ॥ ९ ॥

अर्थ-कतिपय कवि र, ळ, क्रु, ल, इत्यादि व्यञ्जन तथा समास आदि को ढूढ़ते हैं तथा इसीमें क्रिया-कर्ता कर्म इत्यादि को ही प्रधान देते हैं ॥ ८ ॥

अर्थ-इस काव्य में कहीं कहीं शब्द दोष-समास-दोष आदि हो तो आश्चर्य नहीं है, कारण सभी लक्षणों को लक्ष्यमें रखकर यदि काव्य की रचना करे तो वह काव्य कठिन हो जायगा, फिर तो वह काव्य न रहकर एक विचित्र ही काव्य हो जायगा ॥ ९ ॥

If I care for my critics, I shall not be able to make my work useful and it will become hopeless like Brinjal. (8-9)

पद्य—चंदिनोळगे कप्पुंटु बेळ्दिगळु। कंदि हुदो निर्मल वो ॥
संधिसि शब्द दोषग ळोम्मे सुकथेगे। वंदरे धर्ममागुवदे ॥ १० ॥

अर्थ–दोष कहां नहीं है ? क्या चन्द्रमा में कलंक नहीं है ? तो क्या इससे चांदनी (रोशनी) भी कलङ्कित है ? नहीं, कदाचित नहीं ! शब्दगत दोष आ जावे तो इससे क्या कुछ धर्म में दोष आ सकता है ? नहीं ॥ १० ॥

There is a dark spot in the moon, but the beauty of the moon is not blurred by it. Similarly there may be defects in my writings but the glory of the Dhrama which I shall relate will not be affected by them. (9)

पद्य—केळिरो भव्यरु निमगोंदु सुकथेय। हे ळुवेनति-मृदुवागि ॥
केळिदिरादरे निमगात्म सुखविंदु। नाळे नाडिदि नोडहुदु ॥ ११ ॥

अर्थ–हे भव्य सुनों, तुम्हें एक सुन्दर व आदर्श कथा सुनाता हूँ यदि आप सुनेंगे तो आपका आत्म कल्याण आज कल या परसों अर्थात् अत्यन्त शीघ्र हो जायगा ॥ ११ ॥

Oh. Bhavyas (Souls capable of liberation), I shall relate to you a "Katha" juicy and easy to grasp. Please hear it with rapt attention and you will in a day or two achieve soul's advancement. (11)

पद्य—श्री भरतेश वैभवविदु केळिरो। सौभाग्य बहुद डिगडिगे ॥
शोभन बहु-दिद्रँ पद वियहु द्रु मोच। लाभ बहु दु कट्ट कडेगे ॥ १२ ॥

अर्थ–यह श्री भरतेश वैभव है, अर्थात् राजा भरत का वैभव है। अतः इसे ध्यान से सुनों, इसको सुनने से सौभाग्य की प्राप्ति होगी और मंगल होकर पाप का नाश होगा पुण्य की वृद्धि होगी। इन्द्र पद मिलकर अन्त में मोक्ष फल की प्राप्ति होगी॥ १२ ॥

Please hear the Katha of Bharat Chakravarti and you will attain happiness and if you hear it again and again, you will acquire the glory of Indras and in the end you may attain even Nirvana. (12)

पद्य—गणने यिल्लदराज्य सुख दोळो लाडि धा रिणि मेच्चे जिन योगीयागि ॥
क्षणके कर्मव सुट्ट जिननाद भू भुजा। ग्रणिय वैभवय लालिसिरो ॥ १३ ॥

अर्थ–मैं जिस महाभाग की कथा कहने जारहा हूँ, उस महावैभव शक्ति सम्पन्न भरतने अपार निधियों का स्वामित्व तथा षट्खण्ड का एक छत्र राज्य पाकर सांसारिक सम्पदाओं से विमुक्त रह कर भी अपने आत्म विवेक से क्षण भर में कर्म निर्मूल कर दिए थे। ऐसे महान् पुरुष की जीवन गाथा क्या आप नहीं सुनना चाहेंगे ? मेरे विचार से अवश्य यह कथा सुनेंगे ? आप को रुचिकर होगी। अब उनके वैभव को सुनिए॥ १३ ॥

Endowed with glory and bestowing happiness on the people over whom he ruled, Raja Bharat was still a Raj Yogi.

Even though engrossed in the humdrum of daily life and the functions of his kingship he attained omniscience, at the moment he was renouncing the worldly possessions. Please hear his Katha. (13)

पद्य—आगमव ध्यात्म वळ्वट्टु शृँङ्गार । त्याग भोगद मोडि मेरेये ॥
भोगियोगिगळेदे जुम्मु जुम्मेने नेम । दागि सोल्लिसुवे लालिसिरो ॥ १४ ॥

अर्थ-मैं अध्यात्म तथा शृंगारात्मक रीति से भरतेश वैभव का विवेचन करूंगा जिससे त्याग व भोग की सीमा ज्ञात हो जाय एवं त्यागी और भोगी इन दोनों के हृदय में उसका रोमाञ्चकारी अनुभव होजाय सुनिए मैं इसको सुनाऊंगा ॥ १४ ॥

I shall recite "Aagam" (Religious Scriptures), "Adhyatam" (Soul) and within it shall also include "Shringar"(Romance),"Tyag"(renunciation) and Bhog (Pleasures). (14)

पद्य—प्रचुरदि पदनेंटु रचनेय वाक्य के । रुचिसुवरानंतु पेळे ॥
उचितके तकष्टु पेळ्वेन ध्यात्मवे । निचित प्रयोजन वेनगे ॥ १५ ॥

अर्थ—कविगण काव्य के कलेवर को पूर्ण करने के लिए समुद्र, नगर, राजा, रानी आदि का वर्णन करने की पद्धति से निरूपण किया करते हैं परन्तु वैसा हम नहीं करेंगे । कारण इस ग्रन्थ में मुझे प्रयोजनीय वर्णन कर चरित्र के साथ कुछ अध्यात्म का वर्णन करना इष्ट है ॥ १५ ॥

I shall compose the poem without thinking for its ornamentation and the readers may please appreciate it.

As far as possible I shall concentrate on the "Adhyatam" (The contemplation of soul) and that is my object. (15)

पद्य—कृतिय पेळ्वात सामान्यहुदु काव्य । पति चक्रि सामन्यनल्ल ॥
कृतिगादि नाथन कूर्तु केळुवुदु काव्य । कृतन दोषव नोडवेड ॥ १६ ॥

अर्थ—यद्यपि इस कृति का रचियता मैं सामान्य मनुष्य हूँ । परन्तु चरित्रनायक तो सामान्य पुरुष नहीं हैं वह भगवान आदिनाथ के पुत्र हैं । इसलिए आप इस कथा को सुने और मेरा दोष न देखें ॥ १६ ॥

The writer (that is myself) is an ordinary being. But the one about whom I shall write is extra-ordinary one. Concentrate on the highest qualities of the son of Lord Adi Nath and do not look on my failings. (16)

पद्य—ई पुण्य कथे पुण्य जीविगळिगेमेच्चु । का पुरुषरिगे मेचल्ल ॥
पापव केडिसि पुण्यवमाडि । स्वर्ग के पोपवेवेंबवरेल्ल केळी ॥ १७ ॥

अर्थ—यह पुण्य कथा पुण्यात्मा जीवों को ही रुचिकर होगी दुर्जनों को यह पसन्द न होगी। पाप को दूर कर पुण्य संचय करके स्वर्ग या मोक्ष की इच्छा रखने वाले सभी जीव इसको अवश्य सुनें ॥ १७ ॥

This "Katha" will import bliss to good persons but the bad ones will not derive it. Those who wish to destroy "demerits" and attain Heaven by earning merits (Punya) may hear this. (17)

पद्य—ॐ नमयन्नि जिननमयेन्नि सि । ध्दंनमो हंसंनमामि ॥
एन्नि हागेंद मेली कथेगेच्छामि । योन्नि चेन्नागेन्नु केळ्ळे ॥ १८ ॥

अर्थ—ॐ नमः कहो, जिनम् नमः सिद्धम् नमामि कहो, ॐ हंसम् नमामि कहो-इत्यादि मन्त्रों को कहने के बाद इस कथा को सुनने की इच्छा हो तो इच्छामि कहो इतना ही नहीं अच्छी तरह से मन लगाकर सुनो ॥ १८ ॥

Let them first say "Om Namo Siddhibhya" (obeisance to Siddha) "Namami Jinam" (obeisance to Jinendra), "Namami Siddha" "Namami Hansam" and then hear the Katha. (18)

पद्य—भरतभूतळ के सिंगार वादयोध्या । पुरदोळु मूलोक पोगळे ॥
भरत चक्रेश्वर सुख वाळु तिर्दना । सिरियनिन्ने नुचन्निपेनु ॥ १९ ॥

अर्थ—भारत भूतल को अलंकृत करने वाली ऐसी अयोध्या नगरी में तीन लोक के द्वारा पूजनीय तथा स्तुत्य आदिनाथ भगवान के प्रथम पुत्र चक्रवर्ती राजा भरत सुख पूर्वक राज्य करते थे। उनके विपुल ऐश्वर्य का मैं क्या वर्णन करूं ? ॥ १९ ॥

Ayodhaya is the holy of the holiest cities in the world. It is the city worthy of worship in the three worlds. Raja Bharat ruled in this city with undescribable bliss and glory. (19)

पद्य—पुरु परमेशन हिरिय कुमारनु । नरलोक कोब्बने राय ॥
मुरिदु कण्णिट्टरे क्षणके मुक्तिय कांब । भरत चक्रियहेऌलवने ॥ २० ॥

भगवान आदिनाथ के ज्येष्ठ पुत्र नर लोक के एकमात्र सम्राट थे, वह क्षणमात्र दृष्टि बन्द कर मोक्ष को प्राप्त करने वाले उन चक्रवर्ती भरत का मैं क्या वर्णन करूं ॥ २० ॥

He was the eldest son of Lord Adi Nath. He was a ruler of whose kind there was none in the world. When he shut his eyes, he got absorbed in the contemplation of Moksha. It is impossible for one to describe his glory or to give an account of him. (20)

पद्य—हदिनारनेमनु प्रथमं चक्रेश्वर । सुदति जनके राजमदन ॥
चदुरर तलेवणि तद्भवमोक्षासं । पदन वर्णिस लेन्न हवणे ॥ २१ ॥

अर्थ-सोलहवें मनु, प्रथम चक्रवर्ती, अन्तःपुर वासिनियों के लिए कामदेव, विवेकियों के चूड़ा मणि एवम् तद्भव मोक्षगामी भरत के वर्णन करने में मैं कहां तक समर्थ हो सकता हूँ ॥ २१ ॥

He was one of the sixteen "Manus" and the first Chakravarti [the conqueror of the whole world]. He was engrossed in the insinuating charms of Ninety six thousand queens, but even then he was the attainer of Nirvana, [Liberation] in the same birth and from the same body. (21)

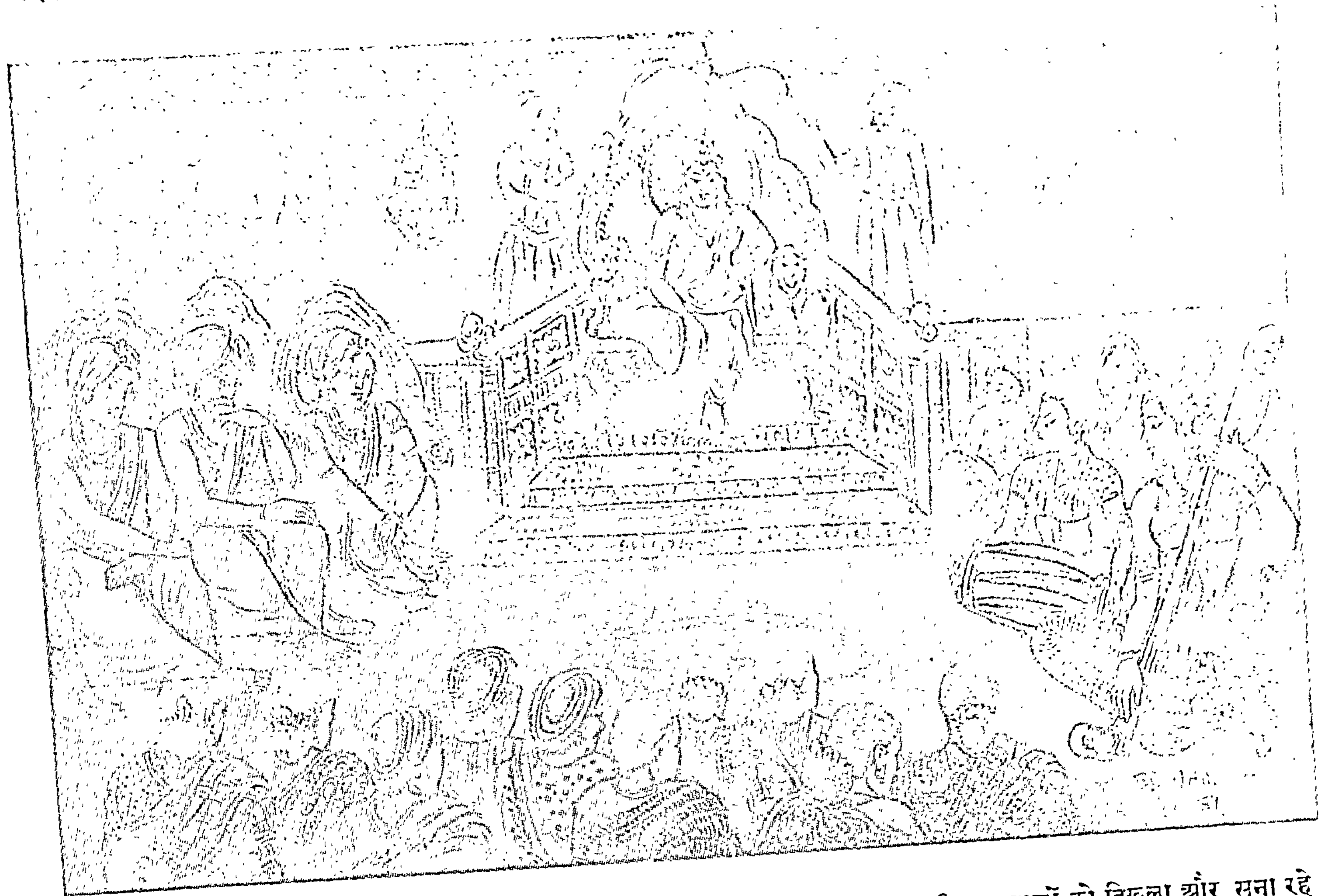
पद्य—होल्लद नृपरिगिल्लद गुणगळनिट्टु । स्पेल्लिप कृतिमार्गवल्ल ॥
उळ्ळ सद्गुणगळ कडेगंडु वर्णिस । वल्लवना नृपना ॥ २२ ॥

अर्थ-उन सम्राट भरत का गुण कीर्तन कैसे किया जाय क्योंकि उदाहरण देने के लिए उनके तुल्य न कोई राजा है और न कोई वस्तु । इसलिए किसी की उपमा देना कवि कृत्य में निन्दनीय है और समान गुण की कल्पना करना हृदय की शक्ति के बाहर है अतः मैं किन शब्दों में उनका वर्णन करूं ॥ २२ ॥

He was unparalleled in his glory and it is not easy to describe his qualities. (22)

पद्य—हलवु मातेनोंद पेळ्वेना क्षत्रिय । कुलरत्न गाहारवुँटु ॥
मलविल्ल मूत्रु विल्लेंदरी लोकद । वळ्केगारर पेळ्व तेरने ॥ २३ ॥

अर्थ-बहुत क्या कहूँ ? वह क्षत्रिय कुल रत्न राजा भरत आहार तो करते थे । परन्तु निहार



राजा भरतजी की राज-सभा में विद्वान्, गायक तथा गायिका और अनेक लोग सब अपनी २ कलाओं को दिखला और सुना रहे हैं।

यह चित्र धर्मपत्नी ला० पदमचन्द जैन गोटेवाले, चौक लखनऊ, के द्वारा छपा।

नहीं था अर्थात् मल-मूत्र नहीं था। क्या यह जगतमें अलौकिक राजा नहीं है? अर्थात् अलौकिक है॥ २३॥

But I shall make an attempt to do so. Now look at my difficulties in giving an account of him. He used to take food but there was no excretae. Who can describe such a person. (23)

पद्य—धरियोळेल्लव सुट्टु रुंटल्लि भस्म क। पुर्र व सुट्टरे भस्म वुंटे॥
नरतति गाहार निहारवुंटेम्म। भरतेशगिल्ल निहारा॥ २४॥

अर्थ-जैसे संसार में सभी पदार्थ जलाने से उसका भस्म तैयार होता है। परन्तु कपूर जलाने से कभी उसका भस्म तैयार होता है? उसीप्रकार सभी मनुष्यों को आहार और निहार प्रायः दोनों ही देखने में आता है। परन्तु राजा भरत में आहार तो है लेकिन निहार नहीं है। क्या यह अलौकिक व्यक्ति नहीं है॥ २४॥

If any thing is burnt, the ashes fall to the ground but this is not the case with camphor. Similarly although Raja Bharat took food there was no excreta. (24)

पद्य—कोमलांगनु हेमवर्णनु जगवेल्ल। कामिस तक चेन्निगनु॥
आमोद वुक्कुव जव्वनिगनुसर्व। भूमीशरो डेयना चक्रि॥ २५॥

अर्थ-वह चक्रवर्ती भरत कोमल शरीर वाला था एवं स्वर्ण वर्ण था अपने रूप से संसार को मोहित करने वाला था। इतना ही नहीं, अपने शरीर के लावण्य और तारुण्य से सब राजाओं में श्रेष्ठ था॥ २५॥

He was delicate, full of self respect. Had golden complexion any-one who saw him got infatuated.

He was blooming with youth and all other kings obeyed his command. (25)

पद्य—आविभु वोंदेन दुदय दोळेद्दु। देवतार्चनेयनु माडे॥
चावडिगैदे तानोलग वादोंदु। श्री विलासवनेननेवे॥ २६॥

अर्थ-वे सम्राट भरत एक दिन प्रातःकाल देव पूजा आदि नित्यक्रिया से निवृत्त होकर राजसभा में विराजमान थे, उस समय के शृङ्गार का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ॥ २६॥

One day Raja Bharat got up in the morning and after finishing the

daily routine of life, he went to his court and sat on his marvellous throne. His beauty was beyond discription. (26)

पद्य—नवरत्न हेमनिर्मित वेनिपा स्थान । भवनदोळ्ा राजरत्न ॥
छवि बड़े देसेदनु रत्न पुष्पक दोऊ । दिविजेंद्र नोप्पु वंददोळु ॥ २७ ॥

अर्थ-नवरत्न निर्मित स्थान भवन में राजा भरत रत्न निर्मित पुष्पक विमान में देवेन्द्र के समान सुशोभित होरहे थे। उनके गुणों का वर्णन मेरे समान क्षुद्र ज्ञानी क्या कर सकता है ॥२७॥

The throne was embedded with matchless jewels (Nau Ratna) .Bharat sitting on it looked like the glorious king of Heavens (Indra). (27)

पद्य—सिंगरसिद झल्लिपट्टे पूमाले वे । डंगाद मंडपदल्लि ॥
शृङ्गार वनदोळु मेरे व वसंतरा । जंगे शे यादना सोवगा ॥ २८ ॥

अर्थ-वसन्त ऋतु के समय में प्रकृति के प्राकृतिक में सौन्दर्य से मण्डित नाना वर्ण की पुष्प मालाओं से युक्त शृङ्गार मण्डप में जैसे वसन्त राज सुशोभित होते हैं उसी तरह राजा भरत भी उस रत्न माला से सुशोभित रत्नमई मंडप में गौरव पूर्वक विराजमान होरहे थे ॥ २८ ॥

One thought Indra (the king of Heaven) was occupying the throne. There were decoration and ornamentation alround. It gave one an impression that the King spring had come down in all its glory. (28)

पद्य—तनु कांतिसुंविद सभेयेंव कोळ्दल्लि । कनक सिंहासन वेंव ॥
कनकांवुजद मेला राजनि । इनु राज हंसनेंवंते ॥ २९ ॥

अर्थ-जिस प्रकार मानसरोवर में कमल के ऊपर राजहंस शोभा पाता है उसी तरह उस राज सभा रूपी सरोवर में शरीर कान्ति से परिपूर्ण कमल रूपी रत्न जटित सिंहासन के ऊपर वह राजहंस भरत शोभायमान हो रहे थे ॥ २९ ॥

The court looked like a serene lake full of beauty. Raja Bharat was sitting on throne as if a Raj Hans (Swan) was sitting on a lotus in the lake. (29)

पद्य—उदय गिरिय मेले मेरेव भानुविंवे म । त्तिदिराद पति सूर्यनंते ॥
पदुळ्दुतुंग सिंहासनवेरि दे । इद कांति मेरे ये मेरेदनु ॥ ३० ॥

अर्थ–उदयाचल पर शोभा पाने वाले सूर्य को अपने सामने प्रतिसूर्य के तुल्य बैठे हुए ऐसे उच्च सिंहासन पर राजा भरत श्रेष्ठ कान्ति से शोभा पा रहे थे जैसे प्रति सूर्य (द्वितीय सूर्य) आ कर बैठा हो ॥ ३० ॥

Raja Bharat was glorious like the rising sun. The beauty of his body capturedthe whole court. (30)

पद्य—आव विंकयो एडगाल गट्टुगेय मे । लोवि मडिदु मत्त केळगे ॥
हावुगेयोळु पेंडेयद वलगाळूरि । ठावियो ळेसेदनागया ॥ ३१ ॥

वलगैयोळानंत होन्नोरेय कठारिय । केलकूरि मत्तेडगैया ॥
मलगेन मेळूरे वीरसिरिय नाळ्दा । कलेगळ देव नोप्पिदनु ॥ ३२ ॥

अर्थ–महाराज भरत अपने बायें पैर को नीचे पादपीठ पर रक्खे हुए थे। एवं दायें पैर को किंचित सिकोड़ कर सिंहासन पर इस प्रकार रक्खे हुए थे, जिसे देखकर प्रजाजन को महाराज की गम्भीरता स्पष्ट प्रति भासित हो रही थी ॥ ३१ ॥

अथ–महाराज भरत दाहिने हाथ में स्वर्ण खचित करवाल को लेकर टेके हुए और बाँए हाथ को दाएं ओर मोड़े हुए वीर रस को पालन करने वाले भरत श्रेष्ठ सभी राजाओं से बहुत ही सुन्दर स्वरूपवान दिखाई दे रहे थे ॥ ३२ ॥

He sat in an imposing position, with left leg on right and the other resting on the footstool below, with go den sword in one hand (31-32)

पद्य—नुरु सुय्य गाळिगे तेल्वदकूलद । सेरगु सेळवे दोरे होरेदु ॥
तेरपेनेद्य होंनजनिवारद रेखे । सेरे ये राजेंद्र मेरेदनु ॥ ३३ ॥

अर्थ–महाराज भरत के विशाल वक्षस्थल पर ओढ़ा हुआ रेशमी वस्त्र हलकी वायु की लहरों से समुद्री तरङ्गों की तरह लहराता हुआ सुशोभित होरहा था तथा स्वर्ण निर्मित यज्ञोपवीत की धारणा से जो रेखा थी वह भी अद्वितीय शोभा को प्राप्त होरहा थी। जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३३ ॥

His apparels were dainty and used to stir with a little breeze air. He was putting on golden "Yagyapavit" (sacred thread). Even the lines on his neck glittered like gold. (33)

पद्य—मिरुप किरीट वुंटदनंदु धरिसति । ल्हुरे मनदोंदु लीलेयोळ्ु ॥
तुरुवु चुंगेसेये चिम्मुरि सुत्ति सोव्रगने । करे वु तिद्तु नोडुवरिगे ॥ ३४ ॥

अर्थ-महाराज भरत जी के मस्तक पर जो मुकुट शोभित था उसमें जड़ी हुई मणियों की कान्ति तथा सुन्दर शृङ्गार किए हुए सुगन्धित सिर के वालों की शोभा प्रजाजन के मन को मुग्ध कर रही थी वह ओढ़े हुए पट्टदुकूल की शोभा भी अद्वितीय थी इस प्रकार से सुसज्जित राजा को देखकर आकर्षण को प्राप्त हुए लोग विना वुलाये आते थे ॥ ३४ ॥

The beauty of the crown which rested on Raja Bharat's head, and the beauty of his hair was extremely attractive. People were coming to see such a sight un-invited. (34)

पद्य—हों वन्न मेगे मोहिसुव कागिन धट्टि । तुंवेद कस्तुरि तिलक ॥
मुँवाय कर्पूर वीळेयदिदं क । रिणं वादना गाडिकारा ॥ ३५ ॥

सुमन सुगंध कदव कंपनु । तिमेर तेगेय लागि सभेगे ॥
घमघमिसुव देह परिमळ दिदोंदु । गमक दोळे से दना राया ॥ ३६ ॥

अर्थ-शरीर की शोभा को वढ़ाने वाले सुवर्णमय रत्न जटित कपड़े-कस्तूरी-तिलक और पान वीड़ा से सुललित मुख देखने योग्य मनोहर रूप से वार वार शोभा पा रहे थे ॥ ३५ ॥

अर्थ-मन को प्रसन्न करने वाला सुन्दर सुगन्ध युक्त उवटन किया हुआ शरीर केशर चन्दन से सुसज्जित तथा वस्त्रों में इत्र इत्यादि छिड़का हुआ होने के कारण से और मन्द मन्द वायु प्रवहन से कपड़ों की सुगन्ध सभा भवन में फैल उठती थी ॥ ३६ ॥

Sandal scent had been rubbed on his body. The fragrance that emanated from him gave one an impression that there was a forest of sandal-wood nearby. (35-36)

पद्य—नोडुव ठीवि हर्नोंडु कोम्मोम्मे मा ।ताडुव नुडिय वि डाया ॥
पाडरे दोलग गोट्टा चे शिरवन । ल्लाडिसुति हनु नोळ्पवरा ॥ ३७ ॥

जो के विडिडु नीडुवेळेय वळिगेयप । राकिनोळगे केकोळुत ॥
राको नुडियनो इन्नोम्मे यें वंतोंदु । तू कदोळे से दना राया ॥ ३८ ॥

अर्थ-सम्राट भरत की समस्त क्रिया उनकी गम्भीरता की द्योतक थीं जव वे प्रजाजन की

ओर देखते थे तो लोग उनकी नयन माधुरी से तृप्त हो जाते थे। एवं प्रजाजनों की अनेक आकांक्षाओं को वे एक ही उत्तर में संतुष्ट कर देते थे तथा गायकों की गान विद्या का कौशल अपने मस्तक को हिला कर इस प्रकार व्यक्त कर देते थे कि सारे सभासद मुग्ध हो जाते थे॥ ३७॥

अर्थ–देने वाले के हाथ से सावधान तथा चतुरता पूर्वक पान वीड़ा को लेते हुए जो लोग देखते थे तो कहते थे कि राजा भरत एकबार और क्यों नहीं बोलते इस प्रकार सुनने की इच्छा रखते थे। प्रजा वर्ग के लोग कहते थे कि इन सम्राट के भीतर गाम्भीर्यपन कूट कूट कर भरा है॥ ३८॥

His eyes were charming and towards whom so ever he turned them, they considered themselves fortunate. Every one wished that the King might look at him once again.

His mode of speech was specially sweet. He, however, spoke very few words and the people's one desire was that the King might speak once more. (37-38)

पद्य—गंभीर वेंबुडु सर्व गुण गळेंव। अंभोधि यादियागिहुदु॥
गँभीरवेकु राजगु राजयोगिगु। गंभीर केट्टरे नुंडु॥ ३९॥

अर्थ–ठीक है गम्भीरता सर्व गुणों में श्रेष्ठ समुद्र तुल्य है। राजा हो चाहे राजयोगी हो चाहे गृहस्थ हो उनमें गाम्भीर्यपन होना आवश्यकीय है। यदि गम्भीरता नष्ट होजाय तो सभीगुण बिखर जायं फिर क्या रह गया? ॥ ३९॥

The king's actions were well balanced. He was considerate and sober minded. Sobriety and considerateness are the essential qualities of a King and a Saint. The king possessed both of them. (39)

पद्य—उब्बि देळेदु वागितिल्ल रेखेगे वंदु। हुब्बिनंतेसेवेळ्मीसे॥
हुब्बु मीसेय नोडि नलिव वबारे कण्ण। हब्बन माळ्प नेल्लरिगे॥ ४०॥

अर्थ–भृकुटी पर न्यून वाल तथा कोमल मूंछे भी काजल की तरह साधारणतया कालिमा लिए हुए उगी थीं, उस समय पर देखने वालों को वह रूप एक नये त्योहार के समान मालूम पड़ता था॥ ४०॥

His eye brows were thin and so were the hairs on the lips. The very sight of these was a treat for the people. (40)

पद्य—कुन्डल गळ कान्ति कंगळ प्रभे गंड । मण्डल दोळ गाडल वना ॥
मण्डेयो लेद्रे हेंगळिगे मन्मनदो । खण्डेय बळु गिदंते हुदु ॥ ॥ ४१ ॥

अर्थ-कुण्डल की कान्ति और सुन्दर चमकती आंखों की प्रभा के साथ राज सभा में जिस समय राजा भरत अपना माथा हिलाते थे उस समय सभा में बैठी हुई सभी (कामिनी) स्त्रियों के हृदय में कामदेव प्रवेश कर हृदय को विचलित कर देता था ॥ ४१ ॥

The flash of his earrings infatuated the people. The Raja looked beautiful like cupid. (41)

पद्य—आरु वरेणप रवनंगद निर्मला । कारव कोरळोळि किदी ॥
तोरु मुत्त गळेल्ल तिळि गोळ दोळु । तोरि ताराळि यते तोरे दुवु ॥ ४२ ॥

अर्थ-जिस प्रकार से राजा भरत के गले में पहिना हुआ निर्मलाकार मोती का हार चमचमाता हुआ चन्द्र मण्डित तारागणों की तरह शोभा पा रहा था उस मोहनीय शोभा का कौन वर्णन कर सकता है ॥ ४२ ॥

He had only one bejewelled necklace and it looked as if the stars were clustered round his neck. (42)

पद्य—पदक कडग कण्ठ कालेय नव रत्न । दुदितां शु देह कान्ति योळु ॥
पुदिदु पोळेये कण्गे तोरिदनिंद्र । चापदोळु माडिद नृपनंते ॥ ४३ ॥

अर्थ-वक्षस्थल पर सुशोभित स्वर्ण पदक हाथ में सोने का कड़ा, कण्ठमाला के चमकते हुए नवरत्न ये सभी वस्तुयें शरीर की कान्ति बढ़ाने में अद्वितीय थीं। देखने वालों को ऐसा मालूम पड़ता था कि चक्रवर्ती का शरीर इन्द्र धनुष से ही बनाया गया हो ॥ ४३ ॥

The ornaments cast their beauty on his body, and the body cast its beauty on the ornaments. The two beauties blended themselves into a new beauty and Raja Bharat looked like Indra (King of Heavens). (43)

पद्य—मिगे तोर मुत्तिन तोडगे योडने धग । धगि सुव रत्नावण्यदिंद ॥
हगत्तु नक्षत्र वेरसि पूर्ण चन्द्रम । सोग सिदंतेसेदनु चित्रा ॥ ४४ ॥

शालिय तेरेय सदुचि दीपद कान्ति । ढाळि सुदंते लोक दोळु ॥
आललि तांग न तनु कांति पोदेदडु । कूल द होरगे रंजि सितु ॥ ४५ ॥

पद्य—वळ सिन नुडिगळे नोलग देळे वेग । ळोलिदुइ विळिय सीरेगळो ॥
चेलुवन तनु कांति सों किद रङ्ग मा । दल वरण वेणञे सेदि हुदु ॥ ४६ ॥

कवि तेय रचने यें देन लाग दे केंद । र वनादि जिनकुमारा ॥
भव भंजन नंत्य देहि यल्लवे पेळ । लव निगी कांति विस्मय वे ॥ ४७ ॥

अर्थ–महाराज भरत के उज्ज्वल शरीर पर धारण किए हुए मोती और विविध रत्नों के आभूषण ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो दिन में ही अपनी प्रकाशमयी किरणें विखेरते हुये चन्द्र देव ही अपने तारामण्डल के मध्य में आसीन हों ॥ ४४ ॥

अर्थ–महाराज भरत की देदीप्यमान सुवर्णमयी शरीर कान्ति, महीन रेशमी वस्त्रके अन्दर से ऐसा मालूम पड़ता था कि मानों फान्दस (वारीक) कपड़े के घेरे के अन्दर रखा हुआ दीपक ही अपने प्रकाश को विखेर रहा हो ॥ ४५ ॥

अर्थ–महाराज भरत के शरीर का आकार और रंग विजनौर (माद्दल) फल की तरह सुगठित एवं सुडौल तथा गौर वर्ण से युक्त था तथा उसके ऊपर जो रेशमी वस्त्र पहिने हुए थे उससे उनके कोमल शरीर की शोभा इस प्रकार होरही थी कि मानों श्वेत वस्त्राच्छादित तरुण युवती तो नहीं खड़ा है ? ॥ ४६ ॥

अर्थ–महाराज भरत के शरीर की कमनीयता केवल कवि कल्पना ही नहीं थी । क्योंकि वे कर्मों के शत्रु चरम शरीरी एवं तद्भव मोक्षगामी थे । तथा भगवान ऋषभदेव के प्रथम पुत्र थे अतः उनके शरीर में लावण्यता एवं रूप रेखा होना क्या असम्भव है नहीं है ? ॥ ४७ ॥

He was the eldest son of Lord Adi Nath and was to attain Nirvana in the same birth. It is not possible to describe the glory and beauty of Bharat as I can only realize it in my mind but can not see it through the eyes. (44 to 47)

पद्य—कीटक देहिगी कांति विस्मय वेसे । मीटे निसुत वज्र देहि ॥
कोटि सूर्यर कांतियनु नाळे नणकसं । घाटिसि कोंमुव गरि दे ॥ ४८ ॥

चित्रिस वारदवन रुपु करु विन्दु । सूत्रि सिये रेयल शक्य ॥
नेत्रके मनके गोचर वल्लद दुनाकु । मात्र के गोचर वेंस ॥ ४९ ॥

हे गंळ रूपुगंड रिगे गंडर रुपु । हेगंळ सोलिपु देंव ॥
पांगल्ल ववन चेल्विके गंडु गळ । कंगल सरे विडिदे हुदु ॥ ५० ॥

पद्य--निट्टिसिदरे मुत्तमुदकि गादरु जुंमु । धट्टि सुती हुदुं रूपवन ॥
वट्ट जव्वनेयरंतिंतादरेदुंवा । ग्विट्टिन्नु नुडिय लदे के ॥ ५१ ॥

अङ्ग वङ्गके तक्क लावण्य लावण्य । दिंगित प्राय प्राय दोळु ॥
सङ्गडिसिद सिरि गंभीर विक्रम । शृङ्गार शोभे योळ्सेदा ॥ ५२ ॥

आव नोंपिय नोंतनो पूर्व भव दाळ्व । दाव भक्ति योळादि जिनना ॥
भावि सिदनो अल्लदिद्दरानृपगंतु । लावण्य वहुदे लोक दोळु ॥ ५३ ॥

अर्थ-सम्राट भरत यदि सामान्य पुरुष होते तो उनके रूपातिशय का वर्णन करना अतिशयोक्ति या सम्भव वर्णन होता किन्तु वज्रमय शरीर वाले उस चक्रवर्ती राजा के शरीर विषयक विशेषण में क्या आश्चर्य है वे तो करोड़ों सूर्य के समान प्रकाश वाले परम औदारिक दिव्य शरीर को धारण करने वाले हैं। इतना ही नहीं क्षण भर में ही शरीर को घटावढ़ा देते हैं क्योंकि वे वैक्रियक थे ॥ ४८ ॥

अर्थ-महाराज भरत का रूप लावण्य चित्रकार की तूलिका भी अङ्कन करने में असमर्थ थी तथा सूत्रकर्ता भी जिसे शब्द रूप में वर्णन न कर सके यहां तक की उनकी रूपराशि नयन पट में भी न समा सकी। तव भला कवियों द्वारा उनका यथातथ्य वर्णन कैसे हो सकता है ॥ ४९ ॥

अर्थ-आजतक पुरुषो की कमनीयता पर स्त्रियां और स्त्रियों की कमनीयता पर पुरुष अनुरक्त होते आये हैं यह तो सम्भव है और स्वभाविक है परंतु आश्चर्य है कि महाराज भरत की रूपराशि पर पुरुष व स्त्रियां सभी मुग्ध रहते थे ॥ ५० ॥

अर्थ-सम्राट भरत की अनूप कमनीयता को देखकर वृद्ध, स्त्री, पुरुष भी चञ्चल हो उठते थे तव तरुण स्त्री पुरुषों की क्या अवस्था होती होगी यह कहा नहीं जा सकता ॥ ५१ ॥

अर्थ-संसार में अक्सर यह देखा जाता है कि किसी को रूप है तो शील नहीं और शील है तो विद्या नहीं तथा विद्या है तो शरीर सुन्दरता नहीं। शरीर सुन्दरता है तो गम्भीरता नहीं गम्भीरता है तो पराक्रम नहीं, पराक्रम है तो युवा नहीं युवा है तो शरीर शृँगार नहीं। लेकिन सम्राट भरत में मणि कञ्चन संयोग तुल्य सर्वगुण विद्यमान थे। ॥ ५२ ॥

अर्थ-महाराज भरत ने निसन्देह कोई महापुण्य संचय पूर्वजन्म में किया होगा अन्यथा इतना सुन्दर शरीर व लोकोत्तर वैभव कैसे प्राप्त हो सकता था। विना भगवान जिनेश की आराधना किए उपरोक्त सर्वगुण कहां से आ जायेंगे इससे विदित होता है कि त्रैलोक्याधिपति भगवान के आशीर्वाद से तीनों लोकों को मोहित करने की शक्ति उनमें थी ॥ ५३ ॥

Raja Bharat was beautiful beyond description. His beauty fascinated

all young and old men and women alike. Not only that he possessed beauty and youth but he had the excellent qualities of mind, was sober and had a halo of glory round him.

These were the fruits of every strong meritorious karmas bound by him in the previous births. *(48-53)*

पद्य—हल वेनु देह वेरात्म वेरेंदात्म । कलेय मुन्नोल्दु ध्यानि सिदा ॥
फलदिंद दोरे कौंडु दारायगारूपु । इळे योळेल्लरिगेकेंवहुदु ॥ ५४ ॥

अर्थ-बहुत क्या कहें ! पूर्व जन्म में उन्होंने आत्मा और शरीर दोनों को भिन्न मान करके भेद विज्ञान प्राप्त किया था । इसी आत्मज्ञान के बल से राजा भरत को रूप; विद्या, लावण्य, यौवन आदि प्राप्त थे ॥ ५४ ॥

Besides the qualities mentioned above, he possessed the faculty of discriminating detween body and soul. When absorded in self contemplation he could realize the separateness of the soul from the body. Through this discrimination between body and soul, he had achieved the glory. *(54)*

पद्य—नोडुव वरेगे करुण लसिके यिल्लकों । डाडुववरि गासरिल्ल ॥
नोडिद नितके कोंडाडी दनित किच्छे । माडुव रोवगि नोळे सेदा ॥ ५५ ॥

अर्थ-सम्राट भरत की रूपमाधुरी का पान करने वाले सज्जनों को तथा उनके गुण गान करने वालों को एवं सुमधुर वचन सुनने वालों को कभी तृप्ति नहीं होती थी । अर्थात् महाराज की सभी क्रियायें सर्व प्रिय थीं ॥ ५५ ॥

His beauty was so fascinating that the admires would not get tired in looking at him admiring him and praising him. *(55)*

पद्य—ई रुपु रेखे मत्ती गाडि मोडिडं । तीराय गल्लदन्यरिगे ॥
वारदु वँद रोब्बरेगे मेरेयदेंदु । तोरुति हरू तम तमगे ॥ ५६ ॥

अर्थ-महाराजा के वैभव एवं ऐश्वर्यादि को देखकर धुरंधर विद्वानों का मत था कि ये सारी विभूतियाँ चक्रवर्ती भरत को ही महत्व प्रदान कर सकती हैं, अन्य साधारण राजाओं को नहीं, क्योंकि इतना वैभव होने पर भी इतना निर्मम भाव व विवेक अन्य राजाओं में नहीं हो सकता ॥ ५६ ॥

पद्य—तर तरविडिदु ढाळिसुतिह दीर्घ चा । मरगळ सालोळेसेदनु ॥
हरिव वेळ्मुगिलळु तोरि मरसुव चं । दिरनो भास्करनोयेंवते ॥ ५७ ॥

अर्थ-राजा भरत के दोनों ओर धवल चमर डुलाये जा रहे थे तब बीच में राजा भरत इस प्रकार सुशोभित दिखाई दे रहे थे मानो सूर्य व चन्द्रमा के दोनों ओर श्वेत मेघों का समूह घूम रहा हो ॥ ५७ ॥

On both sides of the king white "Chanwars" were being flown and it appeared as if moon was shining amidst white clouds. *(57)*

पद्य—बलदोळु भूबुजरेडदल्लि गणिकेय । रोळुमेय कविगळु मुंदे ॥
निले हिंदे हितवरु वळसिदेकडिगर । बळु बजावणेयाळोप्पिदनु ॥ ५८ ॥

अर्थ-सम्राट भरत के दाहिने ओर राजा महराजा, बाँयी ओर मन्त्रीगण, सामने कवि समाज लोग तथा गणिका नर्तकी आदि अपनी २ जगह पर सुशोभित थे और उनके स्वर्ण सिंहासन के पीछे हितैषी अङ्ग रक्षक खड़े थे ॥ ५८ ॥

On the right hand side of the king were seated the vassal rajas, on the left were the ministers and high officials, in front were the poets and other artists, and behind his throne were body gaurds. *(58)*

पद्य—केळेयरु सचिवरु सारलिदृष्टि दृष्टि । सळुवष्टरोळु मंदियिहुदु ॥
गिळियरसँचे तंबेलरिंदु वळसिकं । गोळ्सिसुव मदननंतिर्दा ॥ ५९ ॥

अर्थ-राजप्रमुख एवम् मुख्य सेवक लोग पंक्ति बद्ध खड़े थे व नाना प्रकार के गायक, वाद्य बजाने वाले लोग भी वहाँ खड़े थे उनको देखकर देखने वालों के मन में ऐसा प्रतीत होता था कि मानो जन समुद्र ही उमड़ रहा हो ॥ ५९ ॥

In the back rows were standing officials, servants and musicians. *(59)*

पद्य—गलभे हो निल्लु संमुख वागु चिनैसु । तोलगु लालिसु कुळ्ळिरेंदु ॥
सुळिव कट्टिगे कार रा स्थानदोळुको । गिलेयंते दनिदोरु तिहरु ॥ ६० ॥

पद्य—किमेनवारदु नगवारदत्तित्त । नेम्मवारदु समेयोळगे ॥
सुम्मनिदु दुजन भरत चक्रेशन । सोम्मल्लवे राज गोडि ॥ ६१ ॥

अर्थ–सम्राट के सन्तरी कह रहे थे कि भाइयों शोर मत करो, इधर आइये सुनिये, उधर बैठ जाइये इत्यादि प्रकार के शिष्टाचार से युक्त शब्द उस राज सभा में सुनाई दे रहे थे ॥ ६० ॥

अर्थ–पुनः कोई कोई कहते थे कि भाइयों यह राज सभा है इसमें कोलाहल न होना चाहिये और न हँसना चाहिये एवम् बीच में से उठकर इधर उधर न जाना चाहिये ॥ ६१ ॥

"Do not shout, do not make noise, sit down, all these direction were being given in the Court. Some one was heard saying "This is the Raja's Court, here people should not make noise, or laugh or leave their seats." *(60-61)*

पद्य—कळेय नरिदु काल वरिदु रायनभन । दोलव नरिदु मसे परर ॥
ओळ्गु होरग नरिदोय्यने केलवरु । सळुगेवुळ्ळवरु नुडिवरु ॥ ६२ ॥

अर्थ–कुछ बुद्धिमान लोग सम्राट भरत जी के मनोभाव को जान कर एवम् दूसरों के विचारों को समझ कर कभी कभी कुछ समयोचित भाषण करते थे ॥ ६२ ॥

Some learned person guessing king's intentions and knowing the feelings of others were giving suitable discourses. *(62)*

पद्य—मंडलिकर मोत्त राजकुमारर । तंड मंत्रिगळ करंव ॥
पंडितरोड्डु गायकर संतति येडे । गोंडिदु दोलग दोळ्गे ॥ ६३ ॥

अर्थ–सम्राट के दरबार में छोटे मंडलीक राजे, राजकुमार प्रधान मन्त्री विद्वान पंडित एवम् सुन्दर गवैये आदि सभी प्रकार के कला विशारद बैठे हुये थे ॥ ६३ ॥

There were feudatory Chiefs, Ministers, Pandits, Poets all sitting in their own groups. *(63)*

पद्य—नट्टु वरकडिगरु भयकाररु । भट्टरु वैद्य जोयिसरु ॥
जट्टिगळंक दाळु गाळ्दिरल्लल्लि । मिट्टने मिडकदे निंदु ॥ ६४ ॥

अर्थ–याचक गण, स्तुति पाठ करने वाले वैद्य, ज्योतिषी, महावत, श्रेष्ठ सैनिक, चारण (भाट) युद्धमल्ल (पहलवान) एवम् सेवक लोग उस राज सभा में उपस्थित थे तथा उपस्थित जन समुदाय चक्रवर्ती भरत की शोभा देख रहे थे ॥ ६४ ॥

There were in the court bards, Vaidya, physicians, astrologers, warriors, wrestlers, servants, sailors. They were all observing the glory of Raja Bharat. *(64)*

पद्य—मावतिगळु साखिगळु हेरिगरु सेन । वोवरु मंत्र जीविगळु ॥
रावुत रेकडिगरु नायकरु वहु । सेवक रिर्दरल्लल्लि ॥ ६५ ॥

अर्थ-राजसभा में महावत (सारण लगाने वाले) सामन्त लोग स्वयंसेवक, भौमिये (पालकी उठाने वाले झंपानी) तन्त्र मन्त्र के जानकार और अन्य कई प्रकार के सेवक थे ॥ ६५ ॥

There were craft'sman, workers, labourers, mechanics and in short every kind of persons were there. (65)

पद्य—वारनारियरु तावार नारियरो शृ । ङ्गार के सोतु भूवरना ॥
हारुतिद्दरु सुरपशुव गोदानके । हारुव हारुव नंते ॥ ६६ ॥

अर्थ-नगर की रमणियाँ व अन्य स्त्रियाँ महाराज भरत जी के श्रृङ्गार पर मुग्ध होकर ऐसी दौड़तीं थीं जैसे ब्राह्मण गोदान के लिये ॥ ६६ ॥

The ladies of the city were crowding the Court attracted by the beauty of the Raja *just as the Brahmins run for the cow's gift.* (66)

पद्य—अंबुज वेल्लवु रवियनोळ्पंते नी । लांबुज नोळ्पंते शशिया ॥
तुँविद् सभेयेल्ल नृपन नोड्डत मिक्क । हंवल मरेदुदल्लल्लि ॥ ६७ ॥

अर्थ-जैसे सरोवर में कमल सूर्य के किरणमयी प्रकाश को व नील कमल सुप्रकाशित किरणवाली चन्द्रमयी रजनी को देख कर प्रफुल्लित होकर खिल उठते हैं उसी प्रकार सरोवर रूपी सभा मंडप में उपस्थित सभी लोग राजा भरत को देख कर प्रसन्न हो रहे थे ॥ ६७ ॥

Just as the lotus in a pond blossoms forth with the Sun's rays or the Nila Lotus blossoms with the moon's light, in the same manner *all* the courtiers were enjoying the sight of the king's beauty. (67)

पद्य—नोड्डतिर्दरु तन्ननेल्लरु तानाग । नोडिद्नोल्दु गायनकर ॥
नोडिद् वगेवरिद् जानरागळे । हाड तोडगिद्रोजेयोळु ॥ ६८ ॥

अर्थ-इस प्रकार से उपस्थित जन समुदाय राजा की ओर देख रहा था तब उस समय सम्राट ने गायकों की ओर दृष्टिगत किया तो उन लोगों ने महाराज का आशय समझकर अपना गायन वाद्य आरम्भ किया ॥ ६८ ॥

In this manner all people were looking at the king. The Raja turned the

looks to the musicians who understanding his intentions started their music. (68)

पद्य—रोमांचन सिद्ध जुं जु मालप गा । नामोद चुँचु* मालाद्या ॥
श्रीमंत्र गांधार रागवर्तक रेंव । रा महीपतिय गायकरु ॥ ६९ ॥

अर्थ–राज सभा में रोमांच-सिद्ध जुंजुं मालव-गानमोद-चञ्चु-श्रीमन्त गान्धा-रागवर्तक आदि ऐसे राजा भरत की सभा में प्रसिद्ध गायक थे ॥ ६९ ॥

There were every kind of musicians who were experts in different varieties of musical art, such as Romanch, Sidh, Janj Milap, Ganmod, Srimant. (69)

पद्य—बळ्ळवायदेरे येदे भ्रांत गोंडते मै । येल्ल तूगाडदोंदिनिसु ॥
अल्लाट वुँटोजे बिडिदु वायदेरेयुँड्ड । सल्ललितदोळ्ळु हाडिदरु ॥ ७० ॥

अर्थ–वे अधिक मुँह न फैलाते हुये व अपने शरीर को इधर उधर न हिलाते हुये कुशल पूर्वक गायन करने लगे ॥ ७० ॥

They started their song in a very polished style, neither opening their mouth nor moving their body too much. (70)

पद्य—तव्विव्वि यागदे तळ्ळकगोळ्ळँदे । वोव्वे इक्कदे जोकेयरिदु ॥
ओव्वरिव्वरू मूवरोंदोदुं कलेय मै । युव्विवोळ्ळु केळ्ळि सिदरु ॥ ७१ ॥

अर्थ–गम्भीर भाव से गाते समय गायकों ने अधिक (दीर्घ) ध्वनि भी नहीं की इस प्रकार कतिपय गायकों ने १-२-३-४-५ एक-एक स्वर (ध्वनि) कला को अच्छी तरह गाकर के प्रदर्शन किया ॥ ७१ ॥

Being expert they did not show any confusion and displayed their art in a very excellent manner. (71)

पद्य—जोलिमाडदे जोके विडिदुरे प्रातः । कालद रागव नरिदु ॥
आळापि सिदरु केळुव जनरेदे तं । गाळ्ळि वीसिद तेरनागे ॥ ७२ ॥

अर्थ–जब उन्होंने राग भंग न करते हुये स्वर ताल युक्त बहुत कुशलता के साथ सुप्रभात

* यादित्य ।

(प्रातः गायन) प्रातः काल के योग्य आलाप आरम्भ किया तो ऐसा मालूम होता था कि सभा में उपस्थित श्रोताओं के हृदय व छिड़के हुये सुगन्धित जल की तरह शरीर में सुगन्धित वायु लग रही है क्या ? ॥ ७२ ॥

When they started their morning song in the expert style, people were simply charmed to hear it as if fragrant air was touching their body and mind. *(72)*

पद्य—जोडु जोडागि तावरेयिंदिरोल्‌ु स्वर । माडुव तुँबिगळँते ॥
नोडुत भरत राजन मुखपद्मव । माडिद् राळापगळनु ॥ ७३ ॥

अर्थ–जिस प्रकार भ्रमर समूह सुगन्धित कमल पर गूँजता रहता है उसी प्रकार गायक समूह भी (दो-दो चार-चार हो करके) मधुर गायन सुनाने लगे ॥ ७३ ॥

Just as Bhramars hum near the lotus flower in the same manner, the musicians were singing the praise of the Raja Bharat in groups of two and four. *(73)*

पद्य—भरत राजन मुख चन्द्रनकंड । जानरिगे महाळापवुक्के ॥
वरुतिद् ुयिंुव कंड समुद्रद । भरत दंतेन वाग्णिपेनु ॥ ७४ ॥

अर्थ–जिस प्रकार चन्द्रोदय होने पर समुद्र उमड़ आता है उसी प्रकार राजा भरत के चन्द्र-मुख को देखकर गायकों का हृदय उमड़ आता था वह दृश्य अवर्णनीय है ॥ ७४ ॥

Just as ocean rises in tide at the sight of the full moon, so did the heart of the musicians with joy at the sight of the Raja's face *(74)*

पद्य—भरत चक्रिय नेनेदरे वारदवरिगू । भरत शास्त्रद कतेवहुदु ॥
भरत राजान मुँदे भरत शास्त्रद सिरि । भरत वण्णुव दाव गहन ॥ ७५ ॥

अर्थ–उन सम्राट भरत के स्मरण मात्र से अज्ञ (अनभिज्ञ) लोगों को भी भरत शास्त्र (संगीत शास्त्र) आ जाता था तब राजा भरत के सामने भरत शास्त्र का ज्ञान हो जाय तो कौन सी बड़ी बात है ॥ ७५ ॥

The very name of Raja Bharat inspired even ignorant persons to sing excellently. Where was then the surprise that those already expert could excel in this art. *(75)*

पद्य—प्रातः कालद रागदोळोडगूडि । वीतरागन स्मरणेगळा ॥
रीतियरितु हाडिदरु केळ्वरेल्लर । पातक परिदोडुवंते ॥ ७६ ॥

अर्थ-प्रभात राग (प्रातः गान) के साथ वीतराग भगवान का शुभगान करते हुये इस प्रकार कलात्मक रीति से गायकों ने गायन किया कि सुनने वालों के सभी पाप नष्ट हो जांय ॥ ७६ ॥

The morning praise of the Lord was sung in such an excellent manner and in such sweet tone, that it purified the very soul of the audience. (76)

पद्य—भूपाळयिंद धन्वासियिंदा सर्व । भूपाळिगोडेयन मुंदे ॥
श्री पुरुनाथन पाडिदरेल्लर । पाप लेपव नैदुवंते ॥ ७७ ॥

अर्थ-उन्होंने भूपाली तथा धन्वासी राग में राजसमूह अधिपति चक्रवर्ती महाराजाधिराज भरत जी के समक्ष श्री आदिनाथ स्वामी की स्तुति करते हुये इस प्रकार गाया कि सबके पाप कर्म नष्ट हो जांय॥ ७७ ॥

They sung songs in different measures (Bhopali Dhanasri) and tunes in the presence of Chakravarti Bharat the Lord of kingdoms in praise of the Lord Adi Nath in such a manner as to remove the dirt of every ones Karms. (77)

पद्य—मलिनविल्लद मनंदिंदा निष्कलन नि । र्मल नित्यननादि जिनन ॥
मलहरियिंद पाडिदरु केळ्वर कर्म । मलहरिवंते गायकरु ॥ ७८ ॥

अर्थ-उन गायन विशारदों ने शुद्ध मन से पवित्र-निष्कलंक अविनाशी, निर्मल-भगवान आदिनाथ प्रभू की मलार राग में स्तुति की जिससे सुनने वालों के कर्म मल (पाप कर्म) दूर हो जाय ॥ ७८ ॥

Those expert musicians sang the praises of the pure and Immortal Lord Adi Nath with a pure heart in Malar tune to remove the dirt of the Karms of the hearers. (78)

पद्य—देशाक्षियिंद जिनेंद्रन गुणगळ । देशाधिपति मेच्चे हाडि ॥
कौशल मंगळाष्ठकवनु संगळ । कौशिके यिंद हाडिदरु ॥ ७९ ॥

अर्थ-देशाक्षी राग में भगवान जिनेश्वर का गुणगान करके उन लोगों ने देशाधिपति भरत महाराज को प्रसन्न किया। मंगलकौशिक राग में मंगलाष्टक गा करके उनके मन को संतुष्ट किया ॥ ७९ ॥

By singing the praise of the Lord through Deshasri tune, they pleased Raja Bharat, and through Mangal Kaishik tune they pleased the mind of the RAJA. *(79)*

पद्य—दंडिगेगळ श्रुतिदंडगे होगदे । कंडोडगूडि कंठदोळु ॥
गुँडाक्रि भैरविइंद कुसुम को । दंडदललणनं पाडिदरु ॥ ८० ॥

अर्थ–ताल स्वर में विचलित न होते हुये सभी ने मिलकर समान व एक स्वर में कोयल कूक के समान मीठी वांणी में गुण्डाक्री और भैरवी राग से कामदेव स्वरूप राजा भरत के सामने भगवान की स्तुति की ॥ ८० ॥

Without faltering or flaw in a sweet tone of a Cuckoo they sang the praise of the Lord before Raja Bharat *(*Kusum Kodand Cupid like*)*. *(80)*

पद्य—वीणेयदनियावुददरोळु पाडुव । गाणद ध्वनि यावुदेंदु ॥
काणिसि कोळ्ळदे जिनसिद्धि महिमेय । काणिसि पाडिद रोलदु ॥ ८१ ॥

पद्य—चीरदे वत्तदे जति जाति कदुणे । जारदे वडलदंडिसदे ॥
एरविळिय लहुद हदु लेसने सवि । दोरि हाडिदरु गायकरु ॥ ८२ ॥

अर्थ–वीणा की ध्वनि कौन सी है एवम् राग की ध्वनि कौन सी है ये भी न प्रगट करते हुये जिन और सिद्धों के स्वरूप की महिमा का गुणगान करने लगे ॥ ८१ ॥

अर्थ–अधिक ध्वनि न करते हुये, ताल स्वर सहित एवम् शब्द खण्ड न करते हुये, उतार व चढ़ाव के साथ जिससे सुनने वालों को अति रुचकर लगे । इस प्रकार सभा जनों को आनन्दित करते हुये राजा भरत के सामने गाया ॥ ८२ ॥

Absorbed in their respective art, without disclosing the particular tune in the violin or the meter in the song they sang the praise of the LORD, in sweet and soft tune in properly regulated voice in a manner to please every body. *(81-82)*

पद्य—किन्नरि विडिदाडि देवन महिमेय । विण्णण वरेदु पाडिदरु ॥
किन्नरेके किंपुरुषरेकिवरे सा । किन्नरेके हलवरेंदनलु ॥ ८३ ॥

अर्थ–किन्नरी के समान सुमधुर वांणी में जिस समय गायक गा रहे थे उस समय श्रोताजन यह कहते थे कि अब किन्नरी व किंपुरुष की क्या आवश्यकता है ॥ ८३ ॥

They were singing the praise of the LORD in the lovely manner and people thought as if the Goddesses and Gods had come down to sing. (83)

पद्य—रन्न मूरर गुणवनु मुखवीणेय । सन्ना हदिंद पाडिदरु ॥
चेन्नायृतु सोवगायृतु सोगसायृतु लेसु ले । सिन्नोम्मेयेंदु केळ्वंते ॥ ८४ ॥

अर्थ-रत्नत्रय धारी जिनेन्द्र भगवान की महिमा को वे गायक मीठी वांणी में वीणा द्वारा सुन्दरता पूर्वक गारहे थे कि श्रोता लोग पुनः पुनः गायन के लिये प्रेरणा (फिर सुनाइये) किये विना नहीं रह पाते थे ! ॥ ८४ ॥

They were singing the glory of the Lord on violin in such a manner, as to get repeated applause and shouts of "Once more". (84)

पद्य—दनि लेसु मेळ्द जोके लेसाळ्ाप । वनुभव लेसु मत्तल्लि ॥
जिननाम कूडितु लेसु लेसेंदु रा । यन मुंदे नुडिद रिच्छेगरु ॥ ८५ ॥

अर्थ-उनके कंठ की ध्वनि तथा गायन, कला, स्वर, आलाप, ये सब स्वयम् प्रशंसनीय थे और इसमें श्री जिनेन्द्र भगवान के नाम का समावेश स्वर्ण में सुगन्धित मय गान था ॥ ८५ ॥

The voice of their throats, melody of their tune were worth all praise. But when the glory of the LORD was the subject, the effect was superb. (85)

पद्य—तुंबिय गाण वंतेरलि कोकिलनाद । वेंबर मातदँतिरलि ॥
तुंबुर नारद रिन्नेके होपुरे । येंबते सोगसि हाडिदरु ॥ ८६ ॥

अर्थ-सभासद कहते थे कि कहीं भ्रमर तो नहीं गूंज रहे हैं । ओ हो कोकिला का स्वर भी इनके सामने फीका मालूम पड़ता है । अब इनके आगे तुंवर नारदों की क्या आवश्यकता है । उनके गायन व आलाप ध्वनि अवर्णनीय व बहुत ही रुचिकर थे ॥ ८६ ॥

Their performance was par excellence. People said, "it is the humming of the Bhramer or the melody of Cuckoo." (86)

पद्य—हसुळे कल्मर पावु पशु मृग गळु गान । रसके मोळुवरेंदरिन्नु ॥
रसिक सोलरे सभेयेल्ल केळ्दु मै । मसकदिद्दु वेरगागि ॥ ८७ ॥

अर्थ-पाषाण, वृक्ष, सर्प, पशु, पक्षी आदि भी सुमधुर गायन पर मुग्ध हो जाते हैं तो क्या

फिर रसिक मनुष्य प्रसन्न नहीं होंगे ? उन गायकों के गति गायन से सारी समाज सभा अपने को भूल गयी । कारण गायन की मनोहर प्रभुता अवर्णीय थी ॥ ८७ ॥

Even stones, trees, snakes animals, and birds got charmed by songs what to say of men and women. The whole court got simply lost in bliss. *(87)*

पद्य—कोळलिगे पशुमिग घंटेगे हसुळे जो । गुळगे सर्प सुनाग सर के ॥
एळेवेरण दनिगोंदु वृत्त गुंडाक्रिगे । शिलेयोसरु वुदेदु घनवे ॥ ८८ ॥

अर्थ-वंसरी से पशु, नागसर (तुम्बी) से सर्प, कन्याध्वनि से वृक्ष, गुणडाक्रि गायन से पाषाण जब मुग्ध हो जाते हैं तो मनुष्य को तल्लीन होने में क्या आश्चर्य है ॥ ८८ ॥

There is no surprise in men forgetting themselves in rapture, when snakes are charmed by music from "Toombi", and birds by melody from flute *(88)*

पद्य . गानवेल्लके हितव हुददु धर्मक । यानुचरितरु वागे पुण्य ॥
हीन सतियराट वेटे काळग वंद । रेनेन्न वहुददु पाप ॥ ८९ ॥

अर्थ-जितने भी गायन किये गये सभी हितकारक थे । धर्म कथा रूप चरित्र में वे गायन पुण्य बंध के कारण थे । नीच हीन स्त्रियों की कथा । खेल व नृत्य एवम् शिकार खेलना युद्ध कथा इत्यादि बातों को सुनना ये सभी पाप बन्ध के कारण हैं इसलिये राजा भरत के दरबार में ऐसी कथा न होकर, भगवान के स्तुति रूप में गायन करने से पुण्य रूप होकर सुनने वाले को पुण्य बन्ध होता था ॥ ८९ ॥

All the songs were beneficial. They were the cause of the bondage of good Karmas, since they were in the praise of the Dharama. By hearing the talks about women, administration, food and war, the bondage of evil Karma is caused. Hence such talks were avoided in the Court of Raja Bharat, *(89)*

पद्य—समव सरण विमल किरण दोळु । ममल मुनिगळ वृंददोळु ॥
कमल कर्णिकेगे सोंकदे निंद देवन । गमक व नोरदु पाडिदरु ॥ ९० ॥

अर्थ-अमल (निस्पाप) मुनियों के समूह में कमल कर्णिका को स्पर्शन कर विमल प्रकाश युक्त भगवान अर्हंत समवशरण में विराजमान है इत्यादि अनेक प्रकार से अरहंत भगवान के गुणों का वर्णन करते हुये भक्ति युक्त होकर आनन्द के साथ गाने लगे ॥ ९० ॥

They began to sing the praise of the LORD Adi Nath with devotion who was seated above the lotus flower without any support in the midst of a galaxy of saints. *(90)*

पद्य—चित्रवल्लवे नळिनद मेले गगन नि । च्चेत्र दोळ्रुह नोप्पिहुदु ॥
धात्रिय हंगे हुविन हंगे चिन्मय । गात्रेगे हंगळिद्वगे ॥ ६१ ॥

अर्थ–क्या यह आश्चर्य की वात है ? कदापि नहीं । कमल के ऊपर भी चार अंगुल छोड़ कर निराधार आकाश में खड़े रहने की सामर्थ्य अरहंत परमेष्ठी के सिवाय और किसको है । क्या उन्हें रहने के लिये धरातल की आवश्यकता है, इसी प्रकार कमल पुष्प की भी क्या आवश्यकता है । जिन्होंने सारे संसार को तृणवत् समझ कर ठुकरा दिया फिर उन्हें किस वस्तु की आवश्यकता है ॥ ९१ ॥

Note:—The Theme of the songs was not the description of the body of the women, or sports or politics. The theme was the description of Dharma and Raja Bharat used to derive pleasures from such songs.

prayers were offered to Lord Adi Nath who was seated 4 cubits above a lotus unsupported, in the most exalted state in the Samosharan. Purest beam of light emanated from his body. All round was a galaxy of holy saints.

What a wonder that Sri Arhant Bhagwan was sitting above the lotus leaves without any support *(that is in the air)*. But there is nothing unusal in this for Him who gave up the world's wealth and splendour like straw, attained spiritual glory, unburdened himself of the gross physique and attained omniscience. *(91)*

पद्य—सरसियोळंबुज काननदल्लि के । सरियिहुदिदु लोकरूढि ॥
सुरर नडुवे सिंह सिंहद मेले ता । वरे इदच्चरि जिनमहिमे ॥ ६२ ॥

चंद्र नोळ्वन कंडु वल्लेवु मूवरु । चंद्ररोंदागे राजिपुदु ॥
रुंद्र विस्मयवेंदु मुक्कोडे योडेय जि । नेंद्र न नोल्दु पाडिदरु ॥ ६३ ॥

अर्थ–सरोवर में कमल का निवास, जंगल में सिंह का निवास लोक प्रसिद्ध है परन्तु देव के बीच में सिंह, और सिंह के ऊपर कमल का रहना यह तो महान् आश्चर्य की बात है । भगवान जिनेश्वर की ही ये सभी महिमा है ॥ ९२ ॥

अर्थ–आकाश में एक चन्द्र का दर्शन तो होता है। परन्तु तीन चन्द्रमा एक जगह विराज मान हों, तो क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है? चन्द्रस्वरूप देदीप्यमान तीन छत्रधारी जिनेन्द्र भगवान की शोभा हो रही है इस तौर से गायक विशारदों ने सुमधुर गायन सुनाकर राजा भरत को प्रसन्न किया ॥ ९३ ॥

Lotus in the pond and lions in dense forest is a usual sight. But in the Samosharan, there were all kinds of living beings. There were lions, and lotus above lions and Sri Bhagwan was seated above lotus. Over the Bhagwan were three Canopies They looked like three moons blended into one. *(92-93)*

पद्य—गगनदोळमररु जयजयवेंतुत स्वा । मिगे हूमळे गरेवाग ॥
मगमगि सुव कंपिंगेरगुव तुंबेय । बगेय विन्नणिसि पाडिदरु ॥ ९४ ॥
दिंदिमि दंदन तोदिगिदे मिकुदिं । मेंदु नाना विधदल्लि ॥
वृंदारक वृंद बाजिसुत्तिह सुर । दुंदुभिरववं हाडिदरु ॥ ९५ ॥
अंकुर पत्र पुष्प गळिंद नवरत्न । संकुळ रूपिनिं देसेव ॥
कंकेलि वृक्ष जिनेंद्र नोत्तिनोळिर्प । बिंकव नोल्दु पाडिदरु ॥ ९६ ॥

अर्थ–आकाश में देवगण जय जय करते हुए भगवान के ऊपर पुष्प वृष्टि करते समय उन पुष्पों की सुगन्ध से लुब्ध हुये भ्रमर सुमधुर गुञ्जारव कर रहे हों। उसी प्रकार भ्रमर गुंजन के तुल्य गायकों ने भगवान का वर्णन करते हुये गायन राजा को सुनाया ॥ ९४ ॥

अर्थ–(देवगण) आकाश में करने वाले दिम, दिम, दन, दन, तदगिध, तदगिध मि-कुदम इस प्रकार से ताल स्वर युक्त विधि से गाये जाने वाले आकाश में देवगणों के द्वारा होने वाले सुर दुन्दुभी गायन को गाकर के गायकों ने सुनाया ॥ ९५ ॥

अर्थ–कोमल लताओं पत्र, पुष्पों से अंकुरित और नवरत्नों से सजावट किया हुआ भगवान जिनेन्द्र के समाने रहने वाले कंकोलि वृक्ष का बहुत आनन्द के साथ गुणगान करके राजा भरत को सुनाया ॥ ९६ ॥

Gods were showering flowers from the heavens above on the feet of Bhagwan Adi Nath. They were also singing hymns of praise to the tune of sweet music. *(94 to 96)*

पद्य—दिव्यसुखव दिव्य दर्शन बोधव । दिव्य शक्तिय दिव्य पदवा ॥
दिव्य सिद्धिय नेले गाणिप देवन । दिव्य ध्वनिय पाडिदरु ॥ ९७ ॥

अर्थ–भगवान की ध्वनि दिव्य है, क्योंकि स्वयमेव भगवान दिव्य हैं एवम् उनका सुख भी दिव्य व दर्शन भी दिव्य तथा ज्ञान एवम् शक्ति भी दिव्य है इसलिये उनकी सिद्धि भी दिव्य है। इस प्रकार दिव्य स्वरूप भगवान के सर्वगुणों का वर्णन करके गायकों ने सुनाया ॥ ९७ ॥

The Lord possessed all the glory of arhant, omniscience omnipotence, letterless speach, all blissfulness and the highest position. *(97)*

पद्य—कामन विल्लु मेल्वळसिद हेमाद्रि । स्वामिय रूप नातंते ॥
भामण्डल वळसिर लेरेवर्हन । भूमीश मेच्चे हाडिदरु ॥ ९८ ॥
मंजु सुत्तलु सुळिदाडु वेडेयोळप । रंजि गिरि मेरेवंते ॥
रंजिसु वरुवत्तु नाल्कु चामरद वे । डंग विन्नणसि हाडिदरु ॥ ९९ ॥

अर्थ–इन्द्रधनुष के द्वारा मेरु पर्वत जैसे पर्वत भी हेमाद्रि पर्वत के समान होकर भगवान के स्वरूप को धारण किया है क्या ? ऐसे ही भगवान के पृष्ठ भाग में (पीछे से) रहने वाले भामन्डल की प्रभा इस प्रकार से शोभा को बढ़ा रहे थे कि मानो इन्द्रधनुष ही वहाँ पर लाकर रक्खा गया हो इस भाँति से गायकों ने गाकर सुनाया ॥ ९८ ॥

अर्थ–डुलाये जाने वाले चौंसठ धवल चवरों के बीच में भगवान ऐसे शोभायमान हो रहे थे कि मानो श्वेत बादल ही उनको घेरे हुये हैं, ठीक इसी प्रकार महाराज भरत देखने वालों को प्रतीत होते थे ॥ ९९ ॥

Just as rainbow beautifies the Himvana mountainso, did Lord Rishab Deo beautify the whole atmosphere around Kailash mountain. With sixty four Chanwars round the Lord, it appeared as if white frost was surrounding the Himvana mountain. The sight was so lovely.

In the above manner the glory of the Lord was described in the songs to please Raja Bharat. *(98-99)*

पद्य—सिंहासन मोदला देंप्पु प्रतिहार । संहतियोळु कांतिमयदा ॥
संहननद गाडि मेरेयलोडुव कर्म । संहार जिनन पाडिदरु ॥ १०० ॥

जिनन पोगळि कूडे सिद्धर कीर्तिसि । मुनिगळ वंदिपि मने ॥
तनुविनोळिद्दात्म तत्वविचार व । जनपति मेच्चे हाडिदरु ॥ १०१ ॥

अर्थ–कान्तिमय सिंहासनादि अष्ट प्रातिहार्यों के बीच में विराजमान एवम् चामरादियों

कर्मों को नष्ट किये हुये आदिनाथ भगवान की स्तुति गायकों ने अत्यन्त उत्सुकता पूर्वक राजा को सुनाई ॥ १०० ॥

अर्थ–इस प्रकार जिनेश्वर के गुणों को गाकर साथ ही साथ सिद्ध भगवान की स्तुति करते हुये मुनि समुदाय को नमस्कार किया, इसके उपरांत शरीर में रहने वाले आत्म विचार एवम् तत्त्व विचार की जिससे राजा भरत का मन आकर्षित हो इस तरह से गायक विशारदों ने गाकर स्तुति की ॥ १०१ ॥

After offering prayers to Lord Rishab Deo, Praise of Siddha (liberated souls) was sung and then respect was offered to the galaxy of sains and then was described the bliss of the soul residing in a body. (100-101)

पद्य—आरु बल्लरु हंसततत्त्वव तम्म श । रीर तुँबिरुतिहुददनु ॥
हारदे सारदे होर होर गाडि सं । सार दुःखवनुणुतिहरु ॥ १०२ ॥

अर्थ–कौन जानता है कि आत्म तत्त्व अपने शरीर में परिपूर्ण भरा हुआ है संसारी जीव अपने आत्म तत्त्व को न जान कर बार बार बाहर ही ढूंढते हुये दुःख का अनुभव कर रहा है ॥ १०२ ॥

Instead of realizing the soul substance which is filling the whole body, people run after external objects for obtaining happiness, get lost in them and suffer untold miseries. (102)

पद्य—होळेव कन्नडि कैयोळिदु नोडदे नीर । नेळलल्लि भोगव नोळ्पंते ॥
ओळगिद् चिद्रूप नोडदे जगवेल्ल । बळ्ळुतिहुदु होरगाडि ॥ १०३ ॥

अर्थ–चमकता हुआ दर्पण हाथ में होते हुये भी पानी में अपने प्रतिबिम्ब को देखने वाले मूर्ख के समान अपने शरीर के भीतर रहने वाली अपनी आत्मा को न देखकर यह जीव सर्वत्र घूम रहा है, कितने दुःख की बात है ॥ १०३ ॥

A person who tries to obtain happiness from external objects instead of realizing it in his own soul is just like a person who does not look his image in the mirror which is in his own hand but runs to a pond to see the reflection in the water. (103)

पद्य—मनेयल्लि हूळिद् निधियकानदे होगि । धनिकर याचिसुवंते ॥
तनुवि नोळिद्दात्म रूप निट्टिसदे मे । दिनिय तोळलि नोडुतिहरु ॥ १०४ ॥

अर्थ-घर में गाड़े हुये निधि को नहीं देखते हुये श्रीमन्त (धनिक) के पास जाकर याचना करने के माफिक अनादि काल से शरीर में रहने वाले आत्म रूपी निधि को नहीं देखते हुये बाहर ही सर्वत्र ढूंढ़ रहा है, ये कितने दुःख की बात है ॥ १०४ ॥

A person who does not realize the treasure of his own soul but wanders though the universe in its quest is just like a person who does not care to see his own treasure in his house but begs for some from others. (104)

पद्य—नरुगळ्नि नोळ्गण रसव काणदे पशु । होरगणेलेय सविवंते ॥
अरिदोळगात्म सुखव नुणलरियदे । होरगेल्ल सुवरंग सुखके ॥ १०५ ॥

अर्थ-ईख में विद्यमान मधुर रस को न जानकर के सूखे पत्ते को खाने वाले पशु के समान मूर्ख लोग आत्मीय सुख से अनभिज्ञ होने के कारण शारीरिक सुख में ही मग्न रहते हैं ॥ १०५ ॥

A person who does not realize the soul (his innerself), but hankers after external objects and tries to derive happiness from them, is like the buffalo which eats the leaves of a sugarcane, but does not suck its juice. (105)

पद्य—पसुरेले गळविदु तनिगळ्नि नोळ्गण । रसव कोंवाने गळंते ॥
हसगेट्टु तनसुख कोलियदे केलरु भे । दिसि निजसुख व भोगिपरु ॥ १०६ ॥

अर्थ-हरे हरे पत्तों को छोड़ कर जैसे हाथी ईख के रस का स्वाद लेता है उसी प्रकार कोई कोई भेद ज्ञानी शरीर के सुख को तुच्छ मानकर आत्म सुख का ही अनुभव करता है ॥ १०६ ॥

There are, however, some persons who realize happiness of their soul and give up the external objects. They are like the elephant who sucks the juice of sugarcane and give up the leaves. That is to say such persons give up sense pleasures, and realize the bliss of the soul through self contemplation. (106)

पद्य—पिडिदिर्दु तन्न हस्तदोळु वस्तुव नोड । दडवियोळरसुवनंते ॥
ओडलोळिद्दात्मन नोडलोल्लदे मूरू । पोडविय चिंतिसुतिहरु ॥ १०७ ॥

अर्थ-अपने हाथ में विद्यमान पदार्थ को न देखकर सारे जंगल में उसे खोजने वाले मनुष्य के समान शरीर में स्थित आत्मा को न देखते हुये सारे लोक में ढूंढने पर क्या आत्मा की प्राप्ति होगी ? कदापि नहीं ॥ १०७ ॥

A person who does not realize that Parmatman resides in himself but

wanders in the world searching for him is like a person who has got his desired object in his own grips but forgetting it searches for it every where. (107)

पद्य—ओरेयोळिद्दायुददंते कामुगिलिन । मरेयोळगिह सूर्यनंते ॥
होरगे कलमपदमैयहुदोळगात्मनु । करेवुतिहनु तिळिवेळगा ॥ १०८ ॥

अर्थ–म्यान में रहने वाली तलवारके समान तथा बादलसे ढके हुये सूर्यके समान उसी प्रकार कर्म से आवद्ध शरीरके अन्दर छिपे हुये आत्म स्वरूप का वर्णन करते हुये गायकों ने गाया ॥१०८॥

Just as one does not see the sword concealed in a scabbard or the sun concealed by clouds, so persons do not see and realize the soul environed in the body. (108)

पद्य—तिळिवे शरीर तिळिवे रूपु बेळगे मै । बेळगे तानागिरुति हुदु ॥
तिळिवु बेळगुगळे हंसन कुरुहेंदु । तिळिदु नोळ्पवनीग धन्या ॥ १०६ ॥

अर्थ–ज्ञान ही आत्मा का स्वरूप है वह आत्मा निर्मल ज्ञान दर्शन मय स्वरूप है, ये ज्ञान दर्शन ही आत्मा का चिन्ह है, ऐसा ही वार वार विचार करने वाले पुरुष धन्य हैं ॥ १०९ ॥

Knowledge is the attribute of soul which has pure knowledge and conation. Blessed are those persons who constantly concentrate on these attributes. (109)

पद्य—पुरुपाकारनु मैयोळिदुद मैय । वेरसदे शुद्धात्मनिहनु ॥
पुरुपाकारव नाकाश दोळगोंद । बंरेदरो एंब भावदोळु ॥ ११० ॥

अर्थ–यह आत्मा पुरुपाकार होकर शरीरमें रहते हुये भी शरीरको स्पर्श नहीं करता है और न शरीरमें मिलता है आकाश के बीचमें पुरुपाकार रूप बनाये हुये चित्रके समान यह आत्मा है ॥११०॥

A person should realize that the soul is co-extensive with his body, is of the same form but it is like a figure sketched in the sky which is there but separate from it. (110)

पद्य—तगडिनोळगे तोर्प छाया प्रतिमेयो । हगलल्लि बेळुदिग ळल्लि ॥
सोगसुव छाया पुरुपनो एंबंते । बगेगोळिसुवुदात्म रूपु ॥ १११ ॥

अर्थ–जैसे ताँबे के चद्दर में निर्मित की हुई छाया प्रतिमा दिन में प्रकाश मय दीखती है, ठीक उसी छाया प्रतिमा की तरह शरीर में पुरुपाकार रूप में आत्मा रहती है ॥ १११ ॥

Image carved out in a copper plate can be seen in the sun-light or moon light, but the image which lies concealed in the body cannot be seen by means of any light except by the light of self experience. *(111)*

पद्य—छाया प्रतिमेय छाया पुरुपन । छायेगे सुज्ञान विल्ल ॥
आयरडके तिंल्गिोडगूडलदु ताने । कायदोल्हिात्मरूपु ॥ ११२ ॥

अर्थ—छाया प्रतिमा तथा पुरुप की छाया को ज्ञान नहीं है उसी प्रकार मनगोचर वाक्‌गोचर न एवम् दूसरों के द्वारा नहीं जाना जाने वाला ऐसी शुद्ध आत्मा छाया रूप की भाँति अपने शरीर में ही है ॥ ११२ ॥

The pure soul resides in the body like a shadow. No one can describe it, nor can be seen by any one. *(112)*

पद्य—नालगे कुड्डहु शरीरवेवाद्य नि । राळात्मने वाद्याकारा ॥
ताळि नुडिसुतिदु दु विट्टु होदरे देह* । डोल्निंददोळु विदिहुदु ॥ ११३ ॥

अर्थ-जिह्वा रूप चोप शरीर रूपी वाद्य उससे अलग आत्मा, वाद्याकार उसको बजाने वाले "आत्मा" शरीर छोड़कर निकल जाय वही (ध्येय) ढ़ोल रूपी शरीर गिर जाता है अर्थात् शरीर आत्मा से अलग हो जाता है ॥ ११३ ॥

The tongtue is the stick, the body is the drum, the player is the Parmatman *(soul)*. If soul gives up the body, then the tongue and the body both become useless. *(113)*

पद्य—नुडिसुव वाद्यकारनु होदमेलल्लि । कुड्डहु वाद्यगळिरुतिहुदु ॥
पिडिदु मत्तोब्बरु नुडिायेसलरिदव । गडद वाद्याविदल्ते देह ॥ ११४ ॥

वाद्यगळारारु पिडिदु बाजिसिदरे । वेद्यवेनिसि दनियहनु ॥
चोद्य वी तनुवाद्य ताळ्दोर्वगज्ञरे । भेद्य वागद ध्वनि गोडदु ॥ ११५ ॥

अर्थ--बजने वाले वाद्याकार निकल जाने से चोब और वाद्य शेप रहते हैं फिर तो कोई बजा नहीं सकता ठीक इसी प्रकार यह भीतर रहकर शरीर को बजाने (चलाने) वाला जीवात्मा निकल जाने के बाद ढ़ोल के समान यह शरीर बेकार होजाता है ॥ ११४ ॥

---

* हळे ।

अर्थ–यह शरीर एक तरह बाजे के समान है बाद्य को जबतक बजाने वाला नहीं बजाता तब तक नहीं बजता। इसी प्रकार जब तक शरीर में आत्मा नहीं है तब तक उस शरीर का कोई उपयोग नहीं हो सकता ॥ ११५ ॥

A musical instrument gives the sound when the musician plays on it otherwise not. Similarly body will function as long as the soul abides there after that it will be corpse, a dead matter. *(114-115)*

पद्य—नुडिय लरियद् देहव नुडियिसुवनु । नडियलरियद् देहवनु ॥
नडेयिसुवनु देहवेरवेंदु बगेयदे । केडुतिह नात्मनग्योग्यो ॥ ११६ ॥

अर्थ–न बोलने वाले शरीर को आत्मा होने से शब्द गुंजार कराने लगता है, न चलने वाले को चलाता है, ध्येय (शरीर) और आत्मा दोनों को भिन्न न समझ करके संसार दुःखी हो रहा है। भेद ज्ञान न होने के कारण शरीर के दुखी होने पर आत्मा भी दुखी हो जाती है ॥ ११६ ॥

It is the soul which make the immovable body move, it produces speech from the speechless. But when the soul leaves the body, the whole body and limbs become a dead matter, totally useless. *(116)*

पद्य—लोहव होकाग्नि होय्लेगेडुवुदा । लोहवनगले होय्लुंटे ॥
देहव होकिद् रात्मगे बाधेयु । देहवळिये बाधेयुंटे ॥ ११७ ॥

अर्थ–जिस समय अग्नि लोहे में प्रवेश करती है तब लोहार उसको हथौड़े से ठोकता है परन्तु जब वह अग्नि लोहे से निकल जाय तो उस समय कौन ठोकता है। उसी प्रकार से आत्मा शरीर में प्रविष्ट है उसको कौन सी बाधा है। कोई भी नहीं। आत्मा को शरीर सम्बन्धी मान कर बाधा मालूम देती है ॥ ११७ ॥

When iron is made red hot and is then hammered, it is iron which receives the blows and not the fire which is in it. Similarly when one is afflicted with misery and disease, it is his body which suffers them and not his soul which remains untouched like the fire in the iron. *(117)*

पद्य—होत्त देहव बरु मरण दोळ्बिट्टरे । मत्तोंदु देह मुंदहुदु ॥
होत्त देहवबिट्टु मत्तोंदु देहव । पडेदे निल्वुदु मुक्ति ॥ ११८ ॥

अर्थ–जीव वर्तमान देह को मरण के समय छोड़ देवे तो आगे कर्मानुसार फिर जन्म मरण

को प्राप्त है। इसी शरीर को छोड़कर आगे अन्य शरीर धारण न करने की अवस्था को प्राप्त करना मुक्ति है ॥ ११८ ॥

The soul leaves one body after the duration of age Karma has been completed (at death), and enters another. But if it does not enter any other body it attains Nirvana. (118)

पद्य—हिडिद् देहव बिट्टु मत्तोंदु देहव । पिडियदे निलुर्देतेनलु ॥
विडदे सुज्ञानाग्निइंद् कर्मद् बेर । सुडुवुदोंदेदुपाडिदरु ॥ ११९ ॥

अर्थ–कोई प्रश्न करता है यह कथन तो सरल है परन्तु ऐसा होना कठिन है क्योंकि इस शरीर को छोड़ कर पुनः शरीर धारण न करने का क्या उपाय है ? इसका प्रत्युत्तर तो यही है कि सुज्ञान रूपी अग्नि से कर्म रूपी जड़ को जलाना यही एक सच्चा उपाय है ॥ ११९ ॥

It can very well be pointed out that it is easy to say so but it is difficult to happen like this. What could be the way in which the transmigration could be stopped. The answer to this is that the effective way to achieve this is to destroy the karmas through the fire of self contemplation. (119)

पद्य—बेरु पारिद वृक्ष तन्न ता केडेवंते । क्रूर तैसज कार्मणगळा ॥
सारात्म शिखेयिंद् सुडलागि बाह्यश । रीरवळिवुदाग मुक्ति ॥ १२० ॥

अर्थ–जैसे जड़ नष्ट होने पर वृक्ष अपने आप गिर जाते हैं उसी प्रकार क्रूर–ऐसा–अनादि काल से आत्मा से लगा हुआ तेजस् और कारमान आत्म रूपी अग्नि शिखा से जलते हुये बाह्य शरीर गिर जाना यही मुक्ति है ॥ १२० ॥

When the root is destroyed, the tree falls down. Similarly when the Karma is destroyed by the fire of self contemplation, the cycle of births and death disappears and the soul attains Nirvana. (120)

पद्य—आदि जिनन वाक्यविदु हंस योग नि । भेदद भक्ति सुयुक्ति ॥
भेद विज्ञानिगे गम्य भेदात्मवि । नोदिय मुंदे हाडिदरु ॥ १२१ ॥

अर्थ–यह आदिनाथ भगवान का दिव्य सन्देश है आत्मा और शरीर का भिन्न ज्ञान प्राप्त करने के लिये उपरोक्त विचारों को दृढ़ता आवश्यकीय है यह भेद विज्ञान के विचार से ही प्राप्त हो सकता है, अन्य व्यक्ति को नहीं। इस प्रकार आत्म विनोदी गायन गायकों ने महाराजा भरत के सामने गाकर सुनाया ॥ १२१ ॥

This is the hallowed message of Lord Adi Nath that the real knowledge of soul can be attained by practising discrimination between soul and non-soul. (121)

पद्य—राजनागलि योगि यागलि गृहियाग । ली जिन तत्ववनरिदु ॥
श्री जिन भक्तियोळिरे मुक्ति तप्पदें । दाजानरोल्दु पाडिदरु ॥ १२२ ॥

अर्थ–तब उन लोगों ने अपने गायन में यह भी कहा कि चाहे राजा हो चाहे योगी हो अथवा गृहस्थ हो वह इस जिन तत्व को जान कर उनकी भक्ति करेगा तो उसको अवश्यमेव मुक्ति मिलेगी इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १२२ ॥

It imports the power of discriminating and distinguishing the body from the soul and leads to Nirvana.

Only those persons who adopt this method, of realizing the separate existence of soul and body through self contemplation attain Nirvana.

A person may be a king, a Yogi or a house-holder. If he remains absorbed and stead fast in his devotion to Jain Bhakti he can attain Liberation in no time. (122)

पद्य—हुट्टिताळे नसुनगे योगदोळु मन । दट्टिता नुडियदे चक्रि ॥
इट्ट नवरमेले तन्न कोमल हस्त । मुट्टि देवांग वस्त्र वनु ॥ १२३ ॥

गान निंदुदु गायकर मेच्चुमिगे वंदु । दानंद संदद्दु सभेगे ॥
भूनाथना स्थान दोळगेइ निल्लिगा । स्थान संथे सुगंधि ॥ १२४ ॥

अर्थ–इस प्रकार गंभीर तत्त्वपूर्ण गायकों के गान को सुनकर राजा भरत मन में अति आनन्दित हुये और मुख पर हर्षोल्लास दरशाते हुये सम्राट ने उन गायक विशारदों को बुला कर अनेक वस्तु द्रव्यादि पारतोषिक रूप में दिया ॥ १२३ ॥

अर्थ–इस प्रकार गायकों के गान कौशल से राज सभा अति आनन्दित हुई व गायन भी समाप्त होगया। महाराज भरत भी हर्षोल्लास से उस स्थान में विराज मान थे ॥ १२४ ॥

The praise and description of soul was sung in the court and it enraptured the heart of King Bharat. He distributed ample rewards to the musicians who had sung these. songs The court was then dismissed. (123-124)

पद्य—ई जिन कथेयनु केळ्दिवर पाप । वीज निर्नाशन वहुदु ॥
तेजवहुदु पुण्य वहुदु मुँदोलिद्प । राजितेश्वर काणुवरु ॥ १२५ ॥

प्रेमदिंदिद नोदिदरे पाडिदरे के । ळ्दामोदवैदुंवरवरू ॥
नेमदि सुररागि नाळे श्रीमंद्र । स्वामीय काण्वरर्तियोळ्ु ॥ १२६ ॥

अभिमतसिद्धिदायक योगि नायक । उभय लावण्यवरेन्य ॥
प्रभेतोरु तेन्नांत रंगदोळ्िरु वोध । विभुवे चिदंवर पुरुपा ॥ १२७ ॥

अर्थ—इस जिनेश्वर की कथा को सुनने वाले भव्य जीवों के पाप रूपी वीज का विनाश होगा, और तेज तथा पुण्य वृद्धि होकर आगे अपराजित पद को प्राप्त होगा ॥ १२५ ॥

अर्थ—इस कथा को रुचिपूर्वक पढ़ने से तथा स्तुति को सुनने से आनन्द तथा शान्ति को प्राप्त होंगे और आगे जाकर नियम से स्वर्ग के सुख को प्राप्त होकर शीघ्र ही श्रीमंद्र स्वामी को देखेगा ॥ १२६ ॥

अर्थ—हे आर्य मत सिद्धि को देने वाले दाता और सव योगियों के नायक, उभय सिद्धि को प्राप्त करने वाले लावण्य युक्त प्रभो ! मेरे अन्तरंग में हमेशा ज्ञान रूपी प्रभा को वढ़ाते हुए हे चिदानन्द पुरुष मेरी वुद्धि को वढ़ाते रहो ॥ १२७ ॥

Those persons who will hear this glory of Raja Bharat with rapt attention will destroy the seeds of their sins, will get all the happiness and in the end attain unconquerable position *(Nirvana)*. Those who will read this with attention and recite it with devotion will have darshan of Simandhara Swami.

I pray to Lord Sidha, Niranjan Purusha, the attainer of the highest glory "Nirvana" the Teacher of all saints the bestower of all external and internal happiness, that he may bestow light in my heart and repose there till I attain Nirvana. *(125,126, 127.)*

अर्थ—इति राज स्थान (गान, संधिः प्रथम भागस्य प्रथमो सर्गः समाप्तः ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग:

पद्य—परमार्थ गुरुवे परं ज्योति रूपने । गरळ हरने भव हरने ॥
सरसदोळेनगे सन्मदोरु भव्याब्ज । तरणि निरंजन सिद्धा ॥ १ ॥

अर्थ-हे परमार्थ गुरू उत्कृष्ट ज्योति को धारण करने वाले, कर्म रूपी विष को हरने वाले भव को नष्ट करने वाले और भव्य जीवों को संसार रूपी समुद्र से पार करने वाले हैं निरञ्जन (कर्मरूपी अञ्जन को नष्ट करने वाले) सिद्ध भगवान अत्यन्त सुलभता पूर्वक मुझको सद्बुद्धि दो ॥ १ ॥

I pray to Parmarath Guru (Teacher of the path of liberation), the supreme light, the destroyer of the poison of Karmas, at whose contemplation the lotus like heart of the Bhavyas (people capable of liberation) blossoms forth, that he may bestow on me good sense without delay so that I may take up this work with ease and happiness. (1)

पद्य—संगीस गोष्टि निंदुदु साहित्य सु । संगतिगेळिसि नृपेन्द्र ॥
तुँग विद्वांसर नेरवि गोय्यने तन्न । कंगळ्ळ कांति दोरिदनु ॥ २ ॥

अर्थ-चक्रवर्ती भरत जी के स्थान में अब संगीत की ध्वनि नहीं सुनाई देती । अब भरत जी की इच्छा साहित्य कला की ओर झुकी है इसलिये उन्होंने विद्वत् समाज की ओर अपनी दृष्टि फेरी ॥ २ ॥

पद्य—कविगळु हलवरुँटवर मध्यदोळोब्ब । द्विविज कलाधरनेंब ॥
कविगिद्द नवन मोगव नोडलोडना । कवि नुडिदनु भाव वरिदु ॥ ३ ॥

अर्थ-सम्राट भरत की सभा में सुकवियों की क्या कमी थी ? उन सभी कवियों के बीच में द्विविज कलाधर नाम का एक बुद्धि चतुर कवि था । जब राजा भरत की उस कवि पर दृष्टि पड़ी तब विद्वान कवि राजा के भाव को समझ कर बोलने लगा ॥ ३ ॥

After the songs had finished, Raja Bharat, who was sitting in glory surrounded by artists of high class, turned his looks to a learned person named 'Dwij Kaladhar'. This poet atonce understood the wish of the Raja, stood up and said:— (2-3)

पद्य—श्री जिन चरणाब्ज सुरभि मधुव्रत । राजाधिराजाग्रगण्य ॥
राजित हंसकलानंद निनगेम । हाजयसिद्धिरस्तेंदा ॥ ४ ॥

अर्थ-कि हे राजन् तुम श्री जिनेन्द्र के चरण सेवक हो। राजा, महाराजाओं में अग्रगण्य चूड़ामाणी रत्न के समान हो, आत्म कला से आनन्दित होने वाले हो एवम् सब को आनन्दित करने वाले हो इसलिये तुम महा जय सिद्धि हो इस प्रकार से कवि ने वर्णन किया ॥ ४ ॥

"Blessings to you Rajan, whose devotion to the lotus like feet of Sidh Bhagwan is like that of a humble bee to a flower, who is the head of all princely order, and who remains enraptured in the art of soul liberation. May you achieve the highest victory." *(4)*

पद्य—जयसिद्धियेंवुदु वैरिभूपर नोत्ति। जयसिदरदु लौकिकार्थ ॥
भयवडिसुव काल कर्मव नोत्ति। जयसिदरदु परमार्थ ॥ ५ ॥

अर्थ-सिद्धि दो प्रकार की है एक लौकिक दूसरी पारमार्थिक सिद्धि। वैरियों का सामना कर अनेक प्रकार की चाल बाजियों व युक्तियों से जीतना यह लौकिक अर्थ सिद्धि है। अनादि काल से आत्मा के साथ सन्तान के रूप में रहकर सतत आत्मा को भयभीत करने वाले काल रूपी कर्म को स्वाधीन कर उसका सामना करके यह जीतना पारमार्थिक सिद्धि है ॥ ५ ॥

Victory is of two kinds, worldly and spiritual. The worldly victory lies in conquering the worldly foes through force, while the spiritual victory lies in vanquishing the dreadful enemy of Karmas which haunt the soul. *(5)*

पद्य—लौकिक जयवंतरुंदु पलंबरा। लौकिक परमार्थ वेरडा ॥
भूकांतरल्लि पडेवुदु दुर्लभ सुवे। वेक वेकद्के चक्रेश ॥ ६ ॥

अर्थ-कहीं राजा लोग लौकिक जय को प्राप्त करने वाले हैं और अनादि काल से करते आरहे हैं परन्तु हे राजन् लौकिक जय व परमार्थ जय इन दोनों जय को प्राप्त करना दुर्लभ है। क्योंकि उसके लिये विवेक व सुबुद्धि चाहिये इसलिये राजन् सुविवेक के साथ लौकिक जय व परमार्थ जय करने की शक्ति आप में ही है ॥ ६ ॥

Some Rajas achieve worldly conquests, while some spiritual victory. Those who can achieve both are very few. Only you can do this, since, oh king, for this, right knowledge is needed. *(6)*

पद्य—भोगविचार वेकु नृपतिगात्म। योगविचारवु वेकु ॥
राग रसिक नागवेकु भाविसे वीत। राग रसिक नागवेकु ॥ ७ ॥

अर्थ–राजा सर्वगुण सम्पन्न होना चाहिये कहावत भी है यथा राजा तथा प्रजा । यानि जैसा राजा होता है उसी प्रकार प्रजा भी होती है राजा को भोग विचार एवम् आत्म योग विचार भी होना चाहिये तथा राग रसिक भी होना चाहिये एवम् भाव पूर्वक वीतराग रसिक भी होना चाहिये ॥ ७ ॥

The Raja should be adept in both kinds of conduct, that of enjoyment of worldly pleasure and that of contemplation of the qualities of the soul. He should adopt the conduct of attachment and non-attachment to the worldly objects at the same time. *(7)*

पद्य—शृङ्गार कोविद् नागवेकात्म सु । संघ संमुख नागवेकु ॥
संगर संमुख नागवेकात्म यो । गांग कोविद् नागवेकु ॥ ८ ॥

अर्थ–श्रृङ्गार रसिक भी तथा अध्यात्म सम्मुख भी होना चाहिये शत्रुओं का सामना करने वाला भी होना चाहिये तथा आत्म योग प्राप्त करने में भी कुशल होना चाहिये ॥ ८ ॥

He should be an adept in Shringar Ras *(*pleasures of the senses*)* and should be expert in facing his enemies. At the same time he should enjoy the company of saints and should be the knower of the qualities of the souls. *(8)*

पद्य—इहलोक सुखव भोगिसवेकु नृपति यु । रसवनागवेकु धर्मदोळु ॥
बहुकांक्षेयोळु सिक्किदांतिर वेकु निः । स्पृहानागवेके देवोळगे ॥ ९ ॥

अर्थ–इह लौकिक सुख का उपभोग करते हुये धर्म में उत्सुक होना चाहिये, देखने वाले को ऐसा मालूम होना चाहिये कि संसार रूपी माया में फंसा हुआ है लेकिन हृदय में निःस्पृह होना चाहिये यानि संसारिक कर्मों को करते हुये भी संसार से विरक्त रहना चाहिये ॥ ९ ॥

He should enjoy the pleasure of the world and at the same time he should follow the *(*tenets*)* of Dharma with zeal. He should be engrossed in the worldly affairs,but should at the same time not have a heart in them. *(9)*

पद्य—धर्म दिंदादुदु सिरियेंदु सुखिसुत्त । धर्मव मरेयरुत्तमरु ॥
धर्म वेतरदेंदु भोग के मरुळागि । कर्मिगळा चरिसुवरु ॥ १० ॥

अर्थ–संपत्ति धर्म से ही प्राप्त होती है ऐसा निश्चय कर हमेशा धर्म में उत्सुक रहने वाला पुरुष धन्य है इसी प्रकार जो पुरुष । किसका धर्म कैसा धर्म, ऐसा ही कहकर भोग में ही रत



चक्रवर्ती राजा भरत की सभा में बहुत से विद्वान् कवि लोग थे, परन्तु आध्यात्मिक सरस कला के वर्णन करने वाले कविगण बहुत कम थे। जब भरत ने सभा में अनेक विद्वानों के बीच में बैठे हुए विचित्र कलाधर नामक कवि की तरफ भव दृष्टि फेरा तब वह कवि राजा भरत के इंगित भाव को खड़े होकर वर्णन करने लगा।

(यह चित्र श्री पद्मचन्द्र सुपुत्र ला० शम्भूनाथ लखनऊ की तरफ से छपा)

होकर धर्म को तिरस्कार करने वाले मूर्ख लोग सतत संसार रूपी समुद्र में मग्न होकर दुख रूपी समुद्र में गोता खाते रहते हैं ॥ १० ॥

It is the Dharma which is the bestower of wealth. This should always be borne in mind and the dictates of Dharma should be followed with zeal. But there are people who flout the principles of Dharma and plunge themselves into worldly pleasures. They suffer the pain of endless births and deaths. (10)

पद्य—कोडवेकु कोडुवल्लि पात्रवरियवेकु । नुडिवेकु मौनवू वेकु ॥
वडवरंतिरवेकु प्रभुविनंतिरवेकु । नडेयिदु जाति चत्रिवर ॥ ११ ॥
प्रजेयरिवारक्के हितनंते वैरि भू । भुजरिगे भुजगेंद्रनंते ॥
निजगुरुविगे भृत्यनंते धार्मिकरिगे । निजबंधुवागिर वेकु ॥ १२ ॥

अर्थ–हे राजन् समयानुसार पात्र अपात्र विचार कर अनुकूल दान भी देना चाहिये एवम् पड़ने पर मौनव्रत भी धारण करना चाहिये, तथा समयानुकूल ही बात चीत करनी चाहिये । साथ ही साथ गरीब बनकर भी रहे और राजा के समान भी रहे । ये ही क्षत्रियों के चिन्ह ११ ॥ *

---

* भावार्थ- पात्र तीन प्रकार के होते हैं उत्तम–मध्यम और जघन्य ।

उत्तम–दिगम्बर मुनि सर्व संघ परित्याग और संसारी व्यसन वासनाओं से रहित ध्यान एवम् अध्ययन में लीन आत्मा व शरीर दोनों को भिन्न मानकर अपने आत्म तत्त्व में रुचि रखने वाले तथा आत्म साधन के लिये शरीर रक्षा के निमित्त अपेक्षा रहित अभक्ष्य रहित शुद्ध आहार शास्त्रोक्त विधि से अनुकूल श्रावक अपने निमत्त तैयार किए हुए अन्न श्रीमन्त और गरीब दोनों समान मानकर एवम् सरस नीरस का भी भाव नहीं रखते हुये मधुकरी पूर्वक यानि कमल में रहने वाले भौंरा के समान कमल को तकलीफ न पहुँचाते हुये रस चूसने के समान उसी प्रकार दिगम्बर साधु उदर शान्ति के निमित्त श्रावक के घर जाकर उनको हर्षित करते हुये अपने करतल रूपी पात्र में रखे हुये भोजन को शान्ति पूर्वक लेते हुये आत्म साधन करने वाले दिगम्बर साधु ऐसे उत्तम पात्र कहलाते हैं ॥

मध्यम पात्रः—ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी मध्यम पात्र कहलाते हैं ।

जघन्य पात्रः—सम्यक् दृष्टी, श्रावक धर्म में श्रद्धा रखने वाले तथा देव,गुरु,शास्त्र,इनमें श्रद्धा रखने वाले को जघन्य पात्र कहते हैं । इन तीनों को छोड़ कर बाकी सभी अपात्र हैं जो ऐसे

अपात्रः–संयम से रहित, व्यसनों से परिपूर्ण (रति) जीव की हिंसा को धर्म मानने वाले, कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को पूजने वाले ऐसों को दान देना अपात्रता है । इसलिये पात्र अपात्र का विचार

अर्थः-राजा, प्रजापरिवार के हित करने वाले हों और वैरी शत्रु राजाओं के प्रति शूरवीर तथा भुजगेंद्र के समान होकर रहना चाहिये अपने गुरु तथा भगवान के सामने सेवक के समान रहे और धार्मिक लोगों के प्रति बंधुओं का नाता रक्खे ॥ १२ ॥ *

Charity should be given where it is well deserved and should not be given where it is not deserved. Charity should be given to a person who deserves it and should not be given to a person who does not deserve it.

One should observe silence and should also speak (silence should be observed where one has to talk to an idiot or a fool). One should be humble like a poor person and should at the same time be like a king, These are the sings of a Kshatttriya. He should be a patron of his family and people and he should be as fierce as angry python to his enemies.

He should be a servant to his teacher and brother to his co-religionist. (11-12)

कर दान देना चाहिये। मूर्ख धर्म हानि (अधर्माचरण करने वाला) हठ्ठी ऐसे लोगों से मौन धार्मिक व विद्वान लोगों के सामने भाई के समान और अपनी प्रजा, परिवार की रक्षा के लिये तथा दुःखों का निवारण करने के लिये राजा के समान रहना चाहिये। यह एक राजनीति का लक्षण है॥ ११ ॥

* कहा भी हैः--

राजन्दु धुक्षसि यदि क्षिति धेनुमेनां। तेनाद्य वत्समिव लोक ममुँ पुवाण ॥
तस्मिश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे। नाना फलैः फलति कल्प लतेव भूमिः ॥

अर्थः-हे राजा यदि तुम पृथ्वी रूपी गाय को दुहना चाहते हो तो प्रजा रूपी बछड़े का पालन करो। यदि तुम प्रजा रूपी बछड़े का अच्छी तरह पोषण करोगे तो पृथ्वी स्वर्गीय कल्पलता की तरह आपको नाना प्रकार के फल देगी।

जो राजा प्रजा का अच्छी तरह से पालन करता है उसके सारे मनोरथ पूर्ण होते हैं। अगर राजा अत्याचारी व अन्यायी होता है एवम् प्रजा के भरण पोषण की फिक्र भी नहीं करता तो उस राजा की प्रजा निश्चय ही से नाश हो जाती है।

प्रजा के नष्ट या दरिद्र होने से राजा भी नष्ट हो जाता है उसका द्रव्य भन्डार धन-धान्य क्षय होकर खजाने में चूहे दन्ड पेलते हैं जो राजा अपनी समृद्धि की वृद्धि करना चाहे तो वह दत्त-चित्त होकर, प्रजा पालन को ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझे।

कहिये पाठक वृंदः-ऐसे राजा (राष्ट्रपति) आपके नजरों में कहाँ कहाँ और कितने हैं? कितने राजा आज एक गुना कर लेकर सहस्र गुना प्रदान कर रहे हैं एवम् कितने राजा प्रजा का पुत्रवत् पालन कर रहे हैं?

पद्य—परवेंगळिगे हेडि कदनक्के कडुगुलि । परमतक्कोडंवडे मूर्ख ॥
अरुह नागम दोळ्चिंगनात्म कलेयोळु । सरसनागिरवेकु नृपति ॥ १३ ॥

अर्थ-पर स्त्री के लिये डर कर रहना चाहिये शत्रुओं के लिये शूर वीर महा पराक्रमशाली हो कर रहना चाहिये मिथ्यामत को ग्रहण करने का प्रसंग आजाय तो मूर्ख वन जाय भगवान जिनेश्वर के आगम में प्रीति और अपनी आत्म कला में हमेशा आनन्द मानना यही क्षत्री राजा का चिन्ह है ॥ १३ ॥

He should be like a coward and eunuch for the wives of the other persons, while he should be brave and manly for enemies. He should act like a fool in accepting wrong doctrine but should be wise in accepting the religion of Arhant. These are the real signs of a king. (13)

पद्य—हवणिसि कोळ्ळवेकिंद्रिय वर्गव । नविचळनागिरवेकु ॥
भुवनकिं दिनराय स्वर्ग के नाळिन । दिविजेंद्र नेनिसिर वेकु ॥ १४ ॥

अर्थ-हमेशा अपने पाँचों कर्मेन्द्रियों से अविचल रहे यानि चञ्चलता रहित रहे और (आज) वर्तमान इस छःहों खण्ड पृथ्वी का राजा वन कर रहना चाहिये, कल (भविष्य) अगाड़ी को स्वर्ग के देवेन्द्र पद को प्राप्त करके देवेन्द्र वने इस तरह से राजा अपना वर्ताव (इच्छा) रक्खे यह भी राजनीति का लक्षण है ॥ १४ ॥

महाराज भरत किस प्रकार प्रजा का पालन करते थे और उस समय का भारत कैसा वैभववान व कीर्तिशाली था अब भी सम्राट भरत की नीति प्रजा पालन में अपनाई जाय तो भारतवर्ष उसी प्रकार फल फूल सकता है। हाँ इतना अवश्य है कि राजनीति सदा एक सी नहीं रहती कभी कभी कूट नीति से भी काम लेना पड़ता है। राजा की नीति वेश्या की तरह अनेक रूप धारण करने वाली होती है। कहीं राजा सत्य वोलता है तो कहीं मिथ्या भी वोलता है कहीं कठोर भाषण करता है तो कहीं कोमल कहीं हाव-भावसे काम लेना पड़ता है तो कहीं दमन नीतिसे भी यानि साम-दाम- दन्ड-भेद ये नीतियां राजा में होना आवश्यकीय है तब कहीं शासन सूत्र ठीक ढंग से चलाया जा सकता है पहिले राजा का आस्तिक सत्य दया मय सहित अहिंसा धर्म में होना वाद में नीतिवान होकर अपनी प्रजा में पुत्रवत् निगाह रखते हुये सन्मार्ग की ओर लेजाने वाली योजना करते हुये उन्मार्ग (कुमार्ग) से वचाने की चेष्टा करे अगर कोई अन्य शत्रु अन्याय पूर्वक आकर अपनी प्रजा पर अथवा राज्य पर आक्रमण करे तो तत्काल उस शत्रु को पहिले शान्ति पूर्वक समझाये न माने तो युद्ध द्वारा हराकर ठीक रास्ते पर लावे यानि वाहुबल के द्वारा शत्रु को पराजित करे यह भी एक राजनीति है ॥ १२ ॥

One should always remain unmoved and unaffected by the five senses. A king should act in such a manner that he should be the conqueror of the whole world in this birth and the king of heavens in the next. (14)

पद्य—एरळे मीनाने पतंग तुविगळु का । तरसि योंदोंदिंद्रिय दोळु ॥
परिभव वडेदविन्नैं दिंद्रियके सिक्कि । दरसु केडवुडाव चोद्य ॥ १५ ॥

अर्थ–हिरन, मछली, पतंग; भौंरा, हाथी यह पाँचों जीव एक २ इन्द्रिय के आधीन होकर और अपने आस्तित्व को खोकर नष्ट हो जाते हैं, तव पाँचों इन्द्रियों के आधीन हुये मनुष्य किस अवस्था को प्राप्त होंगे ॥ १५ ॥ *

Each of the five animals deer, fish, moth, bee, elephant loses its life under the influence of one sense only, then what will be the condition of a human being who is influenced by all the five senses. (15)

पद्य—ज्ञानसून्यन पंचेद्रिय पंचाग्नि । ज्ञानिइन्द्रिय पंचरत्न ॥
ज्ञानविल्लदे भोगिसुव भोगि भवरोगि । ज्ञानविडिद् भोगि योगि ॥ १६ ॥

---

* भावार्थः–कहा भी है–

इयं वाला मां प्रत्यनवरत मिन्दी वरदल । प्रभा चोरं चक्षुः क्षिपति किमभि प्रेत मनया ॥
गतो मोहोऽस्माकं स्मर कुसुम वाण व्यतिकर । ज्वलज्ज्वाला शान्ता तदपि न वराकी विरमति ॥

सुरूपा, तरुणी, कोमलाङ्गी, युवती नेत्रोंके कटाक्ष से निकले हुये कटाक्ष वाणों को मारती है, अब तो मेरा मोह जाता रहा है, काम के पुष्प वाणों से निकली हुई आग की ज्वाला शान्ति होगई है, आश्चर्य है कि अब तक भी यह मूर्खा वाला अपनी कोशिशों से वाज़ नहीं आती ।

सारांश यह है कि जिनका मोह जाल कट जाता है और जिनकी विषय वासना बुझ जाती है जो स्त्रियों की असलियत जान लेते हैं और जो उनको नर्क की निशानी समझते हैं उन महापुरुषों पर स्त्रियों के कटाक्ष वाण असर नहीं करते; सारांश यह है कि तत्व वित्त लोग उनके जाल में नहीं फंसते । जैसे हिरन गायन के वशीभूत होकर नष्टता को प्राप्त होता है, और जैसे जिह्वा इन्द्री के वशीभूत होकर मछली अपनी जान खो वैठती है और हाथी भी स्पर्शेन्द्रिय के वशीभूत हो कामातुर होकर गड्ढे में गिर पड़ता है जैसे पतङ्ग, रूप के वशीभूत होकर चक्षु इन्द्रिय द्वारा दीपक से प्रेम के कारण नष्ट हो जाते हैं और भौंरा घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत होकर कमल में वन्द हो जाता है । अर्थात् उपरोक्त जीव एक एक इन्द्रिय के वश में होकर नष्टता को प्राप्त हो जाते हैं ।

अतएव जो राजा पांचों इन्द्रियों के वशीभूत हो जाता है तो उसके नष्ट होने में क्या देर लगती है ? अर्थात् अवश्यमेव नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

अर्थ–अविवेकी मनुष्य के लिए पांचों इन्द्रियां पंचाग्नि के समान है इसलिए वह मनुष्य इन्द्रियों के वशीभूत होकर स्वयं नष्टता को प्राप्त होता है। विवेकी के लिए पांच इन्द्रियां, पंच-रत्न के समान हैं। ज्ञान शून्य होकर विषयों को भोगने वाले भोगी नहीं बल्कि भवरोगी हैं। विवेक सहित भोगने वाले लोग भोगी नहीं बल्कि विषयों को भोगते हुए भी योगी हैं ॥ १६ ॥

People who have no right knowledge indulge in sense pleasures and suffer from the disease of transmigration and those who indulge in them with right knowledge are yogis. (16)

पद्य—ज्ञानिय मुट्टलम्मदु कर्मवेन्नला । ज्ञान तानावु दें देनलु ॥
ज्ञानवे नानु शरीर नानल्लेंब । मानस दनु भवनल्ते ॥ १७ ॥

/ अर्थ–कर्म अज्ञानी को स्पर्श करता है। ज्ञानी को स्पर्श करने का साहस कर्म को नहीं है। वह ज्ञान कहाँ है ? इति पृश्ने, मैं ही तो ज्ञान स्वरूप हूं। मैं शरीर के स्वरूप में नहीं हूं। इस प्रकार से विचार शील विवेकी मनुष्यों के लिए मानसिक अनुभव की वस्तु है ॥ १७ ॥

A person with right knowledge is not bound and touched by karmas and he knows that he and his body are quite different. (17)

पद्य—बाह्य विज्ञान वेंदुदंतरंग सं । ग्राह्य विज्ञानवेंदुं ॥
बाह्यदरिके बाह्य तन्नरिवुदु नि । बाह्यांतरग विज्ञान ॥ १८ ॥

अर्थ–हे राजन् ! विज्ञान दो प्रकार का है एक बाह्य विज्ञान दूसरा अन्तरंग विज्ञान। बाह्य विषयों के जानने वाले (आत्मा से भिन्न) सभी बाह्य विज्ञान कहलाते हैं और अपनी आत्मा को जानना अन्तरंग विज्ञान है ॥ १८ ॥

Rajan ! knowledge is of two kinds, External and Internal. The knowledge of everything other than soul is external knowledge, while the knowledge of soul is internal knowledge. (18)

पद्य—रत्नपरीक्षे गजाश्व परीक्षे य । यत्नि से बाह्य विज्ञान ॥
रत्नत्रय रूपात्म नेंदरिवुदु । नूत्नांतरंग विज्ञान ॥ १९ ॥

अर्थ–जगत में रत्न परीक्षा करने के लिए प्रयत्न करना व हाथी-घोड़े आदि की परीक्षा करने को सीखना यह भी एक बाह्यकला है। आत्मा सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र 'रत्नत्रय स्वरूप' हैं अतः उन रत्नों की परीक्षा कर पहिचानना बड़ा कठिन कार्य है। इसको ही अन्तरंग विज्ञान कहते हैं। इसको ही जानने से आत्म कल्याण होता है ॥ १९ ॥

To test external objects, such as jewels, elephants etc. in a practical manner is external art. But to test the three jewels, viz. right faith, right knowledge, right conduct for the realization of soul is internal art. (19)

पद्य—मदनागम वैद्य यंत्र तंत्रगळ सं । पद्वेल्ल वाह्य विज्ञान ॥
सदमल रूपनेंदात्मन नेनेवुदु । विदितांतरंग विज्ञान ॥ २० ॥
गणित भरत शास्त्र पंचाग वस्तु ल । क्षणवेल्ल वाह्य विज्ञान ॥
गुणगुणि योडगूडि तन्न ता नरिवुदु । प्रगुतांतरंगविज्ञान ॥ २१ ॥

अर्थ–कामशास्त्र, आयुर्वेद, मन्त्र, तन्त्र, गणित, संगीत तथा ज्योतिष ये सभी शास्त्र वाह्य विज्ञान के हैं क्योंकि इन शास्त्रों के ज्ञान से मनुष्य को शरीर पोषण करने का उपाय ज्ञात होता है परन्तु आत्मा निर्मल स्वरूप है उसके निर्मल गुणों में कोई भिन्नता नहीं है। ऐसा समझ कर उसी का विचार करना आन्तरिक विज्ञान है यही ग्राह्य है ॥ २० ॥

अर्थ–गणित शास्त्र, भारत शास्त्र पञ्चाङ्ग तथा वस्तु लक्षण ये सभी वाह्य विज्ञान हैं, गुण और गुणी सहित अपने आप अपनी आत्मा को जानना ये अन्तरंग विज्ञान हैं ॥ २१ ॥

Sexual science, music, medicine, mathematics, astromomy, Politics are instances of external knowledge as they effect the body of a person; while to think of soul's attributes is internal knowledge. (20-21)

पद्य—छंदोलँकारं काव्य नाटक शास्त्र । संदोह वाह्यविज्ञान ॥
दंदुग वळिदात्म तत्ववनरिवुद । दोंदंतरंग विज्ञान ॥ २२ ॥
वेदपुराण तर्कागमदरिके मुँ । तादुदु वाह्य विज्ञान ॥
भेदिसि तन्नध्यात्म नोळरिवुदु । भेदांत रंग विज्ञान ॥ २३ ॥

अर्थ–छन्द, अलंकार, काव्य, नाटक इत्यादि को जानना भी वाह्य विज्ञान है संसार से भिन्न तथा अपने शरीर से भिन्न आत्मा को जानना व समझना यह अन्तरंग विज्ञान है ॥ २२ ॥

अर्थ–वेद, पुराण, तर्क, आगम को जानना भी वाह्य विज्ञान है। भेद ज्ञान के द्वारा अपनी आत्मा को अलग मानना यह भी भेद अन्तरंग विज्ञान है ॥ २३ ॥

The knowledge of poetry, drama, vedas, purans, logic, sacred books is external knowledge. To realize and discriminate the soul from the body is internal knowledge. (22-23)

पद्य—हिंदे हलवु जन्मदोळु वाह्य विज्ञान । वंदुदु होदुदेल्लरिगे ॥
वंदंतरंग विज्ञान वारिगु मुन्न । संदिसितिल्ल राजेंद्र ॥ २४ ॥

अर्थ-पहिले अनेक जन्मों से सभी मनुष्यों को वाह्य विज्ञान प्राप्त हुआ भी है और है भी परन्तु हे राजन्! अभी तक अन्तरंग विज्ञान किसी को हुआ भी नहीं है और है भी नहीं ॥ २४ ॥

Persons have acquired external knowledge for several births past and still possess it. But few have acquired the internal knowledge. (24)

पद्य—सामान्य वल्लंतरंग विज्ञान म । हा मुक्ति पदकदु बीजा ॥
कामित वीवुदु सुरतरु सुरभि चिं । ता मणि पासटियल्लदके ॥ २५ ॥

अर्थ-ये अन्तरंग विज्ञान सामान्य ज्ञान नहीं है मोक्षपद के लिए मुख्य कारण है वह अनुचित नहीं है मनोरथ को पूर्ण करता है, कल्पवृक्ष व चिन्तामणि तथा कामधेनु भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते। लोक में कोई भी वस्तु उसके समान नहीं है ॥ २५ ॥

This internal knowledge is not ordinary knowledge. It is stepping stone to the liberation (Moksha). There is nothing to match it in this world neither "Kalap Tree" Chintamani jewel nor "Kamdhanu". (25)

पद्य—दोरेगंत रंग विज्ञान निश्चलवागि । दोरे कोंडरा दोरे गिन्नु ॥
दोरे युंटे धरेगिंदिनरसु स्वर्गके नाळि । नरसु मुक्तिगे मुंदनरसु ॥ २६ ॥

अर्थ-हे राजन्! जिस राजा को वह अलौकिक ज्ञान प्राप्त होता है उसके विषय में कहना ही क्या है, आज इस भूमण्डल का राजा है तो कल स्वर्ग का अधिपति होगा तो परसों मुक्ति रूप साम्राज्य का अधिपति होगा ॥ २६ ॥

O, Rajan, a king who acquires this wonderful knowledge is a king today, will be king of heavens tomorrow and the day after he will acquire the kingdom of Moksha. (26)

पद्य—सिरिगुब्ब नेडरिगे तग्गनात्मज्ञानि । परिहास गोष्टि गेळ्गनु ॥
हरवरियागि नुडियनु (धैर्यदोळु) मं । दर दंतिहनु राजेंद्र ॥ २७ ॥

अर्थ-हे राजन्! आत्म विज्ञानी सम्पत्ति से मदोन्मत्त नहीं होता व मानियों के आधीन नहीं होता, क्षुद्र मनुष्य की हंसी से संतुष्ट नहीं होगा, गम्भीरता हीन बातों को नहीं करेगा विशेष क्या वह मेरु पर्वत के समान अकम्पित धैर्यवान रहेगा ॥ २७ ॥

O. Rajan, a person with right knowledge has no pride of wealth and never cares about any proud person. He does not mock at persons of low position, is sober and never loses his nerves in times of even serious calamities. (27)

पद्य—इंद्रीय सुख दोळ्ासक्त नागनुदे । वेंद्रन सिरीगे कणिणडनु ॥
इंद्रीय दनुभवदोळगी हनहुडु यो । गींद्र व्रतोगे मेच्चु तिहनु ॥ २८ ॥

अर्थ-इन्द्रियों के सुख में आसक्त नहीं होगा । देवेन्द्र की सम्पत्ति भी उसकी दृष्टि में तुच्छ रहेगी । इन्द्रियों के सुख का अनुभव करते हुए भी वह योगेन्द्र वृत्ति की अधिक कामना करता रहेगा ॥ २८ ॥

Such a person will never feel attachment to sense pleasures, even the wealth of the king of heavens will have no attraction for him. He will have his attention stadfastly fixed on the realization of soul although engrossed in sense pleasure. (28)

पद्य—हंस * निरीक्षण दिंदुम्मि दमृतव । हंसनंतीटि दणिवंनु ॥
संसार सुख वनु दासी नभावाव । तंस दोळनु भविसुवनु ॥ २९ ॥

अर्थ-हंस पक्षी जैसे क्षीर समुद्र का निरीक्षण करके उसमें से क्षीर रूपी दुग्ध का पान करता है ऐसे ही ज्ञानी पुरुष भी अपने आप में हंस के समान आत्मरूपी अमृत स्वरूप रस का पान करता है और आनन्दित रहता है ॥ २९ ॥

The swan separates the milk from water and drinks it. So does the person with the right knowledge. He derives joy from soul contemplation although engrossed in sense pleasures. (29)

पद्य—अडिगडी गात्म तत्व दोळिदु कर्मव । केडिसुतीहनु किरीदागी ॥
कडु सँयमि यगी मुक्ति गैदुवनेंब । द्रढ विरुतीहुदेदेयोळगे ॥ ३० ॥

अर्थ-वारम्वार आत्म चिन्तन करने से क्रम क्रम से कर्म से निर्जर होते हुये अन्त में उत्तम संयमी वनकर मोक्ष को प्राप्त होंगे ऐसा दृढ़ निश्चय होता है ॥ ३० ॥

Such a person is sure to attain moksha who by regulating selfcontemplation gradually sheds karmas. (30)

---

* हंस निरीक्षणा मृत वणिगळ राज ।

पद्य—आगाग देह वेरात्म वेरंदुवि । भागीसी तन्न ता नेम्मी ॥
भोगि सीद्रे कर्म वंध विल्लागीया । भोगी तानेयोगी यल्त्ते ॥ ३१ ॥

अर्थ—समय, समय में जो व्यक्ति वार वार ध्येय और आत्मा को भिन्न रूप में अनुभव कर स्वरूप को भोगता है उसको कर्म वन्ध नहीं होता वह तो भोगी होते हुए भी योगी के समान नहीं है क्या ? अवश्य योगी ही समझना चाहिए ॥ ३१ ॥

A person who every moment discriminates between body and soul does not bind karmas. He is a saint *(yogi)* inspite of being a "bhogi" enjoyer of worldly pleasures. (31)

पद्य—भूमीयोल्गे ङ्कल्व लोह मखिवडिवुदु । हेममखिवडुवदे नृपति ॥
कामिसी भोगि सुवगे कर्मवंध नि । स्के: भोगिगे वंघउँटे ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे राजन् ! जमीन में गड़े हुए लोहे में जंग लगता है किन्तु वह जंग सोने में भी लगता है क्या ? नहीं । इसी प्रकार अविवेकी भोगियों को कर्म का वन्ध होता है, विवेकियों को कभी भी कर्म का वन्ध नहीं होता । इस प्रकार से भोगी दो प्रकार का होता है एक सकाम भोगी और एक निष्काम भोगी । सकाम भोगी कर्म वन्धन में फंस जाता है और निष्काम भोगी कर्म वन्धन में नहीं फँसता ॥ ३२ ॥

O, Rajan, Iron gets rusted if buried under ground, but this is not the case with gold. Similiarly, a person who has not acquired right knowledge binds karmas while enjoying worldly pleasures, but one with right knowledge does not bind karmas although he may look engrossed in sense pleasures. The former enjoys sense pleasures with a feeling of attachment; while the latter does so with an absence of such a feeling. (32)

पद्य—हुरिदु वित्तिद वीज मोल्वेवुदेरागां* । कुरव केडसिदात्मनेदि ॥
वर भोग दोल्डिद्रेनल्लि मुंदे नि । प्डुर कर्मदुत्पत्तियुंटे ॥ ३३ ॥

अर्थ—क्या दग्ध वीज वोया हुआ कहीं उगने में समर्थ हो सकता है ? कभी नहीं । क्योंकि उसकी अंकुरोत्पत्ति की शक्ति नष्ट हो चुकी है उसी प्रकार कर्मवन्ध रूपी अंकुर के लिये वीज रूपी राग को यदि पहले ही नष्ट कर दिया जाय तो फिर क्या उसकी उत्पत्ति आगे हो सकती है ? अर्थात् नहीं । निष्काम भोगी आत्म ज्ञानी को किसी भी वस्तु में राग नहीं रहता, इस लिए विकार मय संसार में रहते हुये भी उसको विकारों का प्रभाव नहीं होता ॥ ३३ ॥

* विषयव । तुरुहि केडिसि यात्मयोगि ॥

A roasted seed does not sprout forth as its power of production has been destroyed by heat. Similarly if the feeling of attachment towards worldly pleasures is first destroyed, there will be no binding of karmas. (33)

पद्य—नाग लोक दोळिद्देरेनु गुरुत्मगे । नागर बाधेलगळुंटे ॥
भोगदोळिद्देनात्म विज्ञानिगे । भोगदिंदिह कर्मवुंटे ॥ ३४ ॥
तुडुकरेल्लर कोल्व विषविदु सिद्ध गा । रुडिगन कोल्लुवदे चक्रि ॥
पोडवियोळेल्लर केडिसुविंद्रियसुख । केडिसबल्लुदे तत्व रतना ॥ ३५ ॥

अर्थ—क्या गरुड़ को नाग लोक में रहने पर सर्पों की बाधा हो सकती है? नहीं। इसी प्रकार भोगों के बीच में रहते हुये भी आत्म विज्ञानी को भोगों का बन्ध होसकता है क्या? अर्थात् नहीं। हे राजन्! यही दशा आपकी भी कही जा सकती है। विष को लोक में सभी को मारने की शक्ति है किन्तु जिसके पास गरुड़ मंत्र सिद्ध है क्या उसका विष कुछ बिगाड़ सकता है क्या? अर्थात् नहीं। इसी प्रकार इन्द्रिय जनित विषय सुख जगत को भी दुःख देता है। परन्तु आत्म विज्ञानी का कुछ बिगाड़ सकता है क्या? कदापि नहीं॥ ३४ ॥ ३५ ॥

Snakes can not harm Garud even in their own snakes land. Similiarly a person with right knowledge can not be affected by bondage of karmas even though engrossed in worldly pleasures. This applies to you Rajan.

Poison kills all others in the world but those who have acquired the knowledge of removing poison are not affected by poison. Sense pleasures inflict miseries on the world but can do no injury toone who has realised soul. (34-35)

पद्य—अच्च नाभिय मेदु निर्विषसिद्धता । नच्चुगगोळ्ळदिर्पंते ॥
निच्च भोगदोळिद्देनात्म विज्ञानि । सच्चिदानंदनागिहनु ॥ ३६ ॥

अर्थ-मैं विष के बीच में रहते हुये भी निर्विष सिद्ध हूं यानि विष का स्पर्श होने पर भी निर्विष रूप हूं। उसी प्रकार नित्य भोग वासना में रहते हुये भी आत्म विज्ञानी होकर भोग भोगते हुये अपने आप सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा में आनन्दित रहते हैं॥ ३६ ॥

Persons with right knowledge of self remain absorbed in the bliss of soul although living in the midst of the poison of sense pleasures and enjoying these. (36)

पद्य—निन्न वर्तनविदु परमरहस्य विं । दिनोव्बरोळु कारणोडिल्ल ॥
निन्न नडेय निन्न नुडिय निन्नोळे कंडु । निन्न मुंदोदिदेनरसा ॥ ३७ ॥

अर्थ–हे ! राजन् (भरत) आपकी वृत्ति की तरह अन्य राजे नहीं है आपकी वृत्ति आपकी बात, आप में ही देखकर हे पट खण्ड के अधिपति मैंने यह बात आपसे निवेदन की है इसके अलावा राजाओं के सर्व गुण जो होते हैं वे सब आप में विद्यमान है। जो मार्ग प्रदर्शन मैंने आपके अन्दर देखे है वे सभी मोक्ष मार्ग के देने वाले हैं ॥ ३७ ॥

O Rajen, other kings are not like you. You possess all the qualities of the king but in addition you have special attribute of soul contemplation which will lead you to moksha. *(37)*

पद्य—अरसिगे मेच्चादुददने लेसेंदेल्ल । रोरेय वेकेंबेंदवल्ल ॥
भरतेश निन्न वर्तनविदु तत्वद । तिरुळे निश्चय मोक्षमार्ग ॥ ३८ ॥

अर्थ–क्योंकि राजा से मुझे कुछ प्राप्त हो इस लक्ष्य से मैं गुणानुवाद नहीं कर रहा हूं बल्कि मैंने आपके सद्गुण व आत्म तत्त्व में तल्लीन जो कि मोक्ष मार्ग का देने वाला है इनको आप में निश्चय से देखते हुये उपरोक्त बातें कहीं ॥३८ ॥

I have not sung your praise for any reward or other gift. I have merely stated the attributes as I see in you. *(38)*

पद्य—होरगेल्लव तोरेदोळगे निर्मलवागि । मेरेववरुंटु लोकदोळु ॥
होरगेल्ल विद्दोळगेनु विल्लेने वच्च । वरिदादराह निन्नंते ॥ ३९ ॥

अर्थ–हे राजन् ! लोक में ऐसे बहुत से योगी होंगे जो सम्पूर्ण भोग का त्याग कर अन्तरंग में निर्मल आत्मा का दर्शन करते हैं परन्तु अतुल ऐश्वर्य रखते हुये भी अन्तरंग में अकिंचन तुल्य निर्मोही होकर आत्माऽनुभव करने वाले आप सरीखे कितने हैं ॥ ३९ ॥

O Rajan, there must be numerous saints in the would who have given up all worldly pleasures and possessions and realize their inner-self. But there will be few who like you possess all the glory of the worldly possessions and still are able to realize their inner-self. *(39)*

पद्य—ई सिरि ई सोबगी प्रायदोळु वुदे । यीसर वाग देन्चेच ॥
आ सिद्धपदविगे कण्णट्ट तत्व वि । लासियारम्म निन्नंते ॥ ४० ॥

अर्थ–लोक में सम्पत्ति, शरीर सौन्दर्य, यौवन व अधिकार ये सब प्रायः मनुष्य को अभिमान के पर्वत पर चढ़ाकर अवनति के गड्ढे में गिराने के साधक हैं। परन्तु हे भरतेश! इनमें से आपको किसकी कमी है। फिर भी आप अविवेकी नहीं है इन सब बातों में पूर्णतः होते हुये भी आप की दृष्टि सिद्धालय की ओर लगी हुई है अतः आपके सदृश्य तत्त्व अभिलाषी कौन है॥ ४० ॥

Wealth, body, beauty, youth and power take persons to the summit of pride and later push them into the abyss of degeneration and cause their downfall.

But Rajan, you possess all these but still you have not been affected by them, Your attention is concentrated on Moksha. These things have no significance to you. *(40)*

पद्य—इवननवन गेल्व रा्तु दुपायवें । दव नियोळ्केणि सुवरुंडु ॥
जवने जयसुवरुपायवेनेंदेंव । भुवनेशरुंटे निन्नंते ॥ ४१ ॥

अर्थ–अमुक मेरे शत्रु हैं उनको मैं कैसे जीतूं और अमुक शत्रु को जीतने का क्या उपाय है इस प्रकार से विचार करने वाले लोक में बहुत हैं, परन्तु आप के समान कितने हैं? ॥ ४१ ॥

Such kings are many who remain occupied in spotting their enemies and devising ways and means to vanquish them, but those who apply their minds to the problem of conquering deaths and births are hardly any one except you. *(41)*

पद्य—गाण मद्ळे ताळलयके नर्तिप मंद । यानेगे शिरद कुंभदोळु ॥
ध्यान विप्पंते ध्यानदोळिदुं मुक्ति सं । धानदोळगे निन्ननेनहु ॥ ४२ ॥

अर्थ–जिस प्रकार एक नर्तकी अपने मस्तक पर घड़े को रखकर नृत्य कर रही हो और नृत्य करते समय गायन ताल लय आदि को भंग न होने देकर ये सब बातें होते हुये भी उसकी मुख की दृष्टि यह रहती है कि मस्तक पर रक्खा हुआ घड़ा गिर न पड़े। इसी प्रकार हे राजन्? समस्त राज योग को सम्हालते हुये भी आप की मुख की दृष्टि मोक्ष मार्ग की ओर है॥ ४२ ॥

With a pot balanced on her head just as a dancer dances to the tune of musical instruments, but keeps her attention fixed on the pot lest it might fall down, so do you Rajan keep your attention fixed on moksha inspite of being engrossed in the affairs of the state. *(42)*

पद्य—पटगार नुरे सूत्र विडिदिद्दरा गाळि । पट गगनदोळाडुवंते ॥
कुटिलवल्लात्म निन्न'ग दोळ्दिदु' सं । घटिसि मुक्तियोळ्दे बुद्धि ॥ ४३ ॥

अर्थ-जिस समय बालक आकाश में पतंग उड़ाता है उस समय पतंग की डोर को अपने हाथ में रखता है यदि उस डोर को हाथ में न रक्खे तो न जाने पतंग किधर उड़ कर चली जाय। इसलिये हे राजन्! अपने चित्त को पतंग की डोर की तरह अपने वश में रख कर सर्वदा अपने मन को मोक्ष मार्ग की ओर लगावे ॥ ४३ ॥

Just as a kite flier controls the movement of the kite through the thread, so do you Rajan control the fickleness of the mind through self contemplation. (43)

पद्य—घळिगे वट्टल निक्कि दवनोंदु कथेयहुँ । कोळ्लन्यरिगे हेळुतिदु' ॥
घळिगे वट्टल नोट केडदंते निन्नात्म । नोळु तागुतिदे निन्ननेनहु ॥ ४४ ॥

अर्थ-घटिका यन्त्र को देखने के लिये जो आदमी बैठा है वह निद्रा आने पर दूसरों से कथा कहलवाकर स्वयं हुँकार करते हुये भी उस घटिका यन्त्र से अपनी दृष्टि को नहीं हटाता है उसी प्रकार आत्म तत्त्व ज्ञानी संसार के विषय वासनाओं को देखते हुये भी अपने 'आत्म तत्त्व' स्वरूप को नहीं भूलता ॥ ४४ ॥

Just as a watchman keeps his attention fixed on the water clock lest it might sink down although all the time he might be engaged in conversation so do you Rajan keep your attention fixed on the soul substance although all the time you are busy with the worldly pleasure and kingly pursuits. (44)

पद्य—नल्लळो डमेगागि सख सखि दूतिय । रेल्लर मन्निपनंते ॥
सल्लिलतात्म विज्ञानार्थ कागि न । म्नेल्लर मन्निपयलते ॥ ४५ ॥

अर्थ-जैसे अपनी स्त्री को सुखी रखने के लिये मित्र, सखी दासी वगैरह की खुशामद करते हुये उन सबको खुश रखता है उसी प्रकार अपनी आत्म विज्ञान कला के लिये हे राजन्! आप इन लोगों को प्रसन्न रखते हैं ॥ ४५ ॥

Just as a housewife keeps the servants sathisfied but takes full work from them, so do you Rajan, although indulging in sense gratification, use your senses in a considerate manner to enable you to concentrate on moksha. (45)

पद्य—मोले मुडि मुख नख कटि तुटियेंदरे । ओलिदीवरुं डु लोकदोळु ॥
ओळ होरगात्म शरीर वेंबी नुडि । गोलदीवरारु निन्नंते ॥ ४६ ॥
हेएण वरिणसिदरंतितु लेसेंदेदे । हएणागि केळुवरुं डु ॥
वरिणसिलात्म तत्व के मेच्चि किविगोडु । वएर्णांदिरारु निन्नंते ॥ ४७ ॥

अर्थ-लोक में ऐसे बहुत से लोग हैं जो स्त्रियों की चर्चा कथा में व उनके सौन्दर्य का गुण-गान करने में आशक्ति पूर्वक उस कथा वार्ता को सुनते हैं यानि जैसे चन्द्र स्वरूप मुख है अथवा अमृत कुम्भ के समान कुच (स्तन) हैं व मदोन्मत्त हथिनी के समान है या उसकी जंघा केले के खम्भे के समान है, अथवा पतली कमर है इत्यादि श्रृङ्गार पूर्ण वर्णन को लोग उत्साह पूर्वक सुनते हैं इसलिये हे राजन् ! आत्म तत्त्व हितकारी बात को सुनने वाले आप सरीखे भला कितने होंगे ॥ ४६-४७ ॥

Such persons are numerous who take pleasure in hearing stories about women, but persons who hear the description of the qualities of soul are very few like you. (46-47)

पद्य—कोव्विद पोरवारु पिडिनडु कोंकिद । हुव्विन पेएर्णेदरदके ॥
हेव्वोव्वि गोंवरुंटात्म कलेगे मै । युव्बुवरारु निन्नंते ॥ ४८ ॥
आकेय मदवेद जव्वन मन्मथ । गेक राजव माळ्पुदेनळु ॥
याकुळि गोंडु केळुवरुं डु चिद्रिूपि । नीकल़ेगेळ्सुवरारु ॥ ४६ ॥
नडु सएण मुडितोर तोडेनुएणु मोलेगळि । ड्डेयेंदररे वायविट्टु ॥
मिडुकदे केळुवरुंटल्लदध्यात्मद । नुडिगेळ्व रुंटे निन्नंते ॥ ५० ॥
नळितोळ्गळेने तक्केयादँते पोंगोड । मोले येंदरेदे सोंकिदंते ॥
तळिदुंटियेनळु चुंबिसिदँते नलिवरु । टोलिवरारध्यात्म रसके ॥ ५१ ॥
नुएदोडेयेने रोम जुँमंदु नेरिल । पएदुटियेने जिव्हेयोसरि ॥
कएदोळ्लागि केळुवरुं डु मच्चर । माएडु केळुवरुंटे निजवा ॥ ५२ ॥

अर्थ-झुकी हुई भृकुटी, मृगनयनी, यानि हिरन के समान आंख वाली इत्यादि प्रकार से स्त्रियों के स्वरूप का लोग वर्णन करते हैं । इसी प्रकार से सुनने वाले राजे बहुत हैं । लेकिन हे राजन् इस तरुण व युवावस्था में आध्यात्मिक तत्त्व चर्चा को मन लगाकर सुनने वाले आप के समान और कौन है ॥ ४८ ॥

अर्थ–इन स्त्रियों की मदोन्मत्त यौवनरूपी मदझरते हुये कोमल स्तन और बाहु करतल रूपी लता ऐसे फैल रहे हैं और मन्मथ (कामदेव) इस तरुणी का अवयव रूपी वसंत ऋतु में वसंतराज आकर उनके साथ आनन्द से क्रीड़ा करते हुये प्रेम के साथ उपभोग करने का यही समय है। ऐसे रूप से कथा को रत होकर सुनने वाले बहुत से राजे हैं। लेकिन हे राजन्! आप के समान चिद्रूप 'चिदानन्द परमात्मा' के कथन को रत होकर सुनने वाले कौन हैं॥ ४९ ॥

अर्थ–पतली कमर, सुवर्ण कलश के समान कानों की शोभा, ठोस युगल स्तन इत्यादि वर्णन को अपने शरीर का भान न रखते हुये सुनने वाले राजा बहुत हैं लेकिन हे राजा भरत! आपके समान शरीर से भ्रांत होकर अध्यात्म कथा को सुनने वाले कौन हैं? अर्थात् कोई नहीं॥ ५०॥

अर्थ–इनके हाथ हाथी की सूंढ के समान हैं अथवा उनके स्तन अमृत फल के समान झुके हुये हैं इत्यादि वर्णन को सुनने वाले अनेक हैं परन्तु आप के समान अध्यात्म रस में मग्न होकर उसका रसाः स्वादन करने वाले कितने हैं॥ ५१ ॥

अर्थ–मृदु कोमल रोम युक्त जंघा और लालिमा लिये हुये होंठ तथा कमल के समान मुंह जिह्वा इत्यादि वर्णन को रत होकर सुनने वाले बहुत हैं लेकिन अपने निज परमात्म स्वरूप का वर्णन मग्न होकर सुनने वाले आपके समान कौन हैं॥ ५२ ॥

Again such Rajas are a legion who are all attention when they hear the description of the different parts of woman's body, but Rajan; kings like you are few who in the full bloom of youth listen attentively to the description of soul, the qualities of the Lord and the bliss of self contemplation. *(48-52)*

पद्य—रण कथे जार चोरर कथे स्मर कथे। गणिका कथेगेद् सोतु॥
गणने इल्लद भवकोळ् गहरध्यतम। गुणके मेच्चुवरारु नृपति॥ ५३॥

अर्थ–रण कथा, जार कथा, चोर कथा, दन्त कथा इत्यादि कथाओं को अनेक भव यानि संसार में सुनने वाले बहुत से राजा हैं परन्तु हे राजन्? अध्यात्म कथा को सुन कर आनन्द उठाने वाले 'भव' (संसार) में बहुत कम हैं॥ ५३ ॥

Such kings are many who hear with interest the four kinds of idle talks, talk about women, talk about administration, talk about politics, and talk about food, but such kings are very few who are attentive to the discourse about soul. *(53)*

पद्य—गद्गेयेरि दुष्कथेगेळिं हलवरु। चिद् होगुवर धोगनिगे॥
गद्गेयेरि सत्कथेगेळि मुक्तिय। होद्वरारु निन्नंते॥ ५४॥

अर्थ-राजसिंहासन पर बैठकर दुष्कथा को सुनकर व उसके ही समान आचरण करके अधोगति को प्राप्त होने वाले बहुत से राजा हैं। लेकिन हे राजन् भरत! सत्कथा को सुन करके उसके अनुकूल आचरण बद्ध होकर इस संसार में मोक्षपद को प्राप्त करने वाले आपके समान कौन हैं ॥ ५४ ॥

There is no dearth of such kings who hear and act according to the four kinds of gossips mentioned above and as a result sing into the abyss of mundane wanderings, but, O, Rajan, there is hardly anyone like you who are attentive to the description of soul, act according to it and attain liberation. (54)

पद्य—ओळगिद्द देवन काणदे होरगेदे । गुलव पूजिसुवेग्गनंते ॥
ओळगात्म विड्डु मैयने तानेंदु । सले होगळिसिकोळ्ळुतिहरु ॥ ५५ ॥

अर्थ-मन्दिर में सुशोभित विद्यमान देव को न देखकर केवल मन्दिर की दिवाल को देखने वाले मूर्ख के समान अन्दर की आत्मा को न देख कर केवल शरीर को ही आत्मा मान करके अपनी प्रशंसा करने वाले बहुत हैं ॥ ५५ ॥

Such persons are many who do not realise the soul within them but identify their corporal tenement with their soul and desire its praise, just like those who instead of looking to the Lord in the temple worship the walls. (55)

पद्य—इंद्रनंतिननंते चंद्रनतेंदु न । रेंद्ररु होगळे मेच्चुवरु ॥
इंद्रादिगळु लयकाळ्गादरात्म जि । नेंद्रनेंदे नलोल्वे नीनु ॥ ५६

अर्थ-हे महाराजा! भरत तुम इन्द्र के समान होवो, व चन्द्र के समान होवो, इस प्रकार की प्रशंसा करने से राजा लोग बहुत प्रसन्न होते हैं। परन्तु चक्रवर्ती सम्राट भरत को इस प्रकार की बातों से हर्ष नहीं होता उनका अनुभव है कि इन्द्रादिक बड़े बड़े श्रीमान् नष्ट होगये तो हमारी क्या असल। इस वास्ते केवल जिनेन्द्र देव को ही संपत्ति शाश्वत है। इसलिये राजा भरत बनावटी प्रशंसा से प्रसन्न नहीं रहते ॥ ५६ ॥

Such kings are not few who feel flattered when they are called mighty like sun and moon, but Rajan such praise does not appeal to you. You realize the emptiness of such phrases. (56)

पद्य—उद्धार कीर्ति कोमल मूर्ति येनलेल्ल । रुद्धिरिसुवरु वंदिगळ्ळा ॥
शुद्ध निश्चय दोळात्मगे मूर्तियेल्लात्म । सिद्धनेंदनलोल्वे नीनु ॥ ५७ ॥

अर्थ-स्तुति कारक लोग राजाओं से कहते हैं कि तुम्हारी कीर्ति विस्तृत है व तुम्हारी मनोहर कोमल मूर्त्ति है इस प्रकार की प्रशंसा सुनकर स्तुति करने वालों को राजा लोग बहुत सा पारितोषिक वितरण करते हैं परन्तु भरतेश्वर कहते हैं कि शुद्ध निश्चय से इस आत्मा की कोई मूर्त्ति नहीं है फिर इसे कोमल मूर्त्ति आदि कहना ठीक नहीं है ॥ ५७ ॥

Such Rajas are numerous who distribute rewards to the persons who praise their glory and who call them the image of compassion. But O, Rajan, you realize that from the real aspect. The soul has no form and for this reason it is absurd to call it an image. (57)

पद्य—सुरु तरु सुरभि चिन्तामणि नोनेंदु । वि रचिसलेल्लर मेच्चु ॥
तरु पशु पापाण सटियिन्नात्म चि । त्पुरुपनेंदरे निन्न मेच्चु ॥ ५८ ॥

अर्थ-कोई कोई राजा की प्रशंसा में कहते हैं कि तुम कल्पवृक्ष के समान हो अथवा कामधेनु के समान हो अथवा चिन्तामणि रत्न के समान हो ऐसी प्रशंसा करने पर राजा लोग हर्ष से फूले जाते हैं और उस प्रशंसा करने वाले की इच्छा पूर्ण करते हैं परन्तु महाराजा भरत विचार पूर्वक कहते हैं कि कल्पवृक्ष तो है, क्या मैं उसके समान एक ही इन्द्री वाला हूँ ? कामधेनु तो एक गाय है, क्या मैं गाय के समान पशु हूँ ? चिन्तामणि एक पाषाण रत्न है क्या मेरी आत्मा पाषाण के समान है यानि मैं पत्थर तो नहीं हूँ । मैं तो च्युत स्वरूप परमात्मा हूँ ॥ ५८ ॥

Generally Rajas get puffed up with joy when their admirers call them 'Kalp Vriksha', 'Kamadhenu' and 'Chintamani' diamond. But when they apply such terms to you, O Rajan, you question whether you are one-sense being like a tree or animal like a cow or a stone like diamond. (58)

पद्य—नृत्यकेळियोळु सँगीतकेळियोळु सा । हित्यकेळियोळात्म कलेया ॥
अत्यन्त ममते योळादरिसुव कृत । रारन्न निन्नंते ॥ ५९ ॥

अर्थ-नृत्य, संगीत कला, साहित्य देखने व सुनते हुये भी आत्मकला में प्रवीण व जानने वाला आपके समान कौन है । हे राजन् नृत्य देखते हो, संगीत साहित्य सुनते हो और मन को उसमें डोलते हो परन्तु इतना होने पर भी मन को आत्मकला में बड़ी उत्सुकता के साथ लगाते हो । सबकी अपेक्षा यही महत्व आप में है ॥ ५९ ॥

Rajan ! you indulge in the daily affairs of life such as seeing the dances, hearing the songs and looking at other artistic performances, but even then you are all attention whenever there is any discourse about soul. This explains the difference between you and the other kings. (59)

पद्य—भोगविल्लदे भोगियहुदु निन्नोळ्गात्म । योग.विल्लदे योगियहुदु ॥
भोगदोळिद्दु योगवमाडि भव मुक्त । रागुवरारु निन्नंते ॥ ६० ॥

अर्थ–आपके हृदय में भोग विलास के प्रति प्रेम नहीं है यानी उसमें आसक्त नहीं हो फिर भी लोक में षट खण्ड पृथ्वी का भोगी समझते हैं तुम योगी होकर वाह्य रूप में (दिखावे का) आत्म ध्यान नहीं करते हो फिर भी आप अन्तरंग में आत्मानुभव करते हो, इसलिये योगी हो। भोग में रहकर योगसाधन करते हुये मुक्ति को प्राप्त करने वाला आपके समान कौन है ॥ ६० ॥

You appear to be a 'Bhogi' (a person who enjoys worldly pleasures) but are in the heart of hearts a 'Yogi' (a saint who is averse from worldly pleasures. (60)

पद्य—विषय विषव नुंडु दक्किसवल्ल नि । विंषसिद्ध नीनवनीश ॥
विषमचित्तव नात्मनोळु निलसिद राज । ऋषियल्लते राजने नीनु ॥ ६१ ॥

अर्थ—विषय रूपी विष को खाकर भी उस विष के प्रभाव को नष्ट करने में तुम सर्वदा समर्थ हो इसलिए तुम निर्विष सिद्ध राजा हो। विषम चित्त को तुमने आत्मा में लगाया है। इसलिए हे राजन् ! तुम राजर्षि हो ॥ ६१ ॥

Rajan ! you are a Raj Rishi (a saintly King) because inspite of drinking the poison of sense pleasures, you are able to cantrol its effect, (61)

पद्य—कंडवरिगे पुण्यनृपति निन्नय पेस । गोंडवरिगे पाप नाशा ॥
कंडुद नुडिदेनु स्तुतियेन्नदिरु लेस । कंडुनायल्लवनु कवियें ॥ ६२ ॥

अर्थ–हे राजन् ! जो आपका दर्शन करते हैं उनके पाप नष्ट हो जाते हैं। आपका नाम श्रवण करने वाले को पुण्य बन्ध (पुण्य प्राप्त) होता है। मैंने स्तुति नहीं की बल्कि आंखों से देखी हुई बात कह रहा हूँ ॥ ६२ ॥

The poet says that, O Rajan, the sins of those persons are washed off who come to get your darshan, and those persons earn meritorious karmas

who hear your name. I have not praised you by these words but have merely stated the facts as I see. (62)

पद्य—काल कालोचित जिनसिद्ध वंदने । ललितात्मन कारणयोग ॥
शील संगतवाद भोगवेसव भूमि । पालन होगळ्दरारु ॥ ६३ ॥

अर्थ-हे राजन् ! प्रति समय यथोचित रूप से जिन व सिद्ध (भगवान) की वन्दना करने को आप नहीं भूलते इसलिए आपको आत्मयोग दीखता है यद्यपि आप अतुल भोग को भोगते हैं परन्तु वह वाह्य रूप से शील संगत है अतः आपकी स्तुति करना उचित है ॥ ६३ ॥

You do obeisance to Jinendra and Sidh Bhagwan at proper time and with regularity. That is why you are able to get the sight of the soul substance. Although you enjoy matchless pleasures of the world, but that is done with due sense of discrimination, Hence it is but proper that we must praise you. (63)

पद्य—सत्पात्र दानिगे तत्व विज्ञानिगे । चित्पारिणामानुभविगे ॥
सत्पुरुपरु सोल्वररस तुंबिगळु म । होत्पलरसके सोल्वंते ॥ ६४ ॥

अर्थ-जिस प्रकार भ्रमर कमल का आश्रय लेता है उसी प्रकार सत्पात्र दानी, प्रति विज्ञानी और आत्मानुभवी सत्पुरुष आपका आश्रय लेते हैं इसलिए कोई अनुचित बात नहीं है ऐसा होना ही चाहिए ॥ ६४ ॥

Just as humble bees take shelter in the lotus flower, so do the learned persons who have realized soul take shelter with you. (64)

पद्य--जीर्णोद्धारण जिनयज्ञ सुकथा । कर्णन जिनसंघ पूजे ॥
वर्णवर्णितद प्रजारक्षेयुळ्ळन । वर्णिसदवरार राय ॥ ६५ ॥

पद्य--जिनसिद्ध भक्ति सद्गुरु भक्ति शास्त्र ला । लनेयुळ्ळ प्रकृतिय कंडु ॥
जनजाल वेरगुव दक्षकमिगे तन्न । जनकन कंड रीतियोळु ॥ ६६ ॥

अर्थ-जीर्णोद्धार करना, जिनयज्ञ, सुकथा सुनना, जिनसंघ पूजा करना और अनेक वर्णों की प्रजाओं की रक्षा करने वाले राजा को देखकर प्रशंसा कौन नहीं करेगा ? अर्थात् सब करेंगे ॥ ६५ ॥

अर्थ-हे राजन् ! देव गुरु धर्म का आप उत्कर्ष करने वाले हो 'जिन' का सम्बन्धी कथा को

सुनने वाले हो, जिन संघ की पूजा में तुम श्रेष्ठ भक्त हो फिर ऐसा कौन विवेकी पुरुष तुम्हारे गुणों का वर्णन नहीं करेगा ? अर्थात् सभी करेंगे ॥ ६६ ॥

Everyone will Praise such a king who like you arranges for the repairs of ancient monuments, who takes pleasure in listening to the beneficial discourses on religion, who worships the Jain saints and who protects his subjects. (65-66)

पद्य—जिन सिद्धरूप बेरिट्टु कानदे तन्ने । मनदोळगिट्टु काणवगे ॥
जननाथ नोलिवनु स्त्री वश्य नृपवश्य । जनवश्य वदुताने नृपति ॥ ६७ ॥

अर्थ-जिनेश्वर का रूप पृथक् रखकर नहीं देखते हुए बल्कि अपने हृदय में ही रखकर देखने वाले को राजवश्य, स्त्रीवश्य और नृपवश्य होने में क्या देर लगती है ? हे राजन् अपने आप वशीभूत हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

You perceive the image of Jinendra Bhagwan within yourself instead of outside. For this reason everyone, kings, queens, kingdom, all come under your sway. (67)

पद्य—अन्तरंग दोळात्म रूप नोळ्पागरु । हंत तानर्हिर्प नेनलु ॥
व्यँतरवश्य विद्यावश्य कैवल्य । कांतावश्य वेग्गळवे ॥ ६८ ॥

अर्थ-जिस समय अपने अन्तरंग में आत्मस्वरूप का दर्शन करता है तो साधक साक्षात् अर्हंत के रूप में मग्न होता है उस अवस्था में उस व्यक्ति को व्यंतरवश्य, विद्यावश्य, कांतावश्य कैवल्यवश्य इत्यादि होने में क्या कोई कठिनाई है ? सचमुच मुक्ति कान्ता भी सहज ही वश्य हो जाती है ॥ ६८ ॥

When you realize the soul within yourself and get absorbed in the contemplation of the Lord, gods and godesses bow their heads to you and even you win over the Damsel moksha. (68)

पद्य—तनु जिन गृहवेंदुमन सिंहपीठ वें । दनुपमात्मने जिननेंदु ॥
नेनहवेल्लव विट्टु कण्मुच्चि नोळ्पाग । जिननाथ तोरुव नोळगे ॥ ६९ ॥

अर्थ-हे राजन् ! यह शरीर 'जिन' मन्दिर है मन उसका सिंहासन है, निर्मल आत्मा 'जिन' भगवान है, बाहर के सभी विकल्प छोड़ कर आंख बन्द कर इस प्रकार अपने अन्दर देखे तो सचमुच ही 'जिन' अपने ही में प्राप्त होंगे अर्थात् अपने ही भीतर दर्शन देंगे ॥ ६९ ॥

Body is the temple, the mind is the throne, the soul is Jineshwar Bhagwan. When he forgets external things and concentrates on the above after closing the eyes he sees Parmatma. (69)

पद्य—मरेदोंदु वस्तुव केडसि मत्तेच्चेत्तु । अरसुवनंतद नेनेदु ॥
अरिवु नोटवे देह ननगेंदु मैयोळ । गिरलल्लिये तोर्पनात्मा ॥ ७० ॥

अर्थ-जैसे कोई व्यक्ति किसी चीज को भूलकर फिर सावधान हो पुनः उस भूली हुई चीज को सोचने में उपयोग लगाकर उस पदार्थ में चित्त स्थिर करता है । उसी प्रकार खोये हुये पदार्थ को ढूंढने के समान एकाग्रता पूर्वक ज्ञान दर्शन ही मेरा निज रूप है । इस प्रकार का चिंतवन जब शरीर के अन्दर होता है, तब उस प्रकाशमय आत्मा का दर्शन होता है ॥ ७० ॥

If a man forgets where he has placed some thing of his, then he thinks where he has left it and then knows where it is. Similarly Rajan you find out the Atma substance, the moment you think of it, after leaving the worldly matters. (70)

पद्य—कलितु मरे दोंदु पद्यव नेनेदुद । नोळगोळ गालोचिपनंते ॥
तिळिवु वेळगु नन्न रूपेंदु नेनहु मैं । योळगाडलात्म तोरवनु ॥ ७१ ॥

अर्थ-जैसे कोई विद्यार्थी अभ्यास के पाठ को भूल गया हो और अध्यापक के पूछने पर अपनी भूल को दत्तचित्त होकर विचार करता है, उसी प्रकार ज्ञान दर्शन भी मेरा रूप है ऐसा समझकर एकाग्रता से शरीर के अन्दर (आत्मा में) चित्त लगावे तो आत्मा का दर्शन होता है ॥७१॥

Just as a student forgets his lesson but on being questioned by the teacher directs his mind to it and then remembers it, similarly when a person concentrates his attention on the soul inside the body after realising that knowledge and conation are his attributes he sees the Lord. (71)

पद्य—सुरुचिर छाया प्रतिमेगे छाया । पुरुषगे सद्दर्शननेंदु ॥
स्मरिसुत कण्मुच्चि नोडिदरवरंते । परमात्म तोरुव नोळगे ॥ ७२ ॥

अर्थ-जिस प्रकार सुन्दर छाया मूर्ति का रूप है, उसी प्रकार आत्मा का भी निजरूप है, इस प्रकार स्मरण करते हुए नेत्र बन्दकर आत्मा को देखो तो अवश्य आत्म दर्शन होता है ॥ ७२ ॥

Just as the body has a shadow so the soul has also its reflection. If one bears this in mind he is sure to realize the soul. (72)

पद्य—प्राभृत शास्त्रव नोदि वायुगळ्ळ म । हा भृत्यनेरे वशमाडि ॥
भू भून्नाथ चित्तोसोळ्ळ गीचिसे । श्री भूतनाथ तोरुवनु ॥ ७३ ॥

रविशशिगळ्ळ कट्टि प्राणा पान वा । युव ब्रम्हरंध्र केरिसळ्ळ ॥
कविद् कत्तलेगेट्टु मैयोळ्ळगात्म तो । रुवनु प्रकाश रूपागि ॥ ७४ ॥

अर्थ–प्रावृत शास्त्र को उत्तम प्रकार से अध्ययन व मनन करके शरीरस्थ वायु को भृत्यों के समान वश में कर, जिस समय चित्त में त्रैलोक्यनाथ भगवान का स्मरण करते हैं, उस समय प्रत्यक्ष आत्मा का दर्शन होता है ॥ ७३ ॥

अर्थ–जिस प्रकार सूर्य चन्द्र स्वरूप नासिका रन्ध्र को वन्द कर प्राण व अपान वायु को जिस समय ब्रह्मरन्ध्र में चलाते हैं, उस समय शरीर का अन्धकार नष्ट होकर तेजपुञ्ज, आत्मा का दर्शन होता है ॥ ७४ ॥

When one brings under control all the activities of mind body speach and breath‹ after a proper study of "Yoga" Shashtra, and concentrates his attention on the Lord, one gets a clear perception of the soul. (73-74)

पद्य—वायुव जयसि केलरु काणवरात्मन । वायुव जयिसदे केलरु ॥
कायदोळात्मन काणवरु कांतिये । काय सुखवे सुळुहागि ॥ ७५ ॥

अर्थ–खेद है कि कोई कोई पवन को वश्य करके आत्मा को देखते हैं कोई कोई उसे वश्य न करके ही देखते हैं। कोई शरीर को ही आत्मा समझते हैं ॥ ७५ ॥

It is regrettable that some persons try to realize the soul with the proper control of breathing, while some without it, while others identify the body with soul. (75)

पद्य—भोगगनोंदे दिनदोळु तोरनात्मनु । वर्गिदागळे वागिलहुदे ॥
नुग्गेय मरनल्ल कर्मवेंबुदु कर्म । जग्गलोग्यने तोरुतिहनु ॥ ७६ ॥

अर्थ–कोई प्रयत्न कर एक ही दिन में दर्शन करना चाहे तो वह आत्मा को नहीं देख सकता क्योंकि यह कोई सरल वात नहीं है जैसे कोई वस्तु एकदम से नहीं झुकती, वल्कि धीरे धीरे वढ़ते हुये झुकती जाती है। उसी प्रकार धीरे धीरे जटिल कर्म को अभ्यास के द्वारा निराकरण करते हुये ही आत्मा को जाना जाता है ॥ ७६ ॥

If some one wants to perceive the 'Atma' (soul) in one day he is mis-

taken. This is not so easy. It would require constant practice to destroy the karmas and acquire perception of soul. (76)

पद्य—एळे मिंचिनदद् बोंवेयो तिंगळ । तिळि वेळगिनोळादरूपो ॥
पळकिन पुत्तळियोयेने क्रमदिंद । होळेवेदोळगे तन्न रूपु ॥ ७७ ॥

अर्थ–क्या आत्मा कोई बिजली की रोशनी तो नहीं है ? अथवा चांदनी से बना हुआ चित्र तो नहीं है, एवम् प्रकाश देने वाला कोई पुतला तो नहीं है, इस प्रकार कल्पना करके भेद विज्ञान के द्वारा अपने ही भीतर देखने से अपना रूप अपने ही अन्दर झलकता दिखाई देता है ॥ ७७ ॥

When a person directs his thought activities towards his innerself and tries to establish its existence by raising the questions whether soul is like lightning or is a sketch of light, or is a sparkling form, he is able to get a glimpse of his 'Atma'. (77)

पद्य—जोतिर्लोकद होक्कंते तंपिन । ज्योतिय नडुवे निंदते ॥
ता तन्न निजव नोळ्पाग क्षीवुदु तनु । वातदोळिह सिद्धरंते ॥ ७८ ॥

अर्थ–आत्मानुभवी ही इसका अनुभव करता है मानो यह शरीराभ्यन्तर लोक में प्रवेश कर गया हो अथवा शीतल ज्योति के बीच में खड़ा हो । इस प्रकार अभ्यास करते करते अनुभव होता है कि मैं ही तनुवातवलय में रहने वाला सिद्ध परमेष्ठी के समान होगया हूं ॥ ७८ ॥

Only that person who has realized his soul is capable of experiencing through contemplation that he has entered the innermost region of the world or is standing in the coolest light. Through regular practice of this concentration and self absorption he begins to experience the bliss of the siddhas whose abode is at the uppermost of the world. (78)

पद्य—नुडि यिल्ल नडेयिल्ल तनुविल्ल मनविल्ल । कडेगे पंचेंद्रिय विल्ल ॥
कडुसुख सुज्ञान कांतिदे रूपागि । बोडलु तुंबिर्दुदात्म रूपु ॥ ७९ ॥

अर्थ–आत्मा कोई शब्द नहीं है एवम् चलने फिरने से रहित है और न उसका शरीर है न मन एवम् न उसके पंचेन्द्रिय हैं । ऐसे श्रेष्ठ सुज्ञान कान्ति रूप से अनन्त सुख झलकते हुए इस शरीर में ही अपना सम्पूर्ण आत्म स्वरूप भरा हुआ है ॥ ७९ ॥

Soul neither has speech nor movement, nor body nor the five senses. It is all right knowledge and bliss with which the entire body glows. (79)

पद्य—तन्न ता नोळ्पाग नोड़ चित्रव कर्म । तन्न ता जरिदोड़तिहुदु ॥
मुन्नेंदु कंडु केळ्दि तेरनल्ल दों । दुन्नत सुख हुट्टुतिहुदु ॥ ८० ॥

अर्थ–जिस समय यह आत्मा अपने स्वरूप का विचार करता है, उस समय नाना प्रकार के कर्म उसको अपने आप छोड़कर भाग जाते हैं और उसे ऐसा सुख प्रतीत होता है कि जैसे उसने कभी नहीं देखा हो, और न सुना हो इस प्रकार का अनुभव होता है ॥ ८० ॥

When the soul diverts its thoughts and activities towards itself, numerous kinds of Karmas shed off and it experiences bliss of which there is no parallel. (80)

पद्य—मुक्ति सुखके वीजवा वीज निर्भेद । भक्ति जिनेन्द्र न मेच्चु ॥
मुक्ति गामिगळु वल्लरु नीने वल्ले वि । रक्तररस राजयोगि ॥ ८१ ॥

अर्थ–मोक्ष सुखके लिये यह वीज के समान है, वही वीज निर्भेद भक्तिके लिये कारण है यही भगवान जिनेन्द्र को इष्ट है । इस सुख को मोक्षगामी जान सकते हैं । इसलिये हे राजन् ! विरक्त रस राज योगी आप ही जान सकते हैं, हम क्या जानें ॥ ८१ ॥

This process acts as a seed for attaining the bliss of liberation. It also leads to unadulterated devotion, and is a desireable object according to the Lord. The bliss it bestows is only known to those who attain liberation, or Rajan to you who is a dispassionate Raj Yogi (saint king). (81)

पद्य—नावेल्ल वल्लेवे नुडिवे वेद्रे हंस । भावनेयिंदाद सुखवा ॥
भावितात्मर शिरोमणिये नीने वल्ले । नावोडवेंडेयल्लेवद के ॥ ८२ ॥

अर्थ–हे राजन् आत्मानुभव से उत्पन्न सुख को क्या हम लोग जानते हैं ? नहीं । हम तो केवल वोलते हैं इस स्वानुभव जनित सुख को आत्म योगियों के शिरोमणि तुम्हीं अनुभव कर सकते हो । इसका हम क्या अनुभव कर सकते हैं ॥ ८२ ॥

O Rajan ! we can not realize this bliss born of self realization. This can only be realized by you who is the saint of saints. (82)

पद्य—देव नीनध्यात्म सूर्य निन्निदिरल्लि । नावेल्लरध्यात्म रसवा ॥
ई विधवेंबुदु रविगे प्रकाशव । दीविगेगळु तोर्परीति ॥ ८३ ॥

अर्थ–कवि कहता है हे देव ! आपही अध्यात्म सूर्य हैं। आपके समक्ष अध्यात्म का सार वर्णन करना एक प्रकार से सूर्य के सामने दीपक दिखाने के समान है। अतएव हे राजन् ! आपके सामने अध्यात्म विषय को वर्णन करने की शक्ति हममें नहीं है ॥ ८३ ॥

Thus says the poet," O Rajan ! you are the spiritual sun. My attempt to describe the spiritual glory in your presence is just like the glimmering of lamp light before the sun." (83)

वावन वृक्षदोत्ति नोल्दिं मरगलु । तावेल्ल कम्मनप्पंते ॥
देवनिन्नोडनाडि नावेल्ल ररिदेवु । जीव शुद्धिय तुदिमोदला ॥ ८४ ॥

अर्थ–चन्दन वृक्ष के समीप में रहने वाले अन्य वृक्ष भी चन्दन की तरह सुगन्धि युक्त होकर शोभा पाते हैं। उसी तरह हे देव ! आपके संसर्ग में रहने से हम भी आत्म शुद्धि के उपाय को पाकर कृत कृत्य होगये ॥ ८४ ॥

Just as those trees, which are near the sandal wood tree, acquire the fragrance of sandal wood, so do we, O Rajan, feel ourselves gratified in learning the process of soul purification from you, the fountain head. (84)

पद्य—इदु मुँदुरे नीने सुखि निन्ननोलैप । मंदियेल्लरु सुखियाग्तु ॥
इदु कंडेवु स्वामियतंते परिवार । वेंदेंव वाक्यदर्थवनु ॥ ८५ ॥

अर्थ–हे राजन् ! इस समय आपही सुखी हैं, और आपके संसर्ग से हम भी सुखी होगये। और प्रजा परिवार भी सुखी होगया इसके श्रेय कारण आप ही हैं ॥ ८५ ॥

O Rajan ! you are all blissful, and your subjects all feel happy on account of your company, (85)

पद्य—दिविज कलाधर कवियंतु रचसिद । नवनुप्रसंग रायनिगे ॥
किवि होक्कुदेंदेदट्टि तध्यात्मवेंबाग । लदलविनुतना नृपति ॥ ८६ ॥

अर्थ–इस प्रकार भरतेश्वर ने दिविज कलाधर कवि की रचना बहुत उत्सुकता के साथ सुनी। यह रचना सम्राट के हृदय में पहुंची उससे सर्वांग रोमांच होगया। अध्यात्म विषय को सुनने की महाराज भरत जी की तीव्र इच्छा रहती थी ॥ ८६ ॥

Raja Bharat heard with rapt attention the recitation of the poet Divij

kaladhar and he derived pleasure from it. Such spiritual discourses had special charm for Raja Bharat, (86)

पद्य—तन्नंत रंगानुभव वनेल्लव नीत । मुन्न कंडते पेळ्द्पनु ॥
विन्नणियहुदेंदु वायदेरेदु सुरदे । तन्न देयोळु मेच्चि नेनिदा ॥ ८७ ॥

अर्थ–राजा भरत मन में इस प्रकार विचार करने लगे, कि क्या इस कवि ने मेरे अन्तरङ्ग में घुसकर कदाचित् मेरे भाव को देखा हो, ठीक उसी समान मेरे अन्तरङ्ग के आध्यात्मिक भाव को जैसा का तैसा वर्णन किया। इस प्रकार कहते हुये मन ही मन में उस कवि की प्रशंसा करने लगे ॥ ८७ ॥

Raja Bharat praised the art of the poet within him, since he had described what was in the mind of the Raja, exactly in the manner the Raja desired. (87)

पद्य—ईतगध्यात्म बुंटल्ल दिद्दरी । चातुर्यवचन वेतंहुदु ॥
मातु ताने मनदोळगे सूचिसुवदें । दात नेनेदने देयोळगे ॥ ८८ ॥

अर्थ–यह कितनी बुद्धिमत्ता है कि इस कवि को आत्म ज्ञान अवश्य प्राप्त हुआ है यदि ऐसा न होता तो इस प्रकार वाक्यपटुता व वचन चातुर्यता इस विषय में कैसे आसकती है। लोक में वचन ही मन के भाव को झलकाती है इस प्रकार राजा भरत अपने आप विचार कर रहे हैं ॥ ८८ ॥

Raja Bharat thought within himself that this poet must have already attained the realization of soul otherwise he could not have given such a lucid expression of his thoughts. (88)

पद्य—ई कडेगा कडेगेडेयाडवहुदेल्ल । राकाशदोळ्ळ गाडवहुदे ॥
लोकवेल्लव हेळ्वहुदध्यात्मव । देके वहुदु बाह्य जनके ॥ ८९ ॥

अर्थ–इस लोक में, थल में, जल में, अथवा पृथ्वी में गमन करना सरल है परन्तु विना आधार के क्या कोई आकाश में भी चल सकता है। नहीं। इसी प्रकार बाह्य वस्तु का तो सभी वर्णन कर सकते हैं परन्तु अध्यात्म विषय का वर्णन करना उन लोगों के लिये कभी शक्य नहीं हो सकता है ॥ ८९ ॥

It is easy for a person in the world to walk on land and water, but

difficult to fly in the air without any help. In the same manner it is easy to give a description of things external to one's person, but it is very difficult to describe the beauty of soul which is within. (89)

पद्य—शब्द समुद्रव होक्कोंडु पदके नू। रव्द अर्सगिस वहुदु ॥
शब्दवर्जित हंसयोगव इंतेनुतोंडु। शब्दमात्रव हेळ वहुदु ॥ ९० ॥

अर्थ-शब्द समुद्र में प्रवेश करके एक एक शब्द के वर्णन करके एक एक शब्द के सौ सौ अर्थ लगाने वाले बहुत लोग हैं। परन्तु शब्द रहित आत्म योग का वर्णन करना कोई सामान्य बात नहीं है ॥ ९० ॥

Such persons are many in this world who can interpret each word in numerous ways, but it is difficult to find a person who can express what is only capable of being realized through self contemplation. (90)

पद्य—तर्क शास्त्रदोळ्होक्कि तगुरु तगरिनंते। माकोंडु होडदाड वहुदु ॥
अर्कनंते से वात्म योग विंतिहुदेंदु। बेकेंदु वचनिस लरिदु ॥ ९१ ॥

अर्थ-तर्क शास्त्र में गमन कर (गति प्राप्त कर) परस्पर विवाद करने वाले पंडित बहुत हो सकते हैं। परन्तु सूर्य के समान रहने वाले आत्मा को जान कर वचन से कहना बहुत कठिन है ॥ ९१ ॥

Such logicians are not few who can enter into mutual contrversy no different matters, but such of them are few who realizing the shining glory of sun like soul can express its beauty through words. (91)

पद्य—आगम काव्य नाटक दोळ्बेल्लर तले। दूगिसे मलगिस वहुदु ॥
मूगरु कंड कनसिनंते मेरेवात्म। योगव नाराडवहुदु ॥ ९२ ॥

अर्थ-आगम, काव्य, नाटक के वर्णन से लोगों को आनन्द विभोर करके सुलाने वाले बहुत हैं। परन्तु गूंगे मनुष्य के स्वप्न के समान वर्णन करने के समान आत्मयोग का वर्णन करके लोगों को सुलाना क्या साधारण बात है ॥ ९२ ॥

One can find many persons who can hyptonise people by their enrapturing manners of reciting a poem or describing a drama, but it is difficult to find persons who can describe the soul substance which is as difficult of expression in words as for a dumb man to relate his dreams. (92)

पद्य—मुडि मोग मोलेय वर्णिसि केळ्वरेल्लरु । इ डुगेय सुलसि कोळ्ळवहुदु ॥
नुडिय ग्रारद परंज्योतिय निंतेंदु । नुडिदु मेच्चिस लोव्वरळवे ॥ ९३ ॥

अर्थ-स्त्रियों की वेणी (शिर के लम्बे वाल) व मुख तथा कुच का वर्णन करके लोगों को प्रसन्न करना सहज है, परन्तु वचन अगोचर परम ज्योति (आत्मतत्त्व) का वर्णन कर, लोगों को प्रसन्न करना क्या यह सहज है ? अर्थात् नहीं ॥ ९३ ॥

It is easy to attract the attention of persons by describing the beauty of the different parts of a female's body, but it is difficult to create interest in persons for the discourses on the soul substance. (93)

पद्य—कदन दोळंतितु तरिदरिरिदरेंदु । येदे तूळ्वेळिस वहुदु ॥
इदनारु नुडिय वहुदु परवोम्मन । सदनवे येंदु नेनेदनु ॥ ९४ ॥

अर्थ-युद्ध की वात सुन कर अनेक राजा लोग अपनी छाती को ठोक कर कहते हैं कि उन शत्रुओं को हम वश करके लायेंगे एवम् अवश्य तुरंत ही लायेंगे ऐसी वातें करने वाले तो वहुत हैं परन्तु ऐसी चर्चा कोई नहीं करता कि परब्रह्म का मूल क्या है तथा उसको वश करने की क्या युक्ति है। ऐसी चर्चा करने वाले हे राजन् आपके समान कौन है ॥ ९४ ॥

Such kings are not few who on hearing the news of war, say that in no time they will vanquish the enemy, but such kings are very few like you concentrate on the plans of winning over the moksha. (94)

पद्य—अत्यासन्न भव्यरि गल्लदात्मसं । गत्यवेल्लरिगेके वहुदु ॥
स्तुत्य सुध्यानि गळ्पेळ्वरध्यात्म सा । हित्य सदरवेंदु नुडिदा ॥ ९५ ॥

अर्थ-आत्यासन्न (निकट भव्य) जीव ही आत्मतत्त्व की श्रद्धा करसकतेहैं। अभव्य नहीं। इस अध्यात्म रस का वर्णन स्तुत्य ध्यानी जन ही कर सकते हैं एवम् मनन भी कर सकते हैं। इस रसास्वादन को अन्यजन नहीं कर सकते हैं। इसलिये हे राजन् आप ही इसके पात्र हैं अन्य कोई नहीं ॥ ९५ ॥

Only 'Bhavyas' (souls capable of liberation) can have faith on the soul substance others can not. Only those of the Bhavyas can concentrate and describe it who are attentive to it. Other can not derive this bliss. Only you are capable of enjoying it. (95)

पद्य—उडव तेगुवंतात्मन भाविसि । कंडवनद पेळ्वेकु ॥
कंडु पेळ्दिरु निर्भव्यरोप्परु भव्य । पुंडरीकरू मेच्चवेकु ॥ ९६ ॥

अर्थ-पट् रस भोजन आस्वादी पुरुष ही, उस भोजन के स्वाद का अनुभव कर सकते हैं। तदनुकूल आत्मानुभवी पुरुष ही आत्मा के रस का अनुभव कर सकते है एवम् जिन्होंने अपने हृदय मंदिर में आत्मरूप को देखा है वही उसकी प्रशंसा कर सकता है। अभव्य उसका वर्णन तथा अनुभव कभी नहीं कर सकता। इसलिये यह रसास्वादन भव्य पुण्डरीक (श्रेष्ठ भव्य) ज्ञानी जन को ही इष्ट है अन्य को नहीं ॥ ९६ ॥

Only that person can realize the deliciousness of the food who takes it. Similarly only that person can realize the blissfulness of the soul substance who has gained spiritual experience. *(96)*

पद्य—ई कवियासन्न भव्यनहुदु सिद्ध । लोक पथिकनहुदेंदु ॥
वाकु दोरदो मुन्ननेनेदु मत्तोय्यने । वाकुदोरिदना चक्रि ॥ ९७ ॥

अर्थ-यह कवि आसन्न भव्य है। थोड़े दिन में सिद्ध पद को प्राप्त होने वाला है और भेद विज्ञानी है इस प्रकार से राजा भरत मन ही मन में उसकी प्रशंसा करते हैं फिर पुकारते हुए उस कवि को अपने पास बुलाया ॥ ९७ ॥

Raja knew that the poet Dvij Kaladhar was a Bhavya who was to attain liberation soon and that he possessed the faculty of discrimination between the soul and non-soul. He praised the poet within himself and then called him. *(97)*

पद्य—बारै दिविज कलाधर सुकवियें । दारापनोत्तिगे करेदु ॥
तोर हस्तदोळुड्डुगोरेय नित्तनु कल्प । भूरुह फैनीडिदंते ॥ ९८ ॥

जैसे कल्प वृक्ष फलों के भार से झुक जाता है तदनुकूल झुकते हुये राजा भरत ने हाथ बढ़ाकर उस द्विविज कलाधर कवि से भेंट की और अनेक प्रकार से पारस्परिक कुशल मंगल पूछा ॥ ९८ ॥

Just as the Kalpa tree *(tree which satisfies all the wishes)* bows down with the weight of fruits, the Raja bent a little, extended his hand towards the poet and greeted him. *(98)*

पद्य—मुडि मोग मोलेय वर्णिसि केळ्वरेल्लरु । ड्डुगेय सुलसि कोव्ळवहुदु ॥
नुडिय आरद परंज्योतिय निर्तेंदु । नुडिदु मेच्चिस लोव्बरळवे ॥ ९३ ॥

अर्थ–स्त्रियों की वेणी (शिर के लम्बे वाल) व मुख तथा कुच का वर्णन करके लोगों को प्रसन्न करना सहज है, परन्तु वचन अगोचर परम ज्योति (आत्मतत्त्व) का वर्णन कर, लोगों को प्रसन्न करना क्या यह सहज है ? अर्थात् नहीं ॥ ९३ ॥

It is easy to attract the attention of persons by describing the beauty of the different parts of a female's body, but it is difficult to create interest in persons for the discourses on the soul substance. (93)

पद्य—कदन दोळ्तिंतु तरिदरिरिदरेंदु । येदे तूळ्वेळ्सि वहुदु ॥
इदनारु नुडिय वहुदु परवोम्मन । सदनवे येंदु नेनेदनु ॥ ९४ ॥

अर्थ–युद्ध की वात सुन कर अनेक राजा लोग अपनी छाती को ठोक कर कहते हैं कि उन शत्रुओं को हम वश करके लायेंगे एवम् अवश्य तुरंत ही लायेंगे ऐसी वातें करने वाले तो वहुत हैं परन्तु ऐसी चर्चा कोई नहीं करता कि परब्रह्म का मूल क्या है तथा उसको वश करने की क्या युक्ति है । ऐसी चर्चा करने वाले हे राजन् आपके समान कौन है ॥ ९४ ॥

Such kings are not few who on hearing the news of war, say that in no time they will vanquish the enemy, but such kings are very few like you concentrate on the plans of winning over the moksha. (94)

पद्य—अत्यासन्न भव्यरि गल्लदात्मसं । गत्यवेल्लरिगेके वहुदु ॥
स्तुत्य सुध्यानि गळ्पेळ्वरध्यात्म सा । हित्य सदरवेंदु नुडिदा ॥ ९५ ॥

अर्थ–आत्यासन्न (निकट भव्य) जीव ही आत्मतत्त्व की श्रद्धा करसकतेहैं । अभव्य नहीं । इस अध्यात्म रस का वर्णन स्तुत्य ध्यानी जन ही कर सकते हैं एवम् मनन भी कर सकते हैं । इस रसा स्वादन को अन्यजन नहीं कर सकते हैं । इसलिये हे राजन् आप ही इसके पात्र हैं अन्य कोई नहीं ॥ ९५ ॥

Only 'Bhavyas' (souls capable of liberation) can have faith on the soul substance others can not. Only those of the Bhavyas can concentrate and describe it who are attentive to it. Other can not derive this bliss. Only you are capable of enjoying it. (95)

पद्य—उडव तेगुवंतात्मन भाविसि । कंडवनद पेळ्वेकु ॥
कंडु पेळ्दिरु निर्भव्यरोप्परु भव्य । पुंडरीकरू मेच्चवेकु ॥ ९६ ॥

अर्थ-षट् रस भोजन आस्वादी पुरुष ही, उस भोजन के स्वाद का अनुभव कर सकते हैं। तदनुकूल आत्मानुभवी पुरुष ही आत्मा के रस का अनुभव कर सकते है एवम् जिन्होंने अपने हृदय मंदिर में आत्मरूप को देखा है वही उसकी प्रशंसा कर सकता है। अभव्य उसका वर्णन तथा अनुभव कभी नहीं कर सकता। इसलिये यह रसास्वादन भव्य पुण्डरीक (श्रेष्ठ भव्य) ज्ञानी जन को ही इष्ट है अन्य को नहीं ॥ ९६ ॥

Only that person can realize the deliciousness of the food who takes it. Similarly only that person can realize the blissfulness of the soul substance who has gained spiritual experience. (96)

पद्य—ई कवियासन्न भव्यनहुदु सिद्ध । लोक पथिकनहुदेंदु ॥
वाकु दोरदो मुन्ननेनेदु मत्तोय्यने । वाकुदोरिदना चक्रि ॥ ९७ ॥

अर्थ-यह कवि आसन्न भव्य है। थोड़े दिन में सिद्ध पद को प्राप्त होने वाला है और भेद विज्ञानी है इस प्रकार से राजा भरत मन ही मन में उसकी प्रशंसा करते हैं फिर पुकारते हुए उस कवि को अपने पास बुलाया ॥ ९७ ॥

Raja knew that the poet Dvij Kaladhar was a Bhavya who was to attain liberation soon and that he possessed the faculty of discrimination between the soul and non-soul. He praised the poet within himself and then called him. (97)

पद्य—वारै दिविज कलाधर सुकविर्ये । दारायनोत्तिगे करेदु ॥
तोर हस्तदोळ्डुगोरेय नित्तनु कल्प । भूरुह कैनीडिदंते ॥ ९८ ॥

जैसे कल्प वृक्ष फलों के भार से झुक जाता है तदनुकूल झुकते हुये राजा भरत ने हाथ बढ़ाकर उस दिविज कलाधर कवि से भेंट की और अनेक प्रकार से पारस्परिक कुशल मंगल पूछा ॥ ९८ ॥

Just as the Kalpa tree (tree which satisfies all the wishes) bows down with the weight of fruits, the Raja bent a little, extended his hand towards the poet and greeted him. (98)

पद्य—कडग कंठमाले पदक कुंडलवित्त । नोडने कुल्लायी कवाई ॥
निडुवोंबे पट्ट पच्चडवित्तु वीळेय । गोडुत जाळीगे नूरगोट्टा ॥ ९९ ॥

अर्थ–राजा ने उस कवि को अपने पास बुलाकर कंठमाला,कड़े, स्वर्णपदक, कुण्डल, रत्नहार, मणि, नवीन एक से एक वढ़िया कपड़े एवम् अनेक प्रकार के आभूषण वस्तुओं को भेंट देकर तृप्त किया ॥ ९९ ॥

The Raja then bestowes on the poet many a gift of jwellery and clothes. (99)

पद्य—भद्र हस्तियोळु हत्तुंडु कीलारस । मुद्रिसि नूरार गोट्ट ॥
मुद्रिसि नूरेंडु ग्रामव दारिघ्र । विद्रावण धारेयेरेदा ॥ १०० ॥

अर्थ–उसके वाद भद्र हस्तियों में से दस हाथी तथा उत्तम प्रकार के २०० गायें भी साथ में दे दी और १०८ ग्राम भी प्रमाण पट्टे सहित देकर उस सुकवि को पुरस्कृत किया ॥ १०० ॥

Then he gave ten of the best elephants, 200 of the best cows, and 108 villages as gifts to the poet. (100)

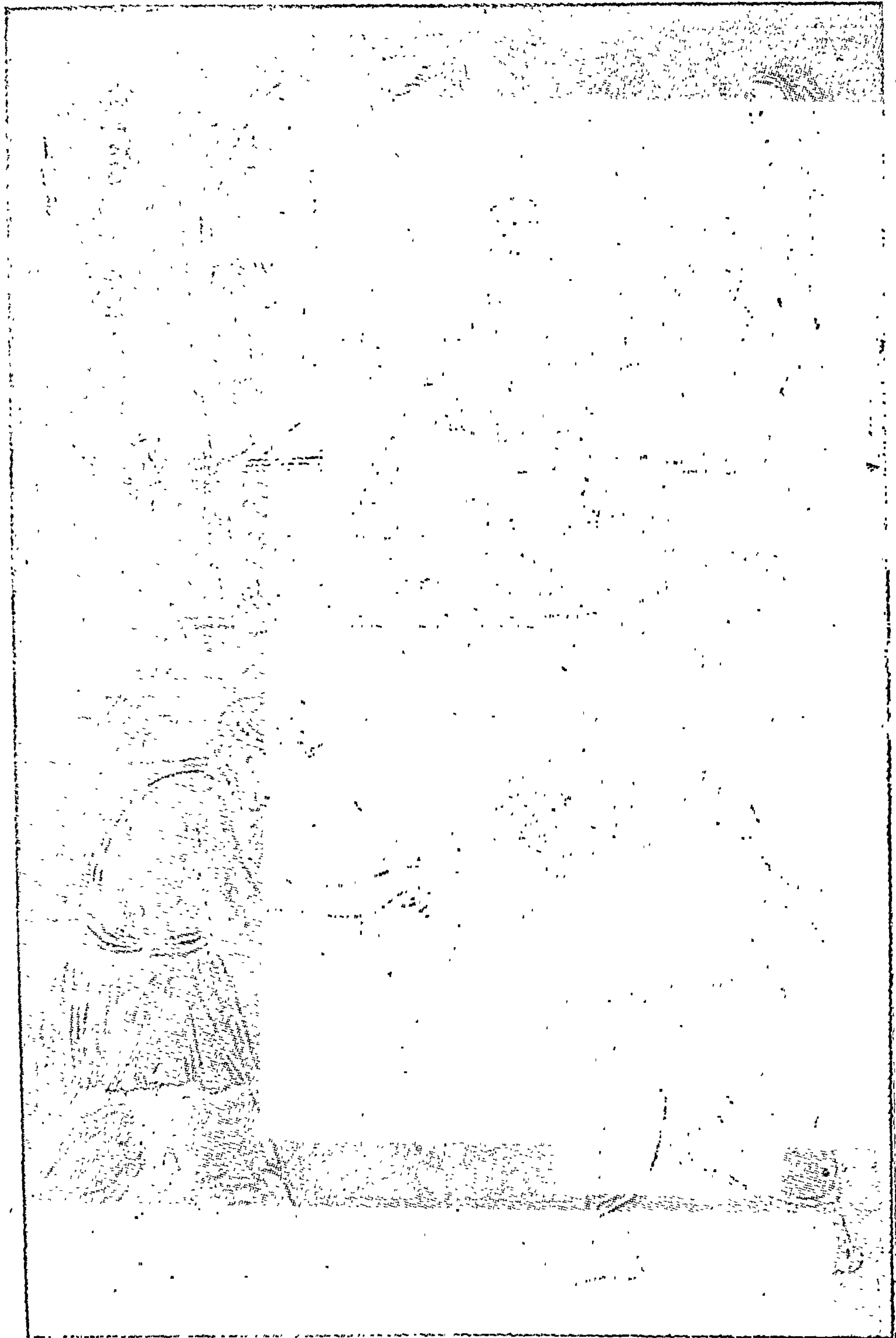
पद्य—वळिकिण्डु नगेगूडि चेन्नाय्तु निन्नात्स । नोळ्ग कंडेलेस नुडिदै ॥
वळलिदे कुळ्ळिरेंदितय्दु नुडिथिंद । कळुहिदनवननु राय ॥ १०१ ॥

अर्थ–चक्रवर्ती सम्राट भरत हँसते हुए कहने लगे हे सुकवि तुमने वहुत ही उपयुक्त सुन्दर वातें कहीं जो कुछ अभ्यन्तर में देखा वही वाहर प्रगट किया है अतएव कहते हुए वहुत देर हो चुकी है अव विश्राम कीजियेगा इस प्रकार कह कर उस कवि को वैठ जाने के लिए सम्वोधन किया ॥ १०१ ॥

The Chakravarti then told the poet that he had spent much time in giving out the discourse of what he had experience within himself, and might then take a little rest. (101)

पद्य—जैनागम विदु सदरवे नुडिवोडे । नानेष्टरवनु राजेन्द्र ॥
ई निन्न सभेय विद्वांसरे वल्लरें । दानंदिसुत तोलगिदनु ॥ १०२ ॥

अर्थ–तव दिविज कलाधर कवि हर्षित होते हुए कहने लगे कि हे राजन् ! मैं आपके सद्गुणों का वर्णन करने वाला कौन हूं आपकी सभा में विद्यमान विद्वान् ही इस विषय को जान सकते हैं ये सव आपकी कृपा का फल है क्योंकि आप से ही प्राप्त अमूल्य रत्नों को आपकी ही



राजा भरत दिविंज कलाधर नाम के कवि की आध्यात्मिक चर्या से उस पर प्रसन्न होकर उसको अनेक रत्नाभूषण इत्यादि देकर उसका सन्मान करवा रहे हैं।

यह चित्र धर्मपत्नी सेठ मोहनलाल जी जैन छावड़ा बाराबंकी के द्वारा छपा।

सेवा में सादर समर्पण किया है इसमें मैंने कौन सी वड़ी वात की है। इस प्रकार कह कर हंसे और आनन्दित होकर चले गये ॥ १०२ ॥

The poet thanked his majesty from his very heart and said, "Rajan, I do not possess the ability of describing your qualities, only the learned persons sitting in the court can express them. I have merely recited what I have learnt from you" Thus saying the poet left the court. (102)

पद्य—ई दोरेयंतरंगव कंड मनुजरि। ळ्ली धीर कंड्ड नडेदनु ॥
बोधाग्रणियेंदु सभेयेल्ल दिविजक। लाधर कविय कीर्तिसितु ॥ १०३ ॥

अर्थ-सभा में उपस्थित जनवृन्द आपस में विचार विनिमय करने लगे कि चक्रवर्ती भरत के अन्तरंग को कोई नहीं पहिचान सकता परन्तु इस विद्वान् सुकवि ने अन्तरंग को जान कर विषय वर्णन किया है सचमुच यह कवि दूरदर्शी व विद्वान् है इत्यादि प्रकार से सभाजन उस कवि की प्रशंसा करने लगे ॥ १०३ ॥

Other courtiers also began to praise the intellectual capacity of the poet. They said that he was really a very able and learned person who could give a happy description of the inner feelings of the king. (103)

पद्य—कविय ज्ञानके राय रायनुदार गौ। रवकेल्ल रतिंसुवाग ॥
धवलशंख ध्वनि घळियार दल्लि भुँ। भुवभुंमेने केळ्लाय्तु ॥ १०४ ॥

अर्थ-कवि के ज्ञान पर राजा का हर्ष व उदारता देखकर सर्व प्रजाजन प्रसन्नचित्त हो रहे थे तव भों भों शब्द करते हुए धवल शंख ध्वनि घड़ी का घन्टानाद सुनने में आया ॥ १०४ ॥

The courtiers were happily discussing the king's joy and charitable disposition, when the sound of clock striking the hour was heard. (104)

पद्य—आरोगणे वेळेगे सन्नेयाय्तेंदुतु। आ राजसभे भोंकनेद्दु ॥
आ रायगेरगि पोळ्कोंडुदु कडल म। हारवमेने ध्वनि मसगे ॥ १०५ ॥

अर्थ-उसी समय सवने विचार किया कि अव चक्रवर्ती भरत के भोजन का यह निश्चित समय है तव सव लोग राजा को नमस्कार करते हुए वहां से चल उठे उस समय सभाजनों की आवाज इस प्रकार मालूम पड़ती थी कि मानों समुद्र की ही कलरव ध्वनि होरही हो ॥ १०५ ॥

Every one thought that it was the time for the king to take food and so they all left the court in an orderly manner. (105)

पद्य—परिवार प्रजेगळ्चितैसु स्वामिगा । नर पाठकरनु चिनैसु ॥
दोरेगळ चिनैसेंदु कट्टिगेगार । रोरेदु बीळ्कोडिसिदराग ॥ १०६ ॥

अर्थ–उस समय दण्डधारी स्वयंसेवक लोग यथोचित्त सम्मानपूर्वक मृदु शब्दों के साथ सब उपस्थित लोगों को वहां से विदा कर रहे थे ॥ १०६ ॥

They were all seen off by volunteers in a very polite manner. (106)

पद्य—कळुहिसिकोळ्ळिळ वारांगने यरु कवि । गळु सचिवरु करणि करु ॥
अळियंदिरर सुकुमार रेंदेल्लर । कळुहिसदरु वेत्र धररु ॥ १०७ ॥

अर्थ–वेत्रधरों (दरबारी सिपाहियों) ने वाराङ्गना, कवि, सचिवगण; कर्णिक व मित्र वर्गीय जवांई तथा माण्डलीक राजकुमारों को उस राजसभा से विदा किया ॥ १०७ ॥

The officials in charge of the court badė farewell to all important personages, like feaudatory chiefs and near relatives of the king. (107)

पद्य—ओलग हरिदुदोग्यनेयेद्‌ आनर । पालक जिन शरनेंदु ॥
कालतोडवु भण भणरेणलेद्नो । ड्डोलग दिंद् जीयेनळु ॥ १०८ ॥

अर्थ–प्रेम व उल्लास से हर्षित हुई राजसभा से सम्राट भरत भी जिन शरणं ऐसा मुख से उच्चारण करते हुये उठे सेवक व सचिवगण भी पीछे २ अनुगमन करते हुये चले तब उस समय महाराज की जय जय कार शब्दों से आकाश गुंजायमान हो रहा था ॥ १०८ ॥

Raja Bharat got up from the court after saying, "May Jina Lord protect me" and left it follwed by ministers and servants. At that time the sky was resounding with the cries 'Jai' 'Jai' for the king. (108)

पद्य—नित्य दानव नीय दारोगिसेनेवँ । सत्यांग मुंटानृपगे ॥
नित्य दानके मुनिगळ तरवेकेंब । कृत्येके सन्नध्दनाद ॥ १०९ ॥

अर्थ–महाराजाधिराज भरत जिस प्रकार प्रजा पालक थे उसी प्रकार रत्नत्रय धर्म पालक साधुओं की सेवा करने में भी दत्तचित्त रहते थे, प्रतिदिन साधुओं को भोजन दिये बिना स्वयं आहार नहीं करूँगा इस प्रकार उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा थी । इसलिये राजसभा से बाहर जाकर भोजनार्थ अतिथियों की प्रतीक्षा करने लगे ॥ १०९ ॥

Just as Raja Bharat was keen on the protection of his subjects, so he was in attending to the needs of the saints. He had a vow of not taking his

food unless he has first offered food to a saint. For this reason he began to wait for the arrival of the saint outside his court. (109)

पद्य—कवितन्न हृदयव नरिदुद मेच्चुत। भुवनेश नेद्दु योगिगळ ॥
भवनके तरलनु वादनेंवल्लिगे। कवि वाक्य संधि सुगंधि ॥ ११० ॥

अर्थ–वीच वीच में दरवार की वातों का बारंबार स्मरण करते हुये मन ही मन में आनन्दित हो रहे थे तदन्तर सम्राट भरत पुनः मुनियों की प्रतीक्षा करने लगे ॥११० ॥

He was also while waiting for the saint contemplating on what he had heard in his court. (110)

पद्य—ई जिन कथेयनु केळ्दिवर पाप। बीज निर्नाशिन वहुदु ॥
तेज वहुदु पुण्य वहुदु मुंदोलिदप। राजितेश्वरन काणुवरु ॥ १११ ॥

अर्थ–इस कथा को श्रद्धा के साथ भाव पूर्वक जो लोग सुनेंगे उनका पाप रूपी वीज नष्ट होंगे और पुण्य वृद्धि होगी। भविष्य में शीघ्र ही अपराजित पद को देखेंगे ॥ १११ ॥

Those persons who will hear this glory of Raja Bharat with rapt attention will destroy the seeds of their sins, will get all the happiness and in the end attain un-conquerable position (liberation). (111)

पद्य—प्रेमदिदंद नोदिदरे पाडिदरे केळ्दद। रामोद वैदुद रवरु ॥
नेमदि सुररागि नाळे श्रीमंधर। स्वामिय काणवरतिंयोळु ॥ ११२ ॥

अर्थ–इस कथा को जो प्रेम से पढ़ेंगे तथा सुनेंगे व आमोद को प्राप्त होंगे और नियम से देवपद को प्राप्त कर अंत में विदेह क्षेत्र में जाकर प्रेम से श्रीमन्दर स्वामी का दर्शन करेंगे ॥ ११२ ॥

Those who will read this with attention and recite it with devotion will have the 'darshan' of Simandhara Swami. (112)

पद्य—ज्ञान यावुदु सुखवावुद प्रमेयावु। दानाव नेंव्र विकल्पा ॥
एनु विल्लेनलेन्न नेनहिनोळिरू दिव्य। भानु चिदम्बर पुरुपा ॥ ११३ ॥

अर्थ–राजा भरत हमेशा यह भावना रखते थे कि ज्ञान कौन सा है सुख कौन सा है इसका ही अनुभव करते हुये एवम् तिलमात्र भी मन में संकल्प व विकल्प न रखते हुये सिद्ध चिदंबर पुरुष दिव्य भानु विकल्प रहित ऐसे सिद्ध परमात्मा मेरे हृदय में सर्वदा निवास करें ॥ ११३ ॥

I pray to Lord Sidha, Niranjan Purasha (soul without the Karmic dirt) the attainer of the highest glory "Nirvana" the teacher of all saints, the bestower of all external and internal happiness, that he may bestow light in my heart and may repose there till I attain liberation. (113)

Seen
19.8.78

इति कवि वाक्य सन्धिः प्रथम भागस्य द्वितीय सर्गः संपूर्ण ॥ २ ॥



तृतीय सर्गः

पद्य—संजीवन सिद्ध सहजात्म सिद्ध मो । हंजय सिद्ध प्रसिद्धा ॥
मंजुल मतिदोरु जय जय गुरुवे नि । रंजन सिद्ध विशुद्धा ॥ १ ॥

अर्थ—महाकवि कहते हैं, हे संजीवन सिद्ध सहज ही में आत्मसिद्धि को प्राप्त करने वाले व मोह रूपी वैरी को जीतने वाले सिद्ध और प्रसिद्ध हे गुरो आपकी जय हो ! जय हो ! आप मुझे निरंजन शुद्ध व विशुद्ध उत्तम बुद्धि दीजिये ॥ १ ॥

I pray to Sidh Bhagwan, the attainer of the spiritual glory, the conqueror of the foe of delusion, the teacher of the soul substance that he may bestow on me pure and clear understanding and intelligence to enable me to complete the work I have undertaken, without difficulty. *(1)*

पद्य—जिननोब्व वल्लना भरतचक्रेश्वर न । मनदनु भववदिन्नेंतो ॥
मुनगिळ चरिगेय कालव नरिद्र । मनेय वागिलगे नडेदनु ॥ २ ॥

अर्थ—महाराज भरत के हृदय की बात भगवान जिनेन्द्र ही जानें । मुनियों की चर्या (आहार) का समय जानकर महाराज भरत राजमहल के द्वार की ओर चले ॥ २ ॥

The hour for offering food to the Yogi Raj *(saint)* was drawing near and Raja Bharat was now to go back to his palace to get himself ready for it. What ideas were passing through his mind and what were his inner feelings at that time is only known to the omniscient Jinendra Bhagwan. *(2)*

पद्य—सारिदोड्डोलग हरिय लोडनेतन्न । भूरि विडायव विट्टु ॥
द्वारलोकवकडियिट्टनंग श्र । गार वेरसि भक्ति यिदं ॥ ३ ॥
छत्र चामर खड्ग हावुगे मुतांद । धात्रिश चिन्हव* निरिसि ॥
पात्रदानदं पेच्चेयिंदोब्ब श्रावक । मात्रवेंदेने नडेतंदा ॥ ४ ॥

अर्थ—सभा भवन में आकर उन्होंने शरीर के समस्त राजचिन्हों को उतार दिया । यद्यपि राज्यासन के योग्य वस्त्र, आभूषणों को उतार दिया तो क्या उनकी कमनीय सुन्दरता में तो कोई कमी हुई ? नहीं । शारीरिक शृङ्गार से रहित होकर भी द्वार प्रतिज्ञाके लिये भक्ति पूर्वक चले ॥ ३ ॥

* विट्टु ।

अर्थ—छत्र, चामर, खड्ग, उपानह इत्यादिक राजचिन्हों की इस समय उनको आवश्यक्ता नहीं थी। अब तो सम्राट भरत पात्र दान की प्रतिज्ञा करने वाले एक सामान्य श्रावक के समान हैं ॥ ४ ॥

He dismissed his court, went to his palace, divested himself of all the exterior symbols of kingship, his kingly robe, ornaments, golden sword and made himself look as humble as any one of the ordinary house holders. With all humility he came out and stood at his door like an ordinary house holder to give reception to one who was superior to him. (3-4)

पद्य—ओडनिद् सेवक रेल्लर तोला गिसि । मडिमुट्ट दोत्रवनु ट्टु ॥
वेडगु निन्नण वीरे होदेद् दुकूलव । उडिसुत्ति नडेदनाराया ॥ ५ ॥

यडगैयोळांत होंवट्टे अक्षते पुष्प । निडुगिंडि वलद् हस्तदोळु ॥
तोडिगेय प्रभे दिक्कु दिक्किगे पसरिसि । नडेये नडेदना राया ॥ ६ ॥

अर्थ—सम्राट भरत आस पास के सभी श्रावकों को दूर करते हुए उत्तम शुद्ध धोती व दुपट्टा पहन कर तथा रेशमी दुकूल वस्त्र से कमर को वांधे हुये जाने लगे ॥ ५ ॥

अर्थ—पात्र दान की प्रतिज्ञा के लिये जाते समय उनके वांयें हाथ में अक्षत, पुष्पादि, मङ्गल द्रव्य और दाहिने हाथ में जल का कलश लेकर अपने भुजाओं को पसारते हुये धीरे धीरे आगे वढ़े जा रहे थे ॥ ६ ॥

He issued directions that there should be no crowd when the Yogi Raj arrives. All the servants, officials and other people were removed from the roads and lanes on which the Yogi Raj was expected to come.

He put on a Dhoti, wrapped a Chaddar (white sheet) and tried a silk band round his waist. He took a golden 'Thali' (plate) in his right hand in which all the sanctified eight articles (dravyas), namely, water, sandal, rice etc. were properly arranged. In his left hand, he held a jar (kalash) containing purified water, Thus prepared casting his beauty all round, he proceeded slowly to the place where he was to offer welcome to the saint. He was thus ready to offer welcome and recieve tne Yogi Raj with his presents of sanctified eight dravyas. (5-6)

पद्य—बलिपुष्पदिंद पूजिसि निधियनु तर । सोलिद द्व्यार्थि पोपंते ॥
चलुवररसनर्चनाद्रव्य वेरसि नि । र्मल योगि पथ कैदिद्नु ॥ ७ ॥

अर्थ—निधि की अपेक्षा (इच्छा) रखने वाला कोई व्यक्ति जिस प्रकार उस निधि की पूजा कर पश्चात् उसे लाने के लिये जाता है उसी प्रकार राजा भरत भी उत्तम अभ्यर्चना सहित श्रेष्ठ पूजादि अष्ट द्रव्य का शुद्ध सामान लेते हुए निर्मल योगी के आने के पथ पर जा रहे हैं ॥ ७ ॥

The custom is that a person first offers a worship to the treasure before he proceeds to fetch it. Similarly Raja Bharat had arranged all necessary requisitesfor the worship of the saint and was proceeding on the path the saint was coming. *(7)*

पद्य—तोट्ट मोहन नाट्य दोळु मन्मथ वाळु । बट्टल नांतु वहंते ॥
वट्टल गिंडिविडिदु गरुविकेयोड । बट्टबहरस नोप्पिदनु ॥ ८ ॥

अर्थ—राजा भरत अनेक प्रकार की मोह रूपी नाट्यशाला में रहते हुये और मन्मथ को तिरस्कार करने वाले रूप व गर्व का भान न करते हुए विनम्र भाव से चले जा रहे थे ॥ ८ ॥

Raja Bharat was proceeding in an impressive manner and it gave one an impression that the king of love *(cupid)* had come down with the 'thali' of offering worship and the jar *(kalash)* of water in his hands. *(8)*

पद्य—मंडलिकर कैय हडप हावुगे कुंच । गिंडिय पिडिसि कोंबवनु ॥
गंडगर्वव बिट्टु नडेदनु गुरुविगे । गिंडियूळिगदवनागि ॥ ९ ॥

अर्थ—मण्डलीक व महा मण्डलीक (राजा व महाराजा) के हाथों से छत्र-चामर इत्यादिकों से सेवा लेने वाले राजा भरत अनेक प्रकार के गर्व को छोड़कर सेवक बनने की इच्छा से अपने गुरू का कमण्डल लेने के लिये जा रहे हैं।

Raja Bharat whom many powerful kings served as his vassals, had cast off all his kingly haughtiness, pride and glory, and like a humble servant was ready to take 'kamandal' *(a bowl)* from the Yogi Raj. *(9)*

पद्य—अय्य जी येनलिल्ल तन्नोब्बरु कंडु । कैय मुगिय बारदागि ॥
मैय बेंवळियोळोब्बरु बरबारदु । मैयुळ्ळ मदन नैदिदनु ॥ १० ॥

अर्थ—जाते समय अपने भृत्योंसे कह रहे थे, कि श्रीमान् जी, महाराजा नपादि शब्द मेरे प्रति

नहीं कहना चाहिये और न मेरे प्रति हाथ जोड़कर खड़ा रहना चाहिये, इस प्रकार आज्ञा देते हुये राजा भरत आगे बढ़े जा रहे थे ॥ १० ॥

He gave instructions that when the Yogi Raj arrives there should be no noise, nor any of the servants or courtiers should follow the Raja, bow to him or clasp his hands. Giving these instructions he proceeded further. (10)

Note:—The idea in giving these instructions was that he should not like to be any one better than an ordinary house holder in the presence of Yogi Raj. The next verse clarifies the position.

पद्य—राजन मुंदे भृत्येगे गुरुविन मुँदे । राजगे हम्मु सल्लॅव ॥
राज नीतिय नरिदा राज नडेदनु । राजविडायव विट्टु ॥ ११ ॥

अर्थ—राजा के सामने सेवकों को व गुरू के सामने राजा को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये इस विधि को राजा भरत अच्छी तरह से जानते थे ॥ ११ ॥

It is as improper for a king to appear before his "Guru" with all his kingly pride, just as it is improper for a servant to put on haughty airs in the presence of his master. Considering the rules of conduct, he gave up all external aymbols of kingship. (11)

पद्य—दान पूजेय तन्न तनुमन शुद्धि स्वा । धीनदि माडवेकदके ॥
तानु लोगर तोर लागदें दरिदु म । हानंद वेरसि नडदनु ॥ १२ ॥

अर्थ—दान देना, पूजा करना यह गृहस्थ के कर्तव्य हैं, ये कार्य पर हस्त से उचित नहीं होते क्योंकि नीति कार का भी वचन है ।

स्वहस्तेन दान पूजा च गुरु हस्तेनाक्षरम् । मर्दनं च पर हस्तेनु मातु हस्तेन भोजनम् ॥

अर्थात् अपने हाथ से दान देना पूजा करना, गुरू के हाथ से अक्षर सीखना, दूसरे के हाथ से मर्दन कराना (शरीर की मालिस) माता के हाथ से भोजन करना उत्तम होता है । इसी प्रकार राजा भरत भी स्वयं ही दान देने के लिये अपना कर्त्तव्य समझकर जा रहे थे ॥ १२ ॥

Acts of charity and worship should be done with one's own hands and with full concentration of mind body and speech, so as to earn mertotious karmas and attain moksha. Charity should be given in such a way that no

one knows whether any charity has been given, if so, what. That is to say there should be no motive of getting self praise or fame in giving charity.

Charity should be given with willingness and without any remorse. The donor should consider himself fortunate in offering the food to such a saint. Without good fortune no one gets such an occasion. With such thoughts Raja was going ahead. (12)

पद्य—कूडिद्लेल्लर निलसि येकाकित्व । गूडि नडेद्नहुदाग ॥
वेड वेंद्रु विट्टु दिल्ल मैगांपिगे । पाडु तैदिदुवु तुंबिगळु ॥ १३ ॥

अर्थ—जिस समय राजा भरत आगे जा रहे थे उस समय उनका अनुगमन करने वाले लोगों को पीछे रोक दिया गया था । फिर भी महाराज भरत के शरीर की सुगन्ध से मुग्ध हुये भ्रमर झुण्ड के झुण्ड उनके पीछे २ आने लगे ॥ १३ ॥

Raja Bharat had ordered his servants not to follow him and they carried out his orders. But he could not stop swarms of humble bees from following him on account of the fragrance emanating from his body and all the time giving out their humming sound. (13)

पद्य—ऊळिगद्वरेल्ल किवियुळ्ळ रद्रिंद् । केळ्दिररस नाज्ञेयनु ॥
केळुव किविगेट्ट तुँबिय निल्लें दु । हेळ्वहुदेयेंदु नडेदा ॥ १४ ॥

अर्थ—क्योंकि मनुष्य के तो कान हैं इसलिये उन्होंने मेरी आज्ञा सुन ली परन्तु इन भ्रमरों को (श्रवण ज्ञान नहीं है) अर्थात् इनके कान नहीं हैं ये तो चतुर इन्द्रिय प्राणी हैं इसलिये उनको रोकने से कोई प्रयोजन नहीं है ऐसा समझकर महाराज भरत चुपचाप चले गये ॥ १४ ॥

The servants had ears and heard their Raja's orders but the bees had no ears and could not be stopped from following him. (14)

पद्य—वेडवेंद्रु वेड कळुवद विडुवने । वेडवणाद तुँबिविंडु ॥
वेडवेंद्रु बरुतिदुंदु त्यागिय । वेडुव याचकरंते ॥ १५ ॥

अर्थ—जैसे चोरी करने वाले आदमी चोर को मनाही करने पर भी चोरी करना नहीं छोड़ता उसी प्रकार सुगन्ध से मुग्ध हुये भ्रमर भी मांगने वाले याचक की तरह महाराज भरत के पीछे पीछे चले जा रहे हैं कोई हर्ज नहीं जैसे याचक लोग ॥ १५ ॥

अर्थ—कहीं सुरपति (इन्द्र) आकर नगर की आश्चर्य चकित शोभा को देखते हुये नासिकाग्र भाग में अंगुली रख कर आश्चर्य पूर्वक देख रहा हो, उसी तरह राजा भरत भी देख रहे हैं क्या ? इस भांति राजा भरत मालूम पड़ते थे ॥ २३ ॥

Raja Bharat was wondering how his soul, spacious as the three worlds. could be contained in this small body as if the whole ocean was contained in a rapeseed. In this posture he appeared to the onlookers as if king of heavens had come down to Ayodhya. (22-23)

पद्य—कुरुकद केळगण नेळल मैवेलगिंद । देसेगरेयट्ट राजेंद्र ॥
एसेदनच्चरि नडुवगलिव नोव्व त । सिरिसिल भास्कर नोर्थवंते ॥ २४ ॥

अर्थ—राजा भरत जिस समय राजद्वार से बाहर खडे थे, उस समय ऐसा विदित होता था कि मानों सूर्य ही खड़ा होकर भरी दोपहरी दिन में गर्मी के बजाय ठंडक देरहा हो । इस प्रकार से राजा भरत चमकते स्वर्ण के समान आकर्षक बन कर सुशोभित हो रहे थे ॥ २४ ॥

The liveliness of his body was proving extremely attracting. He looked like sun emitting cool light instead of hot. (24)

पद्य—आ राज गृहकेडबलकिदिरेंब मू । द्दारिगे दिट्टि हरिवुत ॥
आ राजनिद्दनु मुनिगळ बरवनु । हारुत शांत भावदोळु ॥ २५ ॥

अर्थ—उस राजमहल के इधर उधर से तीन बड़े बड़े राजमार्ग तीन दिशाओं को अलग २ गये हुये थे । महाराज भरत उन तीनों मार्गों को पुनः पुनः देखते हुये शान्त भाव से मुनियों की प्रतिक्षा कर रहे थे ॥ २५ ॥

Raja Bharat was looking on all the three sides and was waiting patiently for the arrival of the saint. (25)

पद्य—इनन बरवनाशेमाडुव रात्रिय । वनज दंताचक्रवर्ती ॥
मुनिगळ बरवनिच्छैसुत तानोव्व । मुनियंते जानिसुतिद्दा ॥ २६ ॥

अर्थ—जिस प्रकार रात्रि चन्द्रमा की प्रतिक्षा करती है अर्थात् चन्द्रमा चाहने वाली रात्रि के समान सम्राट् भरत भी एकाग्र मन से मुनियों के आने की इच्छा (प्रतिक्षा) कर रहे हैं ।

He was as anxious for the sight of the saint as is the night for the moon. (26)

पद्य—मुनिगळ बप्प वट्टेय चर्म दृष्टियो। ळनुमिसि नोडुव नोम्मे ॥
तनुविनोळिद्दात्म रूप सुज्ञान लो। चनदिंद नोडुव नोम्मे ॥ २७ ॥

अर्थ—कभी चर्म चक्षु से मार्ग की ओर देख रहे हैं तो कभी ज्ञान दृष्टि से शरीरस्थ आत्मा का चिन्तन कर रहे हैं। एक ओर अन्तरात्मा का ध्यान दूसरी ओर बाहरी नेत्रों से मुनियों की ओर देखते समय उनके कार्य में तनिक भी प्रमाद नहीं था ॥ २७ ॥

Sometimes he would look with his physical eyes for the saint and some time he would look with inner vision, his soul within his body. *(27)*

पद्य—होरगोम्मे मुनिगळ बरव नोडुवनोळ। गेरगितन्नने नोळ्प नोम्मे ॥
होरगोळ गोंदिनिसादरु तन्नल्लि। मरहिल्लदिद्दनेनेंबे ॥ २८ ॥

अर्थ—बाहरी आंखों से मुनियों के मार्ग की प्रतिज्ञा और भीतरी आंखों से अन्तरात्मा का ध्यान इन दोनों के दर्शन प्रतिज्ञा में तनिक भी प्रमाद नहीं करते थे ॥ २८ ॥

There was no carelessness in any of his actions, the external and the internal visions, the external through the eyes, the internal through self contemplation. *(28)*

पद्य—पोल्लोळिद् वराग साविर मारिन। ष्टळ्तेयोळरमनेयत्त ॥
सुळियदे दनिदोरदिद्द रोडेयन। मंगल दान समयव नरिदु ॥ २९ ॥

अर्थ—चारों ओर से स्तब्धपन होते हुये राजमहल से लेकर बाहर हजारों हाथ तक कोई कोलाहल का शब्द नहीं था। क्योंकि सब कोई जानते थे कि राजा भरत जी का मुनियों को आहार दान देने का समय है ॥ २९ ॥

There was pin-drop silence all round as people knew it was the time for the Raja to welcome the saints for food. *(29)*

पद्य—केलबल दोळगाते सन्निवियल्लदे। केलवरोळिगदवराग ॥
गलवे माडदे तलेमरसिकोंडोडेयन। वळसिळिद् रीतिसुत ॥ ३० ॥

अर्थ—कुछ सेवक लोग आपस में दान विधि को देखने के लिये राजा भरत के चारों ओर चुपचाप होकर कर बैठे थे ॥ ३० ॥

Some servants were anxious to see the process of Raja Bharat's offer of food and had occupied concealed position nearby. *(30)*

पद्य—लोकवेल्लेन्ननोलैसुतिर्दरुनातु । लोकदवेरसेनेंवुदनु ॥
लोकवरिके माडलेंदु निंदँते ता । नेकाकि यागिर्द नाग ॥ ३१ ॥

अर्थ—भरत जी उन लोगों को नहीं देख रहे थे, सम्भवतया चर्या से यह बात बतला रहे हैं कि यद्यपि मुझे सब लोग देख रहे हैं, तो भी मैं उन सबसे अलिप्त हूँ, इस प्रकार राजा भरत एकाएक विचार करते हुए खड़े थे ॥ ३१ ॥

They were not visible to Raja Bharat who was standing absorbed in thought. (31)

पद्य—करणवार्गिद्रिय कर्मकायव पोर्दि । पोरेय दिर्प मलात्मनंते ॥
घरेयनाळुत पुरदेडे योळ्दिर्दोदनु । वेरसदिर्दनु राजयोगी ॥ ३२ ॥

अर्थ – पंचेन्द्रिय सुख में रहते हुये भी उससे अलिप्त आत्म स्वरूप में लवलीन थे खट्खण्ड पृथ्वी के राजा होते हुये भी मुनियों को राजद्वार पर द्वारा पेक्षण करते समय इस प्रकार ध्यान मग्न खड़े राजा भरत राजयोगी के समान मालूम पड़ते थे ॥ ३२ ॥

Inspite of confinement in corporal tenement possessing the reaction of all the five senses, he had detached his thoughts activities from it and was applying them in the contemplation of soul. Although engrossed in the duties of a king of six regions of the world, he was still a Raj Yogi (saint king). (32)

पद्य—सार दानव नीवनेंदु योगिंद्रर । हारवु दोंदल्लदाग ॥
आरोगिपनेंव नेनहिल्लदा दान । शूर निंदनु सुचित्तदोळु ॥ ३३ ॥

अर्थ—राजा भरत जी के मन में यही एक भाव था कि सभी दान देने की मुझमें शक्ति है। मगर निर्मल योगियों का आहार दान मेरे घर में हो जाय तो कहना ही क्या, इस प्रकार अतिथि की वे चिन्तवन कर रहे थे ॥ ३३ ॥

This thought was revolving in his mind that he was capable of offering all kinds of charities but he would feel ingratiated if he could offer charity of ood to a saint. (33)

पद्य—भावरिगोट्ट योगींद्रर नल्लल्लि । श्रावकरेल्ल निल्लिसळु ॥
भूवराग्रणियरमनेयेत्त होव्दुदि । ल्ला वेळेयोळु योगि रूपु ॥ ३४ ॥



चक्रवर्ती भरत मुनिराज के न पधारने के कारण अपने पूर्व कर्मों के विचार में निमग्न तथा दुखी हो रहे हैं।

(यह चित्र श्री बाबूचन्द्र विलन्दग की तरफ से छपा)

अर्थ—उस दिन भरत जी की राजनगरी में चर्या के लिये वहुत से योगिराज आये थे, परन्तु रास्ते में ही वहुत से श्रावकों ने उन योगियों का प्रतिग्रहण (पड़गाहन करके आहार दान के लिये अपने घर लेगये) कर लिया इसलिये राजमहल तक कोई भी योगी नहीं पहुँच सके, इसलिये राजा भरत चिन्ता मग्न थे ॥ ३४ ॥

On that day several saints had come in Ayodhya for observing the daily routine of taking food. Before they could reach the Raja's palace, they were all intercepted by other house holders from whose hands they accepted food. As a consequence none reached the Raja's palace. Raja Bharat was now getting anxious. *(34)*

पद्य—बलद बीदिय नोळ्प नेडद बीदिय नोळ्प । नोलिदिदि बीदिय नोळ्पा ॥
वलगैय पेगलिक्कि वप्प योगींद्रर । सुळुहुगाणदे चिंतेमाळ्पा ॥ ३५ ॥

अर्थ—दायें, वायें दोनों दिशा की ओर देखते हुये सामने का भी रास्ता देख रहे थे। तब उस समय कोई मुनिराज अपने कंधे पर दाहिने हाथ को रखकर चर्या के लिये आते हुये दृष्टिगोचर न होने के कारण राजा भरत वड़ी चिन्ता में मग्न थे ॥ ३५ ॥

He looked left and right, but there was no trace of any saint any where. Raja's anxiety was now mounting. *(35)*

पद्य—दूरके दिट्टिय पसरिसि कोरलेत्ति । दारिदारिय तूगि नोळ्पा ॥
केरि केरिगळोब्बरादरु मुनिगळु । वारदिद्दुद कंडु नोवा ॥ ३६ ॥

अर्थ—अपने सिर को उठा उठाकर देखते हुये तीनों रास्तों में एक भी मुनिराज का आगमन न देखकर मन में वहुत दुखी हो रहे थे ॥ ३६ ॥

He would stand on tip toes, look searchingly on all the routes, but in vain. There was no sight of any saint. This made him feel miserable. *(36)*

पद्य—इंदेनु पर्वोपवासवो मुनिगळि । गेंदाग तिथिनारैवा ॥
इंदिदु पर्ववल्लके चित्तैसिति । ल्लेंददेयोळु मरुगुवनु ॥ ३७ ॥

अर्थ—क्या ? आज पर्व तिथि है ! क्या ? आज उपवास है ! वे तो अतिथि हैं उनको उपवास की क्या आवश्यक्ता ! वैसे तो आज न अष्टमी और न चौदस न कोई पर्व है। फिर मुनिराज क्यों नहीं आये ! इस प्रकार से मन में कल्पना करते हुये चिंता ग्रस्त हो गये ॥ ३७ ॥

Said he to himself, "Is it to-day one of the holidays or a day of fast. But the saints do not observe them. What could be the reason that no saint has come". (37)

पद्य—आने कुदुरे वट्टे गिट्टणिसिदवो कु । मानवरुरे निंदिसिदरो ॥
एनु कारण वेन्न मनेगिंदु योगि सं । तानवेय्तंदुदिल्लेवां ॥ ३८ ॥

अर्थ—जङ्गल से आते समय हाथी-घोड़ोंसे मार्ग अवरुद्ध तो नहीं हुआ ? क्या कभी कुमानव के द्वारा निन्दा तो नहीं हुई ? क्या कारण है कुछ समझमें नहीं आता, वे क्यों नहीं आये । अथवा अतिथि को दान देने का क्या मेरा सौभाग्य नहीं है ? इसप्रकार से नाना प्रकार के भाव राजा भरत के हृदय में प्रगट हो रहे थे ॥ ३८ ॥

Said he, "Have they been intercepted by some wild animals while on their way or insulted by wicked persons. What could be the reason my Lord. Why they have not come. The whole thing is so confusing and inexplicable. Is it that I am not fated to have my offer accepted to-day." Raja's misery was increasing at each such thought." (38)

पद्य—मुगिदुदल्ला मुनिगळनोव्व जरेवाग । जगदोडेयतन ननगुँटे ॥
नगेयला पाटिय जनगळिन्नु के यो । गिगाळिन्न सुळिदुदिल्लेवा ॥ ३९ ॥

अर्थ—अगर मेरे राज्य में कोई कुमानव उपसर्ग (निन्दा) करे तो क्या उसे मेरा कोई भय नहीं ? इस राज्य में मेरे रहते हुये यदि किसी का उपसर्ग हो जाय तो मेरे राज्य करने से क्या लाभ ॥ ३९ ॥

He further thought, "Has anyone in my kingdom the courage to insult any saint and if it is so it is a disgrace to be such a king". (39)

पद्य—दिनवंजेयागदे परमात्मरतराद । मुनिगळिगन्नदानवनु ॥
मनमुट्टि माडुव भाग्यवेंबुद नाव । मनुज पडेय वहुदेवां ॥ ४० ॥

अर्थ—एक दिन भी रिक्त न होते हुये परमात्मरत मुनिराज को मन वचन काय सहित दान करने का सौभाग्य पूर्व जन्म सुकर्म कृत पुण्यात्मा पुरुष को ही प्राप्त होता है, अन्य को नहीं ॥४०॥

"Who can be so fortunate", he said, "who is able to offer food with the purity of mind, body, and speech to the saints everyday. Only fortunate per-

sons have this good luck and not others. Am I not one of those fortunate ones. (40)

पद्य—हडगु द्वीपके होगुतिरलल्लि वस्तुव । गडणिसि कळुहुवनंते ॥
बिडदे मुक्तिगे होह मुनिय कैगण्णव । निडबेडवे एंदु नेनेदा ॥ ४१ ॥

अर्थ—जिस प्रकार द्वीप से अन्य द्वीपान्तर जाने वाले जहाज में अनेक प्रकार की सामग्री भरकर भेजी जाती है, उसी प्रकार मोक्षगामी मुनियों के करतल पर अन्न को रख कर भेजना प्रत्येक श्रावक का कर्तव्य है ॥ ४१ ॥

Just as we do not lose any time in shipping merchandise in vessels going from one continent to another, why should we then lose any time in putting the morsel of food in the hands of saints, who like vessels are on their way to the destination of moksha crossing the limitless ocean of transmigration." (41)

पद्य—दोक्के वेरात्म बेरेंदडेविडदे क । णिक्कि जानिसुव तापसगे ॥
अक्करु मिगे तन्न कैमुट्ट भुक्तिय । निक्क बेडवे एंदु नेनेवा ॥ ४२ ॥
रन्न मूरेंद रेन्नात्म नेंदरि दोलदु । तन्न निजव जानिसुवगे ॥
अन्नवनीय वेडवे भक्तियिंदेंदु । तन्नोळु तानर्ति वडेदा ॥ ४३ ॥
आत्मसुधेय नात्म गर्पिसुतखिल भ । व्यात्म रित्तन्नव मेयगे ॥
आत्म साक्षियोळर्पिसुव योगी गन्नव वि । त्तात्मने धन्यात्मनल्लते ॥ ४४ ॥
चिद्गुण दन्नव तानुँडुतनुविगे । पुद्गलदन्नव नीवा ॥
सद्गुरुविगे भक्तियमिगे भुक्ति इत्तरे । सद्गति वडेवुदेनरिये ॥ ४५ ॥

अर्थ—आत्मा व शरीर को भिन्न समझकर ध्यान करने वाले योगी को अपने हाथ से आहार दान देने का सौभाग्य क्या प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होता है ? नहीं ॥ ४२ ॥

अर्थ—सम्यक् दर्शन ज्ञानचारित्र रूपी रत्नत्रय स्वरूप की अपने आप में देखकर अपने निज स्वरूप (आत्मा) को जानने वाले परम वीतरागी मुनि को भक्ति से क्या अन्न दान नहीं देना चाहिये ? अवश्य देना चाहिए, इस प्रकार से राजा भरत मन में विचार करने लगे ॥ ४३ ॥

अर्थ—आत्मा रूपी सुदान्न को आत्मा में अर्पण करने वाले मुनिराज को भव्य आत्मा श्रावकों के द्वारा दिया हुआ अन्न आत्म साक्षी पूर्वक पुद्गल (शरीर) को अर्पण करने वाले मुनिराज के करतल में आहार देने वाले श्रावक क्या धन्य नहीं ? अवश्यमेव धन्य हैं ॥ ४४ ॥

अर्थ—उसी समय राजा भरत आकाश में इधर उधर ताकते हुये इस प्रकार देखने लगे कि वह कान्ति न तो दूर है और न समीप ही है इस प्रकार से आश्चर्य पूर्वक देखते हुए कहने लगे कि यह क्या है॥ ५१ ॥

The vision did not appear to be very far, but it was also not near. Bharat was feeling surprised at this and was scanning the sky all round. (51)

पद्य—एनेन्न वहुदी प्रभेनोडे वेरेंदु । भानु विनंते तोरुतिदे ॥
श्री निरंजन सिद्ध एनुत नोळ्पागदु । तानेरडागि कनिसितु ॥ ५२ ॥

अर्थ—राजा भरत कहते हैं यह प्रभा जो दिखाई दी मानो कि सूर्य की ही सुप्रकाशित कान्ति हो। हे निरञ्जन सिद्ध यह क्या हुआ इस प्रकार उच्चारण करते हुये पुनः आकाश की ओर देखा तो वह सुप्रकाशित कान्ति ही अकस्मात् दो भागों में विभक्त दीख पड़ी ॥ ४२ ॥

Raja Bharat said to himself that it might be the lustrous light of the sun. He scanned the sky more closely. Instead of one he observed two lights. "What this could be, O, Lord" he exclaimed. (52)

पद्य—जिन जिन ओंदादु दोडने रडा दुदु । इननंते चंद्रनंतेंदु ॥
जनप नोळ्पागळा प्रभेगळ् मुट्टम्रु । इने बरुतिंदुवु तनगे ॥ ५३ ॥

अर्थ—हे भगवान यह क्या हुआ प्रथम तो मुझे प्रचंड प्रकाश से युक्त एक तेज पुञ्ज दीख पड़ा पश्चात् वही तेज पुञ्ज अनोखे प्रकाश से सूर्य व चन्द्रमा के समान प्रकाश वाले दो रूपों में परिवर्तित दिखाई पड़े। इसप्रकार से ऊर्ध्व दृष्टि करते हुये राजा भरत के समीप में ही उन दोनों तेज पुञ्जों को नीचे उतरते हुये देखा।

First it was the glare of one light, then it resolved into two like sun and moon. Raja Bharat wondered what it could be. Meanwhile the vision was drawing nearer. (53)

पद्य—आहा प्रभे इदु चारण मुनि गळ । रूहाग बेकेंहुदेंदु ॥
ऊहिसुतिद्व नोडुतिदा मुनि । रूहव कंड बानदोळु ॥ ५४ ॥

अर्थ—अहा ! आकाश में यह जो प्रभा दिखाई दे रही है चारण ऋद्धि धारी मुनियों की ही होनी चाहिये। ऐसा निश्चय करके बार बार ऊर्ध्व दृष्टि से ताकते हुये राजा भरत मन में आनन्दित हो रहे थे ॥ ५४ ॥



राजा भरत द्वारा प्रेक्षण करते हुये मुनिराज न आने के कारण बहुत चिंतित थे, इतने में दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज उतरते हुये दिखाई दिये, परन्तु उसी दिन बादल के कारण ठीक पहचान न होने के कारण आश्चर्य के साथ राजा भरत देख रहे हैं।

इस चित्र को निर्मल कुमारी जैन धर्मपत्नी धूपचन्द्र जैन पौत्र लाला मुन्नेलालजी कागज़ी लखनऊ निवासी ने छपवाया।

"Good" exclaimed he, I know what the matter is. The visions are those of two "Charan Ridh saints". He was full of joy at this discovery. *(54)*

पद्य—रवियोळगन प्रतिमेय काणबना चक्रि । इवर शंकिसि नोडले के ॥
कवि दुदा दिन मुगिलदरिंद योचिसि । अवधरिसिदनदु साकु ॥ ५५ ॥

अर्थ—सम्राट भरत ने जिस समय चारण ऋद्धिधारी सूर्य व चन्द्रमा के सामान मुनियो को अपनी ओर आते हुये देखकर उनके मन में अति हर्ष हुआ। क्योंकि सूर्य के विमान में विद्यमान जिन प्रतिमाओं का अपने प्रासाद (महल) से दर्शन करने वाले इस राजा को मुनिओं को पहिचानने में क्या देर लगती है। परन्तु उस दिन आकाश में बादल घिरे हुये थे इसलिये भरत जी अच्छी तरह से निर्णय न कर पाये ॥ ५५ ॥

The day was cloudy and for this reason it took a little time for the Raja to determine the identity of the two lustrous bodies. If it had not been so he would have taken no time to know this fact since he was capable enough of paying respects from his palace to the images of the Lord seated in the sun. *(55)*

पद्य—हरि दुदु चिंते संत सवायुतु रोमांच । नेरेदु दागळे देह तुंबि ॥
भरतन पुण्यवे भापेंदु केल दोळ । गिरि सिद्चनेय कैगांता ॥ ५६ ॥

अर्थ—अपनी ओर आते हुये मुनियों को देखकर चिंता दूर होगई। प्रेम व हर्ष से शरीर रोमांचित हो उठा। ओ! हो! मेरा तो आज भाग्योदय होगया। ऐसा कहते हुये पूजा द्रव्य को हाथ में लेकर (चबूतरे से) वे नीचे उतरे ॥ ५६ ॥

His fears were now set at rest and anxiety was removed from his mind when he saw the two saints coming nearer to him. "Blessed is my luck and blessed the day", exclaimed he emotionally moved with joy. *(56)*

पद्य—गिडिवट्टलनेत्ति कोळुद नित रोळिदु । मंडल रवि मंडल गळु ॥
मंडित मुनि गळादंति वैराग भू । मंडल किळि तंद रोडने ॥ ५७ ॥

अर्थ—जल पूर्ण कलश, थाली में पूजा सामग्री हाथ में लिये हुए थे, इतने में सूर्य मण्डल व चन्द्र मण्डल के कान्ति स्वरूप दोनों रत्नत्रय मण्डित मुनि भूमण्डल पर उतर गये ॥ ५७ ॥

He moved down from the dais with the goblet of sanctified water and

dish containing sanctified articles of offering. Meanwhile the two saints alighted on the ground. (57)

पद्य—बडव निधानव कंडं ते नलिवुत । नडेदना नृपनिदिरागि ॥
ओडने निलसिद्नु मुनिगळिर्वरनुमै । गोडे तिष्ट तिष्टयेंदाग ॥ ५८ ॥

अर्थ—जैसे कोई निर्धन निधि (खजाने) को देखकर मन में आनन्दित होते हुए लेने की इच्छा से दौड़ा जाता है। ठीक उसी प्रकार राजा भरत भी उन मुनियों के सामने जाकर भो मुनि-वर्याः ? तिष्ठ तिष्ठ इस प्रकार शब्दोऽचारण करके उन दोनों मुनिवरों को वहां पर ठहराया ॥ ५८ ॥

The sight of the saints was a treat for the Raja. He was simply in raptures as if a poor man had been bestowed a treasure. He went near the saints and said, "Respected saints, pray stop, pray stop, pray stop". The saints, there upon, stopped. (58)

पद्य—भरदि गंधाक्षत पुष्प गळिंद । दरुशनांजलि माडि कूडे ॥
हिरिय गिंडिय नेत्ति जल शुद्धि इत्तना । दर मिगे भाव शुद्धि योळु ॥ ५९ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् सम्राट भरत ने अपने हाथ में लिए हुए गन्धाक्षत पुष्प इत्यादि अष्ट द्रव्यों से दर्शनाञ्जली देते हुए भावशुद्धि से जलधारा दी ॥ ५९ ॥

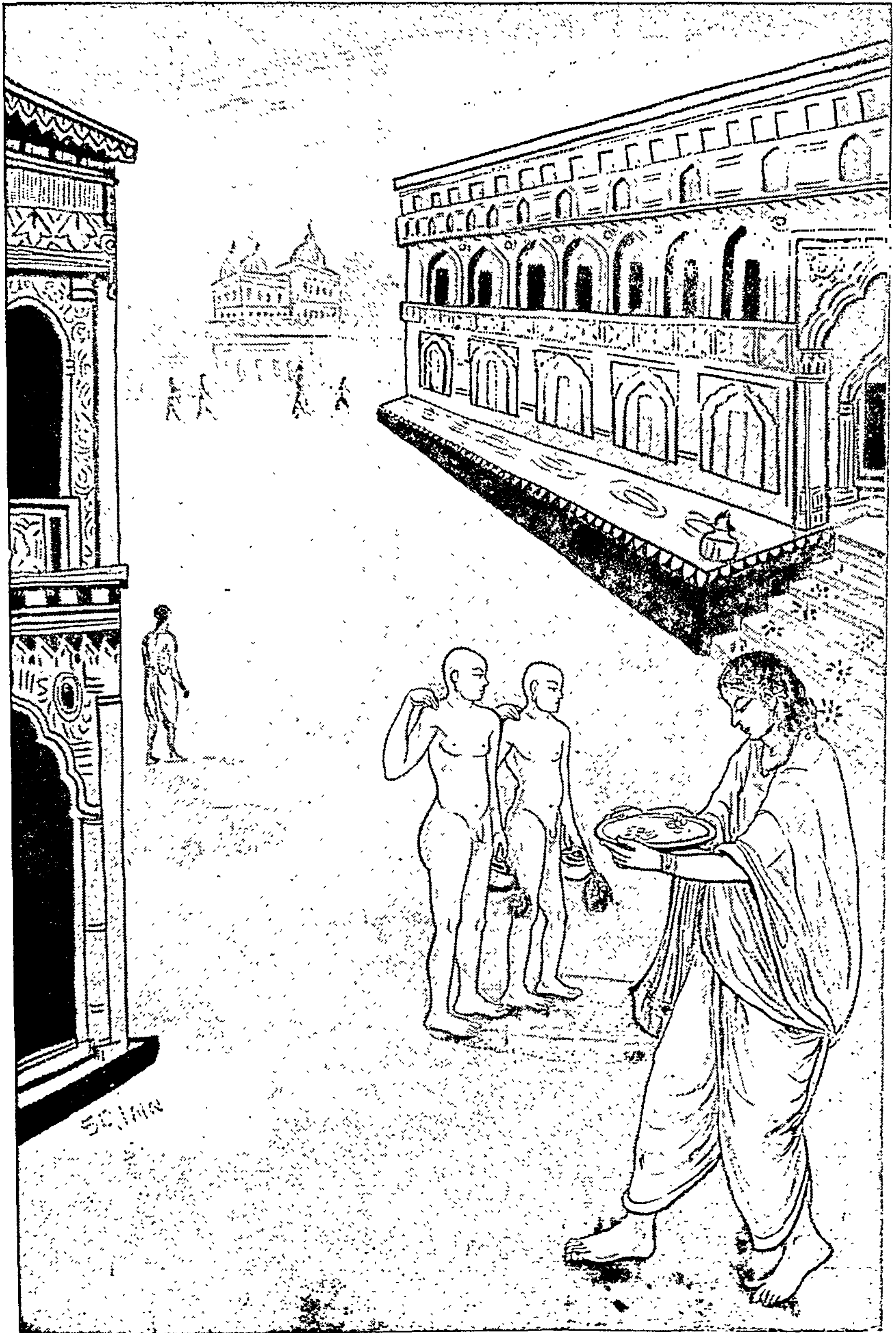
After offering "Arti" with sanctified articles, he poured a little water on the ground as a token of purity of mind. (59)

पद्य—वलगोंडनुरे वारि तन्नोळु तानु । गेलवेरि मुनिगळिर्वरिगे ॥
नलिदेरगिद्नु निधानदेडगे दीप । कळि के तानेरगु वंददोळु ॥ ६० ॥

अर्थ—तदुपरान्त अत्यन्त भक्ति पूर्वक आनन्दित होते हुए तीन प्रदक्षिणा करके जैसे निधि के सामने दीपक झुक जाता है उसी प्रकार राजा भरत भी सर्वगुण निधि ऋद्धिधारी मुनियों के चरणों में भक्ति पूर्वक साष्टाङ्ग नमस्कार किया ॥ ६० ॥

Then with respectful joy he went round the saints three times, and bowed himself to the ground before the saints for salvation just as a lamp dimmers before a treasure. (60)

पद्य—बंदरु केलबरुळिग दवरुळिं । निंदाग जय जय वेनुत ॥
तँदुकोट्टरु बेळ्ळ वट्टिय सुरळिय । नदुरायन हस्तदल्लि ॥ ६१ ॥



राजा भरत बहुत आनन्द के साथ मन में हर्षित होते हुए चारण ऋद्धि धारी मुनि राजाओं को पड़गा रहे हैं।

[यह चित्र मुन्नूलाल राजेन्द्रकुमार जैन, बाराबंकी की तरफ से छपा।]

अर्थ—मुनिवरों के पधारने के पश्चात् सेवकों ने आ आ करके श्वेत निचोड़ा हुआ वस्त्र जय जयकार करते हुए राजा के हाथ में दे दिया ॥ ६१ ॥

At this time the servants came out with cries of Jai Jai (glory to the saints) and made over a water soaked white cloth to the Raja which the Raja threw aside as a mark of extreme respect to the saints and his own feelings of joy. (61)

पद्य—मुनि गळि गोल्दु निवाळिय निट्टन्न । मनेगे चित्तैस बेकेंदु ॥
मनुजेश मैयिक्कि नडेदनु मुंदेवे । न्नने गमिसिदरु योगिगळु ॥ ६२ ॥

अर्थ—साष्टाङ्ग प्रणाम करने के बाद राजा खड़े होकर कहने लगे। मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काया शुद्धि से बना हुआ आहार शुद्ध है, जल शुद्धि है इसलिए महाराज मेरे घर पधारिए ऐसे मुंह से उच्चारण करने के बाद दोनों मुनिराज राजा भरत के पीछे पीछे ईर्या (जीवों को देखते हुए) पथपूर्वक भूमि को देखते हुए धीरे धीरे जा रहे हैं ॥ ६२ ॥

After salutation the Raja uttered the following expression.

"The food and water at my place are both pure and have been prepared with the purity of mind, speech and body. Kindly accept my invitation and sanctify my house by coming along with me."

Both the saints walked behind him with their eyes looking the ground ahead so that no living being may be trampled under their feet. (62)

पद्य—नडुवग लंदरळ्घळिगे भूपति निंदु । कडुयोग गैयला चक्रि ॥
नडेतंदरिवरु दिव्य मुनि गळेंदु । नुडिव रुव्विनळु सेवकरु* ॥ ६३ ॥

अर्थ—अपने दरवाजे के सामने प्राङ्गन में राजा भरत २ घन्टे उत्कृष्ट ध्यान योग में मग्न होकर, उसी योगवल के द्वारा दो मुनिवरों को हमारे सम्राट लिवा ला रहे हैं। इस प्रकार से सेवकगण आपस में कह रहे हैं ॥ ६३ ॥

The servants were talking among themselves that it is after two hours of patient waiting that the Raja was able to have the good luck of securing the presence of the two saints with his psychic power. (63)

पद्य—निधिय नरसुतिद्दु कंडवनोय्यना । निधिय नोय्व तात्म गृह के ॥
निधिगधि नाथनु कोंडोय्वना गुण । निधिगळ तन्नरमनेगे ॥ ६४ ॥

* सज्जनरु ।

अर्थ—जैसे किसी को अकस्मात निधि (खजाना) मिल जाने पर उस निधि को चुपचाप उठा ले जाता है, उसी प्रकार राजा भरत आनन्द के साथ गुणनिधि मुनियों को अपने राजमहल में ले जारहे हैं ॥ ६४ ॥

The Raja was taking the saints within his house with silence and pleasure like a person who suddenly gets a treasure and takes it quitely with joy to his home. (64)

पद्य—काम सोतेरगिं करेदरे योगि गळा । कामन मने गैदु वंते ॥
आ मुनि गळु नडेतंदरु नर लोक । कामदेवन वेवळियोळु ॥ ६५ ॥

अर्थ—मानों कामदेव हार मानते हुए उन मुनियों से नित्य विनय पूर्वक प्रार्थना करके अपने घर ले जा रहा हो, उसीप्रकार नरलोक के कामदेव स्वरूप राजा भरत मुनियों को अपने महल में लें जारहे हैं ॥ ६५ ॥

Raja Bharat leading the saints inside his palace looked beautiful like God of love (cupid) admitting discomfiture at the hands of the saints. (65)

पद्य—होन्न बागिलुगळ रन्नदोरणगळ । पन्नीर सादिनि देसवा ॥
कन्नडि नेलदर मनेयोळु होक्कु नि । भिन्नांतरंगरैदिदरु ॥ ६६ ॥

अर्थ—सुवर्णमय दरवाजे रत्न तोरणों से युक्त और सुगन्धित पानी से छिड़की हुई स्वच्छ भूमि तथा स्फटिक मणि के समान चमकते हुए राजमहल में शरीर से भिन्न आत्मस्वरूप में मग्न होते हुए वे दोनों मुनिवर गमन कर रहे हैं ॥ ६६ ॥

The saints, while walking through golden doorways decorated with precious stones and buntings on the floor on which scented water had been sprinkled, were absorbed in the contemplation of soul as a substance distinct from the body. (66)

पद्य—किरिदेडे गैदि सेवकरु निंदरु मत्ते । किरिदेडेगिदिरागि वंदु ॥
किरुनडु वेसेये ऊळिग वेंगळूळिग । वरिदेसगळु राय नडेदा ॥ ६७ ॥

अर्थ—बायीं ओर सेवकगणों से एवम् दाहिनी ओर दासियों से घिरे हुए मध्य में स्वयं राजा भरत जय जयकार करते हुए मुनियों को ले जा रहे हैं ॥ ६७ ॥

The servants were standing to the left and the maid servants on the right. Thus sorrounded the Raja was leading the saints. (67)

पद्य—तग्गु सोपान दोळ्ळिवाग मुनिगळगे । वोग्गने कैलागु गोडुवा ॥
उग्गडदेरु सोपान दोळ्वर कै । योग्गि हिडिदुमेले नेगेवा ॥ ६८ ॥

अर्थ—सम्राट भरत उन पूज्य मुनिवरों को ऊंची नीची भूमि में हाथ से सहारा देकर श्रद्धा व भक्ति पूर्वक प्रेम प्रदर्शित करते हुए अपने महल की ओर ले जारहे हैं ॥ ६८ ॥

Whereever the ground was uneven Raja Bharat would give the saints a little prop with his hands with affection and respect. (68)

पद्य—स्वामि श्री पाद्वेच्चरिके येंनु कूडे । आमात नुपचार वेंबा ॥
व्योमदोळे यूदुव निगगे पैसरउंटे । श्रीमुनि तिलकरि गेंदा ॥ ६९ ॥

अर्थ—महाराज भरत कहते हैं हे मुनिराज आप तो आकाश मार्ग में गमन करने वाले श्रेष्ठ मुनिवर हो तो भला मैं आपको क्या मार्ग दिखा सकता हूँ । ये तो मेरी आत्मश्रद्धा से कर्तव्य योग्य उपचार सेवा भक्ति है ॥ ६९ ॥

Raja knew all this time that his pretensions of showing the way to the saints who could travel through space was a mere formality and an act of respectful courtesy. (69)

पद्य—अद्कल्ल स्वामि गळिर नोडि नाविप्प । सदनवेल्ल वु डोंकु नम्मा ॥
हृदय विन्नेष्टु डोंको नीवु वल्लि रें । देदेगिंपुदोरि नुडिदनु ॥ ७० ॥
मने डोंकु मनसु डोंकादरु निम्म शि । ष्यन मेलन प्रीतिर्यिद ॥
जिन कल्परिर विजय गैदि रिन्नेन्न । मनमनेगळु नेरवेंदा ॥ ७१ ॥

अर्थ—महाराज मेरा तो सदन (घर) टेढ़ा, स्वयं शरीर भी टेढ़ा है न मालूम हृदय कितना टेढ़ा है इसको आप ही जान सकते हैं ॥ ७० ॥

अर्थ—घर, शरीर हृदय के टेढ़े होने पर भी शिष्य के ऊपर प्रेम होने से आप मेरे सदन में पधारे हैं अतएव मुझे पूर्ण आशा है कि आपके अनुग्रह से अब सभी वस्तुयें सीधी हो जांयगी, किञ्चितमात्र भी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७१ ॥

He was saying to the saints, "Your Holiness, the path to my palace is tortuous, my body is not straight and nor my mind as may be best known to you. But inspite of all my defects you have been pleased to grace my house with your presence. I am sure now that the crookedness of everything in my palace will disappear. (70-71)

पद्य—आड्ढव नृपन मातिगेनसु नगुतिष्ड्ढ । नोड्वरा मुनिश्वररु ॥
कूडोंदु मात नुडिय रिव्वरुप शांति । गूडिनडेदरु मौनदोळु ॥ ७२ ॥
नुडियवेकें विच्छेयुंड्ड भिच्चेगे मुन्न । नुडियेवें वुदे व्रत तमगे ॥
ओडलोळ्ातन भक्तिरसके मेच्चुत मुंदे । नेडेदरु नडे जिनरुगळु ॥ ७३ ॥

अर्थ—राजा भरत के शिष्टाचार परिपूर्ण वातों को कहते हुए देखकर दोनों मुनिराज प्रसन्न चित्त पूर्वक मौनव्रत धारण किए हुए शान्त भाव से जा रहे हैं ॥ ७२ ॥

अर्थ—सम्राट के प्रेममयी शुद्ध शिष्टाचार को देखते हुए वात करने की इच्छा तो वहुत हो रही है, परन्तु आहार हो जाने के पहले मौनव्रत होने के कारण मुनिराज नहीं वोल सकते इसलिए राजा भरत के भक्ति भाव रस पर मुग्ध हुए दोनों मुनिराज उनके पीछे पीछे जारहे हैं ॥ ७३ ॥

The words of Raja Bharat full of courtesy as they were, pleased the saints. But as they were observing silence one of the rules of their conduct observed before taking food, they did not express it in wcrds. Even though they were helpless in speech, they were very much pleased at the devotion shown by the Raja and their faces expressed what was in their mind. *(72-73)*

पद्य—भयभक्तिविनयदिंदा राय राजा । लयके योगिगळ नोयूवाग ॥
जयमहालक्ष्मियरिदिरुगोंवंते रा । णियरु वंदरु चक्रधरण ॥ ७४ ॥

अर्थ—इस प्रकार प्रगाढ़ भक्ति भाव व विनय से युक्त राजा भरत उन योगियों को अपने महल में लेगये तब उस समय चक्रवर्ती की रानियां सामने उपस्थित हुई मानो जैसे स्वर्ग से जय व महालक्ष्मी ही उतर कर आई हों ॥ ७४ ॥

In this manner Raja Bharat conducted the saints with extreme respect and devotion inside his palace. At that time the queens presented themselves like goddess of vtctory. *(74)*

पद्य—नवरत्नदाभरणद कांति देह । च्चवियोळु देरसि चिंविसलु ॥
भवनद नेळ्ळलनोत्तरिसुत वंदरु । दिविज लतांगियरंते ॥ ७५ ॥

अर्थ—नव रत्न जटित आभूषणों की प्रभा से प्रकाशित महारानियां अपनी देह कान्ति से चमकती हुई व उस प्रकाश से घर के अन्धकार को हटाती हुई इस प्रकार मालूम पड़ रही हैं । मानो

The queens came dispelling the darkness with the glow of their beautiful body which was adorned with precious jewels. They looked like fairies from heavens. (75)

पद्य—कलस कन्नडिय कन्निकेयरु मुंदेड । वलदि मंगल गायकरु ॥
होळेवारति तम्म हस्तदोळे सेयल्ड । कुल सतियरु बंदराग ॥ ७६ ॥

अर्थ—जल पूर्ण कलश, दर्पण व आगे पीछे मङ्गल गायिकायें सहित अपने हाव में भाव से प्रज्वलित आर्ती को लेकर सभी उत्तम कुल सतियां आगई ॥ ७६ ॥

All the queens came with a goblet of water in one hand and 'Arti' in another. (76).

पद्य—आरति येत्ति निवाळियनिट्टु गं । भीरगमकदोजेयिंद ॥
चारण योगिंद्रर डिगळिगा नृप । नारियरोलदेरगिदरु ॥ ७७ ॥

अर्थ—विनय पूर्ण श्रद्धा भक्ति पूर्वक आर्ती उतारी गई, गम्भीर एवं गौरव के साथ उन चारण योगियों के चरण कमल में उस राजा भरत की सभी महारानियों ने नम्रता सहित साष्टांग प्रणाम किया ॥ ७७ ॥

After performing 'Arti' with devotion, the queens bowed with humility and grace at the feet of the saints. (77)

पद्य—यतिगळोळगे कादि मन्मथ मने । गते भक्तिमिगे तंदु तन्न ॥
सातियर रनव कालगेरागि सुवंते भू । पतिय वैभव वोप्पिताग ॥ ७८ ॥

अर्थ—जिस प्रकार कामदेव दिगम्बर मुनियों के प्रति स्पर्धा करके हार गया हो पुनः उसी हारके कारण मुनियों को अपने महलमें लाकर अपनी स्त्रियों के द्वारा भी हार की स्वीकृति मान रहा हो । ठीक इसी तरह से उस समय (कामदेव स्वरूप) चक्रवर्ती भरत के महल में शोभा हो रही थी ॥ ७८ ॥

It appears that cupid (God of love) has suffered defeat at the hands of the Yogis, has brought the saints to his home, and is making an admission of his discomfiture through the salutation by his queens. (78)

पद्य—ओब्बरिब्बरिगल्ल तवगेल्ल होसतोंदु । हब० वँदंते नलिदरु ॥
हब्बवेनधिक वंतिरलोंदु मदुवेय । दिब्बनवेने रागिसिदरु ॥ ७९ ॥

अर्थ—उस दिन एक को नहीं बल्कि सभी उपस्थित जन समुदाय को एक महोत्सव का दिन मालूम हो रहा था। मानो मङ्गल विवाहोत्सव के तुल्य ही वह उत्सव मनाया जा रहा हो ॥ ७९ ॥

It looked like a festival day as if marriage celebrations were going on. (79)

पद्य—किन्नरिवेणु वीणारव दोडगूडि । किन्नरि नारियरंते ॥
चन्नेयरेडवल विडिदु पाडुत वंद । रन्नदानद महिमेयनु ॥ ८० ॥

अर्थ—किन्नर स्त्रियों के समान वीना की झङ्कार से युक्त गायन शब्द करती हुई महारानियां मुनिराज के दाहिने व बायें ओर होकर अन्नदान महिमा के निमित्त गाती हुई आ रही थीं ॥ ८० ॥

Some of the queens were on the right and some on the left of the saints and were singing songs suited to the occasion to the accompaniment of violin. (80)

पद्य—नडेमडि नाल्कैदु मारैदलल्लल्लि । गोडनेत्तु वारतिसेसे ॥
इडुव निवाळि ढाळिसुव चामरगळिं । दडियि डिसिदरु योगिगळु ॥ ८१ ॥

अर्थ—चार-पांच गज के अन्तर में रुक रुक कर आर्ती उतारती हुई व छत्र चामर डुलाती हुई महारानियां जयध्वनि के साथ उन योगिराज को ला रही हैं ॥ ८१ ॥

The queens were offering "Arti" after every four and five yards. (81)

पद्य—भृत्यन मनेगोडेयने वंदरोडेयगा । भृत्यमाडुव सेवेयंते ॥
सत्यनारियरोड गूडि तापसरिगा । नित्यार्थि भक्ति माडिदरु ॥ ८२ ॥

अर्थ—जैसे सेवक के घर स्वामी आये तो वह अनेक प्रकार के उपचार से आदर सत्कार करता हुआ अपने को धन्य समझता है, उसी प्रकार उन तपस्वियों के अपने महल में पधारने पर राजा भरत अपनी रानियों सहित उन मुनिराज की सेवा भक्ति करके अपना अहोभाग्य समझ रहे थे ॥ ८२ ॥

Just a servant consideres himself honoured at the visit of his master to his house and attends to him with devotion and humility, in the same manner, Raja and his queens felt themselves honoured at the visit of such distinguished guests and were attending on them with humble devotion. (82)

पद्य—जनपनेरगिद् हाम्मिल्ल पेएगळ कंडु । तनु नसु जुँमेनलिल्ल ॥
मनुवात्म मोळ्ळिट्टु तनुवेंब जंत्रव । मुनिगळोय्यने नडसिद्रु ॥ ८३ ॥

अर्थ—सम्राट भरत हमारे दर्शन कर रहे हैं इस प्रकार से मुनिराजों को अहंकार भी नहीं है। एवम् रानियों को देखकर अथवा उनके स्पर्श करने पर भी शरीर में विकार न होते हुये मन को आत्मा में स्थिर कर शरीर रूपी यन्त्र के द्वारा मुनिराज धीरे-धीरे गमन कर रहे हैं ॥ ८३ ॥

It did not create any feelings of pride in the heart of the saints that the king of kings was bowing at their feet nor did it disturb their mental equilibrium that the most biautiful ladies were touching their feet. They were proceeding slowly indifferent to their surroundings. (83)

पद्य—अरसकंडरमने गंडरसियर कं । डरसिन गीतकांतेयर ॥
स्वरगेळ्दु चित्तवनिगदा योगि । वर रडियिट्ट रोजेयोळु ॥ ८४ ॥

अर्थ—राजमहल में राजा भरत की जिस प्रकार रानियां भक्ति से स्तुति करती थीं उसी प्रकार अपने महलमें आहार के निमित्त आये हुये दोनों मुनिराजों को देखकर राजा भरत की रानियां आनन्द पूर्वक उनकी स्तुति कर रही हैं। उस स्तुति की ओर एवम् राजमहल के प्रशंसनीय सजावट पर तथा गायन करने वाली रानियों की तरफ चित्त न दौड़ाते हुये योगिराज अपने आत्मा में लीन होते हुये धीरे धीरे गमन कर रहे हैं ॥ ८४ ॥

The grandeaur of the palace, the devotion of the Raja, the sweetness of the queen's melodies, hymns of praise could not affect the equanimity of the saints minds which were absorbed in the contemplation of self. (84)

पद्य—पाटेगेट्टंग वेरात्म वेरेंदेंब । नोट वुळ्ळात्म सिद्धरिगे ॥
कोटि रंजने गळ होरगे काणिसलेदे । नाटदु वस्तु शक्तियदु ॥ ८५ ॥

अर्थ—शरीरातीत आत्मा स्वरूप को पृथक समझकर देखने वाले सिद्धात्मरत मुनिराज को करोड़ों रत्नों से भरे हुये घड़ों को उनके सामने अगर लाकर रखदिया जाय तो भी उनके आत्मशक्ति रूपी वस्तु को घटाने वाली नहीं है ॥८५ ॥

Such saints who are capable of perciving the soul through discrimination of soul from non-soul and self absorption can never be moved even if crores of vessels full of diamonds and precious stones are placed before them for acceptance since they know the uselessness of the matter. (85)

अर्थ—भक्ष्य, क्षीर, साक पाक एवम् षट् रस निर्मित इत्यादि अनेक भी सुभक्ष्य फलादिकों को जैसे कोई रोगी को रोग के नष्ट होने के लिये खिला रहा है क्या? ठीक तद्वत राजा भरत अपने भव रोग रूपी रोग को नष्ट करने के लिये मोक्ष रूपी मात्रा के समान बहुत सावधान पूर्वक कल्पवृक्ष की तरह फल को देने के माफिक उन मुनिराज के हाथों में कवर (ग्रास) की मात्रा को सावधानतया से दे रहे हैं ॥ ९१ ॥

He was offering morsels of milk preparations, vegetables, sweet-meats, fruits etc. with special care. With each morsel he was paying his path to "moksha" *(liberation)*, as the merit earned by this action was strong enough to destroy the malady of transmigration. *(91)*

पद्य—हेम भाजन रूप्य भाजनदिंद दि । व्यामृतगळ तेगेतेगेदु ॥
भूमीश नित्तनु पुरुष रूपागि चिं । तामणि नीडुवंददोळ् ॥ ६२ ॥

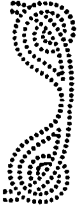
पुनः सोने व चांदीके पात्रों से दिव्य अमृत स्वरूप रस से परिपूर्ण आहार के ग्रासों को राजा भरत इस प्रकार देने लगे कि मानो पुरुष रूप हो करके चिंतामणि ही चिंतित वस्तु को ही दे रहा है क्या? इसी प्रकार राजा भरत मालूम पड़ते थे ॥ ९२ ॥

This gracefulness with which the Raja was serving the food from the silver and gold dishes was so excellent that one felt as if "Chinta Mani" was offering the desired articles in the garb of the Raja. *(92)*

पद्य—बडिसुव स्त्रियर युक्ति हस्तके तुत्त । गोडुव रायनदोंदु युक्ति ॥
वडविल्ल देसेव स्त्रीपुरुषर भक्तिहो । तडेयदिन्नवरिगे मुक्ति ॥ ६३ ॥

अर्थ—आहार को निकाल निकालकर देने की विधि स्त्रियों कीथी। राजा भरत को मुनिराज के हाथ में एक एक ग्रास रखने की युक्ति थी, दोनों स्त्री पुरुष युक्ति विधि पूर्वक भक्ति के साथ आहार दान दे रहे थे। तब दोनों स्त्री पुरुषों को मोक्ष प्राप्त करने में देरी ही क्या? ॥ ९३ ॥

The device of taking out food from the dishes was that of the queens The device of putting the morsels in the hands of the saints was that of King Bharat. All of them were performing their duties with devotion. They were sure to attain liberation in no time. *(93)*



राजा भरत चारण ऋद्धि धारी मुनि राज को दो रूप धारण कर स्वयमेव अपने हाथ से भक्तिपूर्वक आहार दान दे रहे हैं।

यह चित्र—धर्मपत्नी इन्द्रचन्द जैन, गोटेवाले चौक लखनऊ के द्वारा छपा।

पद्य—भिन्न रुचिगे हिग्गदोंदु वस्तुव वेडि । सन्नेदोरदे मुनिवररु ॥
तन्न कैमुट्ट चक्रेश्वर नित्त दि । व्यान्नव कोडु दनिदरु ॥ ६४ ॥

अर्थ—आत्मा से भिन्न पुद्गल मय अन्न में रुचि तथा आनन्दित न होकर पुनः संकेत कर मांगने की इच्छा न रखते हुयें अथवा किसी वस्तुवों में आसक्त न होते हुये राजा भरत के हाथ से दिये हुये सरस नीरस अन्नपान को लेकर वे दोनों मुनिराज तृप्त होगये ॥ ९४ ॥

The saints satisfied their appetite with the food thus offered, indifferent, however, to the tastes of the different articles or the quantities offered. (94)

पद्य—निरसान्नवर हस्तके बँदल राक्षण । सुरुसान्न वहुदु सहजा ॥
भरतेश नित्तन्न विंतँतु सोगसिते । दोरेय वहुदे जिन बल्ल ॥ ६५ ॥

अर्थ—उस समय मुनिराजके हाथमें आहार पड़ते ही तत्क्षण नीरस अन्न सुरस होजाताथा। राजा भरत उनके हाथ में जो आहार रखते थे उसके रुचिकर स्वाद का वर्णन तो हम नहीं कर सकते, भगवान जिनेश्वर ही जान सकते हैं ॥ ९५ ॥

Even tasteless articles became delicious the moment Raja Bharat placed them on the hands of the saints. Only the omniscients know what was the taste in each article. (95)

पद्य—अनिमिषरुँव स्वर्गाहार केनेयेने । तनगेंदु माडि दन्नवनु ॥
जननाथ तन्न कैमुट्टित्त नेंदरे । नेनवहुददर सौख्यवनु ॥ ६६ ॥

र्थ—राजा ने स्वर्गीय अमृतान्न के समान अपने लिये ही वनाये हुये आहार में कोई अतिथि आ जाय तो अपने स्वहस्त से भक्ति पूर्वक इस प्रकार दिया कि उसका वर्णन मैं कहाँ तक करूँ ॥ ९६ ॥

The food was not specially prepared for the saints. Raja was offering w hatever was prepared with all possible precautions and care. Raja served all the articles with his own hands. No one can describe the joy the Raja was experiencing in the performance of this duty. (96)

पद्य—भुक्तियिंदा मुनिगळ तनसिदनु सु । भक्तियिं नेरे तणिसिदनु ॥
भक्ति भुक्तिगळिंद मुक्ति पथके पुण्य । भुक्ति सन्नहव माडिदनु ॥ ६७ ॥

अर्थ—राजा भरत ने भक्ति से मुनिराज को तृप्त किया एवम् सुभुक्ति से उनकी जठराग्नि को तृप्त किया। इस प्रकार भक्ति व भुक्ति साधनसे, पुण्य और मुक्ति का साधन किया ॥ ९७ ॥

Raja Bharat satisfied the physical appetite of the saints with material food and their spiritual self with devotion. By these two offerings he paved his path for "moksha". (97)

पद्य—सप्त विधिगळिंद् नवविध पुण्य सं। प्राप्ति यिंदुन्न मान्नवनु ॥
तप्तकांचनवर्ण कोडलागि कोंडु सं। तृप्तियादुंदु मुनिगळिगे ॥ ९८ ॥

अर्थ—सप्तगुण विधि से एवम् नव विधि भक्ति सहित पुण्य संप्राप्ति कर देने वाले अन्न को तप्त कांचनमय शरीर वाले राजा भरत के हाथों से दिये हुये आहार को लेकर दोनों मुनिराज तृप्त हो गये ॥ ९८ ॥

Both the saints got satisfied with the food offered with nine kinds of devotion by the golden complexioned Raja Bharat who had all the seven qualities of the donor. (98)

पद्य—हंसगानंदवे भुक्ति भोजन भुक्ति। गा सले साक्षियिंदेनुत ॥
संसेव्य भुक्तिय कैकोंडु दनिदरु। हंस हालुंड माळ्के योळु ॥ ९९ ॥

अर्थ—वे मुनिराज आहार लेते समय ये विचार करते थे कि यह आहार क्या आत्मा को तृप्त कर सकता है? ऐसे इस पुद्गल मय अन्न को आत्म साक्षी पूर्वक सेवन करते हुये आत्म साधन के लिये जैसे हंस पक्षी पानी में से दूध को पीकर तृप्त हो जाता है उसी प्रकार राजा भरत के दिये हुये आहार को लेकर के तृप्त होगये ॥ ९९ ॥

"Can this material food satisfy the soul" questioned the saints within themselves ?

They had taken the food merely to keep the body fit for enabling them to practise self contemplation clearly discriminating between body and soul just as swan drinks milk out of the combination of milk and water. (99)

पद्य—बद्पल्यंकासन दोळोडने मुख। शुद्धिय कोंडु कैदोळेदु ॥
सिद्धिर जपिसि करमुच्चि निरंजन। सिद्धन नोडिदरोळगे ॥ १०० ॥

अर्थ—पुनः नीचे बैठ करके मुख शुद्धि पूर्वक अपने हाथ शुद्धि करने के बाद (मुनिराज ने)

बद्ध पल्यङ्कासन लगाते हुए आंख वन्द करके निरञ्जन सिद्ध भगवान को ध्यान योग के द्वारा अपने भीतर ही देख लिया ॥ १०० ॥

After taking food they sat down, washed their hands and mouth. There after with legs crossed, closed their eyes, absorbed themselves in the contem plation of soul and perceived the Lord within themselves. (100)

पद्य—निंदितु, घंटा रव कूडे सुचाळु । निंदरा नृप न राणियरु ॥
मुँदे मुनिगळ योगव नोडुत रसना । वंदिसुतिद्दँ नेदेयोळु ॥ १०१ ॥

अर्थ—उसी समय घण्टारव वन्द होगया मुनिराजजी के दर्शनार्थ राजा भरत जी की रानियां वहां आकर उपस्थित होगईं और महाराज भरत भी उन योगियों के योगस्थ मुद्रा को देखते हुये मन में अति आनन्दित हो रहे हैं ॥ १०१ ॥

The ringing of the bells then stopped. The queens came foreward for paying homage along with their husband to the saints with gratitude and joy. (101)

पद्य—लेप्पद पुतलि वोलु कुळितिचित्त । लोप्पच्चिच देह कपिसदे ॥
नेप्परिदात्म न नोडि सिद्धांत दो । लिप्प मंत्रव जपिसिदरु ॥ १०२ ॥

अर्थ—मुनिराज जी की अचल मुद्रा इस प्रकार दिखाई देती थीं कि मानो मनुष्याकार स्वर्णमयी मूर्ति ही वैठी हो ऐसी अचल मुद्रा के साथ भूले हुये आत्मा को देखकर सिद्धांत शास्त्र में कहा हुआ मन्त्र का जाप कर रहे हों ॥ १०२ ॥

The saints sat motionless enjoying the vision of Sidh Bhagwan looked like the statue of gold. (102)

पद्य—कूडे कणदेरे दिदि रोळगिर्द रायन । नोडिद रानंद दिंद ॥
आडलरिये नव नुत्साहवनु भक्ति । गूडि नमोस्तु माडिदनु ॥ १०३ ॥

अर्थ—ध्यान के वाद तत्क्षण आंख खोलकर सामने खड़े हुये राजा भरत को आनन्द के साथ देख लिया । उस समय देखते ही अति आनन्दित हुये भक्ति पूर्वक अष्टाङ्ग श्रद्धाञ्जलि से इस प्रकार नमस्कार किया कि उसका वर्णन हम नहीं कर सकते ॥ १०३ ॥

After this self absorption they opened their eyes and saw Raja Bharat whose pleasure now knew no bounds and who bowed down full length before the saints. (103)

पद्य—सलेचन्द्र गति येंव मुनि अक्षयं दान । फलमस्तुते एंद नोडने ॥
नलविनोळादित्य गतियेंव मुनि नि । र्मलि नात्मसिद्धिरस्तेंदा ॥ १०४ ॥

अर्थ—उसी समय चन्द्रगति नामक मुनिराज ने राजा भरत को "अक्षय दान फलम स्तुते" अर्थात् अक्षय फल की वृद्धि हो ऐसा अशीर्वाद दिया, पुनः उनके समीप में ही वैठे हुए श्री आदित्य गति नामक मुनिराज ने "निर्मलात्म सिद्धिरस्तुते" अर्थात् निर्मल आत्म सिद्धि हो अर्थात् मोक्षफल की प्राप्ति हो ऐसा शुभाशीर्वाद दिया ॥ १०४ ॥

The saint Shri Chandragati gave the blessings "May you gain Akshya fruit", while Shri Adityagati saint said, "May you gain the vision of pure soul. (104)

पद्य—हंसनाथने वल्ल भरतेशना मुनि । हंस राशिर्वाद गेळ्दु ॥
सँसिद्धि वडेदँते नलिदनु सत्पात्र । तां सिक्कि नलियदरारु ॥ १०५ ॥

अर्थ—उसी समय आदित्य गति मुनिराज के आशीर्वाद को सुन करके राजा भरत इतने आनन्दित होगए कि यह जानना साधारण मनुष्य की बुद्धि के वाहर है उसको भगवान ही जान सकते हैं। सचमुच राजा भरत को मानों आज ही मोक्षफल प्राप्त होगया क्या ? इस प्रकार से सत्पात्र को दान देकर के आनन्दित होने वाला दूसरा कौन है ॥ १०५ ॥

Raja Bharat derived real bliss from the blessings of the saint "Adityagati". No one can describe the measure of his joy except the omniscent. The acceptance of his gift of food by the saints made him feel so blissful as if he has already attained moksha. (105)

पद्य—राणियरेल्लरोल्देरगिद राग ने । सणिय वोंवेगळँते ॥
काणुतेल्लर हरसिदरु योगिगळु गी । र्वाण भाषेयोळ वररेये ॥ १०६ ॥

अर्थ—राजरानियां भी उस समय इस प्रकार नमस्कार कर रहीं हैं कि वसंत ऋतु के पल्लव लता सहित मुनि के चरणोंमें गिर रहे हैं क्या ? मुनिराज ने नमस्कार करती हुई रानियों को गीर्वाण भाषा में आशीर्वाद दिया ॥ १०६ ॥

The queens, beautiful as the spring leaves, bowed in salutation and received the blessing of the saints. (106)

पद्य—जिन जिन चित्रवेनेवेना चणवे हू । विन तोट दोळगे होक्कँते ॥
मनेयोळ होरगे कँपिडिद्रे कँमकँ । मने तीडितोंदु तँगाळि ॥ १०७ ॥
वळिकोंदु चोद्यवनेनेंबेनदर वें । वळियोळे नृपनरमनेगे ॥
बळबळनागले स्वर्गलोकद हू । मळेगरेदुदु चल्लिदंते ॥ १०८ ॥
उसुरलळवे मत्ते मत्तोंदु सोजिग । मिसुप राजागणदल्लि ॥
होस होन्न मळे चुंमुचुंमने करेदुरँ । जिसुतदे राशि राशियोळु ॥ १०९ ॥
नटिसि राजन राजगृहद मेलाकाश । घटने योळद्भुतवागि ॥
झटि दांधण दिंदिमिकु दिंमिने सुर। पटह निनाद केळुतदे ॥ ११० ॥

अर्थ—हे जिन जिनः कहते हुये उसी चण में एक आश्चर्यजनक घटना होगई कि फूलों के वगीचे में बैठने से पुष्प मिश्रित वायु के सेवन से जो आनन्द आता है उसी प्रकार राजमहल में भी सुगन्धित वायु आ रही है ॥ १०७ ॥

अर्थ—एक और घटना पुनः आश्चर्यकारक हुई कि आकाश से राजा भरत के महल में स्वर्गीय देवगणों के द्वारा पुष्प वृष्टि हुई ॥ १०८ ॥

अर्थ—हां एक वात आनन्द की यह कि राजमहल के प्राङ्गण में विस्मयजनित नवीन स्वर्ण वर्षा होरही है क्या ? उसी प्रकार धीमी धीमी गति से रत्नराशि वरसने लगी ॥ १०९ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् राजा भरत के राजमहल के ऊपर आकाश में देवगण खड़े होकर अद्भुत घटना के साथ देव दुन्दुभि इस प्रकार सुनाने लगे कि झट, दान्धिन, दिन, दिमुक, दिम ऐसे सुर वाद्य के शब्द सुनाई देने लगे ॥ ११० ॥

A series of wonderful happenings occured. The first was the blowing of fragrant breeze inside the palace. The second was the showers of flowers on the palace from the heaven. The third was the systematic dropping of jewel and precious stones in the courtyard from the heavens. The forth was the singing of praise by celestial beings from above. *(107-110)*

पद्य—अरेरे विस्मय मत्तो दोरेय मनेय मेले । सुररु निंदाकाश दल्लि ॥
पुरे मत्त दानवे दातृवे पात्रवे । सरियुँटे निनगेनुति हरे ॥ १११ ॥
दानवुत्तम दातृवुत्तमनी पात्र । तानुत्तमोत्तमवेंदु ॥
वानदोळगे निंदु देवर्कळेल्ल म । हानंद मिगे होगळिदरु ॥ ११२ ॥

पद्य—सलेचन्द्र गति येंव मुनि अक्षयं दान । फलमस्तुते एंद नोडने ॥
नलविनोळादित्य गतियेंव मुनि नि । र्मलि नात्मसिद्धिरस्तेंदा ॥ १०४ ॥

अर्थ—उसी समय चन्द्रगति नामक मुनिराज ने राजा भरत को "अक्षय दान फलम स्तुते" अर्थात् अक्षय फल की वृद्धि हो ऐसा अशीर्वाद दिया, पुनः उनके समीप में ही बैठे हुए श्री आदित्य गति नामक मुनिराज ने "निर्मलात्म सिद्धिरस्तुते" अर्थात् निर्मल आत्म सिद्धि हो अर्थात् मोक्षफल की प्राप्ति हो ऐसा शुभाशीर्वाद दिया ॥ १०४ ॥

The saint Shri Chandragati gave the blessings "May you gain Akshya fruit", while Shri Adityagati saint said, "May you gain the vision of pure soul. (104)

पद्य—हंसनाथने वल्ल भरतेशना मुनि । हंस राशिर्वाद गेळ्दु ॥
सँसिद्धि वडेदँते नलिदनु सत्पात्र । तां सिक्कि नलियदरारु ॥ १०५ ॥

अर्थ—उसी समय आदित्य गति मुनिराज के आशीर्वाद को सुन करके राजा भरत इतने आनन्दित होगए कि यह जानना साधारण मनुष्य की बुद्धि के बाहर है उसको भगवान ही जान सकते हैं । सचमुच राजा भरत को मानों आज ही मोक्षफल प्राप्त होगया क्या ? इस प्रकार से सत्पात्र को दान देकर के आनन्दित होने वाला दूसरा कौन है ॥ १०५ ॥

Raja Bharat derived real bliss from the blessings of the saint "Aditya-gati". No one can describe the measure of his joy except the omniscent. The acceptance of his gift of food by the saints made him feel so blissful as if he has already attained moksha. (105)

पद्य—राणियरेल्लरोल्देरगिद राग ने । सणिय वोंवेगळँते ॥
काणुतेल्लर हरसिदरु योगिगळु गी । र्वाण भाषेयोळ वररेये ॥ १०६ ॥

अर्थ—राजरानियां भी उस समय इस प्रकार नमस्कार कर रहीं हैं कि वसंत ऋतु के पल्लव लता सहित मुनि के चरणोंमें गिर रहे हैं क्या ? मुनिराज ने नमस्कार करती हुई रानियों को गीर्वाण भाषा में आशीर्वाद दिया ॥ १०६ ॥

The queens, beautiful as the spring leaves, bowed in salutation and received the blessing of the saints. (106)

पद्य—जिन जिन चित्रवेनेंवेना क्षणवे हू । विन तोट दोळगे होक्कँते ॥
मनेयोळ होरगे कँपिडिद्रे कँमकँ । मने तीडितोंदु तँगाळि ॥ १०७ ॥
वळिकोंदु चोद्यवनेनेंवेनदर वें । वळियोळे नृपनरमनेगे ॥
बळबळनागले स्वर्गलोकद हू । मळेगरेदुदु चल्लिदंते ॥ १०८ ॥
उसुरलळवे मक्के मत्तोंदु सोजिग । मिसुप राजागणदल्लि ॥
होस होन्न मळे चुंमुचुंमने करेदुरँ । जिसुतदे राशि राशियोळु ॥ १०९ ॥
नटिसि राजन राजगृहद मेलाकाश । घटने योळद्भुतवागि ॥
झटि दांधण दिंदिमिकु दिंमिने सुर । पटह निनाद केळुतदे ॥ ११० ॥

अर्थ—हे जिन जिनः कहते हुये उसी क्षण में एक आश्चर्यजनक घटना होगई कि फूलों के वगीचे में वैठने से पुष्प मिश्रित वायु के सेवन से जो आनन्द आता है उसी प्रकार राजमहल में भी सुगन्धित वायु आ रही है ॥ १०७ ॥

अर्थ—एक और घटना पुनः आश्चर्यकारक हुई कि आकाश से राजा भरत के महल में स्वर्गीय देवगणों के द्वारा पुष्प वृष्टि हुई ॥ १०८ ॥

अर्थ—हां एक वात आनन्द की यह कि राजमहल के प्राङ्गण में विस्मयजनित नवीन स्वर्ण वर्षा होरही है क्या ? उसी प्रकार धीमी धीमी गति से रत्नराशि वरसने लगी ॥ १०९ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् राजा भरत के राजमहल के ऊपर आकाश में देवगण खड़े होकर अद्भुत घटना के साथ देव दुन्दुभि इस प्रकार सुनाने लगे कि झट, दान्धिन, दिन, दिमुक, दिम ऐसे सुर वाद्य के शब्द सुनाई देने लगे ॥ ११० ॥

A series of wonderful happenings occured. The first was the blowing of fragrant breeze inside the palace. The second was the showers of flowers on the palace from the heaven. The third was the systematic dropping of jewel and precious stones in the courtyard from the heavens. The forth was the singing of praise by celestial beings from above. *(107-110)*

पद्य—अरेरे विस्मय मत्ते दोरेय मनेय मेले । सुररु निंदाकाश दल्लि ॥
पुरे मक्क दानवे दातृवे पात्रवे । सरियुँटे निनगेनुति हरे ॥ १११ ॥
दानवुत्तम दातृवुत्तमनी पात्र । तानुत्तमोत्तमवेंदु ॥
वानदोळगे निंदु देवर्कळेल्ल म । हानंद मिगे होगळिदरु ॥ ११२ ॥

होने से केवल हमारी यह उपचार पूजा है। श्री जिन मुनियोंके उदराग्नि पूर्ति करने का सौभाग्य आपको ही प्राप्त है। इसलिये हे राजन्! आप जगत में धन्य हैं ॥ ११६ ॥

They said, "O Rajan ! There is nothing surprising if we enjoy heavenly pleasures because of our birth in heavens, but we have been denied the privilege of offering the gift of food to saints."

"We have attained heavenly plesures as a result of offering gift, observing austerities and fasts, but now we find that we have not the privileges of carrying out the above duties. Although we are capable of much better enjoy ments than you but do not possess the good luck of offering the gift of food to a deserving recepient. The reason for this is simple. The saints do not accept the gift from those who like us do not get the opportunities for observing fasts and adopting vows. We worship the lord of lords Jinendra Deva with offerings, but as he has no appetite our offering is only formal, but O, Rajan, in your case the recipients have appetite. You have the good luck of satisfying it. Blessed are you". (113-116)

पद्य—भुक्तिय नीव रु'टल्लल्लि भूपरु । युक्ति यिल्लरे भक्तियिल्ल ॥
युक्ति भक्ति योळोडगूडि भुक्तिय नीव । मुक्ति साधक नीने चक्रि ॥११७॥

अर्थ—आहार देने वाले अनेक राजा हैं, परन्तु उनके पास युक्ति है तो भक्ति नहीं यदि भक्ति है तो युक्ति नहीं है। अतः हे राजन युक्ति एवम् भक्ति के साथ भुक्ति (आहार) को देकर मुक्ति साधन करने वाले आप ही धन्य हैं ॥ ११७ ॥

There are numerous Rajas who are the donors of this gift. But if they possess the ability, they lack in devotion and if some of them have devotion they lack in ability. You, Rajan, have both ability and devotion. (117)

पद्य—नरर सोक्किसुव सौभाग्य हरेय । सोकिसितिल्ल निन्न ॥
वर भोगमूर्छेय माडितिल्लत्मन । सिरिय नीने कंडे नृपति ॥ ११८ ॥

अर्थ—आत्म प्रशंसा और शारीरिक पुष्टि की भावना आप में नहीं है तथा समस्त सुख ऐश्वर्य और वैभव होने पर भी उसमें कोई ममत्व भाव नहीं है। हे राजन! केवल आप में आत्मिक उन्नति और विकास की भावना मात्र है ॥ ११८ ॥

You have no desire for self praise or for physical enjoyments. You have no attachment to the worldly splendour and glory which surround you. Your only desire is to achieve soul advancement. (118)

पद्य—धर्म गुणके सोतु होगळ्वेकदु ताने । धर्म शीलर जाति चिन्ह ॥
धर्म साम्राज्यव नाळेंदु सुरराडि । दर्मचे वयलादरोडने ॥ ११६ ॥

अर्थ—क्योंकि धर्मात्मा, सम्यक्दर्शनादि गुण वालों की स्तुति स्वमेव सर्वत्र और सर्वदा होती है, इसलिये शीलवान धर्मात्मा का यह चिह्न है। अतः हे राजन्! आज कल में ही आपको धर्म साम्राज्य प्राप्त होकर शीघ्र ही मोक्ष सुखप्राप्त होगा। इस प्रकार देवगण श्री भरतेश की स्तुति करते हुये लुप्त होगये ॥११९॥

The celestial beings left the place after praising the spiritual qualities of the monarch and paying their homage. (119)

पद्य—सुरवाक्य सुरभेरि हूमळे होंमळे । सुरभीरव वेंदितु ॥
सुरकृत पंच वैभवगाळदवु मक्क । भरतेश दान वैभववे ॥ १२० ॥

अर्थ—सुर वाक्य, सुर भेरी, पुष्प वृष्टि, स्वर्ण वृष्टि, सुरभिरव, इस प्रकार देवकृत पंचाश्चर्य वृष्टि राजा भरतेश के राजाङ्गन में हुई। अतः राजा भरत कृत दान के वैभव का वर्णन क्या करूँ ? अपितु इसका वर्णन लेखनी और जिह्वा से करने पर भी सर्वदा अपूर्ण ही रहेगा ॥ १२० ॥

Five wonderful happenings had occurred in the palace of the Raja namely, the blowing of fragrant breeze, praise by celestial beings, falling of flowers from above, downpour of precious stones in the courtyard, blowing of trumpet by the celestial beings. Who can describe the glory of such a Raja ? (120)

पद्य—मुनिगळेद्दरु जिनशरनेंदु नृपनर । मनेयिंद शांत भावदोळु ॥
ननगे नीवे शरणेनुतेद्द ना राय । मुनिगळ पिंदेराग दोळु ॥ १२१ ॥

अर्थ—इसके वाद दोनों मुनिराज "जिन शरण" इस प्रकार मुख से कहते हुये राजा भरत के महल से प्रस्थान करने लगे।

राजा भरत ने भी कहा कि मैं भी केवल आपके शरण हूँ। इस प्रकार कहते हुये भरत जी भी मुनिराज के पीछे पीछे चल दिये ॥ १२१ ॥

After uttering the words "Jina Sharan (May Lord protect you)" the saints left the palace. Raja Bharat said, "To me you are the protection", and began to follow the saints. (121)

पद्य—निल्लेले भव्ययेंवरु योगिगळु देव । रोल्लगेचित्तैसियेनुत ॥
मेल्लगेरडु रूप कैकोंडु कैलागि । नल्लि नडसिद* निर्वरनु ॥ १२२ ॥

अर्थ—मुनिराज कहने लगे हे भव्य ! तुम्हें भी भोजन करनेमें देरी होगी इसलियेठहर जाओ, सम्राट ने कहा हे देव ! मेरी भावना थोड़ी दूर तक सेवा करने की है अतः युग्म रूप धारण करके दोनों मुनि श्री को सहारा देते हुये आगे वढ़े जा रहे हैं ॥ १२२ ॥

"Oh Noble soul" said the saints to the Raja, "It is getting late for your meals. Pray go back". Entreated the emperor, "Please allow me to do a little service and thus he walked on. (122)

पद्य—नाकेंटु मारु नडेदु मुनिगळु कूडे । साकु निल्लेंवरु नृपना ॥
साकादिदे निम्मसेवेयिन्नोप्पाच्चि । वेकु चित्तैसियेंदेंवा ॥ १२३ ॥

अर्थ—थोड़ी दूर प्रस्थान करने के बाद मुनिराज कहने लगे कि हे भव्य ! अव तो ठहरो । राजा भरत ने कहा हे गुरुदेव, ! अभी आपकी सेवा से मेरे मन को तृप्त नहीं हुई, थोड़ी दूर और चलूँगा, मैं आपकी कुछ और सेवा करना चाहता हूं ॥ १२३ ॥

After covering a little distance, the saints again asked the Raja to stop, but he would not and beseeched the saints to allow him the privilege of a little more of their company. (123)

पद्य—मत्ते किरिदु दूर नडेवरु मुनिगळि । न्नित्त वारदिरेंवरोडने ॥
इत्तवारेंदेन्न नुदरिसदे देव । रोत्तरिपरे एंदु नुडिवा❀ ॥ १२४ ॥

अर्थ—पुनः थोड़ी दूर मुनिराज आगे जाते हैं, फिर भरतजीसे कहते हैं कि अव तुमठहरजाओ वहुत देर हो चुकी है । हे राजन ! अव आप न चलें, इस प्रकार मुनिराज के वचन सुनकर भरतेश कहने लगे कि गुरुवर्य्य ! आपके कितने कठोर हृदय हैं, मुझे आप अपने अनुसरणसे वंचित करते हैं भव्य जीवों का आप उद्धार करते हैं इसलिये आप मुझे क्यों वापिस भेज रहे हैं । हे भव्य आत्म कल्याण करो ऐसा कहना चाहिये यह आपका कर्त्तव्य है । ॥ १२४ ॥

---

* नाराया । ❀ नडेदा ।

After they had proceeded a little farther the saints asked the Raja to go back. "Pray allow me a little more time to be at your feet, please do not harden yourself against me, you are the saviour of all, pray why send me back to the snares of the home life. (124)

पद्य—मनदल्लि हिग्गु तिहरु योगि नाथरु । मनुविन विनयव कंडु ॥
जिनन कुमारवल्लवे एंदु नुडियदे । नेनेवुत नडेद रोजेयोळु ॥ १२५ ॥

अर्थ—भरतेश जी के यह वचन सुनकर मुनिराज बड़े आनन्दित हुये और कहने लगे कि यह तो राजा नहीं अपितु श्रीजिनेन्द्र का कुमार है और आसन्न भव्य है एवम् मोक्षगामी है। इस प्रकार मुनिराज विचार करते हुये चले जा रहे हैं ॥ १२५ ॥

The saints felt pleased at the courtesy and devotion of the Emperor and said that he was not ordinary ruler but was the son of Lord Adinath, and was to attain moksha from that body. (125)

पद्य—होत्तादुदरसे होगूटकेंदा मुनि । पोत्तामरोडने निल्लवरु ॥
चित्तैसि यिन्निष्टु दूर वेनुत भक्ति । वेत्तु मुंदोय्वना राया ॥ १२६ ॥

अर्थ—पुनः थोड़ी दूर चलने के बाद मुनिराज कहने लगे, कि हे राजन्! अब तो लौट जावो। रनिवास में सब रानियां आपकी प्रतिक्षा में क्षुधातुर होंगी, और आपके आने की प्रतिक्षा कर रही होंगी। यह सुनकर पुनः भरतेश जी कहने लगे कि अभी मेरी तृप्ति नहीं हुई कृपया कुछ थोड़ी दूर और चलिये ॥ १२६ ॥

Proceeding a little further, the saints said, "Now stop please. Your queens must be hungry and waiting for you." I am not yet contented", replied the Emperor, "Please allow to do a little more service.' (126)

पद्य—कडेय वागिलु मुट्ट विडदे वंदनु मत्तु । विडुविच्छे यादु दिल्लवरा ॥
विडदे हंसन काएव योगी रत्नरकंडु । विडुवरे मोक्ष गामिगळु ॥ १२७ ॥

अर्थ—ऐसे परस्पर के साथ राज महल के अन्तिम द्वार तक पहुँच गये फिर भी भरतेश की इच्छा श्री मुनिराज को छोड़कर वापिस जाने की नहीं है। वे मुनि कहने लगे कि जैसे हँस को हँस मिल जाने पर अलग होने की इच्छा नहीं करते हैं उसी प्रकार मोक्षगामी पुरुष भी मोक्षगामी योग का साधन करने वाले योगी जनों को नहीं छोड़ते हैं ॥ १२७ ॥

Engaged in this conversation they reached the outermost gate of the

palace, but the Raja would not even then go back. The saints said to themselves, "Just as a swan does not leave the company of swas it once gets, so this Raja who is to attain moksha in this birth does not leave the company of saints are striving to attain moksha. *(127)*

पद्य—आदीशनाणे नीनिन्नु निल्लेंदव । रादरमिगे निलसिदरु ॥
पादकेरगिद निर्व रेगोडनोंदेरू । पादना विस्मय रूप ॥ १२८ ॥

अर्थ—अन्त में मुनिराज राजा भरतेश के हृदयस्थ वात पर विचार किया एवम् उन्होंने (मुनियों ने) समझा कि यह छोड़ नहीं सकते हैं, अन्त में विवश होकर मुनिराज ने कहा कि अब आपको "श्री आदि देव" की सौगन्ध है, ठहरो ! आगे मत चलो । इस प्रकार कहने पर तब राजा भरत ठहरे । भरतेश की आंखों से अश्रुधारा वह चली तदन्तर मुनिराज ने उन्हें आशीर्वाद देकर ठहराया । अन्त में राजा ने अपने विकृत रूप को संकोच कर वास्तविक रूप को धारण किया ॥१२८॥

At last the saints thought that it would be difficult to stop the Raja. So they said, "We ask you in the name of Lord Adinath please stop, do not proceed further". They brought the tears to the Emperor's eyes and he stopped. *(128)*

पद्य—नडे नोडि नलविंद हरसिदरवरु म । चोडने लधिसिदरंवरके ॥
कडु मिचिनंते होळ्ेदु होह यतिगळ । वेडगि करिणट्ट नोडिदनु ॥ १२६ ॥

अर्थ—आशीर्वाद देते हुये कुछ आगे वढ़ कर आत्मिक वल व मन्त्र शक्ति से उन दोनों मुनिराजों ने आकाश में गमन किया, वे जाते हुये इस प्रकार दिखाई दे रहे थे कि मानो सूर्य व चन्द्र ही अपने अपने लोक में वापिस जा रहे हैं ॥ १२९ ॥

The saints gave blessings to the Raja and with their spiritual power ascended into the air and it appeared as if sun and moon were going back. *(129)*

पद्य—तंद्रविल्लदे गगणदोळु तम्मात्मन । रुंद्र गुणगळ भाविसुत ॥
चंद्र गत्यादित्य गतिगळै दिदरत्त । चद्रनंतादित्यनंते ॥ १३० ॥

अर्थ—मुनिराज के गमन करने के पश्चात् जव तक भरतेश की दृष्टि से वे ओझल नहीं हुये तव तक एक दृष्टि से देखते रहे और विचार करने लगे क्या कोई मन्त्र वल तो नहीं है, नहीं नहीं ! आत्म शक्ति का महत्व है ये तो चन्द्र व सूर्य तुल्य ही गमन कर रहे हैं ॥ १३० ॥

Bharat stood watching the saints till they disappeared from sight and praised the spiritual power of the saints by which they could traverse the atmosphere. (130)

पद्य—पिङ्गिगे तोरुवनितु होत्तु मुनिगळ । निट्टि सिमिगे हाय्द मेले ॥
तोट्टने तन्नर मनेयत्त लोलेदनु । पट्टवर्धन सार्व भौमा ॥ १३१ ॥

अर्थ—दृष्टि से अदृश्य होजाने के पश्चात् पट्टवर्धन सार्वभौम महाराज भरत वहां से लौटकर राजमहल की तरफ अति गौरव के साथ चले ॥ १३१ ॥

After the saints had vanished from the sight, Bharat returned to the palace. (131)

पद्य—कनक रत्नद हावुगेय मेट्टि वीसुव । कनक चामरगळोग्गिनोळु ॥
मनुजेश नरमनेगडियिट्ट निल्लिगे । मुनि भक्ति संधि सुगंधि ॥ १३२ ॥

अर्थ—पुनः पैरों में रत्न जटित स्वर्ण पादुका पहन कर एवम् अङ्गरक्षकों के द्वारा छत्र चामर डोलते हुये कामदेव के समान राजा भरतेश अपने राजद्वार की ओर आने लगे, इसप्रकार मुनि भुक्ति की सुगन्ध संधि समाप्त होगई ।

The Raja now assumed all the kingly symbols which he cast aside when he had come to receive the saints and returned to his palace accompanied by his retiane. (132)

पद्य—ई जिन कथेयनु केळिदवर पाप । बीज निर्नाशन वहुदु ॥
तेज वहुदु पुण्य वहुदु मुंदोलिदप । राजितेश्वरन काणुवरु॥ १३३ ॥

अर्थ—इस कथा को श्रद्धा के साथ भाव पूर्वक जो लोग सुनेंगे उनके पाप रूपी बीज नष्ट होंगे और पुण्य वृद्धि होगी । भविष्य में शीघ्र ही अपराजित पद को देखेंगे ॥ १३३ ॥

Those persons who will hear this glory of Raja Bharat with rapt attention will destroy the seeds of their sins, will get all the happiness and in the end attain un-conauerable position (liberation). (133)

पद्य—प्रेमदिंदि नोदिदरे पाडिदरे केळ्द । रामोद वैदवरवरु ॥
नेमदि सुररागि नाळे श्रीमंधर । स्वामिय काणवरतियोळ् ॥ १३४ ॥

अर्थ—इस कथा को जो प्रेम से पढ़ेंगे तथा सुनेंगे व आमोद को प्राप्त होंगे और नियम से देवपद को प्राप्त कर अन्त में विदेह क्षेत्र में जाकर प्रेम से श्रीमन्दर स्वामी का दर्शन करेंगे ॥ १३४॥

Those who will read this with attention and recite it with devotion will have the 'darshan' of Srimandhara Swami. (134)

पद्य—सुख दुःखवेबं विकल्प वळिदु दिव्य । सुखवे रूपाद् महात्मा ॥
सुखदोरु तेन्नत रंग दोळिरु सुख । मुखने चिदंबर पुरुषा ॥ १३५ ॥

अर्थ—सुख दुख रूपी अनेक विकल्पों से रहित, और दिव्य सुख स्वरूप रूप को ही धारण किया हुआ हे महात्मा ! और हमेशा मेरे अन्तरंग में उन्नति होकर रहने वाले तथा सुख रूपी मुख को धारण करने वाले, हे चिदंबर पुरुष ! हे सिद्ध भगवान ! मेरे को हमेशा आनन्द को प्राप्त करो ॥ १३५ ॥

May the great atma ever blissful devoid of thought activities of pleasure and pain Chidamber Purusha Sidh Bhagwan, bestow on me everlasting bliss. (135)

इति मुक्ति भुक्ति सन्धिः प्रथम भागस्य तृतीयो सर्गः संपूर्ण ॥ ३ ॥



चतुर्थ सर्गः

❀ राज भुक्ति संधिः ❀

पद्य—पावन मूर्ति पावन कीर्ति लोकैक । पावनाकार गंभीर ॥
पावन मतिदोरु पालिसेन्ननु नन्न । देव निरंजन सिद्धा ॥ १ ॥

अर्थ—पवित्र मूर्ति धारक, पवित्र कीर्तिवान, लोकमें केवल आप ही पवित्र और मेरु के समान गम्भीर हैं, अतः हे निरञ्जन सिद्ध देव ? मुझे सद्बुद्धि देकर मेरी रक्षा करो ॥ १ ॥

May Lord Niranjan Sidh, the pure of the purest, of the purest fame steadfast as Meru mountain, bestow on me good sense and protection. (1)

पद्य—राजर देवराजादित्यराजाधि । राजर राजना चक्रि ॥
राज मंदिर कोजेयिंदडियिट्टनु । राजविडायव बिम्येनलु ॥ २ ॥

अर्थ—राजाधिराज, आदिराज, एवं चक्रवर्ती सम्राट श्री भरतेश जिस समय राजमन्दिर की ओर गमन कर रहे थे, उस समय के गौरव और उनके शृङ्गार सौंदर्य का क्या वर्णन करूँ ॥ २ ॥

I find it too difficult to describe the beauty and the impressiveness of the person of the Emperor Bharat as he walked to his palace. (2)

पद्य—सेरगु सेरुवेगिळिदेडद कंकुळोळोलले । दिरुकिद पच्चदच्चु ॥
निरसि वीसुव बलदोळिंद गमकदि । मरेयाने नडेवंते नडेदा ॥ ३ ॥

अर्थ—राजा भरत के वस्त्र धोती दुपट्टा हवा से उड़ते थे और उनके बाहु प्रसारित हो रहे थे, कवि विचारते हैं कि मानो धवल बाल हस्ती ही गम्भीरता से आ रहा है ॥ ३ ॥

With clothes fluttering with breeze and arms stretched, he was walking with the impressive gait of an elephant. (3)

पद्य—कटिगरणु झटिलेंदु पादुगेळ दनि । नटिसि मेल्लने पज्जे इडुव ॥
पटुभाव पसरिसे वीर लक्ष्मिय राय । विट नडेदनु नटने योळु ॥ ४ ॥

अर्थ—गमन के समय जिस पटुता से, ईर्य्यापथ पूर्वक, और पादुका की झटिति २ ध्वनि के शब्द से मालूम होता है कि वीर गम्भीर मोक्ष लक्ष्मी रमण कर रही हो । ४ ॥

चतुर्थ सर्गः

❀ राज भुक्ति संधिः ❀

पद्य—पावन मूर्ति पावन कीर्ति लोकैक । पावनाकार गंभीर ॥
पावन मतिदोरु पालिसेन्नन्नु नन्न । देव निरंजन सिद्धा ॥ १ ॥

अर्थ—पवित्र मूर्ति धारक, पवित्र कीर्तिवान, लोकमें केवल आप ही पवित्र और मेरु के समान गम्भीर हैं, अतः हे निरञ्जन सिद्ध देव ? मुझे सद्बुद्धि देकर मेरी रक्षा करो ॥ १ ॥

May Lord Niranjan Sidh, the pure of the purest, of the purest fame steadfast as Meru mountain, bestow on me good sense and protection. (1)

पद्य—राजर देवराजादित्यराजाधि । राजर राजना चक्रि ॥
राज मंदिर कोजेयिंद्डियिट्टनु । राजविडायव विम्येनलु ॥ २ ॥

अर्थ—राजाधिराज, आदिराज, एवं चक्रवर्ती सम्राट श्री भरतेश जिस समय राजमन्दिर की ओर गमन कर रहे थे, उस समय के गौरव और उनके श्रृङ्गार सौंदर्य का क्या वर्णन करूँ ॥ २ ॥

I find it too difficult to describe the beauty and the impressiveness of the person of the Emperor Bharat as he walked to his palace. (2)

पद्य—सेरगु सेरुवेगिळिडेडद कंकुळोळोले । दिरुकिद पच्चदच्चु ॥
निरसि वीसुव वलदोळिंद गमकदि । मरेयाने नडेवंते नडेदा ॥ ३ ॥

अर्थ—राजा भरत के वस्त्र धोती दुपट्टा हवा से उड़ते थे और उनके बाहु प्रसारित हो रहे थे, कवि विचारते हैं कि मानो धवल वाल हस्ती ही गम्भीरता से आ रहा है ॥ ३ ॥

With clothes fluttering with breeze and arms stretched, he was walking with the impressive gait of an elephant. (3)

पद्य—कटिगएगु झटिलेंदु पावुगेळ दनि । नटिसि मेल्लने पज्जे इडुव ॥
पटुभाव पसरिसे वीर लच्मिय राय । विट नडेदनु नटने योळु ॥ ४ ॥

अर्थ—गमन के समय जिस पटुता से, ईर्य्यापथ पूर्वक, और पादुका की झटिति २ ध्वनि के शब्द से मालूम होता है कि वीर गम्भीर मोक्ष लक्ष्मी रमण कर रही हो । ४ ॥

His looks were fixed on the ground ahead with a view to avoid injury to any living being while walking. The rythmic sound coming from his sandals gave an impression of his imposing personality. *(4)*

पद्य—उत्कृष्ट पात्रदानार्चनेयाय्तेंदु । हृत्कमलदोळर्ति यिंद ॥
सत्कारदिंद सेवकर कळुहुत च । मत्कार दिंदोळ होका ॥ ५ ॥

अर्थ—राजा भरतेश हर्षोल्लास पूर्वक सोचते हैं कि मेरे घरमें आज उत्तम पात्र दान की अर्चा हो गई है, इस प्रकार मन में आनन्द होते हुए अपने साथ वाले सब नौकरों को अपने स्थान जाने के लिए सत्कार पूर्वक आज्ञा देकर चमत्कार के साथ स्वयं राज महल में गये ॥ ५ ॥

Raja Bharat was full of joy because his gift of food had that day been accepted by a high saint. He allowed his servants to leave him and entered his palace. *(5)*

पद्य—करेदोब्ब हितवनी होन्न राशिय । पुरुदोळिह वडवरिंगे ॥
तिरिकरि गेरेवगें वेच्चिसु होगेंदु । दोरे होक्क नोडन रमनेया ॥ ६ ॥

अर्थ—तदनंतर एक योग्य राजकर्मचारी को बुला कर आज्ञा दी कि राज प्रांगण में रत्न और स्वर्ण राशि पड़ी हुई है, इसे निर्धन दरिद्र प्रजाजनों को बांट दो, इस प्रकार आज्ञा प्रदान कर अन्तःपुर में प्रवेश किया ॥ ६ ॥

Thereafter he called an able official and directed him to distribute among the poor the stores of precious stones and jewels which was lying in the courtyard and himself went inside the palace. *(6)*

पद्य—यतिगळ गुणव बण्णिसुत दानदोळाद । अतिशय कानंद वडुत ॥
पति वह दारिय नोडुतलापति । ग्रतेय रेदरु गेलविनोळु ॥ ७ ॥

अर्थ—अन्तःपुर की रानियाँ मुनिराज के गुणातिशय, दानातिशय, और उनके फलातिशय की चर्चा करती हुई भरतेश के आगमन की प्रतीक्षा में बैठी थीं ॥ ७ ॥

The queens, while waiting for their husband, were discussing the miraculous faculties of the saints and the wonderful fruits of the charity. *(7)*

पद्य—कंडरु मुखकांति तळि तळिसुत वह । गंडन तम्मिदेरिनोळु ॥
तंडतंड दोळेल्ल रिदिराग वंदु मुं । कोंडु नुडिदरोळगरिदु ॥ ८ ॥

अर्थ—इसी समय आते हुये भरतेश जी के मुखारविंद और तेजोमयी आकृति को देखकर रानियां सोचने लगीं और परस्पर कहने लगीं कि वहिनों ! आज नई बात क्या है ? मुख कमल इतना प्रफुल्लित एवं तेजवान क्यों है ॥ ८ ॥

At that moment Raja Bharat made his entry. The expressions of his face showed that he was gloating with joy. The queens discussing among themselves thought that there must be some special reason for this joy and gayfulness. *(8)*

पद्य—देवर परियेंदिनंदवल्लिदांदु । भाव वागेमगे तोरुतिदे ॥
भाविसुवागोंदु परम लाभव पेत्त । ठीवियोळ्दिदेथेंदरोसेदु ॥ ६ ॥

अर्थ—आज पतिदेव के परिणाम में एक नई भावना दिखाई देती है। उनकी परिणति से मालूम होता है कि, कोई परम लाभ हो गया हो न मालूम क्या परम लाभ हुवा होगा ॥ ९ ॥

They said, "A new expression appears to-day on the face of our husband. Probably he has made some big gain". *(9)*

पद्य—अक्काजी नी नोडु ता नोडुतंगि नो । डक्क रिंदरसन मोगवा ॥
ठक्को सत्यवो नम्म मातेंदु केळ्वरु । नक्काडि तावु तम्मोळगे ॥ १० ॥

अर्थ–देखो ! पतिदेव की परिणति एवं मुखकमल पर एक आनन्द की विशेष रेखा झलक रही है, ऐसा हमें प्रतीत होता है कि न मालूम इतना आनन्दातिशय क्यों है ? ॥ १०॥

"What could be the reason for this expression of delight on his face ?" *(10)*

पद्य—ठक्कल्ल सत्य निम्मय मातु नम्म नो । टक्के हागिदीतु नावु ॥
मिक्कु सोल्लिसितिल्लवेंदु तम्मोळु तावु । चोक्कवायतेंदु मेच्चुवरु ॥ ११ ॥

अर्थ—इस प्रकार रानियां परस्पर हास्यातिरेक के साथ एक दूसरे की ओर सांकेतिक प्रश्नों के साथ वात करती हैं, कि वहन देखो तो सही ? आनन्द से मुख कमल कितना अधिक प्रफुल्लित है और वे रानियां कहने लगीं कि इसके कारण का निर्णय तभी हो सकता है कि प्राणनाथ के स्वागत के लिये चलें और उन्हें भेंट देकर सम्मान पूर्वक पूछें कि इस आनन्दातिरेक का क्या कारण है ? तव सव ने प्रसन्नता पूर्वक अपनी सम्मति दी ॥ ११ ॥

The queens were discussing the matter pleasantly among themselves.

Then they said, "Let us go, welcome our beloved, and enquire the cause of his delight". *(11)*

पद्य—नम्मोळु नावु केलरू केलवर केळि । नम्म नावहुदहुदेंदु ॥
सुन्मान वडेदरेक हुदेंदु स्वामिय । नोम्मे केळुवे वेंदरोडने ॥ १२ ॥

अर्थ—स्वयं शंका करके स्वयं ही, हां, हां करके स्वीकृत कर लेना उचित नहीं है। एकवार महाराज के समीप जाकर उनसे सम्मान पूर्वक पूँछ कर कारण समझ लेना उचित है ॥ १२ ॥

There is no point in questioning and answering among ourselves. We must go near our husband and enquire with respect the reason for his joy. They unanimously agreed on this proposal. *(12)*

पद्य—अहुदो अल्लवो नावु कंड काणकेयदेव । सहजदिंदु सुर वेकेंदु ॥
महिळेयरेल्लरु नगुत केळ्लु राय । नहुदहु देंद नाग ॥ १३ ॥

अर्थ—तत्पश्चात, सभी रानियां भेंट लेकर उनके समीप पूँछने के लिये गईं और भेंट प्रदान कर, हास्य एवं आमोदपूर्वक पूछने लगीं, तव राजन वोले कि "हां", आनन्द है ॥ १३ ॥

Then they proceeded with presents and after offering them asked with smile on their faces what the reason for the Raja's pleasure was, *(13)*

पद्य—चेन्नागि कंडिरि निम्मंते काणव । रिन्नुंटु नन्नेदेयोळगा ॥
वन्निना वेल्लविन्ना रोगिसुवुदेंदु । मान्निसि करेवुत नडेदा ॥ १४ ॥

अर्थ—संसार में तुम्हारे समान आनन्द कौन है, तुम्हारे विना अन्य आनन्द का क्या कारण हो सकता है ? मेरे मन में आनन्द का कारण यह है कि हम सब लोग एक ही साथ एक ही पंक्ति में वैठकर सहभोज करें ॥ १४ ॥

"The reason for my joy is", said the Raja, "that we shall all take the food together." *(14)*

पद्य—पादव तोळेदंगदद्विवनिक्किद । रादरदिंदोळहोक्कु ॥
मेदनिपति कंडु तनगोव्वगेंदु सं । भोदिसिदंदु कुळ्ळिरनु ॥ १५ ॥

अर्थ—ऐसा कहते हुए भरतेश जी पैर पखार कर आनन्दपूर्वक भोजनागार में प्रवेश करके, महारानी के सम्बोधन किये गये आसन पर वैठे ॥ १५ ॥

Thus saying he sat with legs stretched on a seat indicated by the Maharani. (15)

पद्य—मुंदके नडेयदे निंदनल्लिय पेंडे । रेंदेंदु तनगाद मेले ॥
संदनि गोड्डवरा परिगेंदु ता । विंदु योचिसिदरेंदरिदा ॥ १६ ॥

अर्थ—कहने लगे कि समय अधिक हो चुका, अब एक साथ भोजन करो तथा अन्य विचार मत करो, अतः शीघ्र ही भोजनार्थ वैठ जाओ ॥ १६ ॥

He said, "Supper has already been much delayed. Please do not delay it further. Come and sit with me to take food". (16)

पद्य—अतिवेळे याग्तिदु नम्म पतियोळेल्ल । सतियरि गुणिसगलेंदु ॥
च्चितिपनेल्लरिगे कुळ्ळिरलिडिसिदनु ला । लित वाक्यदिंद करेदनु ॥ १७ ॥

अर्थ—स्त्रियों के संकोच करने पर भरतेश जी ने पुनः आग्रह पूर्वक कहा कि प्राणप्रिये ! अब अत्यधिक देर हो चुकी, भोजन की वेला निकल चुकी है, अतः समस्त रानियों को आग्रहपूर्वक वुलाकर, हाथ पकड़ कर भोजनार्थ वैठाने लगे और वार वार प्रत्येक का नाम ले ले कर वुलाने लगे ॥ १७ ॥

At the hesitation of the queens he again requested them to sit down for food as it was getting very late. He took them by hand one by one calling them by their names. (17)

पद्य—कन्नाजि कमलाजि विमलाजि सुमनाजि । होण्णाजि होसमदुराजि ॥
रन्नाजि चेन्नाजि चिन्नाजि नीवेल्ल । वन्निरेंदनु वगेयरिदु ॥ १८ ॥
कांताजि मुकुराजि कुसुम गंधाजि व । संताजि मधुमाधवाजि ॥
अन्तरंगाजि सुखाजि सुखावति । शांताजि वा वन्निरेंदा ॥ १९ ॥
भृंगलोचने नील लोचने वारौ कु । रंगलोचने पुष्पमाले ॥
शृंगारवति गुणवति चन्द्रमति सा । रंगलोचने वन्निरेंवा ॥ २० ॥
वीणादेवि विद्यादेवि सुरदेवि । वाणिदेवि श्रीदेवि ॥
वाणादेवि भद्रादेवि वारौ क । ल्याण देवि वारेंवा ॥ २१ ॥
एल्लिद्दळंजिनादेवि कुंकुमदेवि । मल्लिकादेवि सुदेवि ॥
एल्लिदळुत्साहदेवि एंदेडवल । दल्लि तानरसि नोडिदनु ॥ २२ ॥

चित्रवति चित्रलेखे पद्मावति । नेत्रावति चन्द्रलेखे ॥
मित्रावति पद्मलते ललितांगि वि। चित्रांगि एल्लिद्ळेवा॥ २३ ॥

अर्थ—कन्ना जी, कमला जी, विमला जी, सुमना जी, पन्ना जी, मधुरानी जी, रत्ना जी, चन्ना जी, चिन्हा जी, आदि सभी तुम आवो ॥ १८ ॥

अर्थ—कान्ता जी, मुकरा जी, कुसुमगंधा जी, वसन्ना जी, मधु माधवाजी, अन्तरंगा जी, सुकावती जी; सुका जी, शान्ता जी आओ ॥ १९ ॥

अर्थ—भृङ्गलोचना, नीललोचना, कुरंगलोचना, पुष्पमाला, शृंगारवती, गुनवती, चन्द्रवती, सारंग लोचना, आओ ॥ २० ॥

अर्थ—मीनादेवी, विद्यादेवी, सुरदेवी, वानीदेवी, श्रीदेवी, वाणादेवी, भद्रादेवी, कल्याणी देवी तुम सभी आओ ॥ २१ ॥

अर्थ—अंजनादेवी, कुंकुमदेवी, मल्लिकादेवी सुदेवी, उत्सवादेवी को पुकारते हुए अपने चारों ओर दाहिने, बायें ओर देखने लगे कि ये सब कहां है ॥ २२ ॥

अर्थ—चित्रावती, चित्रलेखा, पद्मावती, नेत्रावती, चन्द्रलेखा, मित्रावती, पद्मलता, ललितांगा, विचित्रांगा ये सभी कहां हैं आओ ॥ २३ ॥

"Please come Kannaji, Kamlaji, Vimlaji, Sumnaji, Pannaji, Madhuraniji, Ratnaji, Channaji ,Chinhaji, Kantaji, Mukraji, Kusumgandhaji, Madhumadhvaji, Antrangaji, Sukawatiji, Sukaji, Shantaji, Bhringalochani, Neellochani, Kuranglochna,Pushpmala. Shringarvati, Gunvati, Chandravati, Saranglochna, Meenadevi, Vidyadevi, Surdevi, Barhadevi, Sridevi, Vanidevi. Bhadradevi, Kalyanidevi, Anjnadevi, Kumkumdevi, Mallikadevi, Sudevi, Utsavadevi".

"Where are you all ? Please come. Chitravati, Chitralekha, Padmavati, Netravali, Chandralekha, Mitravati, Padmlata, Lalitanga, Vichitranga". *(18-23)*

पद्य—कनक लतेय करे करे कुँदलतेय करे । कनकमालेयरर हेळु ॥
मुनिगळ शेषान्नवनुंड सुखियह । बेनुतेल्लरनु करे सिदनु ॥ २४ ॥

अर्थ—कनकलता, कुन्दलता, कनकमाला, सभी शीघ्र आओ, देखो मुनिपात्र के शेषान्न को ग्रहणकर सुखी होजाओ ॥ २४ ॥

"Please come and enjoy the relish of the food left by the saints. Kanaklata, Kundlata, Kanakmala". *(24)*

पद्य—करे जिन मतियनु सुखवेंघ कडलिन । करेयलते नम्मय पंति ॥
करे सिद्ध मतियनु मुनिपानीयान्न श । करेयलते सवि नोडलेवा ॥ २५ ॥

अर्थ—बुलाओ जिनमती को, सुखरूपी समुद्र के समान हमारे पंक्ति में बुलाओ । बुलाओ सिद्धमती को, मुनिपात्र शेषान्न (यानी मुनियों के आहार से शेष बचा अन्न) खट्टा है या मीठा है एक बार खाकर देख लो ॥ २५ ॥

"Call Jinmati, let her join our gay company. Call Sidhmati, let her relish the taste of the food left by the saints". (25)

पद्य—करे करे रत्नमालेय मणिमालेय । करे करे कांति मालेयनु ॥
करेद मेलवरित्त वारद रेमगे । कर करेयेने नक्करेल्ल ॥ २६ ॥

अर्थ—बुलाओ, बुलाओ, शीघ्र ही रत्नमाला व मनिमाला भी आवें और कांतिमाला को भी बुलाओ । देखो जो कोई यहां न आया हो उन्हें भी बुलाओ । इसप्रकार सभी एकत्रित रानियां सुन रहीं थीं एवम् सभी रानियां क्रमशः बुलावा सुनकर हंसने लगीं ॥ २६ ॥

"Please send for Kantimala, and Manimala at once and call others who are not here. All the queens were hearing the invitations and began to laugh. (26)

पद्य—स्वामिगारोगणेयाद वळिक लुंब । नेमवुंटेमगदरिंद ॥
स्वामि भोजनके चित्तैसवेकेंदेल्ल । कैमुगिदरु भक्तियिंद ॥ २७ ॥

अर्थ—सभी आकर उपस्थित होगयीं और अनुनय विनय के साथ, हाथ जोड़ कर कहने लगीं कि "हे नाथ !" हमारा यह नियम है श्री पतिदेव के भोजनोपरान्त ही भोजन करेंगी । अतः श्रीमान् भोजन करें ॥ २७ ॥

They approached him and said with humility with hands folded, "Lord, this is our principle that we take food after you have taken it. Please begin yourself. (27)

पद्य—एंदिन क्रमविंदु वेडि नीवेल्ल ना । वंदुद केळि नीवेंदु ॥
ओंदागि पँतियोळुणवेकु वन्निरौ । एंदु करेदन बलेयर ॥ २८ ॥

अर्थ—राजा भरत ने कहा कि किस दिन से यह क्रम है, आज तो यह क्रम नहीं चाहिए । इतना मेरा कहना तुम लोग मानों, क्योंकि हम सबको एकत्रित रूप से एक पंक्ति में ही बैठकर



भरत महाराज को उस दिन मुनिका आहार होने के कारण भोजन के लिये ज्यादा समय होगया था इस कारण राजा भरत अपनी सभी रानियों को एक साथ बैठकर भोजन करने के लिये कह रहे हैं, तो रानियां हाथ जोड़कर कहती हैं कि हे नाथ ! आपके भोजन करने के बाद हमको भोजन करने का नियम है इसीलिये आप पहिले भोजन करें।

यह चित्र सौभाग्यवती सत्यवती देवी धर्मपत्नी ला० कपूरचन्द जी जैन, सुपुत्र ला० कन्हैयालाल जी के द्वारा, छपा।

भोजन करना चाहिए इसलिए तुम सभी आओ। इस प्रकार से अपनी स्त्रियों को प्रेमपूर्वक बुला रहे हैं ॥ २८ ॥

Raja Bharat asked them, "Since when are you observing this principle please. To-day it must stop and we must all take food together. Please come". He began to call the queens in this manner. *(28)*

पद्य—ओव्वर मोगव नोव्वरु नोडि तम्मोळु । सिव्विदि गोंडु चिंतिपरु ॥
ओव्वर पेरेगति योव्वरिगिरलदो । व्वोव्व रिंतांडिदराग ॥ २६ ॥

अर्थ—उस समय वे रानियां आपस में एक दूसरे के मुंह की ओर देखते हुए मन में विचार करने लगीं और बात करते करते विचार मग्न होगयीं ॥ २९ ॥

The queens began to look at each other's face and dropped into silence. *(29)*

पद्य—अक्का स्वामीय नुडिय नाविंदोम्मे । मिकरु दोष विल्लेन्न ॥
चिक्कळ नुडिगेनु मतु वर्वेदळु । तक्कओर्व ळिगोर्वळरिल ॥ ३० ॥

अर्थ—एक रानी कहती है बहिन ! पतिराज हमें प्रेम से बुला रहे हैं तो जाने में क्या दोष है ? नहीं। क्योंकि स्वयम् हमको वहां जाकर बैठने से दोष होगा। इसबात को सुनकर दूसरी रानी कहने लगी ॥ ३० ॥

One of them said, "Sister, I do not see any harm, since we are only carrying out the orders of our husband". *(30)*

पद्य—स्वामि पालिसुवुदिल्लवे मुनि भुक्तिय । नेमवनक्का नावेम्मा ॥
नेमव बिडुवुदु मतवल्ल वेंदोव्व । कोमते नुडिदळोर्वळिगे ॥ ३१ ॥
पुरुषगणव निच्चु शेषान्नवनुव । तरुणि यवळे स्वर्ग सरणि ॥
सरि पतियोळगुंब वाले तरुणि काड । वेरणि येंदोर्वळाडिदळु ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे पतिदेव का मुनि महाराजको आहार देने के पश्चात् भोजन करने का नियम है, उसीप्रकार हमारा भी पतिदेवके भोजनोपरान्त ही भोजन करने का नियमहै। तब नियम भङ्ग करना हमारे लिये ठीक नहीं है। ऐसा एक रानी ने कहा:— ॥ ३१ ॥

अर्थ—क्योंकि लोकाचार भी यही बतलाता है कि पुरुष को भोजन परोस ने के

पश्चात् शेषान्न को खाने वाली स्त्री स्वर्ग गामिनी होती है और पति के साथ खाने वाली स्त्री जैसे मैदान में गायके गोबरसे सूखा हुआ कंडा होता है उसी प्रकार उसकी गति समझनी चाहिये ॥३२॥

On this the other said, "Just as our husband has a vow to take food after the saints have taken so we have a vow to take food only after our husband has taken it, because you know that it is a popular saying that the wife who takes food after her husband has taken goes to heavens in the next birth, but not so the one who takes food along with her husband". *(31-32)*

पद्य—तानु वेरतु कोंडु पतिय पंतियोळुँब । ळा नारि दुरुळें तन्नरस ॥
तानें करेदुंडरेनु मरोवि । मानिनि किवियोळाडिदळु ॥ ३३ ॥

अर्थ—हां ! यह बात तो ठीक है परन्तु यदि कोई स्त्री उद्दण्डता से पति के साथ अहंकार वश भोजन करने विना बुलाये वैठ जाती है, तो वह दुष्टा कहलाती है, हां ! यदि पति ही प्रेम से बुलाकर अपने साथ भोजन कराले तो इसमें क्या दोष है । ऐसी दूसरी रानी ने उस रानी के कान में कहाः— ॥ ३३ ॥

"But", pointed out the other, "If any woman sits with her husband to take food out of sheer audacity she is called shameless, but not the one who does so on the invitation by her servant". *(33)*

पद्य—तंगि स्वामिगे वेळे मीरिदंतागिये । हेंगळ मेलर्ति तनगे ॥
हेंगळु केळ्वदिल्लेंतु टेंदिर्वरु । हेंगळेकांत वाडिदरु ॥ ३४ ॥

अर्थ—देखो वहन ! आज पति को कितना समय होगया, स्त्रियों के प्रेम के कारण भोजन करने में वहुत विलम्ब होगया, स्त्रियों की तुच्छ वुद्धि होने के कारण वह अपने "हठ" को नहीं छोड़ती, ऐसा एकांत में तीसरी रानी ने एक रानी से कहाः— ॥ ३४ ॥

The third whispered into her ears, "Look sister, it is getting very late we are depriving our husband of timely food. This is the habit of us, foolish women, to be obdurate in everything". *(34)*

पद्य—एंदिनँतोलग गोट्टु तुडिदु होत्तु । संदरु सळहुदेम्मरस ॥
निंदेप्पु होगु बोधिसुवा निवरनेंदु । नोंद ळोर्वळु मनसि नोळु ॥ ३५ ॥

अर्थ—एक रानी मनमें सोच रही है कि "देखो" जव राजा भरत दरवार में वैठते हैं तव

उनका किसी के प्रति एक शब्द भी सुनना अमूल्य समझा जाता है, और दुर्लभ सा हो जाता है। देखो आज हमारे पति देव हमारे लिये कितने वचन व्यय कर रहे हैं, यह भी हमारा सौभाग्य है ॥ ३५ ॥

One of the queens said, "It was difficult to hear the king's voice when he was in the court, even a word from his mouth was invaluable. How lucky we are that we can hear the voice of our husband. Lo, how many words he has wasted on us". *(35)*

पद्य—पतिगुत्तरव कोडवारदु कैकोंड । व्रतव कैडसि वारदिद्के ॥
गतियावुदतिवेळे याग्तेंदु केलवरु । मतिवंतेयरु चिंतिसिदरु ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसके बाद कहीं रानियां ऐसा विचार करने लगीं कि ग्रहण किये हुये नियमों को भी न त्यागें और पति को उत्तर भी न दें, क्योंकि यदि व्रत को छोड़ दें तो क्या मालूम कि कौन सी गति का हमें बन्ध हो और यदि उत्तर नहीं देती हैं तो इसका क्या परिणाम होगा। ऐसा कहते हुए कई बुद्धि मती राज स्त्रियां चिंता ग्रस्त हो गई ॥ ३६ ॥

The queens were now faced with a serious problem and anxiety over took them. They did not know what to do, whether to break the vow they had taken or obey the commond of their husband and take food with him. *(36)*

पद्य—एकांत केलरोळु योचने केलरोळु । मूकते केलरोळोंदेरडु ॥
वाकुकेलरोळिरे मनदोळगरिदा । भूकांत नुडिदनिंतेंदु ॥ ३७ ॥
बन्निरौ निमगे व्रतव कोट्ट गुरुवारु । नन्नकेळ्दे व्रतउंटे ॥
नन्न केळदे कोंडुरुरे केळिरदकेनु । नन्नाने सत्यवो सटेयो ॥ ३८ ॥

अर्थ—कई रनियां एकांत में, कई रानियां विचार में, कई रानियां कुछ आपस में बोल चाल कर रही हैं। तब राजा भरत ने यह सब वातावरण को देखते हुये कहा किः— ॥ ३७ ॥

अर्थ—हे रानियों आओ ! तुमको व्रत का नियम तथा विधान किसने दिया है। क्यों तुमने मुझसे बिना पूछे ही व्रत लिया है। अगर तुम कहो कि हां ! महाराज से पूँछकर व्रत लियाहै, तो तुम मेरी सौगन्ध खाकर सत्य-सत्य कहो क्या यह सत्य है ? ॥ ३८ ॥

The queens began to discuss the problem in groups. On seeing this, Raja Bharat said, "Please let me know who asked you to take this vow. Did you ask me ? Please speak the truth by my name." *(37-38)*

पद्य—गुरु साक्षि देव साक्षिक घागि नेमव । धरिसितिल्लरस निन्नाणे ॥
सरकोंदेल्लेंदु दिन नडिसिदेवदु । वरुतिदु देमगर्तियागि ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे पतिदेव ! हम आपकी सौगन्ध खाकर कहती हैं, कि देव साक्षी, गुरु साक्षी, हमने व्रत नहीं लिया है क्योंकि १०-१५ दिन व एक महीने से दूसरों को व्रत करते देखकर अपने अपने मन से करती आ रही हैं ॥ ३९ ॥

"We shall tell you the truth. This vow has not been administered with your consent. We have merely adopted the rules by the example of others since a fortnight or so". (39)

पद्य—आगले गुरु कोडदरे मानलदकेनु । श्री गुरुविन्नोव्व नुंडु ॥
तूगि निम्मात्म साक्षे योळेनु व्रतवेंदु । योगेसिदरे सतियरिरा ॥ ४० ॥

अर्थ—तब तो कोई हानि नहीं है, यदि तुम्हारा अपना ही आत्म गुरु साक्षी है तो फिर व्रत व्रत क्यों रट रही है, तुम भोजन के लिये शीघ्र आओ ॥ ४० ॥

"Then where is the trouble", said Raja Bharat, "come and sit down with me atonce and take food". (40)

पद्य—सतियरु नावेनु बल्लेवु हंस प । द्धतिय देवरे बल्लिरदनु ॥
पतिय शेषान्न लेसेंदु नडिसिदेवु । व्रतव पालिसुवरंददाळ्दु ॥ ४१ ॥

अर्थ—हे देव ! हम स्त्रियां हंस पद्धति को क्या जानें, इसको तो आप ही जानें क्योंकि, पति का शेषान्न खाना ही श्रेष्ठ है, ऐसा ही मनो भाव रखकर हम लोग कुछ दिनों से नियम पालन करती आ रही हैं ॥ ४१ ॥

"O Lord", said the queens, "we know very little about spiritual matters, and have been following the worldly practice. We thought it is but proper to take food after the husband has taken it and this we have been following for some days past". (41)

पद्य—गुरु कोट्टुदिल्ल नीवादरु व्रतवेंदु । स्मरिसि तिल्लर्तियोळाद ॥
परगति गेतके व्रतव्रतवेंदु जो । करसि कोंविरे बल्लिरेंदा ॥ ४२ ॥

अर्थ—राजा भरत ने कहा, यदि देव, गुरु साक्षी से व्रत नहीं लिया है तो फिर तुम व्रत व्रत

ऐसा मन में कहते हुये क्यों इतनी चिन्ता ग्रस्त हो रही हो, एवम् विचार में पड़ी हुई हो, आओ ! ॥ ४२ ॥

"Well", said the king, "If you have not taken the vow under the instructions of a preceptor, then why are you worrying about it and crying after the word vow". *(42)*

पद्य—नन्नर्ति गागि निम्मय व्रतशील व । गिछन्नव माडुव नल्ल ॥
नन्नय्य नडि दळिरुगळाणे दोष वि । ल्लेन्नेल्ल बन्नि नीवेंदा ॥ ४३ ॥

अर्थ—मेरे भाव आप लोगों के शील व व्रत को भङ्ग करने वाले नहीं हैं क्योंकि मैं अपने पिता श्री आदिनाथ भगवान जी के चरणों की साक्षी देकर कहता हूं कि इसमें कोई दोष नहीं है , व्रत भङ्ग नहीं होगा इसलिये तुम आओ ॥ ४३ ॥

"I have absolutely no intention to break your vow and I can tell you by the name of my respected father, Lord Adinath, that there is nothing wrong in taking food with me". *(43)*

पद्य—तरुणि गळिर बन्नि तपसिगळग्रग । एयर पानियामृतमुंबा ॥
वरलोल्ल देम्म नेतके नोविसु विरि नि । ष्करुणियरिर बन्निरेंदा ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे तरुणियों ! आओ सब मुनियों के अग्रगण्य तपस्वियों के पाणिपुट (अञ्जलि) में देकर बचे हुए अन्न को खाकर सुखी न होते हुये तुम लोग बड़-बड़ाकर मेरी आत्मा को क्यों कष्ट दे रही हो । क्या मैं तुमको करुणी कहूं, तरुणी कहूं या निश्करुणी कहुँ, आओ विलम्ब मत करो ॥ ४४ ॥

"Come on my blossoms, obtain the bliss by taking food from the stock left after the gift of food to the most respected of the saints. Why are you teasing me ? *I wonder whether I should call you merciful, youthful,* or merciless. Please do not waste any time". *(44)*

पद्य—गंडन नुडिगेळ्दर हुदेंद रोडवट्ट । गंड पेळ्दंते केळिदरु ॥
पेंडिरु केळ्वुदेनवन वाक्यवनु प । ट्खंडदोळारु मीरुवरु ॥ ४५ ॥

अर्थ—तब सब रानियों ने पति की बात मान कर जैसा पति कह रहे हैं, उसी प्रकार स्वीकार किया । क्योंकि, राजा भरत की बात को षट्खण्ड पृथ्वी में कोई उलंघन नहीं कर सकता, फिर स्त्रियां कैसे उल्लंघन कर सकती हैं ॥ ४५ ॥

All the queens accepted the advice of their husband and did exactly what he said. How could they act contrary to his orders, when no one in the world could dare to disobey him. *(45)*

पद्य—हॊंगिडि युद्कव तन्न विडॆदॆत्ति । हॆंगळ करॆदु कैविडिदु ॥
अंगाल तॊळॆदॊळ गैतन्निरॆंदीव । नंगजरूप नतियॊळु ॥ ४६ ॥

अर्थ—तब राजा भरत ने जल से पूर्ण स्वर्ण कलश स्वयं अपने हाथों से उठाकर स्त्रियों को बुलाकर उनके हाथ में देते हुए और हाथ पांव प्रक्षालन कर "भोजन के निमित्त भीतर चलो" इस प्रकार से प्रेम पूर्वक कामदेव के समान महाराज भरत ने कहाः— ॥ ४६ ॥

Then Raja Bharat took a golden jar full of water with his own hands, and after washing his feet made it over to the queens telling them to accompany him for taking food. (46)

पद्य—मडदि यॊर्वळिगॆ गिंडिय तन्न कैमुट्टि । कॊडुवाग जगुळ्ळिता गिंडि ॥
ऒडनॊर्व रागळॆ जिनसिद्ध सिद्ध यॆं । दॆडॆयॊळांतळ्राय मॆच्चॆ ॥ ४७ ॥

अर्थ—इतने में ही वहां एक विनोद पूर्ण घटना हुई कि, जिस समय भरत जी स्वर्ण कलश को अपने हाथ से जल्दी में एक रानी को दे रहे थे उस समय कलश का जरा सा धक्का भरत जी को लग गया परन्तु कोई चोट नहीं आई। केवल स्पर्श मात्र हुआ था। उस रानी से भरत जी विशेष प्रसन्न थे। तब रानी जिन, जिना, सिद्ध सिद्ध हा! आपको चोट लग गई, क्या? यह कह कर दुःख प्रदर्शित करने लगी ॥ ४७ ॥

Meanwhile a funny incident occurred. When Bharat was making over the jar to one of the queens in haste, it received a little push from the queen and although Raja was not hurt but received a little knock. She was one of his favourties and she expressed her regret at once saying, "My God! you have been hurt". *(47)*

पद्य—बाडितवळ मोग बळलितवल नोट । नोडवळधर बारिदुदु ॥
वॆडवॆंदरॆ कॆळिरकट नीवॆ जोलि । माडिदिरॆन्नळि तप्पॆ ॥ ४८ ॥

अर्थ—रानी का मुख कमल मलिन हो गया, दृष्टि मलिन होगई, ओंठ सूख गये, आंखों से आंसू टपकने लगे, और कहने लगी कि मना करने पर भी आप नहीं मानते, आप ही अनिष्ट करतेहैं, अब आपको लग गया इसमें हमारा क्या दोष है ॥ ४८ ॥

With dejected looks, tearful eyes, and quivering lips she said, "Well dear, we entreated you not to take the jar in your own hands, but you would not listen. Now I do not know what to do. You have been hurt". (48)

पद्य—ई के कंभव नोम्मि निंदळव्यय्यो नो । डाके गोडेयनोरगिदलु ॥
हा कष्ट भरतन भाग्य वेतरदेंब । ना कांतेयर चित्त करगे ॥ ४६ ॥

अर्थ—तब एक स्त्री ने खम्भे का सहारा, और दूसरी ने दीवार का सहारा, लिया और एक स्त्री नीचे देखती हुई कहने लगी कि हा ! कितना कष्ट, कैसा भाग्य, क्योंकि उनको (राजा को) चोट लग गई ऐसा मन में दुःख करते हुये सब का मन दुखित होगया ॥ ४९ ॥

All queens felt very much upset. One propped herself against a post. another supported herself herself against the wall, the third looking towards the ground said, How unfortunate that our husband had been injured". (49)

पद्य—नलवेरि नगुत देवर वाक्यवेल्लवु । सलेसत्यविवु सत्यवल्ल ॥
निलुवाग ळोम्मे नेम्मिदरेलु नम्मास्य । कलेगुंदितेयेंबरोडने ॥ ५० ॥

अर्थ—राजा भरत यह सब लीला बैठे २ देखते हुये कहने लगे और उनको हँसी आई, कहने लगे, हां कष्ट है, ओहो भरत का कैसा भाग्य है ! तब सब स्त्रियां कहने लगीं कि आपको सब बातों में हँसी सूझती है और हमें दुःख होता है । इस प्रकार के वचनों से स्त्रियों का चित्त किंचित पिघलने लगा और इस नीरस प्रसङ्ग को सरस रूप देने का प्रयत्न करने लगीं ॥ ५० ॥

Raja Bharat was watching all the fun and began to laugh. He said, "Oh yes, I am having a very severe pain indeed, what a misfortune".

The wives then said, "You always take everything lightly, when we are so serious and in worry." But Raja's light-heartedness was catching and the queen tried to change the subject to a pleasenter one. (50)

पद्य—हुसिदवरिगे शिचे माडुवरसुगळे । हुसिदरेनेन वहुदेंदु ॥
हुसिनगे नगुत गंडन कूडे नुडिदरा । हुसिन इविन सोवगेयरु ॥ ५१ ॥

अर्थ—वे हँसती हुई आगे आकर बोलीं, प्राणनाथ ! आप जो बातें कह रहे हैं, वह पूर्ण सत्य है, यदि हम जरा सहारा लेकर खड़ी होगई होतीं तो क्या हमारे मुख की कांति चली जाती ? आप इतनी चिंता क्यों कर रहे हैं । हम लोगों ने कुछ समय तक विनोद किया इसमें कोई चिन्ता

की बात नहीं है। स्वामिन्! अपराधियों को दण्ड देने वाले राजा ही अपराध करें तो फिर क्या कहा जाय। इस प्रकार स्त्रियों ने हँसते हुये कहा, एवम् भरत जी के मन को प्रसन्न करने लगीं ॥ ५१ ॥

They came smiling and said, "Lord of our heart, you are perfectly correct. Do not worry for us, we were all Joking. Who can punish the judge if he himself happens to be the culprit". *(51)*

पद्य—तलेय तडहुवनु गल्लव पिडिदोग्य । नलगुत नगुत नोडुवनु ॥
वळलिदिरेल्लरु होत्ताग्तु बन्नि रें । दोळगृह कोडनेनडेदनु ॥ ५२ ॥

अर्थ—राजा भरत हँसते हुये प्रेम से देखने लगे, और रानियों के मस्तक पर हाथ फेरने लगे, एवम् कहने लगे कि ओ हो, तुमको बड़ा दुःख हुआ। देखो तुम्हारा मुख कितना शुष्क होगया, होंठ सूख गये, अब विनोद बन्द करो, देर होगई, "अब चलो" ऐसा कहकर सबको भोजनालय में ले जा रहे हैं ॥ ५२ ॥

Raja Bharat looked smilingly at the queens. He caressed some of them and said, "Please stop this fun, you have suffered enough worry, which is depicted on your face". Thus saying he took them to the dinning place. *(52)*

पद्य—मंगळमृदुत रासनदल्लि चौक सु । धांग बागिरे नृप कुळिता ॥
जंगम लतेगंददि बंदु कुळितरा । हेंगळेल्लरु पंतियागि ॥ ५३ ॥
कांतेयरेल्ल सालागि कुळ्ळिरलु भू । कांतनवर नडुनडुवे ॥
एँतेसेदनों लतेगळ पंतियोळगे व । संत राजेंद्र निप्पंते ॥ ५४ ॥
स्त्रीयरु तन्नेड बलदल्लि सालागि । योग्यार दिंद कुळ्ळिरलु ॥
रायनिद्दनु रत्नहारद नडुवन । नायक रत्नदंददोळु ॥ ५५ ॥

अर्थ—मंगलासन भरतेश्वर के लिये पहले से ही निश्चित था। उस पर राजा भरत जाकर बैठ गये। दाहिने तथा बायें भाग में कोमल लताओं की तरह सब स्त्रियाँ बैठ गईं, उन रानियों के मध्य में उपस्थित राजा भरत इस प्रकार सोहते थे, कि मानो वसन्त ऋतु में अंकुरित नवपल्लव युत लताओं के बीच में वसन्त राज ही आकर बैठ गये हैं ॥ ५३-५४ ॥

अर्थ—जिस समय राजा भरत जी के दोनों भाग में गौरव पूर्ण भाव से रानियां बैठी थीं, उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि मानो रत्नहार के बीच में रत्न शिरोमणि ही बिठलाया गया हो, ठीक इसी प्रकार स्त्री रत्नों के बीच में राजा भरत रत्न नायक ही मालूम पड़ते थे ॥ ५५ ॥

Sun rays were falling on the golden utensils placed of in front of Raja Bharat which flashed the reflection back. It was a lovely spectacle, giving the appearance of golden lotus flower with numerous golden petals. *(62)*

पद्य—बट्ट हों बरिवाण दँचिनोळगे साळु । बट्टलकेलवुवट्टलोळु ॥
इट्ट माणिकद सोटिगे गळेसेये तिट्ट । बटडुळु तिंतिणि योळोप्पिदनु ॥ ६३ ॥

अर्थ—इन स्वर्ण थालों में स्वर्ण की कटोरियां क्रमशः रक्खी थीं, और उनमें एक २ माणिक्य चम्मच पड़ी हुई थी। इनकी चमक का सौन्दर्य इतना अधिक था कि मानो तारागणों की रश्मियां चमक रही हैं ॥ ६३ ॥

Golden cups were systematically arranged in the golden plates and a golden spoon was placed in each cup. The glare from these utensils gave one the impression of twinkling of the stars. *(63)*

पद्य—ओलिदुंब बट्टलु हरिवानदोळगे कै । यळुवुव बट्टलु होरगे ॥
केलदल्लि करतळदंट कीळुव दारे । सलेसंद गिणिण लोप्पिदुदु ॥ ६४ ॥

अर्थ—खाद्य सामग्रियों से भरी हुई कटोरियां थाली में सुसज्जित रक्खी थीं किन्तु खाद्य सामग्री को एकत्रित कर ग्रास बनाने के लिये थाली से बाहर एक कटोरी अलग रक्खी थी। तथा भोजन निकालने के लिये रत्न मयी चम्मच भी प्रत्येक भोजन कटोरियों के साथ थी ॥ ६४ ॥

Cups filled with edibles were arranged in the plates. Outside each plate one more cup was kept so that if any thing was to be served it may be placed in that. A big spoon was also kept for serving food. *(64)*

पद्य—तन्नेडवल दोळगिदिर सालिनोळिप्प । चेन्नेयरेल्ल तन्नते ॥
चिन्नाण बेडगु चमत्कार बेसेयळु । सन्नद्ध बडेदिद्दराग ॥ ६५ ॥

अर्थ—जिस सौन्दर्य और गौरव पूर्ण कान्ति, द्युति एवं शोभा के साथ श्री भरतेशजी बैठे थे तदनुकूल ही उनकी रानियां भी बैठीं थीं। इस सहभोज में बैठने का आश्चर्य जनक चमत्कार इतना अधिक था, कि इसका वर्णन लेखनी एवम् जिह्वा नहीं कर सकती है ॥ ६५ ॥

Raja Bharat and his queens were sitting in an imposing manner. It is difficult to give its description in words. *(65)*

पद्य—आरोगणेगे कुळिता रायनोत्तिन । नारियरे सेदरेंतेनळु ॥
सारामृत व नुंत्र चंद्रन पंतिय । तारांगनेयरेंत्रंते ॥ ६६ ॥

अर्थ—राजा भरतेश के साथ भोजन करने वाली स्त्रियों का इतना आकर्षक रूप था कि जैसे चन्द्र मण्डल की शोभा तारागण के सहयोग से होती है ॥ ६६ ॥

Raja Bharat with his beautiful queens sitting round him appeared like moon surrounded by stars. *(66)*

पद्य—देवान्न व नुणकुळित राजेन्द्रन । देवियरे सेदरेंतेनळु ॥
देवामृत व नुँत्र मरेंद्र नोत्तिन । देवांगणेयरेंत्रंते ॥ ६७ ॥

अर्थ—सम्राट् की शोभा की उपमा क्या थी, " मानों सुरामृत का पान करने के लिये देवगण देवांगनाओं के साथ बैठे हों ! ऐसा प्रतीत होता था ॥ ६७ ॥

I do not know where to find a parallel for this sight. Perhaps the nearest would be that Devendra was sitting with goddesses to drink nectar. *(67)*

पद्य—मोहन कारण पंतियूटके कुळि । ता हेंगळे सेदरेंतेनळु ॥
ऊहिसि कामदेवन पंतियूटद । मोहन देवियरंते ॥ ६८ ॥

अर्थ—श्री भरतेश जी के साथ भोजन करने वाली रानियों का सौन्दर्य इतना आकर्षक था कि जैसे कामदेव के साथ (मोहनी देवी) रति शोभित होती है ॥ ६८ ॥

The beauty of the queens was so attractive that they looked like Rati the wife of cupid. *(68)*

पद्य—तंदेडे .माडुतिद्दरु वनितेयरोल । विंद दिव्यान्न पानगळा ॥
अंदुगेगळे गेज्जेगळ दनि भल भलि । रेंदने पंति पंतियोळु ॥ ६९ ॥

अर्थ—भोजन वितरण करने वाली अथवा (परोसने) परिवेषण करने वाली रानियों के चलने फिरने से उस समय उनके पैरों की पैजनियों या भांवर छुन छुन शब्दों के साथ बज रहीं थीं ॥ ६९ ॥

Some of the queens were busy in serving food and the pleasant tinkling sound of their ornaments attracted attention. *(69)*

Raja Bharat took the allotted seat. The queens sat on his right and left like boughs to a tree. The sight was lovely. It looked as if King Spring was sitting surrounded by boughs and spring leaves. He was like a big diamond in the necklace of pearls. *(53-55)*

पद्य—हलवरु रायन पंतियोळ्कूटके । कुळितरु मत्तेरळि ॥
केलवरा रोगणेगेडे माडलनुवागि । सुळिदाडु तिदर्रतियोळु ॥ ५६ ॥

अर्थ—उन रानियों में से कई एक रानियाँ राजा के साथ बैठ गईं और कई एक रानियाँ भोजन परिवेषण के निमित्त इधर उधर घूमने लगीं ॥ ५६ ॥

Some of the queens sat down near their husband, while some began to make arrangement for serving the food. *(56)*

पद्य—कांचनदिंद रत्नगाळिंद बेळ्ळियिं । संचिसि दुपकणगळा ॥
चंचलाक्षियरांतु सुळिदरागत्तित्त । मिंचिन लतेगळेंवते ॥ ५७ ॥

अर्थ—स्वर्ण, चांदी, रत्न आदि (आभूषणों से) एवम् उपकरणों से युक्त चंचलाक्षी स्त्रियां भोजनालय में भ्रमण करती हुई बिजली के समान चमक रहीं थीं ॥ ५७ ॥

The beautiful ladies with sparkling gold, silver, and diamond ornaments adorning their persons were flashing their beauty like lightening through the kitchen. *(57)*

पद्य—तळिगे तंबुगे गिंडि हरिवान पडिग व । ट्टलु मोदलागि भोजन के ॥
सळवुपकरणवनल्लल्लिगेल्लके । चळ चळननुगोळिसिदरु ॥ ५८ ॥

अर्थ—छोटे कटोरे, कलश रकावियां एवम् स्वर्णमयी थालियां, गिलास व कई उपकरणों (भोजन पात्रों) को इधर उधर पहुँचाते समय शब्द करते हुये झुमझुमयी ध्वनि हो रही थी ॥५८॥

Sweet tinkling sound could be heard as different vessels, small cups, goblets, golden dishes, jars-glasses were being arranged for food. *(58)*

पद्य—दोड्ड गुणव नोंदनेनेंबे पतिय मै । योड्डि नोळणकूळिताग ॥
अड्डणिगेय नोळ्परव रेनु लोकद । हेड्डेंगळ्हेळुव.ग ॥ ५९ ॥

अर्थ—जिस समय राजा भरत भोजन के लिये बैठे थे, उस समय सामने भोजन की थाली

रखने के लिये कुछ ऊँची चौकी रक्खी थी परन्तु सभी स्त्रियों की थालियों के नीचे उतनी ऊँची चौकियां नहीं थी, क्योंकि वह स्त्रियाँ मूर्ख न होती हुई बहुत ही सुशील एवम् कुशल थीं। अतः उन्होंने अपना आसन पति के आसन से नीचे ही रखना उचित समझा आज कल की भांति वे स्त्रियां विवेक शून्य एवं धर्म विमुखा नहीं थीं ॥ ५९ ॥

The table on which Raja Bharat's food was served was a bit higher than those of the queens. The queens were intelligent and wise and considered it proper to keep their position a little lower than that of their husband, very unlike their sisters of the moder times. *(59)*

पद्य—बेळ्ळिगिदङ्गिणिगे वट्टलिगिडि हरिवाण। गळ रत्न चिन्न माटगळा ॥
ओळगगिणि तंदुतंदिड्ड तिर्दररसगे। बेळ्ग होंचाडुकुवंददोळु ॥ ६० ॥

अर्थ—राजा भरतेश के भोजनासन के सम्मुख चांदी की चौकी पर रत्न जटित स्वर्णमयी थाली, कटोरियां और भी भोजन के अनेक उपकरण (वर्तन) ला लाकर रख रही थीं, जिनकी चमकती हुई द्युति सूर्य की चमचमाहट को पराजित कर रही थीं ॥ ६० ॥

They were placing on the silver table in front of the Raja. bejewelled plates, cups goblets etc. whose glare was matching the sun light. *(60)*

पद्य—एडदभागद गिंडि बलद भागद होन्न। पडिग मुंदङ्गिणिगे योळु ॥
एडगोंड हरिवाण वेसेय कुळ्ळितोंदु। कडेकट्टिन्नेनेंबनवना ॥ ६१ ॥

अर्थ—दाहिने भाग में जल प्रपूरित कलश सामने स्वर्ण की स्थाली रक्खी गई, तब उस समय गौरव पूर्ण राजा भरत जी भोजनार्थ बैठे। इन अनेक वस्तुओं की शोभा एवं भरतेश जी के गौरव का कथन मैं क्या कहूँ! ॥ ६१ ॥

What a beautiful sight it was. I can hardly find words to express it. A golden goblet full of water was placed on the right of the king along with numerous other beautiful articles. *(61)*

पद्य—लावण्य धगधगिसुव नरपतिय मुं। दोविट्ट होंबरिवाण ॥
भाविस लोप्पिसु रविय सन्निधिय हों। दावरेयंते चेल्विनोळु ॥ ६२ ॥

अर्थ—श्री भरतेश जी के सम्मुख स्वर्णमय जो भी उपकरण (वर्तन) रक्खे थे, उन पर सूर्य देव की किरणों का प्रकाश पड़ रहा था। अतः वे उपकरण ऐसे मालूम होते थे कि, मानो स्वर्ण मय सहस्रदल कमल ही रक्खे हैं ॥ ६२ ॥

पद्य—मोले गट्टु मेलेलेव केशद गंटु। सेळनडु सुत्तिद सेरगु ॥
वलुगय्य होन्न सट्टुग वामकरद म। गल भाड वेसेये सुळिदरु ॥ ७० ॥

अर्थ—जैसे युद्ध में योद्धा गण कमर कसकर वस्त्र और कवच आदि से सन्नद्ध होकर तैयार रहते हैं। ठीक उसी भाँति इन रानियों ने कंचुकी (केचली) को खूब कस लिया तथा धोती आदि को भी कमर के चारों ओर पेटी की भांति कस लिया था; तथा शिर के वाल वेणी को भी गूँथ लिया था, ताकि भोजन (परोसने) परिवेषण में कोई वस्त्र के उड़ने से या स्खलित हो जाने से उनको लज्जित न होना पड़े। उन रानियों के दाहिने हाथ में भोजन परोसने के लिये रत्नमय (चम्मच) दर्वी भी थे ॥ ७० ॥

The queens had arranged their dresses properly, tied their saries, wrapped the upper part and tied it round the wrist. The hair on the head was properly arranged. The idea was that the services of food could be done with ease. They could be compared to the warriors who prepare themselves for battle after proper equipment. (70)

पद्य—तोट्ट रवके जडे कसेदंद दोळ्ळि। विट्ट सिक्किदमेलु सेरगु ॥
वट्ट वेंगळु केलवरु सुळिदरु होन्न। चट्टि सुट्टुग गळनांतु ॥ ७१ ॥

अर्थ—रानियों की चोटियों में जो क्षुद्र घंटिकायें अर्थात घुंघुरू गुंथे हुये थे और वे चोटियां काले नाग की भाँति लह लहाती हुई लटक रही थी उनकी पहनी हुई साड़ियों के सौन्दर्य से ऐसा प्रतीत होता था कि मानो केंचुली में काला नाग हो। इस सौन्दर्य से वे रानियां स्वर्ण की गुड़ियों के समान ही ज्ञात होती थीं ॥ ७१ ॥

The arranged tresses thrown on the back gave one an impression of serpents when seen through the fine Sarees. The queens appered beautiful like golden dolls. (71)

पद्य—सुरलोक दमृतव तंदेडे माडुव। सुर सुदतिय रोयेंवंते ॥
चरण दंदुगे झण झणरेने नडेतंदु। भरतेश गुण बडसिदरु ॥ ७२ ॥

अर्थ—इन रानियों का सौन्दर्य इतना आकर्षक था कि मानो स्वर्ग लोक की अप्सरा स्वर्ग मण्डल से देवामृत ला ला कर परोस रही हों एवम् पैरों के झांझन की झन झन शब्दके साथ आती हुई रानियाँ भोजन परोस रही थीं ॥ ७२ ॥

The beauty of the queens was fascinating. It seemed as if fairies had come down from heavens to serve tha nectar. The tinkling sound of their ornaments caught everybody's attention. *(72)*

पद्य—अमृतान्न भोज्यान्न देवान्न दिव्यन्न । अमृतरसायन वेंब ॥
क्रमदपंचान्नव पंचामृत गळ । क्रमवरिदुण्ड वडिसिदरु ॥ ७३ ॥

अर्थ—अमृतान्न, भोजनान्न, (शुद्ध बना हुआ भोजन) देवान्न (स्वर्गीय देवों के भोजन के समान) दिव्यान्न (श्रेष्ठ अन्न) अमृत रसायन आदि इस प्रकार पांच प्रकारके पंचामृतअन्न को क्रम क्रम से ला लाकर परोस रही थीं ॥ ७३ ॥

Five kinds of food were being served. Amrit 'anna', Bhojan 'anna', Dev 'anna', Divya 'anna', and Amrit Rasayan. *(73)*

पद्य—शाक शीकरणेय गाड पोडनेय सु । पाक वोग्गरणे पायसवा ॥
ई केगाकेगे स्वामिगवळि गिवळिगेंदु । जोके विडिदु वडिसिदरु ॥ ७४ ॥
होंगेलसद भाजन दोळिद मृतसा । रंगळ सकल भक्ष्यगळा ॥
तंगिगक्कगे स्वामिगक्काजि गेंदु वे । डंगियरुणवडसिदरु ॥ ७५ ॥
कामधेनुविन पालोळु पाक वाद भि । राम दोळोप्पुवन्नवनु ॥
स्वामिगे स्वामियूळिगद पेंगळिगेंदु । आमोद मिगे वडसिदरु ॥ ७६ ॥

अर्थ—पूड़ी, शाक, आम्ररस, पक्व केला, मसालेदार अन्य शाक एवम् मीठे मीठे भोजन पदार्थ, मालपुआ, लड्डू, खीर, दही वड़ा, आदि हाथ में लेकर वहिन जी थोड़ा सा तो आप लीजिये, श्रीमान् आपको ! इसप्रकार विनय पूर्वक पूँछ पूँछ कर परोस रही थीं ॥ ७४ ॥

अर्थ—स्वर्ण पात्रों में तैयार किये हुये सभी प्रकार के भक्ष्य आहार को अपनी सहयोगिनी रानियों को तथा महाराज को अति विनय एवं नम्रता से पूँछ पूँछ कर परोस रही हैं ॥ ७५ ॥

अर्थ—कोई रानी कामधेनु के दुग्ध में बनाये हुये सुगन्धित अन्न को राजा भरत को और अपनी वहिनों (रानियों) को अति आमोद प्रमोद के साथ परोस रही हैं ॥ ७६ ॥

The queens were serving food of different kinds in a very persuasive manner. They would say, "Please do take this milk preparation, take some sweet meat please, this vegetable is very delicious, taste a little and so on". They were persuading their sister queens and their husband in such sweet manner. *(74-76)*

पद्य—सडगरगोंडु संतसगोंडु सैरणे । येडेगोंडु तावुतम्मोळगे ॥
एडेमाडु तिद्दरु वडवनोंदे सिरि । वडेदु हब्बव माडुव वंते ॥ ७७ ॥

अर्थ--वैभव, सन्तोष और धीरज के साथ बिना किसी असुविधाके धीरे २ परोस रही हैं। यह समारोह ऐसा प्रतीत होता था मानो कि कोई बड़ा पर्व ही है ॥ ७७ ॥

The manner in which food was served was a very systematic one. There was no hurry scurry. The whole thing looked as if some festival was being celebrated in the house. *(77)*

पद्य—इवळु गंडन पंतियोळ्‌ कुळिसुंबुव । ळिवळि गानिक्‌ वळेंवा ॥
सवति मत्सर विल्ल तावेंदरवरेंब । सुविनयमिगे बडसिद्रु ॥ ७८ ॥

अर्थ—परोसने वाली स्त्रियों में इतना महत्व और गौरव था कि उनके हृदय में कहीं भी संकोच एवं क्षुद्र भावनायें नहीं थीं कि, हम दासी कि भांति परस रहीं हैं। बिना किसी ईर्ष्या द्वेष के वड़े सत्कार व विनय के साथ समान भाव से परोस रहीं हैं ॥ ७८ ॥

The ladies, who were serving the food, were very considerate, had charitable disposition, were not narrow minded and were serving food with affection and respect, and without any malice. *(78)*

पद्य—तोत्तिरंद दोळ्ळानु बडिसु वळि वळाएम । नोत्ति नोळ्डति यंद्दोळु ॥
तुत्त निडुवळेंबहुरुडिल्ल दिक्किद । रुत्तम सतियरतिंग्रोळु ॥ ७९ ॥

अर्थ—चक्रवर्ती की छियान्नवे हजार रानियां होने पर भी उनमें किसी प्रकार की ईर्ष्या-कलह व विकृत भावनायें नहीं थीं, आपस में सौतिया डाह नहीं था, और परोसने में किसी के अपमान की भावना भी नहीं थी, अमुक हमसे पहले ही भोजन के लिये बैठ गई है इस प्रकार की निंद व कलुषित भावनायें भी नहीं थीं, क्यों कि सती और उत्तम स्त्रियों के यही लक्षण हैं ॥ ७९ ॥

There were 96000 queens of the king, but none had any malice or jealousy against the others. Those who were serving did not feel it that others were taking food while they were serving. They were above such petty things as these are the signs of good and pious ladies. *(79)*

पद्य—सविव वस्तुव नुंव वस्तुव कुडिव नं । जुव सुरिवमळ्वस्तुगळ ॥
अवनीश गरसि यरिगे बडिसिदरु गौ । रववाग्नु परिपूर्ण वाग्नु ॥ ८० ॥

अर्थ—कोई रानी ने खाद्य, स्वाद्य एवं पेय इत्यादि उत्तम पदार्थों को राजा भरत जी को व रानियों को गौरव व विनय के साथ यथेष्ठ एवं परिपूर्ण परोस दिया ॥ ८० ॥

The queens were serving all kinds of food in a suitable manner to the king and the other queens. *(80)*

पद्य—सार वस्तुगळ तंदगलेल्ल तुंबुवं । तारन्दु बडिसिद मेले ॥
आरति प्रतियेल्ल वेंत्र पेंगळु पति । गारति वेत्तिदरोसेदु ॥ ८१ ॥

अर्थ—समस्त उत्तमोत्तम भोजन परोसने के बाद रति देवी के समान कामदेव भरतेश की नवीन भक्ति के साथ आरती उतारी ॥ ८१ ॥

After all articles of food had been served, the queens offered "arti" to their husband. *(81)*

पद्य—कुसुमांजलि माडि कैमुगि दोडनोंदु । देसेगे सारिदर बलेयरु ॥
नसुनक्का रायना सतियर दोंदु । होसबगे भक्तिय कंडु ॥ ८२ ॥

अर्थ—पुष्पाञ्जलि दी, एवम् हाथ जोड़ने के बादमें सब रानियां हट गईं और थोड़ी दूर बाजू में खड़ी हो गईं, इस नई भक्ति को देखकर भरतेश जी आनन्दित हो हँसने लगे ॥ ८२ ॥

There after they withdrew on either side and stood with their hands folded. Raja Bharat was pleased at their devotion and smiled. *(82)*

पद्य—कडुकु चिम्मुरि वोट्टु यज्ञोपवीत पो । न्नुडिदार दोत्रवेंविष्टु ॥
गडणिसि मैय्य मेलिद्दवु मत्तोंदु । तोडकिल्ल दोडनोप्पवडेदा ॥ ८३ ॥

अर्थ—राजा भरत जिस समय आहार के लिये बैठे थे उस समय उनके शरीर में केवल यज्ञोपवीत, तिलक व कटि मेखला और पहिनी हुई धोती, दुपट्टा इन वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं थी ॥ ८३ ॥

Raja Bharat at this time was only putting on a "dhoti", a wrapper, sacred thread and a waist band *(kardhani)*. *(83)*

पद्य—हस्त प्रक्षालन कैगट्टि मोदलाद । प्रस्तुत क्रियेगळ माडि ॥
विस्तीर्णतलपद मेले बलिदनु प्र । शस्त पल्यंकासनव ॥ ८४ ॥

अर्थ—हस्त प्रक्षालन क्रिया और भी अन्य क्रियाओं को करने के बाद राजा भरत विस्तीर्ण

ऐसे दाहिने पांव को वांयें पांव की जंघा पर भली प्रकार से जमाकर प्रशस्त पल्यकासन से बैठ गये ॥ ८४ ॥

After washing his hands and performing the other usual routine, he placed his right foot on the left thigh and sat firmly in that position. (84)

पद्य—एडद् गुल्फद मेले बलद गुल्फवनिट्टु । तोडे वेडेगेसेये कुळ्ळिदु ॥
एडद् हस्तद मेले बलद हस्तवनु सं। धडिसिट्ट नंप्रिय मेले ॥ ८५ ॥

अर्थ—इस प्रकार पल्यकासन से उन्होंने पांव को जमाकर वाद में वांई हथेली पर दाहिनी हथेली रखकर मुद्रा के साथ वैठ गये ॥ ८५ ॥

Then he placed his right hand and palm on the left hand and sat in a fixed position. (85)

पद्य—शांत भावदोळु कण्मुच्चि नेनहु लो । कांतके नडिसि सिद्धरनु ॥
अंतरंग के तंदु पूजिसि वीळ्कोट्टु । कंनु सन्नेभनु कण्देरदा ॥ ८६ ॥

अर्थ—शान्त भाव पूर्वक अपनी दृष्टि को बन्द कर एवम् मन को लोकांत में पहुँचाकर सिद्ध भगवान को अपने अन्तरङ्ग में लाकर पूजा करने के उपरान्त में कर्म शत्रु को नष्ट करने वाले राजा भरत ने अपनी आंखें खोल दीं ॥ ८६ ॥

He then closed his eyes in a calm manner, and offered worship to Siddh Bhagwan after installing him in his heart through his mind. He then opened his eyes. (86)

गद्य—कंगळिंदन्नवनोडे ज्ञानदोळंत । रंग दोळात्मन नोडि ॥
तुंग भाव दोळान्न पानव हंसना। थंगे समर्पणे गैदा ॥ ८७ ॥

अर्थ—अनन्तर अपने चर्म चक्षु से थाली में परोसे हुये भोजन को देखकर एवम् ज्ञान चक्षु से अन्तरङ्ग में अपनी आत्मा को देखा, श्रेष्ठ भाव से उत्पन्न हुआ ज्ञान मय अमृत को हँसनाथ (अर्थात् अपनी आत्मा) को समर्पण किया ॥ ८७ ॥

He saw the material food with his physical eyes, and by his inner vision his soul and offered the gift of right knowledge to his soul. (87)

पद्य—कनक भृंगारद जलवनगैयोळां । तन घमंत्रंव नोल्दु जपिसि ॥
जनपनींदिद नेल्ल जय जयवेनल्दों। गोने वागिलोळु जयघंटे ॥ ८८ ॥

अर्थ—स्वर्ण कलश में रक्खे हुये जल को स्वयं अपने हाथ में लेकर अघनाशक मन्त्र अर्थात् पापों को नष्ट करने वाले मन्त्र को जपने के पश्चात् राजा भरत भोजन की तैयारी करने लगे, तब जय जय ऐसा शब्द करते हुये द्वार पर जय घण्टा नाद प्रारम्भ हुआ ॥ ८८ ॥

After taking water from the golden jar, he recited the sin-destroying "Mantras" and there after made himself ready to take food. Bells began to ring at that time in the courtyard outside. *(88)*

पद्य—वट्टिनमेलेडगै यूरि वलगैय्य । निट्टनु हरिवान दल्लि ॥
कोट्टनु तनुविगे हंसनाथगे मुन्न । कोट्ट दिव्यान्न पानगळा ॥ ८६ ॥
ज्ञानान्नव नात्म गर्पिसुगिहनन्न । पानव मैगीहुतिहनु ॥
ज्ञानिगळल्लदे भरतेशनेंदेय सँ । धानव वल्लवरारु ॥ ६० ॥

अर्थ—राजा भरत ने बायें हाथ का सहारा अपनी जंघा पर लेते हुये दाहिना हाथ भोजन पात्र में रक्खा और शरीर तथा आत्मा को एक साथ अन्नपान समर्पण करना प्रारंभ किया ॥ ८९ ॥

अर्थ—राजा भरत ने उस समय पुद्गलमय अन्न को शरीर तृप्तिके हेतु एवम् ज्ञानमय अन्न को आत्म तृप्ति के लिये एक साथ समर्पण करना प्रारम्भ किया । इस बात को ज्ञानी राजा भरत के विना हृदय के भाव को अन्य कौन जान सकता है ॥ ९० ॥

He rested his left hand on his thigh, and with his right hand started taking food, for the physical body and simultaneously with his inner vision he offered food of knowledge for his soul. Only the Raja could understand the mystery of it. *(89-90)*

पद्य—भक्ष सुखव मैगे तोरुव नात्मगे । मोक्ष सुखव तोरुतिहनु ॥
मोक्षगामिगळल्ल दवनतँरँग प । रीक्षेय वल्लवरारु ॥ ६१ ॥

अर्थ—अपने मनो भाव से खाने वाली योग्य भक्ष्य वस्तु को शरीर पोषणार्थ तथा आत्मार्थ मोक्ष सुख का उपदेशकर रहे थे । अतः मोक्ष गामी के अन्तरंग को मोक्षगामी के विना अन्य कौन जान सकता है ॥ ९१ ॥

He was pointing out material food to his body and bliss of liberation to his soul who can understand his inner feelings except a person of his own calibre, who is to attain liberation. *(91)*

पद्य—आ सवियन्नव मैगित्तु तनगे स । दासेवे माडेनुतिहनु ॥
आसन्न भव्य रल्लदे नृपनात्म वि । लासव बल्लवरारु ॥ ९२ ॥

अर्थ—उस रुचि कारक अन्न को शरीर सुख के निमित्त दिया करते थे कि तुम सदा आत्मा की सेवा करो, यह भाव आसन्नभव्य के विना राजाभरत की आत्माभिलाषा को दूसरा कौन जान सकता है ॥ ९२ ॥

He was offering the delicious food to his body so that it may help his soul in crossing the ocean of transmigration. Who can realize the inner feelings of Bharat's except one whose liberation from the mundane wandering is near. (92)

पद्य—ओगरुप्प सिहि कहि हुळि हारगळ तेगे । तेगे दीवु तिहनू नालगेगे ॥
इ गव वोधन शक्ति सुखव नात्मगे बगे । बगेदीवु तिहनु भाव दोळु ॥ ९३ ॥

अर्थ—खट्टा, मीठा, नमकीन, कसैला तथा कटु इत्यादि षट्रस आहार को निकाल निकाल कर जिह्वा पर रख रहे थे , और ज्ञान-दर्शन वोध सुख शांति को; मनोभाव में लाकर आत्मा में अर्पण कर रहे थे ॥ ९३ ॥

He was placing food of different tastes, sweet, sour saline, pungent, bitter etc. to his tongue. At the same time he was offering the food of knowledge, conation, bliss and power through his mind to his soul. (93)

पद्य—तंडुलान्नव कणिकान्नव तनुविगे । पिंडपिंडदोळीवुतिहनु ॥
कंडोळगीवुतिहनु हंसनाथग । खंडित वोध पिंडवनु ॥ ९४ ॥

अर्थ—चावल, रोटी, दाल इत्यादि अन्न को पिंडरूप ग्रास वनाकर शरीर के लिये अर्पण कर रहे थे और अखंडित वोध से पिंडरूपी ज्ञानमय अन्न को आत्मा में समर्पण कर रहे थे ॥ ९४ ॥

On the one hand he was offering the morsel of food prepared from rice, wheat etc. to his body, on the other hand he was offering the food of indestructible knowledge to his soul. (94)

पद्य—हरिवान बट्टलुगळिगे बाय्देरेदाग । करतल संधान विहुदु ॥
गुरु हंसनाथगे सिद्ध लोकक्के पोगि । बरुतिहु देदेय संधाना ॥ ९५ ॥

अर्थ—कटोरी व सराव (रकावी) में रक्खे हुये पदार्थों को मिलाने के हेतु उसका साधन

दर्वी (चम्मच) थी वैसे ही गुरु हंस नाथ को सिद्ध लोक में पहुँचाने के निमित्त शुद्धभाव रूपी चम्मच थी ॥ ९५ ॥

With the silver spoon he was taking out food from cups and placing it in his mouth, while with the instrument of pure self absorption he was leberating the soul from the mind and wandering and placing it in the moksha. *(95)*

पद्य—हसिविल्ल दवनोव्व बंधुगळोगि ग्रा । थिसछु दाक्षिण्य कुंदते ॥
असम पुण्योदय सुखवनुदासीन । रसदोळुँडनु मोक्षारसिका ॥ ९६ ॥

अर्थ—जिस प्रकार तृप्तमनुष्य अपने किसी सम्बन्धी-मित्र एवम् बन्धु आदि के प्रार्थना करने से भूख न होने पर भी विवश होकर दो–चार ग्रास उनके घर में उदासीनता से खाता है, उसी प्रकार राजाभरत अपने पुण्योदय को उदासीनता से भोगते हुये मोक्षसाधन में रत रहते थे ॥ ९६ ॥

Like a person who has no appetite, but who on the entreaties of the friend, takes a couple of morsels without any relish in them, Raja Bharat was treating the fruit of his meritorious Karmas, the pleasures of the world, with indifference and was always busy in the attainment of moksha. *(96)*

पद्य—दुष्ट राजन मातनवन राज्य दोळिरु । वष्टु दिवस केळ्वरंते ॥
अष्ट कर्मदोळु तानिदु द नरिदात्म । दृष्टि युंडनु कालवरिदु ॥ ९७ ॥

अर्थ—जैसे दुष्ट राजा के राज्य में रहने वाले सज्जन पुरुषों को जितने दिन उसके राज्य में रहना पड़ता है उतने दिन उसकी बात माननी पड़ती है । उसी प्रकार दुष्ट कर्म रूपी राजा के राज्य में अपनी आत्मा को जितने दिन रहना है उतने दिन अपने को सम्हालते हुये आत्मा की ओर अपनी अन्तर दृष्टि रखते हुये राजा भरत तद्वत् उदासीनता से भोजन कर रहे थे ॥ ९७ ॥

As long as good persons have to remain under the rule of a wicked ruler, they have to carry out his orders perforce. In the same manner Raja Bharat realized that as long as he has to continue under the influence of the karmas he will have to bear their fruits perforce and had thus no feeling of attachment to their good and evil effects. In short he was viewing the fruits of his karmas, good or bad with equanimity. *(97)*

पद्य—गडिय दांडुव नोब्वन तुपिनाळुगळ ता । नोडने मन्निसि पोगुवंते ॥
कडेगात्म सिद्धिय पडेवव नन्नव । कोडुतिद् निंद्रिय गळिगे ॥ ६८ ॥

अर्थ—जैसे घर पर आये हुये अतिथि का सत्कार करके उनको विदा करने के पश्चात् मनुष्य अपने घर में आकर निश्चिंत हो जाता है उसी प्रकार भरत जी उस शरीर को अतिथि समझकर उसे खिलाते हुये वे अपने घर रूप आत्मा में पहुँचाते हुये सुख से रहते थे ॥ ९८ ॥

Like a person who after entertaining his guest and giving him a send off, returns to his house with a feeling of relief. Raja Bharat used to treat his body as if it were a guest and after giving it meals, absorbed himself in his soul, with a feeling of relief. (98)

पद्य—कलसुव बेडगु कैविडि व कुशल जिव्हे । गोलिदु तुनिडु वोंदु जोके ॥
अळुगि सविवदोंदु गंभीरव व नुँव । चेळविके कोरैसु तिहुदु ॥ ६६ ॥

तर्थ—खाने के पदार्थों को मिलाकर ग्रास बनाने का ढंग उसी को उठाकर जिह्वा तक लाने का अपूर्व ढंग एवं उन ग्रासों का प्रथक प्रथक स्वाद लेने का जो ढंग था; इस प्रकार राजा भरत के गम्भीरता पूर्वक भोजन विधि की सुन्दरता का कहाँ तक वर्णन करूँ ॥ ९९ ॥

The manner of mixing different articles of food the method of combining them into a morsel, putting the morsel on tongue and the way of enjoying the taste of each article of the morsel sepocating was so peculiar as to defy description. (99)

पद्य—ओनव नुंवग वडिगडि गोम्मोम्मे । पानव कोंवु दोंदंगा ॥
आनंद विडिदष्टु विश्रामिसुव ठीवि । तानोंदु गमक वागिहुदु ॥ १०० ॥

अर्थ—भोजन करते समय मध्य में पीने योग्य पदार्थ भी पान करलेते थे और उसके साथ साथ किंचित् विश्राम् कर लेने का भी एक ढंग था उस अपूर्व ढंग का भी कहाँ तक वर्णन करूँ ॥ १०० ॥

During the course, he would drink the delicious liquid preparations and then would relax a little. All this was peculiar to him and is difficult to describe it. (100)

त्र गादि ॥
रंजिसितु ॥ १०१ ॥

रखते थे वह वस्तु पलट कर
के भीतर कोई कंकड़ फेंका
जावे तो उसकी डुबुक जैसी ध्वनि निकलती थी, उसके उपरान्त किंचित् विश्रान्ति के अनन्तर पुनः उचित ढंग से जिह्वा पर ग्रास रखते थे इस शोभा का क्या वर्णन किया जाय ॥ १०१ ॥

The manner of eating the morsel was also of special nature. He would put it on his tongue and when he swallowed it a sound like that of a stone dropped in water could be heard. He would then relax a little and again repeat the process. This was all extra ordinary, difficult to describe. (101)

पद्य—अरत नारोगिसुतिद् किकरिणंद् । अरसियरुगळ्नोडिद्नु ॥
करव हिडिदु कोंडु सुम्मने कुळितिद्द । परिगोंडु विस्मय नादा ॥ १०२ ॥

अर्थ—राजाभरत ने भोजन करते करते अपनी रानियों की ओर कुछ तिरछी दृष्टि से (नयन कटाक्ष मारते हुये) देखा, तब उन्हें ज्ञात हुआ कि सब रानियाँ विना भोजन प्रारम्भ किये केवल अपने हाथ पर हाथ रक्खे बैठी हैं अतः उन्हें इससे विस्मय हुआ ॥ १०२ ॥

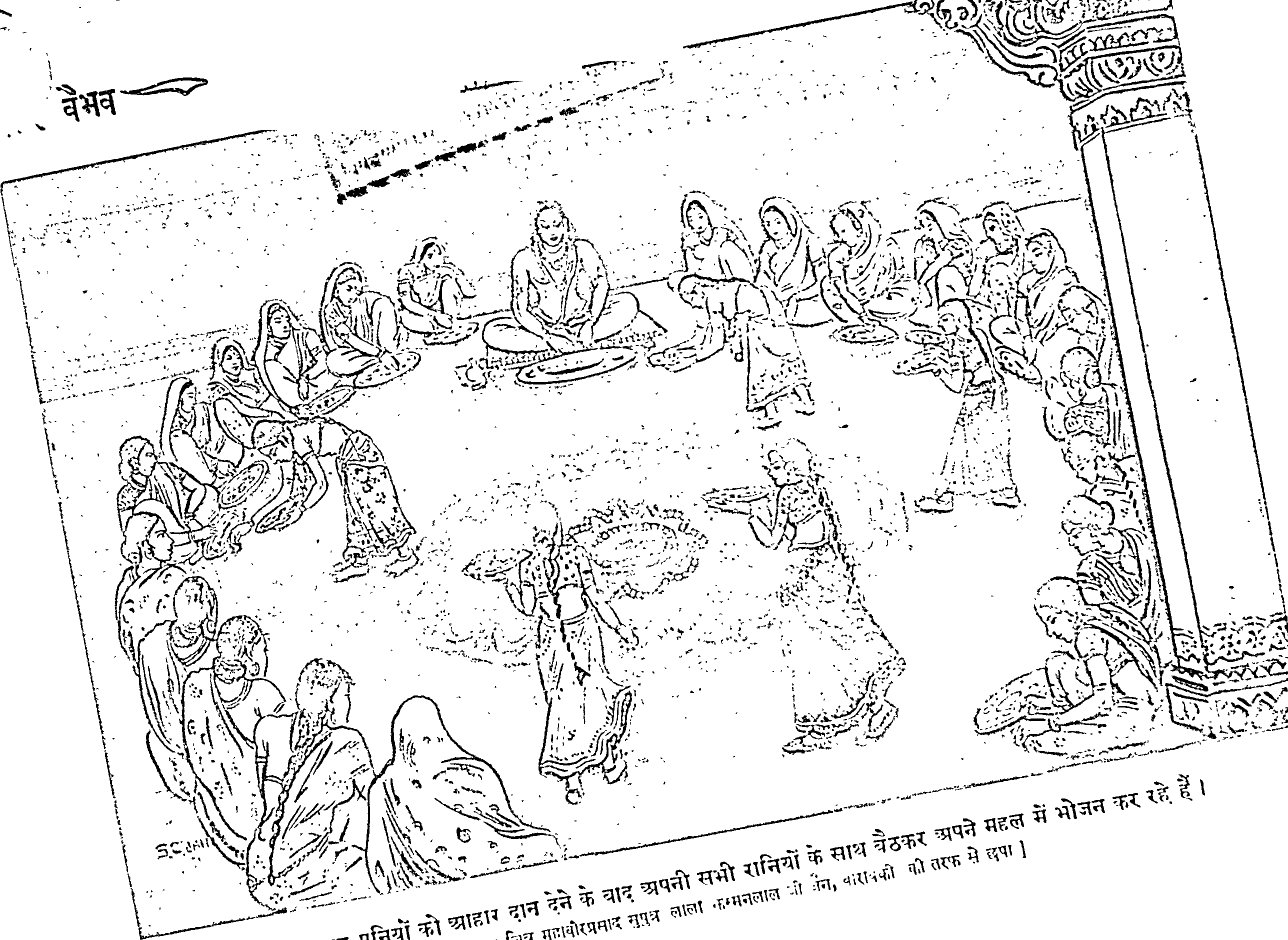
Mean while he just turned his looks to his wives. He was surprised to find that they had not started taking food but were sitting quietly. (102)

पद्य—एके तुत्तिडरेंदु कैसन्नेयिंदव । लोकिसिद्नु नरनाथा ॥
आकुशलेयरेडे माडुवर करे । देकांत दोळु पेळ्द्रोंदा ॥ १०३ ॥
एडे माडुव वलेयरेयूतंदु राय तु । त्तिडुवन्न दोळु गोंदु तुत्ता ॥
तुडुकि तेगेदुकोंडु पोगि पेंगळिगेल्ल । एडे माडिदरु हवनरिदु ॥ १०४ ॥

अर्थ—भोजन करने के समय श्री भरतेश जी मौन थे इस लिये उन्होंने शिर हिलाते हुये एक रानी से संकेत करके पूछा आप भोजन क्यों नहीं कर रही हैं, तब उन रानियों में से एक रानी ने परोसने वाली एक कुशल एवं चतुर स्त्री को एकान्त बुलाकर उसके कान में कहा ॥ १०३ ॥

अर्थ—तब परोसने वाली उस कुशल रानी ने श्री भरतेश जी की थाली में से एक एक (कवल) ग्रास उठाकर उन सभी रानियों की थाली में परोस दिया ॥ १०४ ॥

Raja Bharat used to observe silence while taking food. He, therefore,



राजा भरत मुनियों को आहार दान देने के बाद अपनी सभी रानियों के साथ बैठकर अपने महल में भोजन कर रहे हैं।

[यह चित्र महावीरप्रसाद सुपुत्र लाला [illegible] जी जैन, बाराबंकी की तरफ से छपा]

beckoned to one of the queens by the nod of his head to tell her what the matter was and why they did not start taking food. That queen whispered something into the ears of another who was serving food. The latter picked up morsels of food from the Raja's dishes and placed one each in the plates of the queens. (103-104)

पद्य—एल्लरु तुत्तिट्ट रदके रायनु तले । यल्लाडि तणिदनेदेयोळु ॥
अल्लवे मरोनु पति भक्ति मने मने । गेल्लके वहुदे लोकदोळु ॥ १०५ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् सभी रानियों ने अपना अपना भोजन प्रारम्भ किया, राजा भरत ने देखा तो अपने संकेत मात्र से उन रानियों की चतुरता की प्रसंशा की और कहा वाह, वाह, राजा ने मन में विचार किया कि आज कल ऐसी ही पतिभक्ति घर घर में हो सकती है, क्या ? ॥ १०५ ॥

There upon, the queens started their meals. Raja Bharat saw this and indicated his appreciation by signal. The poet says, "Can we find such devotion to husband in the present times ?" (105)

पद्य—पुरुष निधानन शेषान्न तावुंब । हरिवाण केय्तर रोडने ॥
पुरुनाथने वल्लनवर मनसिनोंदु । हरुष वनुँडरतियोळु ॥ १०६ ॥

अर्थ—अपने पतिदेव पुरुषोत्तम श्री भरतेशजी के शेषान्न को खाने से जो आनन्द उन रानियों को हो रहा था। उस आनन्द मय सुख को श्री आदिनाथ भगवान हीं जान सकते हैं ॥ १०६ ॥

Only Lord Adinath can know the pleasure which the queens experienced in relishing the morsels taken out from their husband's dishes. (106)

पद्य—ओरेडे मारवे यरिदेडे माडुव । नारियरेडे माडुतिहरु ॥
भूरमणनु रमणीयरेल्लरुंडरु । ओरंते तृप्ति वडेदरु ॥ १०७ ॥

अर्थ—परोसने वाली रानियां आग्रह पूर्वक खाने की प्रत्येक वस्तु को पूँछ पूँछ कर परस रही थीं। महाराज भरत और उनकी रानियां आदि सभी भोजन करके तृप्त होगये ॥ १०७ ॥

The queens who were serving food, were playing their part with dexterity. They were persuasive. Every one got satisfied. (107)

पद्य—जीव वलव देह वलव हेच्चिसुव सं । जीवनरस पिंडवेनेप ॥
मूवत्तेरडु तुत्तुगळिंद तनिदनु । भूवरना समय दोळु ॥ १०८ ॥

अर्थ—सिद्धांत में कहे हुये मन्त्र को स्मरण करते हुये एवम् चिदम्बर सिद्ध भगवान् को अपनी आत्मा में देखते हुये नमस्कार किया, तत्पश्चात् श्री भरतेश जी "जिन सिद्ध शरणं" परमानन्द के साथ उच्चारण करते हुये आंखें खोली ॥ ११५ ॥

He recited the "mantras" given in the sacred scriptures, saw the reflections of Sidh Bhagwan in his own souls, made obeisence to him, and after uttering the words "May Lord Jina protect me", opened his eyes. (115)

पद्य—हच्चडवनु होदेयुत हावुगेय मेट्टि । सच्चिदानन्द रूपवनु ॥
मेच्चि भविसुत वंदनु चंद्रशालेगे । हेच्चु कुंदिल्लदा चंद्रा ॥ ११६ ॥

अर्थ—तदन्तर अपने रेशमी दुपट्टे को ओढ़ कर पांव में स्वर्ण निर्मित पादुका पहनकर श्री भगवान् सच्चिदानन्द का स्मरण करते हुये चन्द्रशाला (विश्रामालय) की ओर गये । जिस प्रकार चन्द्रमा में कलङ्क होते हुये प्रकाश में कमी नहीं पड़ती उसी प्रकार राजा भरत में संसार रूपी कलङ्क होते हुये भी किसी प्रकार का कलङ्क नहीं था, अतः चन्द्रमा की भांति चन्द्रशाला में विराजमान हो गये ॥ ११६ ॥

After putting on his silk wrapper and his gold sandals, he left for his retiring room. Just as the beauty of the moon is not blurred by the dark spot in it, so Raja's glory was not tarnished by his worldly duties. (116)

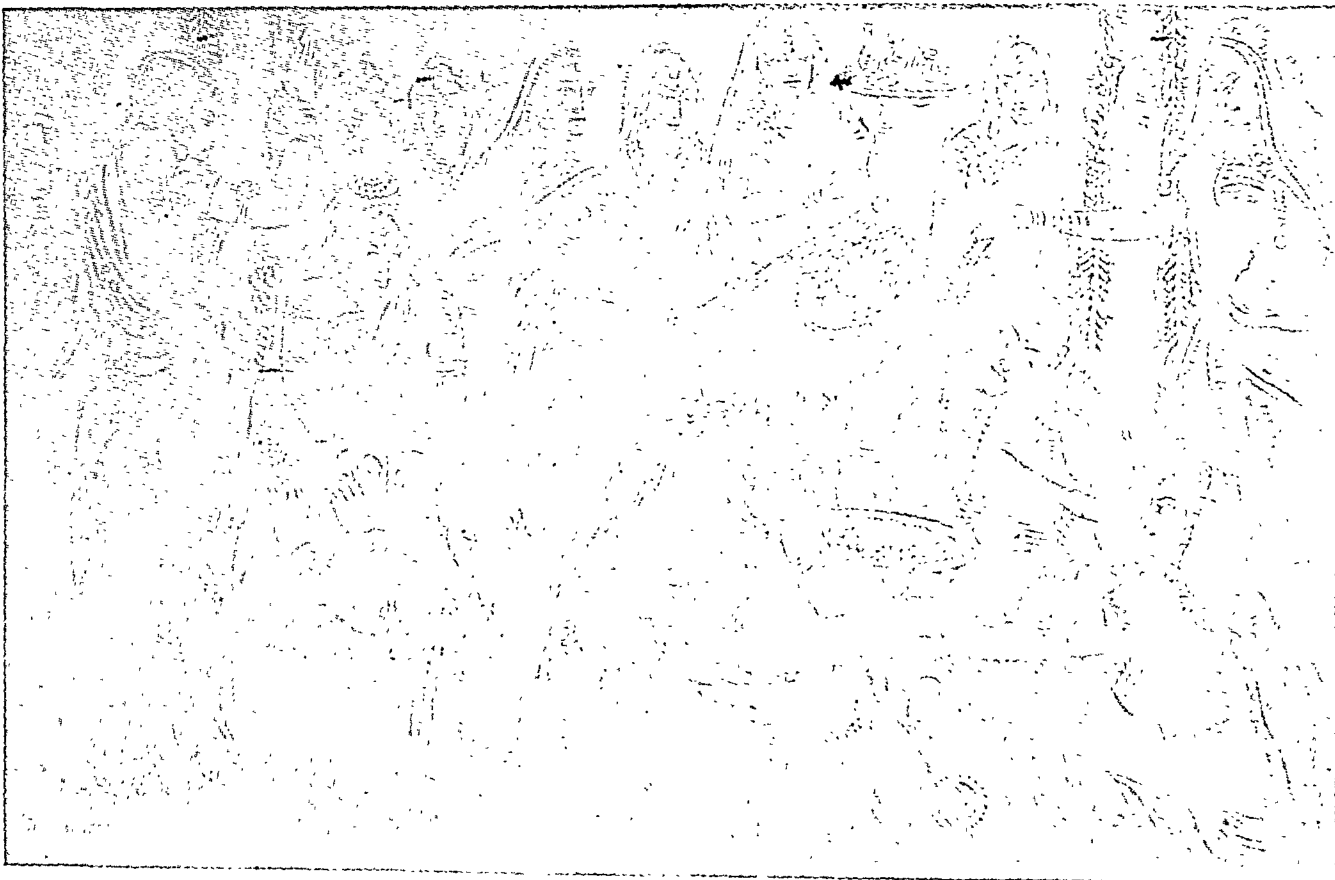
पद्य—तूगु मंचद मेले पोरगुमूडेगे वाम । भागव निट्टु कुळितनु ॥
आगळे वंदरु घुळघुळनबलेय । रागाडिकार निद्दडेगे ॥ ११७ ॥

अर्थ—रत्न जटित भूले पर श्री भरतेश जी बांई करवट से लेट गये तत्क्षण सभी रानियाँ पाव में पहिनी हुई पैजनियों की भन्-भन्, छुन्-छुन् करती हुई भरतेश जी के समीप सेवार्थ चन्द्रशाला में आईं ॥ ११७ ॥

The king reclined on his left in a hammock embellished with jewels. At that time the queens came making jingling and tinkling noise of their ornaments for attending on their beloved. (117)

पद्य—परिमळ दोडेयुत पन्नीर चिम्मुत । तिरहुत वीसणगे गळ ॥
चरणव नोत्तुत वीळेयगोडुत सों । दरियरिद्दरु बळसि नोळु ॥ ११८ ॥

अर्थ—कोई इत्र, केवड़े, से सुगन्धित जल छिड़कने लगी और कई सुगन्धित दानेदार इला-



राजा भरत मुनिराज के आहारानंतर भोजन करके विश्रांति ले रहे हैं और उनकी सभी रानियाँ उनकी सेवा कर रही है।

यह चित्र मातेश्वरी श्री सेठ प्रेमसुखजी, डालीगंज लखनऊ के द्वारा छपा।

यची, सौंफ, सुपारी सहित पान लाकर खिलाने लगीं। अन्य कई पांव दवाते हुए सुश्रूषा करने लगीं इस प्रकार सभी भद्र स्त्रियां अपने पतिदेव की सेवा में लीन होगईं ॥ ११८ ॥

All the gentle ladies began to do bit of their service. Some began to sprinkle rose water and perfume, some presented a betel containing cardamous nuts and other delicious material. Some did the massaging of their husband's legs. (118)

पद्य—निंदोलग साकु कुळ्ळरि दोल । विंदवनीश तुडिदनु ॥
मंदगमनेयरु मृदु तल्प दोळ्गोजे । यिंदेल्ल रोल्दु कुळितरु ॥ ११६ ॥

अर्थ—अव सेवा हो चुकी, "जाओ और विश्राम करो" इस आज्ञा के अनुसार सभी स्त्रियाँ धीरे धीरे मन्द मन्द गति से चली गईं और परस्पर बातें करती हुई एक करवट से लेट गईं ॥११९॥

"Enough has been done please", said the Raja. "Please go and take rest." The queens left and went to sleep. (119)

पद्य—वारजिद्यियरोळु सरस सल्लाप गं । भीर प्रसंग केळियोळु ॥
आ राज योगींद्र निरुतिद्दनिल्लिगे । आरोगणेय सुसंधि ॥ १२० ॥

अ—उन कमलाक्षियो के सरस कथा वार्ता को सुनकर और आमोद प्रमोद के साथ हँसते हुए श्री भरतेश जी भी गम्भीर विचार पूर्वक सोगए ॥ १२० ॥

Bharat Ji also relaxed into sound sleep after hearing the pleasent conversation of the queens. (120)

पद्य—ई जिन कथेयनु केळिद्वर पाप । वीज निर्नाशन वहुद ॥
तेज वहुदु पुण्य वहुदु मुंदोलिदप । राजितेश्वर काणुवरु ॥ १२१ ॥

अर्थ—इस श्री जिनेश की कथा को जो भव्य जीव पढ़ेंगे या सुनेंगे उनका पाप रूपी वीज नष्ट होगा। तथा तेज कान्ति, पुण्य वृद्धि होकर अन्त में मोक्ष पद को प्राप्त होगो ॥ १२१ ॥

Those who will read or hear this 'katha' of Jinesh, the seed of their sins will be destroyed. They will achieve glory, splendour, pleasant acquisition and in the end attain "moksha". (121)

पद्य—प्रेमदिंदेद नोदिदरे पाडिदरे केळ्द । रामोद वैदुवरवरु ॥
नेमदे सुररागि नाळे श्रीमंधर । स्वामिय काण्व रतियोळु ॥ १२२ ॥

अर्थ— इस कथा को जो प्रेम से पढ़ेंगे तथा सुनेंगे व आमोद को प्राप्त होंगे और नियम से देवपद को प्राप्त कर अन्त में विदेह क्षेत्र में जाकर प्रेम से श्रीमन्धरस्वामी का दर्शन करेंगे ॥ १२२॥

Those who will read this with attention and recite it with devotion will have the "darshan" of Simandhara Swami. *(122)*

पद्य—बरेय बारद तिद्द बारद कडेदरे । दोरेय बारद रुपिनभवा ॥
बरेदु बच्चणिसिदंते न्नेयेयोळ्गिरु । गुरुवे चिदंबर पुरुपा ॥ १२३ ॥

अर्थ—हे गुरो चिदम्बर पुरुष ! लिखने में , सुधारने में , तोड़ने में , न आने वाले ऐसे रूप का अनुभव लिखवाकर , छिपाकर रक्खे हुये के अनुसार मेरे हृदय में निरन्तर वास करो ॥ १२३ ॥

Oh Chidambar Purusha ! pen can not find words to describe your form, which is unassailable and indestructible. May you repose concealed in my heart for ever. *(123)*

॥ इति राज्य भुक्ति संधि प्रथमः भागस्य चतुर्थसर्गः संपूर्णम ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः

❀ राज सौधन संधिः ❀

पद्य—कडेयिल्लदमृत संपदव निन्नोळगिट्टु । वडवनंतिळेगे काणिसुव ॥
वेडगिन सिद्ध सन्मतिदोरु भव्यात्म । रोडेय निरंजन सिद्धा ॥ १ ॥

अर्थ—हे सिद्ध आत्मन आपकी महिमा अपार है, अनन्त अमृतमय सम्पत्ति को अपने भीतर रखते हुये लोगों की दृष्टि में आप अकिंचन एवं निर्धन के तुल्य दिखाई देते हैं। किसी प्रकार के आभरणों (शृंगार) के न होने पर भी अत्यन्त सुन्दर दिखाई देते हैं आपकी बातें कृत्रिम नहीं हैं स्वाभाविक हैं। क्यों कि तुम यथार्थ पद को प्राप्त कर चुके हो भक्तजन अपने विचारों से कुछ का कुछ समझें यह अन्य बात है किन्तु हे भव्यजनों के शिरोमणि निरञ्जन सिद्ध भगवान ! मुझको शीघ्र ही सद्बुद्धि दो ॥ १ ॥

O Sidh Atman, your glory is unfathomable, you possess nectar like wealth of omniscience and omnipotence in you. The splendour of which is beyond discription. Although you have no material possessions or decorations, still your beauty is fascinating. There is nothing artificial about you. You are in your natural attributes, and have attained unconquerable position. Your devotees may, in their misguided zeal, impute different attributes to you, but that has nothing to do with you. May you, Sidh Bhagwan, the leader of the souls capable of liberation, bestow on me good sense. (1)

पद्य—मत्तोंदु दिन दुदयदोळेद्दु जिनसिद्ध । रुत्त माराधने गैदु ॥
चित्तजरूप नुप्परिगेये ळोलग । वित्तनदेन बण्णिपेनु ॥ २ ॥

अर्थ—एक दिन की बात है श्री भरतेश जी प्रातःकाल नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर अपने सर्वो.रि महल में जाकर इस प्रकार विराजमान हो रहे हैं जिसका वर्णन करना दुष्कर है ॥ २

One morning, Raja Bharat after his usual routine, was sitting in all glory at the top his palace. (2)

पद्य—कुंदनुप्परिगेय मेले नवरत्न । दिंदाद मंडपदल्लि ॥
पोदाबरेयंते होळेव गद्दुगेयल्लि । यंदु कुळितनु राजेंद्र ॥ ३ ॥

अर्थ—सोने के महल में स्थित जगमगाते हुये नवरत्नों से सुशोभित मण्डप में लाल कमल के समान सिंहासन पर बैठते हुए देवेन्द्र के समान श्री भरतेश जी विराजमान होगए ॥ ३ ॥

Sitting on his beautiful red lotus like throne under a canopy decorated with Navratna in his golden palace, Raja Bharat looked like Devendra in all his glory. (3)

पद्य—बेगडेगिट्ट मलग नेम्मि होदेददे । बांग योगवट्टे बोळु ॥
वेंगे तोडिगे योग वंधव वलिदु वे । डगि नोळ्ळोलगवादा ॥ ४ ॥

अर्थ—पृष्ठ भाग में आश्रय देने वाला झालरदार सुकोमल तकिया और इधर उधर शीतल हवा प्रवाह करने वाली (पंखा डुलाने वाली) देव दासियां तथा सम्राट की देहपर स्थित दिव्य वस्त्र वस्तुतः अद्भुत शोभा दे रहे थे ॥ ४

There was a beautiful soft and frilled pillow behind his back, beautiful maid servants with fans in their hands, to stir cool breeze, were standing around. Raja Bharat was putting on precious and splendid apparels. (4)

पद्य—तनुकांति भूषणकांतिया मण्डप । दनुपम कांति मेळैसे ॥
जनपति तानोप्प दिनपतियंतिर्द । दिनपति युदय कालदोळु ॥ ५ ॥

अर्थ—इतना ही क्यों, शरीर कान्ति, भूषण कान्ति तथा उस मण्डप की कान्ति ऐसी सभी कान्तियों से युक्त राजा भरत इस प्रकार प्रतीत होते थे, कि मानो दिनपति के समान ही जनपति शोभा पा रहा हो, अर्थात् राजा भरत उदित दिनपति के समान ही मालूम पड़ते थे ॥ ५ ॥

There was the beauty of the body, the beauty of the ornaments, and beauties of different other things. Invested with the beauties of all kinds, Raja Bharat looked like glorious sun. (5)

पद्य—काळजि हडप चामर गिंडि मोदलाद । उळिग दंतुजाक्षियरु ॥
साल भंजि केगळंते डबलदल्लि निं । दोलैसुतिद्दरोजेयोळु ॥ ६ ॥

अर्थ—इतने में अन्तःपुर सभा के योग्य सर्व सामग्री वहां एकत्रित होने लगी, सोने की थालियों में अनेक प्रकार की सुगन्धित वस्तुयें, पान बीड़ा; कर्पूर, इलायची तथा छत्र-चामर एवम् कलश में सुगन्धित जल इत्यादि सामग्रियां हाथमें लेकर कमल मुखी दासियां दाहिने बांये पंक्ति-बद्ध होकर गौरव के साथ बैठ गईं ॥ ६ ॥

All articles suitable for the occasion, such as golden dishes full of scented articles, betels, camphor, cardamoms, rose water, small canopies, goblets of water, were all brought by beautiful maid-servants coming in rows, and placed there. *(6)*

पद्य—वीणे दंडिगे स्वर मण्डल किन्नरि । वेणु संपुटव होत्तगेया ॥
राणि योळ्‌तु वंदरसगेरगिदरु । गाणकार्तियरु गाडियोळु ॥ ७ ॥

अर्थ—तदनन्तर वीणा किन्नरी (एक प्रकार का वाद्य) पढ़ने की पुस्तकें एवम् चौथी हाथ में लेकर गायक स्त्रियाँ विनय के साथ राजा भरत को प्रणाम करती हुई सामने से पंक्ति बद्ध होकर बैठ गईं ॥ ७ ॥

Then came the songstresses in rows with books and small desks, and after saluting the king took their seat. *(7)*

पद्य—सारु तोलगु वरहेळ्विरवर नें । दा राया केळे नुडिवुत ॥
मेरु सौडवनेरि कैमुगिदरु वेंत्र । धायरिणियरु धराणि पतिगे ॥ ८ ॥

अर्थ—हाथों में बेत को रखने वाली व्यवस्थापक स्त्रियाँ (स्वयं सेविकायें) हटो । रास्ता छोड़ो उनको बुलाओ इन्हें उधर बैठालो इत्यादि शब्द करती हुई एवम् विनय के साथ भरत को शिर नवाकर राजसौध में आकर बैठ गईं ॥ ८ ॥

Lady monitors with canes in their hands were giving directions to other ladies for taking their seats in a proper manner. After making these arrangement they bowed to the king and sat down. *(8)*

पद्य—मंडितालंकार काव्यव रायन । पेंडिरि गोदि सिद्वळु ॥
पंडितेयेदेंव दादि वंदरसन । कंडु कैमुगिद ळतियोळु ॥ ९ ॥

अर्थ—अलंकार मंडित राजा भरत की रानियों को काव्य की पढ़ी हुई पंडिता नाम की दासी ने आकर अन्य दासियों के सहित महाराज भरत को विनय पूर्वक हाथ जोड़े ॥ ९ ॥

Then came the maid servant Pandita, the poetess, accompanied by other maid-servants and bowed to the king with clasped hands. *(9)*

पद्य—राणियरेल्ल सिंगरसि लीलेयेळु क । गाणिकेगळ कैविडिदु ॥
प्राणनाथन काळुप्परिगेयनु त्रि । न्नाणदिंद डारेद राग ॥ १० ॥

अर्थ—इतने में राजा भरत की सभी रानियां आनन्द के साथ अपना शृंगार करके लीला पूर्वक हाथ में कुछ भेंट लेकर प्राणनाथ राजा भरत को देखने के लिये गौरव के साथ चढ़ती हुई हुई महल में आ रही हैं ॥ १० ॥

Then were seen the queens ascending the staircase with an attractive gait to meet their beloved. Their person was beautifully decorated. They had one present or the other in their hands to offer to their husband. *(10)*

पद्य—मदन नर्तिगे मेरु गिरिय नेरळु तन्न । सुदतियररसि वहंते ॥
चदुरियरेरुतिद्रहमेरुसौधना । मद हिरिदुप्परिगेयनु ॥ ११ ॥

अर्थ—उस समय ऐसा विदित होता था मानो कामदेव के दर्शन के हेतु क्या रति ही तो नहीं मेरु पर्वत पर चढ़कर आरही है ? उसी प्रकार राजा भरत के ऊँचे महल हर चढ़कर सभी रानियाँ आरही थीं ॥ ११ ॥

The sight was so lovely that each queen appeared as if the goddess of beauty Rati was ascending on mount Meru to meet her husband, Cupid. *(11)*

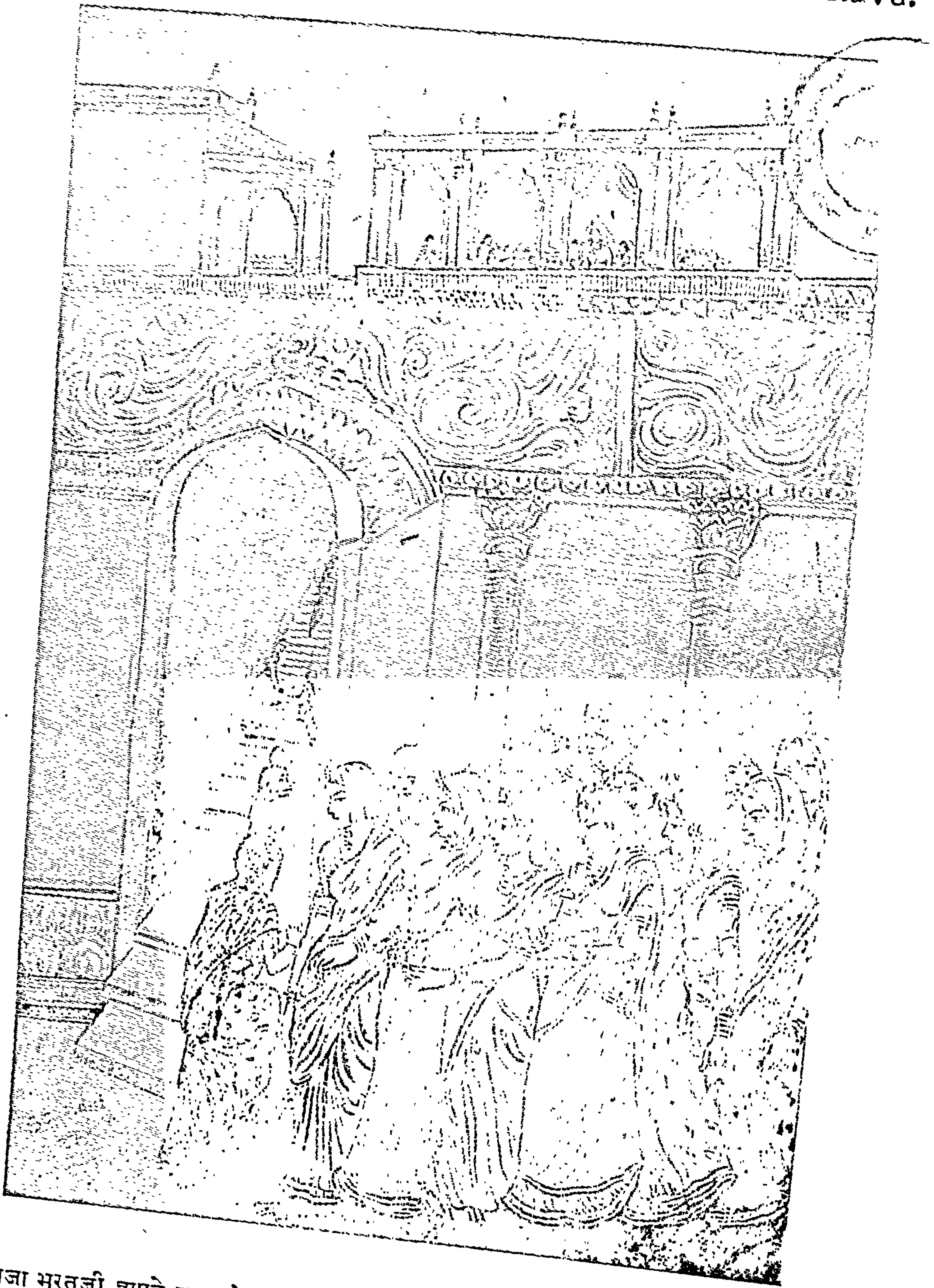
पद्य—नोडि वा तंगि यच्चरिके यक्काजि कै । नीडक्क को हिडिताई ॥
ओडिदिरक्का वा वा तंगियेंदु मा । ताडुतेरिदरोलवि नोळु ॥ १२ ॥

अर्थ—वहिन देखकर आवो ? सावधानी से आओ " जरा हमारा हाथ तो पकड़ो " इस प्रकार हमको छोड़कर क्यों दौड़ती हो ? घबड़ाओ मत, आओ आओ वहन इस भाँति परस्पर नाना प्रकार की वार्तालाप करती हुई वे रानियाँ महल पर चढ़ रहीं थीं ॥ १२ ॥

While ascending the staircase they were having lively conversation. One said, "Come carefully, sister." The other said, "Catch hold of my hand, please." The third said, "Why are running away leaving me behind." The fourth said, "Do not be nervous, proceed on". *(12)*

पद्य—हरिवुतिद्पळिगे हरे हरे मुँदे नि । न्नरस नीवनु दोड्ड मेच्च ॥
वरलारदवरेन नाडरेनुत तावु । सरस माडुत पत्तुतिहरु ॥ १३ ॥

अर्थ—जल्दी जल्दी आगे जाने वाली ! तुम पर राजा भरत का वड़ा प्रेम रखता है क्यों कि जल्दी जल्दी चढ़ने वाली को क्या राजा भरत प्रेम करेंगे, अच्छा जावो । ऐसा आपसमें विनय पूर्वक वार्ता लाप करती हुई रानियाँ चढ़ी चली जा रहीं थीं ॥ १३ ॥



राजा भरतजी अपने महल के ऊपरी भाग में नृत्य करनेवाली तथा गायन करने वालियों के नृत्य व गाने ऊपर बैठे हुए सुन रहे थे। तब सभी रानियाँ पतिदेव के दर्शनार्थ हाथ में नाना प्रकार की भेंट लेकर ऊपर चढ़ी जा रही हैं।

यह चित्र ला० पदमचन्द सुपुत्र ला० शम्भूनाथ, चौक लखनऊ के द्वारा छपा।

"Hollo, you fast runner, Raja has special affection for you, go ahead." With this lively exchange they were going up. (13)

पद्य—तवकिसि नडे नडे येनुतिप्पळिवळेण्डु । दिवसदिं काणळो पतिया ॥
निवगे हितव पेळ्दुदेन्नदु तप्पु मौ । नव माळ्पेनेनुतेरुतिहळु ॥ १४ ॥

अर्थ—पीछे वाली स्त्री आगे वाली स्त्री से कहती थी, क्या पतिदेव को तुमने अधिक दिनों से नहीं देखा ? भागो ! भागो ! राजा प्रसन्न होकर तुम्हें अवश्य कुछ न कुछ देंगे, जल्दी जाओ इस प्रकार कोई आगे जाने वाली रानी से कह रही थी ॥ १४ ॥

One who was lagging behind, called out to the one ahead, "well dear, has not our beloved husband seen you for a long time ? Run fast, he will certainly give you something." (14)

पद्य—जव्वन सोक्कि वरिगे नोडु माडुव । कव्वरे गोडेरु तहरे ॥
अव्व नीवेनोडिरि चक्रवर्तिय । सुव्वलालेय नाडिसुवरु ॥ १५ ॥

अर्थ—देखो तो इनके पैरों में कितनी शक्ति है, कैसी अनूठी युवा अवस्था है न ! इसलिए इठलाती हुई जल्दी जल्दी उड़ी चली जा रही हैं । हां हां यह सब राजा भरत की बड़ी दुलारी और प्यारी हैं ॥ १५ ॥

"Look at the strength of her feet, how fast she is going. She is in the full bloom of her youth. Oh yes she is Raja's beloved." (15)

पद्य—बरलारल वळिगे कैगोडिरेदेयल्लि । हिरिय होरेय होत्तवळु ॥
भरत चक्रेशगे कृपेयिल्ल माडके । बर हेळ बहुदे नोडिवळा ॥ १६ ॥

अर्थ—उन्हीं रानियों में एक जो स्वल्प स्थूल वदन (ठिंगना कद व मोटी) थी उसने कहा कि "देखो तो मुझे कोई हाथ का सहारा भी नहीं देती हैं क्या ?" मुझपर राजा भरत की कृपा नहीं है, जो मुझे ऊपर बुला रहे हैं ॥ १६ ॥

One of the queens was dwarfish and fattish. She said, "No body gives me any help. Am I not loved by Raja who has invited me ?" (16)

पद्य—साकु निम्मुपचार तावेनु बरलार । राकेयिं मुदे नडेदरे ॥
इके गंडन काण हरिवळेंद परेंत्र । वाक्किगळुकि हिंदे वहेनु ॥ १७ ॥

अर्थ—बस बस, चुप रहो, न तो मुझे आगे जानेमें चैन लेने देती हो, और न पीछे ही चलने देती, यदि आगे जाती हूं तो पति प्रेम की उलहना देती हो, पीछे जाती हूं तो कहती हो कि राजा से प्रेम नहीं है। बड़ी कठिन समस्या है अतएव मैं आपके पीछे पीछे ही जाती हूँ॥ आगे जाने वाली रानी ने कहा, अच्छा बहन! अब मैं कुछ न कहूंगी॥ १७॥

"Stop your remarks, please", said one of them, "when I go ahead, you say I am my husband's special favourite, when I lag behind, you say Raja does not love me. It is a difficult problem for me. Now I shall follow you." The other replied, "All right, I shall pass no further remarks." *(17)*

पद्य—हेडतले होरेयोंदु नडुविन केळगेर। डोडनेदेयोळ् होरेयेरडु॥
पिडिवेंदु होरे यांतु नडेविरि लोगर। नुडिविरि होरे गिरयेंदु॥ १८॥

अर्थ—एक रानी ने कहा कि, एक तो वह गर्भिणी, दूसरा उस पर भी सिर का बोझा, तीसरा स्तन का बोझा और चौथा गर्भ का, तथा पाचवाँ जघाओं का बोझा, तथा संपूर्ण शरीर का भार लेकर वह पीछे पीछे धीरे धीरे चल रही है, क्या? राजा भरत को इस पर दया नहीं है, जो इसको बुलाया है॥ १८॥

One of the queens was big with child. The others observed, "Look at her, the king has no mercy on her. She is carrying so much weight, the weight of her head, the weight of her breasts, the weight of the child in the womb and the weight of her thighs. Poor creature she is dragging along slowly. Give her a little help please." *(18)*

पद्य—मौनवीकेगे तन्न गडनंतात्मन। जानिसुतैदु व परियो॥
एनेंदु तिळियबारदु हेळु निनगे सु। ध्यानव कलिसिदनारे॥ १९॥

अर्थ—जरा हाथ का सहारा तो लगा दे बहन? तब वह स्त्री कहने लगी कि, बस तुम अपनी बात रहने दो, मैं तुम्हारे आगे नहीं जासकूँगी, परन्तु, आगे जाने पर आपही कहती हैं कि, इसे पति के पास जाने की जल्दी है, यदि मौन रहूं तो कहती हैं कि, जैसे पतिदेव आत्मा के ध्यान में, मग्न रहते हैं उसी प्रकार यह भी ध्यान कर रही हैं, कुछ समझ में नहीं आता, जरा कहो, क्या? तुम्हें राजा ने तो ध्यान करना नहीं सिखा दिया॥ १९॥

Then she replied, "Please stop your jokes. I can not go ahead of you. When I go ahead, you say I am in a hurry to meat my husband, when I keep

quiet then you say I am absorbed in the contemplation like my husband. I do not know what to do now." *(19)*

पद्य—ध्यान गीनव नीवु निम्मरसनु बल्लि । रानेन बल्लेना गुसुटा ॥
ई निम्म सरस सल्लापके एनदल्लि । आनंदिसुत बंदेनक्का ॥ २० ॥

अर्थ—यह ध्यान मान तो राजा भरत जी जाने, हमारे समान साधारण स्त्रियाँ क्या जानसकती हैं। अत एव जो अनेक प्रकार की बातें करती जा रही हो, बहन ? वह मैं आनन्द पूर्वक सुनती चली आरही हूं ॥ २० ॥

The other said, "We ordinary women know nothing about this contemplation and self absorption. Why are you talking about it." *(20)*

पद्य—हिंदुळिदरे मुंदे नडेदरे सुम्मने । बंदरे मात नाडिदरे ॥
ओंदोंद कल्पिसुविरि निम्मनुरेगेलु । बंदवना चक्रि बल्ल ॥ २१ ॥

अर्थ—आगे जाने से या पीछे रहने से कुछ न कुछ कल्पना करती चली जारही हैं, इसके निमित्त मेरे वारे में तुम चाहे जो कल्पना करो, परन्तु मेरे मन की बात तो राजा भरत ही जानते हैं ॥ २१ ॥

"Well" said the former, "say what you like about my going ahead or lagging behind, only Raja Bharat knows what is in my mind." *(21)*

पद्य—विनद साकिन्तु सुम्मने बन्नि मंडप । सनिह वादुदु हेएणुगळिरा ॥
तुनुव नोसरिसि कोंडोजेयोळे तन्नि । रेनुतेरुतिहरल्लि केलरु ॥ २२ ॥

अर्थ—अच्छा अब विनोद रहेने दो। सभा भवन समीप आगया, अब बहुत गम्भीरता से चली आइये, जिससे अपनी बात उधर न सुनाई पड़े इसलिये सावधान पूर्वक चलिये ॥ २२ ॥

"All right. Stop this light hearted talk now, Raja's chamber is near. Come with caution, so that our conversation does not fall on Raja's ears." *(22)*

पद्य—नडिवाग सवतिय काल मेलोंदु क । ण्पिडिदरे कंडोर्वळदनु ॥
तोडेदळु कैमुट्टि तंगि हाहायेंदु । ओडनाके झंकिसि होगे ॥ २३ ॥
कालमेलदे कण्णु तोडेदु कोळ्ळेंदोरदु । हेळ्दे तोडेवरे तंगि ॥
ओलगमुट्ट लादटु सुम्म नैदक्क । केळ वहुदु नम्म मातु ॥ २४ ॥

अर्थ—एक रानी के पैर में कुछ काला सा दाग दिखाई दिया। तब दूसरी रानी ने धोने के लिये अपना हाथ बढ़ाया। इतने में हा, हा करती हुई उस रानी ने पैर झटकार दिया ॥ २३ ॥

अर्थ—बहन तुम क्यों धो रही हो तुमको तो मुझसे कह देना था कि तुम्हारे पैर में कुछ लगा है वह धो डालो ऐसा न कर के तुम स्वयम् क्यों धो रही हो, चलो बस अब विनोद करना बन्द करो क्योंकि अब हम लोगों की बातचीत की आवाज महल में जाना सम्भव है इसलिए चुपचाप चलो ॥ २४ ॥

There was a black speck on the leg of one queen. Seeing it one of the other queens extended her hand to rab it. "No please", said the former, "pull ing her leg aside. Why should you rab it, it was sufficient for you to point it out to me. All right now let us stop our fun, otherwise we are likely to be heard by our husband. Let us proceed with silence." *(23-24)*

पद्य—इंतु विनोद विनयदिंद भूपन । कांतेयरेल्ल रोजेयोळु ॥
अंतरिसदे नडेदरु मुद्दमुद्दलें । बतांग लोलगसाले ॥ २५ ॥

अर्थ—इसप्रकार विनोद और विनय के साथ मीठी मीठी बातें करते हुए राजा भरत की सभी रानियां गम्भीरता पूर्वक धीरे धीरे चुप चाप ऊपर के सौध महल के नजदीक आ रही हैं ॥ २५ ॥

All the queens now approached cautiously the king's chamber enjoying sweet conversation with gayfulness. *(25)*

पद्य—अरसिय रानंद दिंद माडवनेरि । बरुतिप्परेंब वार्तेयनु ॥
चरण दंदुगे कटिसूत्रद दनि मुंदे । हरिदु हेळ्दिदुवरसनिगे ॥ २६ ॥

अर्थ—राजा भरत के कान में रानियों के पैर की पैजनियां तथा कटिमेखलाओं के घुंघुरुओं की ध्वनि ने पहिले ही सूचित कर दिया कि सभी रानियाँ चली आरहीं हैं ॥ २६ ॥

The tinkling sound of the queens ornaments reached Raja's ears and gave him information of their approach. *(26)*

पद्य—मेल्लन ब्रवनेरि सौध शालेय होक्कु । नल्लन कंडिदिरिनोळु ॥
एल्लरु निंदु मुंदोब्बोब्बरोत्तसा । र्दल्लि कंडरु काणके इक्कि ॥ २७ ॥

अर्थ—धीरे धीरे सभी रानियां चढ़ कर सौध शाला में प्रवेश कर अपने पति के सम्मुख एक एक रानी भेंट देकर वहाँ से अलग हटते हुए एक क्रम से खड़ी हो गयीं ॥ २७ ॥

Bye and Bye all the queens ascended up and entered the chamber. Each of them offered her present to the king, withdrew a little and stood aside. (27)

पद्य—अळुकु तोसरिसि कोळ्ळुत मेल्लनरसन । बळिगे नडेदु मुंदे निंदु ॥
नळितोळ नीडि काणिगेगोट्टु कैमुगि । दोळसारि निंदरोजेयोळु ॥ २८ ॥

अर्थ—एक रानी वहुत डरती डरती राजा भरत के पास हाथ वढ़ाकर एवम् भेंट चढ़ाकर अलग से दूर खड़ी होगई ॥ २८ ॥

One of them extended her hand from a distance with awe, offered her present, and withdrew immediately. (28)

पद्य—होंबण्ण मैय ळोर्वळु काणिलेगे होस । निंबय हण्णु तंदित्तु ॥
केंबल्लु मिनुगे कैमुगिदु निंदळु होण्ण । बोंबेयंतरसनोत्तिनोळु ॥ २९ ॥

अर्थ—स्वर्णमयी शरीर वाली एक रानी ने नींबू का फल लाकर भरत जी के चरणों में चढ़ाकर वहाँ से पृथक हो कर स्वर्ण विंव के समान अलग खड़ी होगई ॥ २९ ॥

Then stepped forward another queen of golden complexion. She presented a lemon fruit at Raja's feet, and withdrawing a little stood like statue of gold. (29)

पद्य—नीलांगि योर्वळु वंदु काणिके गोंदु । नीलांबुजव तंदित्तु ॥
मेळे कैमुदु निंदळु केलदोळगिंद्र । नीलद पुत्तळियंते ॥ ३० ॥

अर्थ—नीलवर्ण की एक रानी ने नील कमल राजा भरत को समर्पण कर इन्द्रनील मणि विंव के समान खड़ी होगई ॥ ३० ॥

Then came a queen with blue complexion. She presented a blue lotus and stepped aside like an image of blue diamond. (30)

पद्य—राणियोर्वळु वंदु होंदावरे कै । गाणिके इत्तु कैमुगिदु ॥
चोणिश नेडद भाग व सारि निंदळु । माणिक्य बोंबेयंवंते ॥ ३१ ॥

अर्थ—एक रानी लाल कमल को समर्पण करते हुये हाथ जोड़ कर राजा भरत के वायें तरफ माणिक्य की पुतली के समान खड़ी होगई ॥ ३१ ॥

Another now came, offered a red lotus and with clasped hand stood on the left side of the king like a doll of red diamond. (31)

पद्य—केंपियोर्वळु बंदु रायन हस्तके। गंपगे हूगळ नीडि ॥
पेंपिंद कै मुगिद चलेयरेल्लर। गुंपिनोळगे निंदळोडने ॥ ३२ ॥

अर्थ—पुनः एक रानी चम्पा के फूल को अर्पण कर हाथ जोड़ते हुये बहुत विनय के साथ अपनी सभी बहनों के समुदाय में खड़ी होगई ॥ ३२ ॥

Again another offered a gift of champa flower and joined her predecessors. (32)

पद्य—करिय नोव्वळु बंदु चक्रवर्तिगे तन्न। करकुशलदोळु रचसिद ॥
सुरगिय मालेयनित्तळु रति देवि। सुरगिय मदन गीवंते ॥ ३३ ॥

अर्थ—कृष्ण वर्णा रानी ने अपने कर कुशलता से एक सुन्दर पुष्पमाला बनाकर राजा के हाथ में उपहार स्वरूप दिया उस समय ऐसा मालूम पड़ता था मानो रतिदेवी ही कामदेव को उपहार दे रही हो ॥ ३३ ॥

A dark complexioned queen presented the Raja with a beautiful flower garland. It looked as if Rati was presenting it to her husband Cupid. (33)

पद्य—अंगज वीरगे पूविन खड्गव। संगडिसुव रतियंते ॥
होंगदेगेय कठारियनोर्व ल। तांगि तंदित्तळु नृपगे ॥ ३४ ॥

अर्थ—जिस प्रकार रतिदेवी कामदेव को पुष्पों की बाण भेंट में देती हो उसी प्रकार कोई रानी श्री भरत जी को केवड़ा के खड्ग व फूल लाकर समर्पण कर रही थी ॥ ३४ ॥

Some queen presented Kewra flower to the king like Rati offering the gift of the bow of flowers to cupid. (34)

पद्य—बट्ट जव्वनेयोर्व ळडिगिट्टु काएकेगे। बेट्टदावरे तंदित्तु ॥
निट्टिसि कैमुगिदरसनगद्दुगे। मुट्टि निंदळु विभवदोळु ॥ ३५ ॥

अर्थ—एक तारुण्य भूपित रानी पहाड़ी कमल को भरत के चरणों में रख कर तथा सिंहासन को स्पर्श करके वैभव के साथ सिंहासन के पास खड़ी होगई ॥ ३५ ॥

One beautiful young queen presented a hilly flower, touched the throne and stood near it. (35)

पद्य—मैयोड्डि संमुखदोळु निल्लदेल्लर । मैय मरेगे सारुववळा ॥
कैय हिडिदु करेतंदोर्वळरसगे । कैय काणकेय कोडसिदळु ॥ ३६ ॥

अर्थ—एक रानी लज्जित होकर सामने ही नहीं आरही थी प्रत्युत सबसे पीछे खड़ी थी उसे अन्य रानी हाथ पकड़कर लाई और उससे भेंट दिलवाई ॥ ३६ ॥

One queen was extremely shy. She was standing behind, was dragged by others, and then she presented her gifts. *(36)*

पद्य—अंजुतंजुत बाले बंदोर्वळरसगे । कैंजाजि सरगोड्वाग ॥
कैंजाजि जगुळितु काणिकेयेल्ल पु । ष्पांजलियेंद राळियरु ॥ ३७ ॥

अर्थ—पुनःएक रानी डरते डरते आई ; वह जिस समय भेंट समर्पण करने लगी उस समय उसके हाथका पुष्प नीचे गिर गया , तब वह लज्जित हुई , अन्य रानियाँ हंस कर कहने लगीं कि यह भेंट तो नहीं है , परन्तु पुष्पाञ्जलि है ॥ ३७ ॥

Another queen with fear in her heart came forward, but when she began to offer her flower it dropped out of fear. She felt very much ashamed. Other queens laughed and said, "well if it is not a present, it is a gift." *(37)*

पद्य—एंल्लर मुंदोर्व मुग्धे नाचुत बंदु । मल्लिगे सरगोड्वाग ॥
मल्लिगे जारितु जारिदरेनदे । मल्लिगेयेंदनु नृपति ॥ ३८ ॥

अर्थ—एक मुग्ध हुई हँसमुख रानी लज्जायुक्त होकर आई, उसके मल्लिका पुष्प समर्पण करते समय वह पुष्प हाथ से फिसलकर नीचे गिर पड़ा, तब वह और भी लज्जित हुई । राजा भरत कहने लगे कि इतनी शर्मिंदा होने का क्या कारण है । पुष्प गिर पड़ा तो क्या हुआ, हमारे ऊपर ही तो गिरा तुम लज्जित क्यों होती हो ॥ ३८ ॥

Another devoted queen came forward with shyness and when she offered the Mallika flower, it slipped down and she blushed. Raja Bharat said, "There is no need of feeling ashamed, if the flower has dropped down, it has fallen on my person." *(38)*

पद्य—पादरियलर नोर्वळु कोड्डतिरे जारि । पाददेडेगे बिद्दुदवन ॥
पाददिंदोदेदनु सोतु काल्गेरगिद । पादरियनु नूकुवंते ॥ ३९ ॥

अर्थ—एक रानी ने पादरी (पारिजाति) पुष्प को राजा भरत के चरणों में समर्पण किया तो

राजा ने थोड़ा पैर से उसको खिसका दिया, मानो ऐसा मालूम पड़ता था कि किसी रानी को पांव से ठुकरा दिया हो ॥ ३९ ॥

One queen presented a "Padri" flower. The king pushed it a little with his foot. It appeared as if some queen had been kicked. (39)

पद्य—परदार सोदर नोत्तिगे पादरि । बरवहुदे भरतेशा ॥
चरणादिंदोदेदु दायूतेंदु पँडिते । अरसन नगुनगसिदळु ॥ ४० ॥

अर्थ—तब पंडिता (कवियत्री) कहने लगी कि, हे राजन् ! आपने ठीक किया । क्या परदारा सहोदर राजा भरत के पास पादरी आ सकता है आपने पैर से लात मारी सो बहुत उचित किया, इससे राजा भरत को तनिक हँसी आगई ॥ ४० ॥

Pandita, the moniter girl, submitted, "Sire you have acted rightly. How could the "Padri", brother of another man's wife dare to come here? He deserved this kick." This brought smile on Raja's face. (40)

पद्य—कडुशीलवतीयरु निन्न पेंडरु तम्म । कडेगोव्व पादरि वरलु ॥
पिडितँदु निनगोप्पिसिदरु नीनोदेदु । वेडगायतु शीलनिधाना ॥ ४१ ॥

अर्थ—राजन् ! तुम्हारी स्त्रियाँ अत्यन्त शीलवती हैं, यदि पादरी आया तो उसको पकड़कर तुम्हारे पास लाई एवम् तुमने लात मारकर उसको दण्ड दिया, सो उचित ही किया ॥ ४१ ॥

"Rajan ! your wives are chaste ladies. They brought this Padri before you and if you punished him by kicking him it was the proper thing." (41)

पद्य—कडेगण्ण भ्रभेद्दलच लोलेदुनोडे । कुडिमिंचिनंताडुतिरलु ॥
नडे तँदुर मणियोर्वळु रायगित्तळु । मुडिवाळ्दोंदु भल्लियनु ॥ ४२ ॥

अर्थ—एक रानी ने अपनी भृकुटी विक्षेप के साथ (प्रेम भरी तिरछी नजर से देखते हुये) एक फूलों का गुच्छा लाकर अर्पण किया और बगल में विनय पूर्वक खड़ी होगई ॥ ४२ ॥

Another queen then came and with affectionate looks presented a bouqet of flowers and stood aside (42)

पद्य—भावे भावेगे काणके यिज्केंदु किवियल्लि । भाविकेयरु पेळ्नगुत ॥
माविनं तळिर तँदित्तु रोर्वळु तन्न । मावन मगन हस्नदोळु ॥ ४३ ॥

अर्थ—एक रानी ने दूसरी नवीन रानी से कान में हंसते हुये कह कर एक आम की कोंपल को हाथ में देते हुये कहा कि तुम यह भेंट देदो उसने आकर पति के हाथ में देदी ॥ ४३ ॥

A newly wedded queen was also standing there. A queen came and giving her a mango twig, asked her to offer it as a present and she did accordingly. *(43)*

पद्य—सुत्ति सुळिदु तुंबिगळु मेले हीलिय । सत्तिगेयंते रागिसलु ॥
मत्ताकाशिनि बंदु चेंगणिगिल कायके । यित्तु कैमुगिदोजेयोळु ॥ ४४ ॥

अर्थ—एक रानी ने अपने हस्त कला कौशल से फूलों का एक गुलदस्ता तुर्रई के आकार का लाकर राजा भरत को भेंट किया ॥ ४४ ॥

Another queen presented a bouqet of flowers of a new design prepared by her own self. *(44)*

पद्य—ओलग दोळगेल्ल रच्चरिवडे मल्लि । कालते नडेदु बहंते ॥
साळु मुत्तिन तोंडेगेय तोट्टु बंदोर्व । लोलाक्षि कंडळानृपना ॥ ४५ ॥
ज्योतियंदद रत्नभूषण मैतुंबि । जोतोलेदाडलोर्वळे ॥
ज्योतीर्लोकद पेणोयेंदेने बंदु । भूतळ पतिय सारिदळु ॥ ४६ ॥

अर्थ—एक रानी मालती की बेल के समान मोती इत्यादि से सजे हुये वस्त्राभरण सहित बहुत चटक मटक के साथ और बल खाती हुई तिरछी चाल से आकर राजा भरत को नमस्कार किया अनंतर एक ओर खड़ी होगई ॥ ४५ ॥

अर्थ—शरीर में; चमकते हुये ज्योतिषयी रत्नाभूषण धारण कर एवम् उसकी प्रभा इधर उधर, जगमगाते हुये इस प्रकार जारही थी कि मानो ज्योतिलोक की एक कन्या ही आकर राजा भरत के सामने खड़ी होगई हो ॥ ४६ ॥

One beautiful queen well decorated with ornaments came with an attractive gait, bowed to the king and stood aside. The sparkling of her ornaments gave one an impression that a girl has come down from stellar regions. *(45-46)*

पद्य—सेरसि मुत्तु माणिक दोट्टु करियळु । सारि कंडलु रविगळुकि ॥
तारेगे मींबुलु सहवागि मरे होक्क । करिरुळंगनेयंते ॥ ४७ ॥

अर्थ—एक कृष्ण वर्ण की रानी इधर उधर की अन्य रानियों को हटाते हुये सूर्य को तिरस्कार करने वाले मोती और माणिक्य हाथ में लेकर तारागणों को भी लज्जित करती हुई महाराज भरत को भेंट चढ़ाई ॥ ४७ ॥

Another dark complexioned queen elbowed out her way and offered a preesnt of precious pearls and jewels. *(47)*

पद्य—गंड पेंडियु तावु निर्दोप रेंदेंडे । गोंड्ड दिव्वेगे कैय्यनिक्कि ॥
केंडव पिडिदु तंदीवंते कोट्टळु । गंड गोर्वळु माणिक्यवनु ॥ ४८ ॥

अर्थ—एक रानी ने इस भाव से कि पतिपत्नी दोनों निर्दोष हैं इसी बात को बतलानेके लिये अग्नि का टुकड़ा रख दिया, क्या ? ठीक इसी भाँति रानी ने राजा भरत के हाथ में माणिक्य मणि को प्रेम पूर्वक रख कर बगल में खड़ी होगई ? ॥ ४८ ॥

Yet another queen came and presented a sparkling diamond, fire like, to establish the chastity of husband and wife. *(48)*

पद्य—मुत्तिन मणिय नोर्वळु तंदु नृपन कै । गित्तु कैमुगिदळ तदनु ॥
ओत्ति नोळिद्द पँडिते कँडु नुडिदळु । मत्तोंद विनदडमाता ॥ ४९ ॥
वदन वदन सोंकि मुत्त कोडुवदु लो । कदोळ्ळुडु भरत चक्रेश ॥
इदु चित्र करयुग सोंकि मुत्तीवुदें । देदेयोळिनितु नगसिदळु ॥ ५० ॥

अर्थ—एक रानी मोती की माला को भरतेश्वर के हाथ में रखते हुये, हाथ जोड़कर, खड़ी होगई समीप में खड़ी हुई पंडिता (साहित्य की) ने देख कर एक विनोद पूर्ण बात कही ॥ ४९ ॥

अर्थ—पंडिता विनोद से कहने लगी कि हे राजन ! लोक में मुख को मुख से स्पर्श कर चुम्बन देने की पद्धति है, परन्तु यह आश्चर्य को बात है कि यही दोनों हाथ चुम्बन देते हैं ॥ ५० ॥

One queen placed a rosary of pearls in the hands of the Raja. On this Pandita said in jest, Rajan ! one is conversant with the custom of lips kissing lips, but here the hands are kissing hands. Is it not strange ?" *(49-50)*

पद्य—चिन्नद पुष्प वेळ्ळिय पुष्प कस्तूरि । कन्नडिगळ काणके गोट्टु ॥
चेन्नेयरेल्लरुकंडरंदाराय । रन्नन परम लीले योळु ॥ ५१ ॥

पद्य—काव रायगे कारके यिक्कि निंदुरेवन । देवियरोलैसुवंतें ॥
आ वनितेयरु निंदिद्दरु ललना । जीव मोहनन पक्कदोळु ॥ ५२ ॥

अर्थ—अनेक रानियों ने प्रत्येक प्रकार के सोने, चांदी से निर्मित पुष्पों को राजा भरत की भेंट में चढ़ाकर एक ओर खड़ी होगईं ॥ ५१ ॥

अर्थ—जिस प्रकार देवाङ्गना कामदेव को भेंट चढ़ाकर एक ओर खड़ी होजाती हैं उसी भाँति सब रानियाँ राजा को भेंट चढ़ाकर वनदेवी के समान पंक्तिवद्ध वगल में खड़ी होगईं ॥ ५२ ॥

In short all queens offered one present or another and withdrawing a little sat in rows. (51-52)

पद्य—एल्लरनीक्षिसि किरिदु होत्तिन मेले । मेल्लने कैसन्नेयिंद ॥
कुळ्ळिर वेळ्दनु भूपालना हेंग । ळेल्लरु कुळित रोप्प दोळु ॥ ५३ ॥

अर्थ—महाराज भरत ने कुछ देर के वाद पंक्ति वद्ध खड़ी हुई रानियों पर दृष्टिपात किया पुनः उन्होंने धीरे से अपना हाथ ऊँचा उठाकर सभी रानियों को वैठने के लिये संकेत किया ॥ ५३ ॥

Raja then turned his looks towards the queens and beckoned them to sit down. (53)

पद्य—मृदुतल्प दोळ गरसियरेल्ल कुळित मे । लोदवि सन्नेयळु पंडितेया ॥
चदुरू देव कुळ्ळिरिसे गायकियरो । प्पदि कुळितल सन्नेयरिदु ॥ ५४ ॥

अर्थ—वे रानियाँ इतनी चतुर थीं कि जव तक महाराज ने वैठने को नहीं कहा तव तक नहीं वैठीं थी क्योंकि पतिभक्ता उत्तम स्त्रियों की यही रीति है। संकेत मिलने पर ही सुकोमल गद्दी पर उचित रीति से सावधानी पूर्वक वैठ गईं, पास में पंडिता भी खड़ी थी, संकेत मिलने पर वह भी वैठ गई ॥ ५४ ॥

They were clever and intelligent ladies. They would not take their seats without the permission of their husband. It was only when they received the indication that they sat down in an orderly manner on the soft cushion.
The lady monitor, Pandita, also sat down on getting the order. (54)

पद्य—स्मरण मुंदित्तळरे हारिनलिदाडु । वरसंचेगळसालिनंते ॥
तरुणिय रिक्कुव चामरगळ दोंदु । सिरि योप्पितो समय दोळु ॥ ५५ ॥

अर्थ—उस समय वह कामदेव का दरबार प्रतीत होता था, और वहाँ भरत के अतिरिक्त कोई दूसरा पुरुष नहीं था। चामर ढुलाने वाली उन तरुण कामिनियों के मध्य भरत अत्यन्त सुन्दर तथा रमणीक प्रतीत होते थे ॥ ५५ ॥

It looked like cupids court. There was no other male there. Raja was sitting surrounded by beautiful ladies in blooming youth and looked extremely fascinating. (55)

पद्य—राय नोडिदनु गायकियर मोगवना। गायकियर नोट वरिदु ॥
ठाये वजावणे गयक वेसेये पाड। लयित वादरु कूडे ॥ ५६ ॥

अर्थ—इतने में राजा भरत ने गायिकाओं के मुख की ओर देखा, गायिकाओं ने राजा भरत के मन की बात जान कर तुरंत ही ताल स्वर सहित गायन प्रारम्भ किया ॥ ५६ ॥

At this stage Bharat turned his looks towards songstresses. They at once understood his wish and started their songs. (56)

पद्य—अरिदरेवव्व दोळ्रुतिदि मरि दुंबि। स्वर माडि पोरमडुवंते ॥
गरगरिकें योळु केंवाय् देरे दाळाप। विरचनेमाडिदरोसेदु ॥ ५७ ॥

अर्थ—कमल में रहने वाले भ्रमर जिस प्रकार मग्न होकर सुगन्ध लेते हुये तल्लीन होकर गुंजार करते हैं, उसी भाँति गायन कला में प्रवीण गायिकायें अपने मुख कमल को विकसित करके मग्न होकर गायन कर रहीं थीं ॥ ५७ ॥

Just humble bees hover round the lotus flower lost by the charm of fragrance, so the singers were exhibiting their art of singing with their melodious voice completely absorbed in it. (57)

पद्य—नोट रायन मेले नेनहु रागद मेले। नीट तंतिय मेळु वेरळु ॥
चाडुकातियरु चांदुसिकेय नूं किरा। घाटि के यिंद पाडिदरु ॥ ५८ ॥

अर्थ—गायिकाओं की दृष्टि राजा की ओर थी, मन गाने की ओर था तथा उनके हाथ की अँगुलियाँ वीरता की तन्त्री पर थीं ओर बड़ी सुन्दरता एवम् चतुरता के साथ गा रही थीं ॥ ५८ ॥

With eyes turned towards the king, mind attentive on the art, and fingers laid on the string of the violin, the singers were producing the songs in an expert style. (58)

पद्य—जक्क वक्किगळ्ू सूर्यन मुंदेदुगुडव । निक्कि नुणदनि माडुवंते ।।
चोक्करायन मुँदे मनद् जाड्यव नोक्क । लिक्कि हाडिदरु गाडियो ळु ।।५६।।

अर्थ—जैसे प्रातःकाल में वहुत से पक्षी सूर्य के सम्मुख आनन्द पूर्वक कलरव करते हैं वैसे ही राजा भरत के सामने मन के प्रमाद को दूर करके वे दासियां गायन करती थीं ।। ५९ ।।

Just as different kinds of birds give out pleasent sounds at the sight of sun, so the maid servants were singing with happiness in the presence of the king. (59)

पद्य—रागिसिदरु मोद ळुद्मराग वनतु । रागिसुवंते चक्रेशा ।।
आग मेलमरेंद्र सुळिदनादरे मुँदे । होगदल्लिये निल्लुवंते ।। ६० ।।

अर्थ—सवसे पहिले उन लोगों ने उदय राग को इतनी अच्छी रीति से गाया कि यदि उस समय कहीं आकाश मार्ग से देवेन्द्र भी आजाय तो वहीं ठहर जाता । इतना मनमोहक एवं चित्ताकर्षक सुन्दर गायन हो रहा था ।। ६० ।।

They sang the Udai Rag in such a melodious voice, that if at that time Devendra (Lord of celestial beings) had passed by that way, he would have stopped for a while to hear it. The song was so pleasing to the ears. (60)

पद्य—नलिदु संगीत समुद्रव होक्कु मु । क्कु ळिसिमुत्तगुळु वददोळु ।।
गळ तुँबि गानव तेगेद वायदेरे योळु । सुळुवु गाणिसिदरोजेयोळु ।। ६१ ।।

अर्थ—जैसे कोई समुद्र में डुवकी लगाते हुये मुख में मोती भर कर वाहर फेंकता हो, उसी प्रकार गाने वाली स्त्रियाँ गायन सागर में डुवकी लेते हुये अपने मुख से सुन्दर गान रूपी मोती विखेर रहीं थीं ।। ६१ ।।

Diving into the sea of music, the singers were bringing pearls like songs from inside it, and casting them from their throats into melodies. (61)

पद्य—उक्कंदवागि तुँबिद गाणरसवनु । दिक्कुदिक्किगे चिम्मुवंते ।।
चोक्क चोक्कने तानगळ तंदु कोरळल्लि । जक्कुलिसिदरु जाणेयरु ।। ६२ ।।

अर्थ—जैसे दुग्ध में उवाल आने पर वह दुग्ध पात्र के वाहर चारों ओर फैल जाता है, वैसे ही स्वर ताल संयुक्त सुन्दर गान कंठ में एकत्र हो मुख से निकल कर चारों ओर सुनने वालों को विस्तृत रूप से सुनाई दे रहा था।। ६२ ।।

Just as milk over flows the container on boiling, so the songs were flowing from the throat to the ears of the audience. (62)

पद्य—सिक्किदनल्लळु युनिद् नल्लन मुंदे । बिक्कळिसुत नुडियँते ॥
लेक्क टवने यागि कोरळु कुगिदु दनि । यिक्कुव राग रंजिसितु ॥ ६३ ॥

अर्थ—जैसे कुद्ध पति के अंक में पड़ी हुई स्त्री अपने कण्ठ को प्रकंपित करके सिसकियां भरती हैं, वैसे ही गायिकायें अपने कण्ठ स्वर को चढ़ाती हुई गारहीं थीं ॥ ६३ ॥

Sometimes they would regulate with a tremor their voice as if a woman was sobbing with a quivering voice before an angry husband. (63)

पद्य—नाभियिंदेळिसि येदेयोळो लाडिसि । शोभेय माडिकँठ दोळु ॥
आ भूप गेच्चि रागिसिदरु श्री देवि । शोभनवनु पाडुवँते ॥ ६४ ॥

अर्थ—जिस समय वह उन स्वरों को नाभिस्थान से उठाए हुये हृदय में शोभा के साथ फैलाकर पश्चात् कण्ठ से ध्वनित करते हुये वाहर निकालती थीं उस समय वस्तुतः उनका गान श्री देवी का मंगल गान प्रतीत होता था ॥ ६४ ॥

When they delivered the melodies from the throat after drawing tuem from round the navel, and passing them through the chest, it appeared as if some goddess was singing them. They were singing so sweetly. (64)

पद्य—उदय भास्कर वीटिकाधर विंवेय । रुदय भास्करन कालदोळु ॥
उदय रागदोळ्रुहन पाडिदरु ज्ञान । उदय वहँते केळ्वरिगे ॥ ६५ ॥

अर्थ—उदित भास्कर के समान विराजमान राजा भरत के सम्मुख प्रातःकाल 'उदय' रागों में भगवान आदिनाथ का स्तवन दान करके सर्व सामान्य के हृदय में ज्ञानोदय हो जाय, इस ढंग से गायन किया ॥ ६५ ॥

The praise of Lord Adinath was sung in Uday Rag for the benefit of all in the presence of the rising sun like king Bharat. (65)

पद्य—देंव गांधारि भूपाळि धन्यासि वे । ळावळि सौराष्ट्रवेंब ॥
उदय रागदोळ्रुहन नोल्दु सँ । जीवन वेनसि हाडिदरु ॥ ६६ ॥

अर्थ—देवगँधार, भूपाली, धन्याश्री, बेलावली, सौराष्ट्री इत्यादि पवित्र राग द्वारा सुन्दर गान संचारित किया, जो कि सुनने वालो को संजीवनी स्वरूप थे ॥ ६६ ॥

They sang different melodies such as Devgandhari, Bhupali, Dhanyasri, Belawali, Saurashtri, which were pleasing to the audience. *(66)*

पद्य—नेरवागुगानकेळ्ळेंदुमलगिद् । सरसतियनुजानेतन्न ॥
वेरळिंद् मिडिवंते भार दंडिगे गोर्व । तरळाक्षि मिडिदळं गुलिया ॥ ६७ ॥

अर्थ—जैसे कोई पति अपनी सोई हुई स्त्री को अंगुली से वार वार प्रेरित कर अथवा स्पर्श कर जगाता है, कि "तुम उठो २ गायन सुनो" वैसे ही गायनकर्त्री स्त्रियाँ अपनी अंगुलियों से वीणा वाद्य को सन्धियों को ईषत् घट्टना देकर सुन्दरता से बजा रहीं थीं ॥ ६७ ॥

Just as a husband wakes up his beloved by pressing his fingers against her body, so these ladies were rousing their violins into action by the play of their fingers on their strings. *(67)*

पद्य—नेरेदु निद्रे योळिद् नल्लन सुद्देसि । करेवँतगुलियिंद मिडिदु ॥
सरसके नल्लळेळिसुवँतेपाडुत । तरुणि मिडिदळु दँडिगेया ॥ ६८ ॥

अर्थ—प्रगाढ़ निद्रा में सोये हुये अपने पति को वार वार आलिंगन एवं परिरम्भण करते हुये जैसे कोई स्त्री अपनी अंगुली से उठाती है, उसी प्रकार बार बार तरुण गायिका दासियाँ अंगुलियों से वीणा को अपने सम्मुख लौटाकर आलिंगन करती हुई वीणा पर अंगुलियाँ चलाते हुये गायन कर रहीं थीं ॥ ६८ ॥

The singing girls were clasping the violins, kissing them and were playing on them with their fingers as if some lady was rousing her husband from deep sleep by kissess and pricking her fingers in his body. *(68)*

पद्य—निरस वीसँसारवेंदुनेनेदु हेसि । वेरळ मिडिवळो येंवँते ॥
नरनाथनेंद्गे काणिसिताके तँतेय । वेरळिंद मिडिद विन्नाण ॥ ६९ ॥

अर्थ—गायिकायें जिस समय वीणा तंत्री को अंगुली से संघट्टन कर रही थीं उस समय राजा भरत मन में ऐसा विचार कर रहे थे कि यह कुशल गायिका इस संसार को असार जानकर उसे प्रकट करने के लिये यह उपक्रम कर रही है, क्या ? ॥ ६९ ॥

When the the lady musicians were playing on their violins, Raja Bharat was wondering whether they were making preparations to show the instability and the transitoriness of the world.

"When they are able to charm the world with their melodies and tunes, can they not charm the celestial beings," thought Raja Bharat. *(69)*

पद्य—परमँडलव गेल्दव मोच्चे कर्मदें । वरिमण्डलव गेल्दवना ॥
स्वरमँडलदिंद पाडिदरालिसि । सुरमण्डल सोल्दुदेनिसि ॥ ७० ॥

अर्थ—जब वे स्वर ताल विधि से गायन द्वारा संसार को आकर्षित कर सकती हैं तब क्या सुरमण्डल को आकर्षित नहीं किया जा सकता है ।

पर मंडल को जीतने में समर्थ श्री भरतेश जी उस पर क्यों नहीं संतुष्ट होंगे । इतना ही नहीं, यह गायन कर्म-मंडल को भी जीतने में समर्थ है ॥ ७० ॥

Raja was very much satisfied with their art, the songs being in the praise of the Lord were capable of conquering the kingdom of the 'karmas'. *(70)*

पद्य—वाणि नुडिसुव वीणेय तंतियदु दोड्ड । नेनेंदु नगुव चालिवकेय ॥
वीणेय नुडिसुत पाडिदररुहन । वीणालापेयरोल्दु ॥ ७१ ॥

अर्थ—वे गायिकायें अपनी वीणा तंत्रस्वर और वाणी को इस प्रकार एक स्वरसे बजा रही थीं कि दोनों का भेद करना (ताल का खंडित होना) कठिन था, अर्थात् उनकी वीणा वादन और गायन का स्वर इतना अभेदमय था कि समझने वाला सहसा यह नहीं समझ सकता था कि यह गायन वाणी द्वारा होरहा है या वीणा द्वारा है ॥ ७१ ॥

The tune of the violin and the melody of their voice were in full consonance with each other. It was difficult to discriminate between the two. *(71)*

पद्य—तुंबिद संगीत रसद वल्देरे योंदु । तुंबि नुच्चिदरो यंवंते ॥
तंबुरु वीणेयोळोल्दु पाडिदरदु । तुंबु जव्वणेयरुजिनना ॥ ७२ ॥

अर्थ—उस तरुणी वाल गायिका का संगीत रस से भरा हुआ गायन इस प्रकार होरहा था कि मानो अमृत रस से भरी हुई तुम्बी को उलटकर प्रकट कर दिया, इसप्रकार सभी तन्मय होकर भगवान आदिनाथ की स्तुति कर रही थीं । वीणा और तुम्बी का वादन इस प्रकार रस मय हो रहा था ॥ ७२ ॥

The songs flowing from the throats of the blooming lasses were so me-

lodious and so sweet and so enrapturing that it appeared that as if nectar was flowing from its container. *(72)*

पद्य—किन्नरि किन्नरि विद्याधरि दरि। यिन्नवगरिणेयेनळ ॥
भिन्नाभिन्न भक्तिगळ किन्नरियिंद। विन्नाण वरिदु पाडिदरु॥ ७३ ॥

अर्थ—सुनने वाले यह कहते थे कि इनके सामने किन्नरी, विद्याधरी और अप्सराओं का क्या मूल्य है। उन्होंने भिन्न व अभिन्न भक्ति युक्त किन्नरी वाद्य से ही सभा को मोहित कर दिया था ॥ ७३ ॥

The audience was of opinion that the young singer's performance would eclipse even that of the fairies and "Vidyadharies." They were holding the audience spell bound by the songs of devotion to the Lord on 'Kinnari' instrument. *(73)*

पद्य—होंगोरळदरोळु भरतराजन शिक्षे। हेंगळवरु चेलुवेयरु ॥
संगीत मोहिसुतिदितु केळ्वरि। गिंगड लोळगे होक्कंते ॥ ७४ ॥

अर्थ—भला इसमें क्या आश्चर्य है? कि वे गायिकायें सामान्य तो थीं नहीं। भरत चक्रवर्ती के यहाँ गायन कला शिक्षण में प्रवीण हो चुकी थीं। अतः श्रोताओं को मोहित करने में कमी ही क्या हो सकती थी ॥ ७४ ॥

There was nothing surprising in it. They were not ordinary singers but had been specially coached in their art under Raja's patronage. They could certainly fascinate the audience. *(74)*

पद्य—अरुहंत देवन सिद्धर मुनिगळ। स्मरिसि चक्रेशन मनद ॥
परियि नरिदु भोग योगगळेरडनु। बेरसि हाडिदरु नीरेयरु ॥ ७५ ॥

अर्थ—प्रथम अरहंत देव का स्मरण करके बादमें सिद्ध परमेष्ठी और भी अन्य परमेष्ठियों का स्मरण किया, तदनन्तर भोग योग सम्बन्धी गायन को मिश्रित कर गाने लगीं। श्री भरतेश चक्रवर्ती गायन में भोग तथा योग जनक गायन को हृदय से रुचि करते थे अतः उनके भोग एवं योग मय गायन निम्न लिखित रूप से गाये गये ॥ ७५ ॥

The songstress first sang the praise of Lord Arhant, then offered respect to 'Siddha Bhagwan' and other Parmeshties. Then started a song in which the

Those who possess this capacity are really able and cspable. Only they can attain 'bliss' and not sensuous people. (80)

पद्य—मैसुखके मरुळागि तम्मात्मन । सय्यनरियदे भोगिपुदु ॥
उय्य केविडिदु तंदुलव बिसटुव मरु । ळय्यर मार्गवेनरते ॥ ८१ ॥

अर्थ—जो शारीरिक सुखों में उन्मत्त होकर आत्म सुख का आस्वादन नहीं करते हैं और ऐहिक सुखों में ही लगे रहते हैं सचमुच वे बहुत बड़ी भूल करते हैं। उनकी गति ठीक वैसी है जैसे कोई पागल तुष (भूसी) को इकट्ठा करके तन्दुल (चावलों) को फेंक देता है उसी प्रकार अज्ञानी भी आत्मरूपी अमृत सुख को छोड़कर विषयेन्द्रिय सुख को ग्रहण करता है ॥ ८१ ॥

Those who lose themselves in the enjoyment of sense pleasure and do not taste spiritual bliss, commit serious blunder. They act like a mad man, who preserves the husk and throws away the rice. (81)

पद्य—ईगुण वागुण वेकेन लेकात्म योग । विडिद भोगिगळिगे ॥
होगेवेंदरे होग देयुतरुतिहवु म । हा गुण गळुतम्म तावे ॥ ८२ ॥

अर्थ—लोक में असमर्थ पुरुष गुणों की प्राप्ति के लिये बहुत प्रयत्न करते हैं जैसे मुझे विद्या धन, शक्ति विपुल ऐश्वर्य आदि अमुक गुण चाहिये और इनके लिये प्रयत्न शील हो दौड़ करता है फिर भी इन गुणों की प्राप्ति नहीं होती है। परन्तु आत्म योगी पुरुषों से ये गुण धक्का देने पर भी अलग नहीं होते हैं प्रत्युत ये गुण उस योगी महात्मा की शरण में स्वमेव आश्रय पाने के लिये आते हैं ॥ ८२ ॥

Incapable person in this world make all possible efforts to gain material acquisitions, wealth property, fame etc., but the latter eludes them. In the case of spiritual persons whe have realized their souls, such wordly possessions fly toward and cling to them (like iron filings to a magnate) (82)

पद्य—परुपद मणियोंदु कैय्योळुळ्ळव गेल्ल । सिरिगळु तावे बंदिरवे ॥
परवम्म दनुभव रोंदुळ्ळ दवरिगे । दोरकद दोड्डितोंदुंटे ॥ ८३ ॥

अर्थ—जिसके हाथ में पारस या चिन्तामणि रत्न है उसे संपत्ति को प्राप्त करने में क्या कुछ कठिनता होगी उसी प्रकार जिनके हाथ में आत्मानुभव रूपी रत्न आगए हैं उसके लिये कौन से पदार्थ दुर्लभ हैं अर्थात् तीन लोक की सम्पदा उनकी मुट्ठी में है ॥ ८३ ॥

A man who possesses chintamani-jewel or 'Paras' stone can have no difficulty in attaining the wealth of his desire. Similarly nothing in the world can be too difficult for a man who possesses the jewel of self realization. (83)

पद्य—भव भव तप्पदे भोगवहुदु मूरु । भव नाल्क भव हत्तु भवके ॥
भवकेट्टु कैवल्यसुख वहुदात्मनु । भवकेणेयह भाग्यवुंटे ॥ ८४ ॥

अर्थ—जिसने आत्मानुभव को प्राप्त किया है उसे भव भव में सांसारिक योग मिलेंगे । तीन भव, चार भव, या दस भव अथवा जब तक संसार में रहेगा तब तक भोग बराबर मिलते ही रहेंगे बाद को संसार का अनश्वर केवल ज्ञान को प्राप्त करेगा, किन्तु यह महाभाग्य कैसे प्राप्त होगा । इसके लिये ही लोग प्रयत्नशील होते हैं । क्या इस आत्मानुभव की बराबरी कर ने वाला महा भाग्य कोई और है ? नहीं । वह (आत्मानुभवी ही) सबसे बड़ा भाग्यशाली है और सबसे बड़ा श्रीमन्त है ॥ ८४ ॥

A person, who has acquired the knowledge of his soul and realized its existence within himself, will get worldly enjoyments in birth after birth and as long as he remains in the mundane wondering and in the end will attain omniscience. No fortune is bigger than the fortune of self realization. The realizer of the soul is the luckiest man of all. (84)

पद्य—अमर लोकदोळु पुट्टिदनादरमरर । अमे गोळिसुव चेल्वनहनु ॥
गमिसि भूलोक दोळगे हुट्टिदरे रति । रमणनागुव नात्म रसिक ॥ ८५ ॥

अर्थ—वह आत्मानुभवी यदि स्वर्ग में उत्पन्न होता है तो देवों को भी आश्चर्य पैदा करने वाले सौन्दर्य को प्राप्त करता है यदि मृत्यु लोक में जन्म लेता है तो कामदेव सदृश सौन्दर्य प्राप्त कर जन्म लेता है ॥ ८५ ॥

Such a person, if born in heavens, acquires beauty surpassing the beauty of all other celestial beings. If born in the middle world, he acquires physical charms more attractive than Cupid. (85)

पद्य—तानोंदु बयसनु तन्न बयसि तन्न । ताने बरुवुदु सौभाग्य ॥
एनोंदु नेनेयनु तन्न नेनेदु लोक । जानिसु तिहुदात्म रतना ॥ ८६ ॥

अर्थ—स्वयं वह कुछ नहीं चाहता है परन्तु सौभाग्य आदिक तो 'मैं पहिले' 'मैं पहिले' इस

प्रकार उत्साहके साथ आश्रय प्राप्ति हेतु स्वमेव आ जाते हैं। वह सौभाग्य की इच्छा नहीं करता है बल्कि स्वमेव सौभाग्य उसके पास आता है। आत्मरसिक के मन में लोगों की चिन्ता नहीं रहती है फिर भी सब लोग उसकी चिन्ता करते हैं, लोक की ओर उसका उपयोग ध्यान नहीं होता है। परन्तु आश्चर्य है कि लोगों के विचार में सदा उसी का ध्यान रहता है ॥ ८६ ॥

He has no desire for any of the worldly possessions, but they dog his heels one after another. He does not care for good luck, but the luck invariably favours him. He does not care for people, but still has a place in their hearts. *(86)*

पद्य—सुळिद मात्र दोळु मानिनियर हृदयद । सुळुह काण्बनु भावितात्म ॥
सुळिगुरुळिन सोवगेयर तन्नय सुत । सुळिदाडिसुवनु सोलदोळु ॥ ८७ ॥

अर्थ—जो आत्म विवेकी है, वह आती हुई किसी स्त्री के हृदय की बात तत्काल समझ लेता है जो स्त्रियाँ पुरुषों को फंसाने में प्रवीण हैं, उनको हटाकर वह उन्हें अपने पीछे पीछे ही फिराता है परन्तु उनकी ओर उसकी उपेक्षा ही रहती है ॥ ८७ ॥

One, who has realized his soul, can read the mind of a woman on her approach. He does not give her any encouragement. Although she follows him continuously, he remains indifferent towards her. *(87)*

पद्य—नसुनगेयिंद हेंगळ नोडि जुम्मेन । लोसरि सुवनु करणगळा ॥
वेसुगे यादतिद् वेरुपट्टिह नात्म । रसिकनोळग वल्लवरारु ॥ ८८ ॥

अर्थ—उसके किंचित् मन्द हास करने मात्रसे ही उन स्त्रियों के हृदय में अपार आनन्द उत्पन्न होता है परंतु उन स्त्रियों को यह पता नहीं है कि आत्मारसिक की इन्द्रियाँ और आत्मा अलग २ हैं वह इन्द्री से हंसता है आत्मा से नही उसकी आत्मा को बाहरी बात सुनाने वाले कौन हैं ॥ ८८ ॥

A little smile on such a man's face excites a current of joy in the woman's heart, but she knows not that the senses of such a man are quite different from his soul. He laughs through his material senses, not through his innerself. No external thing can affect his soul. *(88)*

पद्य—मुग्धेगे मोहन कलेगळ कलिसि वि । दग्धेय येनिसुव नोम्मोम्मे ॥
मुग्धेयेनिसि मौन गोळिसुव नोम्मे वि । दग्धेय नुडिजाण्मे यिंद ॥ ८९ ॥

सरसवनाड नाडि दनादरदरल्लि । विरसव मोळ्देदोरलीसा ॥
परवश गोळिसुवनंगेनेयर तन्न । परिणति येच्चरागिहुदु ॥ ६० ॥

अर्थ—कभी कभी वह आत्म ज्ञानी, मुग्धा स्त्री को मोहन कला (मोहनीय विद्या) सिखाकर उसे विदग्धा (चतुर) बनाता है । कभी कभी उस चतुर स्त्री को भी अपने वचन चातुर्य से मुग्धा बना देता है, किसी समय वह मौन-सा रहता है ॥ ८९ ॥

अर्थ—वह स्त्रियों के साथ विशेष रूप से सरस हास्य आदि करने को उद्यत नहीं होता है। कदाचित् किसी समय वह वैसा करे तो उसमें विरसता को भी आने नहीं देता है उस हास्यालाप से वह उन स्त्रियों को अपने वश में कर लेता है इतना सब होते हुये भी अपनी प्रणति में वह प्रमाद नहीं करता है । उसमें बहुत सावधान रहता है यही उसकी विशेषता है ॥ ९० ॥

At times he might talk in a light hearted manner and might with his courteous conversation infatuate the fair sex, but this is all on account of the social decorum and decency. In the heart of hearts he understands his position. He can not allow himself to be led away and fall down from the spiritual pedestal he has attained. *(89-90)*

पद्य—मुनियनु मुनियलोसनु सटेगोंदिष्टु । मुनिदनाद नादरे कूडे तिळ्वा ॥
तनिवाल कासि दांतिहुदात्म रसकिन । अनुभव कुलसतियरोळु ॥ ६१ ॥

अर्थ—वह किसी के प्रति क्रोधित नहीं होता है, एवम् क्रोध क्या है, वह जानता ही नहीं उसे वैसी इच्छा भी कभी नहीं होती है यदि वह कुछ क्रोधित भी हो जाताहै तो उसी समय उसे भूल जाता है और ज्ञान प्राप्त कर लेता है जिस प्रकार गर्म किया हुआ पानी जल्दी ठंडा हो जाता है, उसी प्रकार यदि उसे थोड़ी कषाय (विकार भाव) आ जाय तो वह तत्काल शान्त हो जाता है ॥ ९१ ॥

He does not indulge in anger towards any person. In fact he does not know what anger is, nor he feels any inclination for it. Even if he feels any irritation or excitement, he forgets it immediately and realizes his mistake. Just as hot water cools down soon, so such a person resumes his normal condition quickly after the excitement of passion in his thought activites. *(91)*

पद्य—नोडे पट्टडेयोळु नखदंत हतिगळ । माडनुकल्लेयागुवंते ॥
माडिदरोंदि निसुंटो येल्लवो येंत्र । गाडियोळंकिसि त्रिड्डवा ॥ ६२ ॥

अर्थ—वह स्त्रियों के साथ प्रेम व्यवहार करे तो नखहत दंतहत की तरह विशेष आसक्त नहीं होता, कदाचित् करे तो दूसरों को वह उसकी कृति है या नहीं यह भी मालूम नहीं होसकता ॥९२॥

If he shows a little affection towards ladies, he does not get infatuated and even if strays into that condition other persons can not realize it. (92)

पद्य—आस्य कंठगळल्लि कलेय नंकिसनदु । हास्यवेंदात्म विज्ञानि ॥
लास्यवनाडि दददोळोंदु मिक्क र । हस्य देडेयोळरिविङ्गा ॥ ९३ ॥

अर्थ—कण्ठ मुख से हास्य भी करता है और उनके साथ अनेक प्रकार की विनोद पूर्ण कलायें भी करता है परन्तु इतना करने पर दोषास्पद न होकर आत्माभिमुख हो जाता है ॥ ९३ ॥

He might enjoy company of fair sex, might laugh heartily with them, might indulge in other pleasent tricks, but he does so as a matter of routine without his soul in it. (93)

पद्य—प्रणय कलहव माडनु हेंगळोडने सं । दणिसि तानोम्मे माडिदरे ॥
क्षणदोळ् निलिसि गंभीर दोळिहनु ल । क्षणविदु निरघ भोगिगळ ॥ ९४ ॥

अर्थ—वह स्त्रियों के साथ प्रणय कभी नहीं करता है यदि कदाचित् क्षणभर के लिये करे भी तो तत्काल ही गम्भीरता से अरुचिवान हो जाता है यही निष्पाप भोगी का लक्षण है ॥९४॥

He does not indulge in coition with ladies and even if he does so for a moment, he becomes indifferent atonce. This is the attribute of a saintly person. (94)

पद्य—मान तप्पदे निच्च गंभीर तप्पदे । तानु नडेवनु तन्नंते ॥
माननियरु नडेवरु करिणिगळोळ । गानेयिद्दंतिहुदाट ॥ ९५ ॥

अर्थ—स्वयं अपने गौरव गम्भीरता आदि गुणों का ध्यान रखकर वह आत्म विवेकी यथोचित व्यवहार करता है, और अपनी स्त्रियों से भी अपने समान आचरण कराता है, उसकी लीला ठीक वैसी ही है जैसे कोई हाथी जँगल में हस्तिनियों के बीच में रहकर क्रीड़ा करता हो ॥ ९५ ।

His conduct towards his wife or wives is regulated with his own position and consideratness and he makes his life partners to deport themselves in the same manner. His action is just like that of an elephant towards his mates. (95)

पद्य—ओव्बळ मेले तनगे सोलविंद्रु दुव्व । गोगिसनदनुडिदु ॥
ओव्व पुरुष नोव्वसति योळिप्प तिह । नुव्वस विल्लदेल्लरोळु ॥ ९६ ॥

अर्थ—यदि किसी एक स्त्री के प्रति उसका (राजा का) विशेष प्रेम भी हो तो वह उसे किसी पर प्रकट नहीं करता है। अर्थात् एक पुरुष एक स्त्री के साथ जिस तरह रहता है, उसीतरह अनेक रानियों के साथ समभाव से रहते हैं ॥ ९६ ॥

If he loves one wife more than others, he makes sure that they do not get wind of it. His external treatment towards all of them is the same. There is no discrimination. *(96)*

पद्य—ओलिसुव नोलिव नंगणेय रिच्चेय निच्च । सलिसुव नानंदिसुवनु ॥
कलिसुव नोजेय तन्न मै वळियोळु । निलिसुव ननुभव सिद्धा ॥ ९७ ॥

अर्थ—स्त्रियों का आकर्षण भी करता है, उनसे प्रीति भी करता है, उनकी इच्छा पूर्ति भी करता है एवम् उनमें आनन्द भी उत्पन्न करता है तथा उन्हें हर तरह की नीति रीति भी सिखाता है और बीच बीच में अपने आत्मानुभव को सिद्ध करता रहता है ॥ ९७ ॥

He excites love in his wives, shows affection towards them, and satisfies them with pleasantness. At the same time he teaches them every kind of right conduct and behaviour. *(97)*

पद्य—सिक्कदं तिहनु सिक्कनु रतिसुखदल्लि । सोक्कि दं तिह नल्लि सोक्का ॥
ठक्क रं तिहनु ठक्कल्ल निजव कं । डिणक्कि कंडवण लीलेयदु ॥ ९८ ॥

अर्थ—वह आत्म ज्ञानी बाह्य में बहुत से झंझटों में फंसा हुआ देखने वालों को मालूम होता है परन्तु यथार्थमें वह किसी में फंसा हुआ नहीं है। वह काम सेवनमें मग्न मालूम होता है वास्तव में वह कभी भी मग्न नहीं होता। उसका आचरण चतुर ठग के समान मालूम होता है किंतु वास्तव में वह ठग नहीं है जिसने स्वात्मानुभव किया है उसकी यही लीला है। अन्तरंग में अन्य रूप एवम् बाह्य में अन्य रूप होने पर भी आत्मकल्याण का साधक होते हुये वह मायाचारी नहीं है ॥ ९८ ॥

To other persons he looks occupied in numerous worldly activities, but in fact it is not so all. He appears to be engrossed in sense pleasures, but in reality the position is different. His conduct looks like that of an expert thug, but in fact he is not a cheat. This is the normal conduct of one who has

realized his soul. Inspite of the difference between his external conduct and internal thought acttvities, he is not a cheat since his attention is always fixed on his soul. *(98)*

पद्य—दुर्गदंतोम्मे ग्रामगळंते हूविन । क्रूगणेयंतिहनोम्मे ॥
स्वर्गवे पुरुप नादंते हेंगळ्गि सं । सर्ग सुखव तोरुतिहनु ॥ ९९ ॥

अर्थ—कभी तो वह दुर्ग के समान बनता है और कभी ग्राम समान बनजाता है एवम् कभी वह पुष्प वाटिका सदृश होजाता है । जिस समय वह स्त्रियों के संसर्ग में सुख का अनुभव करता है उस समय ऐसा मालूम देता है कि साक्षात् स्वर्ग ही उपस्थित हो ॥ ९९ ॥

He is sometimes like a fort, at others like a town, or village, and sometimes like a garden of flowers.

Note—For wicked ladies, he is a fort invinciable, to good ladies he is like a town allowing them the entrance to his society and to his mates he is like a garden of flowers. *(99)*

पद्य—बालक रोडनोव्व जंव्वनिगनु सर । साळापव माडुवंते ॥
लोलाक्षियरोडनाडुतिहनु तन्न । लीलेयिहुदु बेरे बेरे ॥ १०० ॥

अर्थ—जिस प्रकार कोई युवा मनुष्य बालकों के साथ सरस व्यवहार, वार्तालाप विनोदादि करता है परन्तु वह थोड़े ही समय के लिये होता है उसी प्रकार यह आत्म ज्ञानी उन रानियों के साथ विनोद, परिहास आदि करता रहता है फिर भी उनके मन की विचारधारा भिन्न रहती है और अपने स्वभाव को नहीं भूलता है ॥ १०० ॥

A grown up person plays with the children, talks to them, and enjoys their company, but he does not forget his own position. In the same way a man, who has acquired the knowledge of soul, indulges in the company of his better half, but his thought and activities flow in a different channel and he does not forget his real nature. *(100)*.

पद्य—पट्टणवासि गरूरुग रोडनोंदु । वट्टेयोळगे होगुवाग ॥
सट्टाट वाडुत होहंते मोहद । तिट्टे विहुदु मोचरतन ॥ १०१ ॥

अर्थ—जैसे नगर वासी चतुर लोग ग्रामीणों के साथ अनेक प्रकार से विनोदानन्द करते हुये कहीं जा रहे हों, उसी प्रकार मोक्ष को जाने वाले इस पथिक के लिये (यह मोह लीला है) ऐसा समझते हुये वह मोक्ष मार्ग में रत रहते हैं ॥ १०१ ॥

This pilgrim on his way to 'Moksha' realizes that all these objects of sense enjoyments are a pure and simple delusion. He plays with them and proceeds on his way, just as clever travellers from city while on their way to their destination enjoy the company of simple villagers. (101)

पद्य—मार्गवेल्लेंवंते तोर्पुदन्निरिगे स । न्मार्ग दोळ्वनिरुतिहनु ॥
आर्गे तिळिय बहुदात्म विज्ञानियं । तर्गतवनु जिनबल्ल ॥ १०२ ॥

अर्थ—बाहर से जो लोग उसका व्यवहार देखते हैं उनको ज्ञात होता है कि यह नीति मार्ग नहीं है, यह मार्ग च्युत है। परन्तु वस्तुतः वह सन्मार्गी ही रहता है। आत्म ज्ञानी की गति बहुत विचित्र है उसके मन की बात कौन जान सकता है! उसके हृदय को जिनेन्द्र भगवान ही जानने में समर्थ हैं ॥ १०२ ॥

People, who see his external conduct, feel that he is not following the correct principles, but has fallen from his path. But in reality he has not deviated from his path. His ways are strange and different from the ordinary. On y omniscient Jinendra knows what passes in his mind. (102)

पद्य—गूळि नडेव हज्जे तोरुवुदल्लदे । गाळियहज्जेतोरुवुदे ॥
जाळुगळोळ्गु गाणिसुवु दल्लदे । तत्व शील नोळग काणवरारु ॥ १०३ ॥

अर्थ—रास्ते में चलते हुये, हाथी, घोड़े, बैल, भैंस आदि के पद चिन्ह पृथ्वी पर दिखाई देते हैं परन्तु हवा का पद चिन्ह किसी ने देखा है और पहिचाना सकता है क्या ? नहीं। इसी तरह सामान्य मनुष्य की चित्त प्रवृत्ति को जानते हुये, आत्म विज्ञानी के हृदय को जानना साधारण बात नहीं है ॥१०३ ॥

The foot prints of elephants, horses, bullocks, buffaloes etc. can be seen on ground, they have trampled across, but no one can see the impression of air which traverses all round.

In the same manner we can understand the nature of thought activities and action of an ordinary individual, but it is not possible to gauge the depth of the thought activities of a person who has realized his soul. (103)

पद्य—इदु नम्म भरत चक्रेशन नडेयल्ल । दिदरोळिन्नरसिदरिल्ल ॥
अदु तानु पूर्वदोळात्म भावनेय मा । डिद फलवेंदुहाडिदरु ॥ १०४ ॥

अर्थ—वे गायिकायें कहने लगीं कि जो हमारे भरत चक्रवर्ती की दिनचर्या है यह बात अन्यत्र नहीं पाई जायेगी । परन्तु भरत में ही ऐसी प्रवृत्ति की प्राप्ति क्यों हुई ? उन्होंने पूर्व जन्म में स्वात्मानुभव का मनन किया था उसी का यह फल है, इसलिये वे आज आदर्श पुरुष कहलाते हैं ॥ १०४ ॥

The songstresses sang that the above extraordinary thought activities were found in their Raja Bharat alone. But how did he manage to acquire them, questioned they.

The answer was that he had practised self contemplation in his previous birth and earned them as its fruit. That is why Raja Bharat is called an ideal man. *(104)*

पद्य—कोट्टनवर करेदुङुगोरेगळ नेंदे । दट्टि हाडिदिरि लेसेंदा ॥
पट्ट वर्द्धनन काल्गेरगि बीळ्कोंडव । रोट्टणेयागि कुळितरु ॥ १०५ ॥

अर्थ—उपयुक्त विषय को गायन रूप में सुनकर राजा भरत को बड़ा आनन्द हुआ उन्होंने उसी समय उन गायिकाओं को पास बुलाकर उन्हें दिव्य वस्त्राभूषण आदि पारितोषिक प्रदान करके पुरस्कृत किया उसके बाद पट्ट वर्धन सार्वभौम सम्राट राजा भरत को नमस्कार करके वह गायिकायें एक तरफ़ बैठ गईं ॥ १०५ ॥

Raja Bharat was very much pleased to hear the songs on the above subject and gave the singers precious rewards of costly clothes and ornaments. The songstresses then bowed to their mighty king and took their seats. *(105)*

पद्य—सरसिजगळु वळसिरे नट्ट नडुवे तो । पर संचियंते राजेंद्र ॥
अरसिय रोलग नोळगिद निन्निगु । प्यरिगेय संधि सुगंधि ॥ १०६ ॥

अर्थ—चारों ओरसे सुन्दर कमल पुष्पों द्वारा घिरा हुआ एवम् कमलोंके मध्यमें बैठा हुआ ब्रह्म जिस प्रकार शोभित होता है । उसी प्रकार महाराज भरत उन स्त्रियों के बीच में बैठे हुये सुशोभित हो रहे थे ॥ १०६ ॥

Surrounded by his queens Raja Bharat looked like Brahma seated with lotus flowers all round him. (106)

पद्य—ई जिन कथेयनु केळ्दिवर पाप। बीज निर्नाशनवहुदु ॥
तेज वहुदु पुण्य वहुदु मुंदोलिदप। राजितेश्वरन काणुवरु ॥ १०७ ॥

अर्थ—इस कथा को श्रद्धा के साथ भाव पूर्वक जो लोग सुनेंगे उनका पाप रूपी बीज नष्ट होगा और पुण्य वृद्धि होगी। भविष्य में शीघ्र ही अपराजित पद को देखेंगे ॥ १०७ ॥

Those person who will hear this glory of Raja Bharat with rapt attention will destroy the seeds of their sins, will get all the happiness and in the end attain un-conquerable position (liberation). (107)

पद्य—प्रेमदिंदिद नोदिदरे पाडिदरे केळ्द। रामोद वैदुवरवरु ॥
नेमदि सुररागि नाळे श्रीमंधर। स्वामिय काणब रतिंयोळु ॥ १०८ ॥

अर्थ—इस कथा को जो प्रेम से पढ़ेगा और सुनेगा वह आमोद को प्राप्त होगा एवम् विनय से स्वर्ग को प्राप्तकर कल या परसों श्रीमन्दर स्वामी का दर्शन करेगा ॥ १०८ ॥

Those who will read this with attention recite it wi h devotion will have the "darshan" of Simandhara Swami. (108)

पद्य—शरणागत वज्र पँजर सहजा। भरणा सुखोज्वल किरणा ॥
शरणागु नन्नँत रँग दोळिरु भव। हरणा चिदम्बर पुरुषा ॥ १०९ ॥

अर्थ—सम्राट भरत को इतना वैभव और कीर्ति क्यों प्राप्त हुई ? वह इस प्रकार की भावना में रत रहते थे कि हे आत्मन्! संसारके भय से दुःखी जो कोई प्राणी तुम्हारे पासशरणागत होकर आवे। उसकी रक्षा करने के लिये तुम वज्र के पिंजड़े के समान हो, जिसे कोई नष्ट नहीं कर सकता है। तुम स्वाभाविक आभूषण से युक्त हो अतएव सहज ही सुन्दर हो, अनंत सुख तुम में है तुम उज्वल ज्ञान ज्योति धारक हो इसलिये मेरी रक्षा करने में तुम सर्वथा समर्थ हो। अब मेरी रक्षा करो, मेरे हृदय में रहो। हे आत्मन ? सचमुच में तुम संसार का नाश करने वाले हो। इसलिये मुझे भी उसी सिद्धि की ओर ले जाओ। इस प्रकार सतत भावना के कारण सम्राट् भरत ने असाधारण वैभव को प्राप्त किया था। हे भव्य जीवो ! तुम भी इस ग्रन्थ को मनन करके राजा भरत के समान स्वात्मानुभवको प्राप्त करो। इस प्रकार सभी भव्य जीवों को तथा आत्महितेच्छुओं से प्रेम पूर्वक श्री देशभूषण मुनिराज कहते हैं ॥ १०९ ॥

Raja Bharat attained this splendour and because he was always contemplating on the attributes of Atma (soul). Those who take shelter under the care of Atma are protected from the miseries of the world. Soul in its natural form possesses infinite beauty, bliss and omnisciences. Soul is the destroyer of the cycle of birth and death.

May its right knowledge repose in my heart. (109)

॥ इति राज सौधान संधि प्रथमः भागस्य पंचमः सर्गः संपूर्णम् ॥



षष्ठम सर्गः

❀ राज लावरय संधिः ❀

पद्य—नोडि नोडद नुडिदाडि नुडिय देडे । याडि नडेयद महात्मा ॥
कूडे कूडेनेगे चित्कलेय बेळगनुंडु । माडु चिदंबर पुरुषा ॥ १ ॥

अर्थ—देखते हुये भी न देखने वाले, बोलते हुये भी न बोलने वाले चलते हुये भी न चलने वाले हे महात्मन्! आपने प्रकाश में आप रहते हुये अपने चित्कला को हमेशा प्रकाश करने वाले, हे चिदंबर पुरुष सिद्ध भगवान्! अर्थात् चिदानंद स्वरूप मय सिद्ध परमात्मन् मेरे अन्दर हमेशा रह कर मेरे को प्रकाश करो ॥ १ ॥

In different to the activities of the world, and glowing with the light of knowledge.

May Siddh Bhágwan Chidamber Purush bestow light to my innerself. (1)

पद्य—पेंडिरोलग दोळ्गभिनव कुसुम को । दंडना नृप नोप्पुवाग ॥
पंडिते योडनोर्व गायकि किविगच्चि । कोंडु नुडिदळोंदु माता ॥ २ ॥

अर्थ—जब राजा भरत अन्तः दरबार में बहुत वैभव के साथ विराजमान थे तब उस समय एक गायिका ने पंडिता के कान में मुंह लगाकर कुछ बात कही ॥ २ ॥

When Raja Bharat was sitting in the inner court of his palace invested with glory, one songstress whispered something into the ears of Pandita. (2)

पद्य—गरगरनेद्दळु पंडिते कैमुगि । दरस विन्नह वेंदु नगुत ॥
सरस लीलेय दोंदु होस काव्य चुंटव । धरिस बेकेंदळुविनोळु ॥ ३ ॥

अर्थ—पंडिता ने एक दम उठकर हंसते हुये हाथ जोड़ कर राजा से कहा, हे स्वामिन् मुझे आपसे एक प्रार्थना करनी है । आशा है आप आज्ञा देंगे । भरत जी ने आज्ञा देते हुये कहा अच्छा कहो । पंडिता कहती है आप की सेवा में एक नवीन काव्य उपस्थित करना चाहती हूँ कृपया आप उसे सुनने का कष्ट करें ॥ ३ ॥

Pandita atonce turned her face towards the Raja, smiled, and submitted with folded hands, "Sire, I have to make one request. I hope your Majesty

will be graciously pleased to concede it". The king ordered his assent. Pandita said, "I have to present a new poem, please let it be heard". (3)

पद्य—आरु पेळ्दिरदनार वर्णनेयदु । आरु मत्ता होस कृतिया ॥
आरैदु तिद्दिदरेंदु केळ्दिदनु चि । चार संमुख कार्य कुशला ॥ ४ ॥

अर्थ—चतुर भरत ने कहा कि उस काव्य को किसने रचा है उसमें किसका वर्णन है, उस नवीन कृति का संशोधक कौन है ॥ ४ ॥

The intelligent Emperor said, "who is the author of that poem please? Whose description is given in it?" (4)

पद्य—पररु सुरिदुदल्ल परर वर्णनेयल्ल । पररु तिद्दुव दचरिल्ल ॥
अरस निन्नरमने योळ्गाद कृति निन्न । चरित नीनेतिद्वेकु ॥ ५ ॥

अर्थ—हे राजन्! किसी दूसरे ने उसकी रचना नहीं की है और न उसमें किसी दूसरे का वर्णन है अन्य कोई उसके योग्य नहीं है।

हे राजन्! वह रचना आपके महल ही में रची गई है और उसमें आपका ही वर्णने है उसमें आपही संशोधन करें अन्य कौन कर सकता है, यही दासी की प्रार्थना है ॥ ५ ॥

"Rajan", replied Pandita, "no outsider has prepared it, nor it contains the description of anybody else except yourself and none else is fit for it. (5)

पद्य—अरमने योळ गादुदेंदरारेंदु नि । र्धरिस बहुदु होस कृतिया ॥
विरचिसि दाकेय हेसर हेळेंदनु । दरहासदिंदभूवरनु ॥ ६ ॥

अर्थ—राजा भरत हंसते हुये कहने लगे कि महल में जो नवीन रूप से रचना रची गई है, उसके नाटकीय पात्र कौन हैं एवम् रचना करने वाले का नाम तो बताओ। इस प्रकार मन्द हास्य के साथ राजा भरत बोले ॥ ६ ॥

Raja said smilingly, "who is the hero of that new drama and please let me hear the name of the author". (6)

पद्य—अरगिळि योडनोलदु कुसुमाजियरु निन्ने । सरसदि नुडिदाडलदनु ॥
नेरमने योळ्गिद सुमनाजियरु केळ्दु । चरिते माडिदरवनीश ॥ ७ ॥

अर्थ—हे राजन्! महल में जो 'कुसुमा' जी रानी ने विनोद के साथ अपने मन की बात

तोते से कही उसे पड़ोस में रहने वाली 'सुमना' जी रानी ने सुना और चरित्र के रूप में उसकी रचना की ॥ ७ ॥

Rajan, while queen Kusumaji was pouring out her thoughts from her heart before a parrot in her palace, Sumnaji, her neighbour heard it and gave it the shape of a story. *(7)*

पद्य—सुमनाजियर निळ्यके निन्ने बिनदकें । दमराजियरु नडेतंदु ॥
अमृत वाचक नेंब गिळियोड नाके सं । क्रिमिसि नुडिवुद केळिदरु ॥ ८ ॥
कुसुमाजि नुडिदंद चन्नायतु सुमनाजि । होस कृतिय माडु नीनदनु ॥
ओसेदानु बरेवेनेंदमराजिबरेदुपे । ळिसिद काव्यव केळु राय ॥ ९ ॥

अर्थ—कल सुमना जी रानी के महलमें लीला विनोद के लिये 'अमरा' जी रानी आई हुई थीं तब दोनों रानियों ने उस बातचीत के सिलसिले को जोड़ कर चरित्र का रूप दे दिया ॥ ८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! अमरा जी रानी से सुमना जी रानी कहने लगीं कि कुसुमा जी ने जो कुछ कहा, बहुत अच्छा कहा, तुम उसकी रचना करो, मैं उसको अच्छी तरह लिखती जाती हूं ॥ ९ ॥

What exactly happened was that yesterday Rani Sumnaji had come to visit Kusumaji for the sake of enjoyment. At that time Kusumaji was talking to the parrot on the most interesting topic. The two queens then gave the conversation the shape of a story.

Amraji another queen who had also come to see Kusumaji, then said, to them "Whatever Kusumaji has said is simply beautiful. You weave it into a story and I shall write it down properly." *(8-9)*

पद्य—आदरागलि नीनु कुळ्ळिरु काव्यव । नोदिसेंदनुनरनाथ ॥
ओदलुञ्जु,गे,से पुस्तकव नांतोर्व त । ळदोरि कुळितळिदिरोळु ॥ १० ॥

अर्थ—फिर राजा ने कहा, कुछ हर्ज नहीं है, ठीक है जिसने रचना की है तुम उनसे यहां बुलाकर हमारे सामने पढ़वाओ । तब पंडिता ने उनका हाथ पकड़कर बैठाया, और कहा कि आप इसे सुनें । भरत जी ने कहा अच्छी बात है मैं इसे सुनूंगा, किसी से भी सुनवाओ और तुम बैठी रहो । तब पंडिता कुसुमाजी का हाथ पकड़कर लाई और हाथ में पुस्तक देकर उनको बैठाया तथा स्वयं बैठ गई ॥ १० ॥

Raja said, "Does not matter Pandita. Please bring here the person who

is the author of this play and let her recite it before me". "Well Rajan", said Pandita, "Kindly just wait for a moment".

Then Pandita caught hold of Kusumaji's hand and brought her before Bharat, gave the book in her hands, and sat down. *(10)*

पद्य—थिगिल नेद्दळु कुसुमाजि केय्यगे दिंदु । हगलोंदु नोंपियुंटेनेगे ॥
सुगुत निवासके पोपनेंदळु राय । नगुत नुडिदनाकेगितु ॥ ११ ॥

अर्थ—इतने में उस सभा में स्थित कुसुमा जी रानी एक दम उठी और झूठ मूठ राजा भरत से कहने लगी कि आज दिन में मेरा एक 'व्रत' विधान है अभी मुझे मन्दिर में जाना है अतः अब तो मैं जाऊँगी, ऐसा कह कर जाने लगीं ॥ ११ ॥

Suddenly Kusumaji got up and cunningly said to the Raja, "I have some function to perform in connection with my fast for which I have to go to the temple". So saying she started to go away. *(11)*

पद्य—लेसाद्तु होगु कंकण वेडवे नोंपि । गी सुवर्णद्कंकणवनु ॥
को सुम्मनेके होदपे पिडियेंदु वि । लासदि कय नीडिदनु ॥ १२ ॥

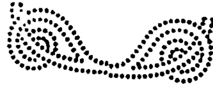
अर्थ— अच्छा तो जाओ, इतने में महाराज हंसते हुये कहने लगे कि अच्छी बात है, तुम जासकती हो । परन्तु तुम्हारे व्रत विधान की निर्विघ्न परिपूर्णता के लिये वह स्वर्ण कंकण देना है लेती जाओ, चुप चाप क्यों जाती हो, इसे ले जाओ इस प्रकार कह कर अपना हाथ आगे बढ़ाया ॥ १२ ॥

"Very well, you can go", said the Raja, "but before you go please take this gold bangle for the successful termination of the function". He then extended his hand towards Kusumaji. *(12)*

पद्य—निजवेंदुरायन करद कंकणके वा । रिज मुखि कै नीडिदळु ॥
गज तन्न करणीय कर पिडिवंते भू । भुज पिडिदनु कैयनवळ ॥ १३ ॥

अर्थ—तव कुसुमा जी इस बात को सच समझकर पास में आई एवम् कंकण लेने के लिये आगे हाथ बढ़ाया, इतने में हाथी जिस प्रकार अपनी हथिनी की सूँड को पकड़ लेता है उसी प्रकार राजा भरत ने अपनी रानी के हाथ को पकड़ कर खींच लिया ॥ १३ ॥

Raja succeeded in befooling Kusumaji, who, thinking that Raja was



कुसुमा जी रानीसे राजा भरतने अपने पास बैठकर काव्य पढ़ने को कहा तब कुसुमा जी लज्जित होकर व्रत का वहाना कर मन्दिर जाने के लिये उठी इतने में राजा भरत ने उनके मन की बात को समझकर कगन देने के निमित्त उनको पास बुलाकर एक दम हाथ पकड़ लिया ।

यह चित्र—सौभाग्य वती श्रीमती इन्दकुमारी धर्मपत्नी ला० सुरेशचन्द जी जैन गणेशपुर के द्वारा छपा ।

serious, also extended her hand to take the bangle. Raja caught hold of her and hugged her to his bosom. *(13)*

पद्य—आरचाळिसुवौनिनगेनानरियदं । तारित्तरिंदुनोंपियनु ॥
सारे कुळ्ळिळरुसाकुनन्नाणेयेंदोत्ति । गारायनोय्यनाकेयनु ॥ १४ ॥

अर्थ—प्रिये ! तुम किसे ठग रही हो मुझे अज्ञात रखकर तुझे आज व्रत किसने दिया है रहने दो यहाँ बैठी रहो तुझे मेरी सौगन्ध है, सच कहो कि तुम्हारा व्रत है कि नहीं । यह कह कर भरत जी ने कुसुमा जी को अपने पास बिठा लिया ॥ १४ ॥

"Darling", Said he, "whom are you trying to make a fool of please, and who gave you this vow withought my knowledge? By my name please sit down and tell me correctly whether you have any vow to observe or not". Speaking in this manner he made Kusumaji sit by his side. *(14)*

पद्य—नीनर्ति गेंदर गिळिय नोदिसलदु । मानिनि ग्यरिगतियाय्तु ॥
नानद केळ्दतिमाडबेडवेसुख । गानदोळेळ्वरेमुग्ये ॥ १५ ॥

अर्थ—तुमने जो चरित्र मनो विनोदार्थ तोते से कहा उसे सुनकर तुम्हारी बहन खुशी हुई इसलिये उन्होंने उसकी रचना की । क्या ! मैं भी उसको सुनकर मनोविनोद न करूं । ऐसे आनन्द के समय क्यों उठकर जाती हो । सोचो तो सही ॥ १५ ॥

The conversation which you enjoyed with the parrot in fun pleased your sister and she wrote down a play on its basis. Will you not allow me to hear it and amuse myself? Why are you running away at such a pleasant hour"? *(15)*

पद्य—बल्लेनु नीनेद्द बगेय नीनेकांत । दल्लि गिळियोळाडिदुदनु ॥
एल्लर मुंदे रच्चेगे तंदरेंदेद्दे । यल्लवेकमलदळाक्षि ॥ १६ ॥

अर्थ—हाँ ! मैं तुम्हारे उठकर जाने का कारण समझ गया हूं तुमने जो एकान्त में तोते के साथ बातचीत की थी वह बाहर प्रगट होगई है इसलिये तुम लज्जा से उठकर जारही हो ॥ १६ ॥

"But I know why you want to go away. You are feeling shy as the cat is now out of the bag and whatever conversation you had with the parrot in secrecy has been disclosed to others". *(16)*

पद्य—अन्यरि गोळ्गुदोरदे नडेवुदु कुल । कन्यां गलन्नग वहुदु ॥
अन्य रारिवरेल्ल रेनव रल्लवे । शून्य मध्येय कुळ्ळिरेंदा ॥ १७ ॥

अर्थ—अपने हृदय की बात दूसरे को न मालूम होने देना कुलवती स्त्रियोंका धर्म है, परन्तु यह तो सोचो कि यहाँ पर दूसरा कौन है यहाँ तो सब अपने ही लोग यानी तुम्हारी ही वहिनें हैं फिर तुमको इतना संकोच क्यों ? चुपचाप वहीं बीच में बैठकर अपनी वहिनों को सुनाओ ॥ १७ ॥

It is certainly the principle of high class ladies not to disclose the secret of their mind to strangers. But just think, who is a stranger here. These are all your sisters. Why should you then be shy ? Just read it out to your sisters from here". *(17)*

पद्य—कंडेय पंडिते कुसुमाजि कुसुमद । चंडिनंतेद् लंघनवा ॥
कंडेनहुदु स्वामि कांतेयरोळ्गनु । कंडवरारुनिन्न ने ॥ १८ ॥

अर्थ—पुन: राजा भरत पंडिता जी से कहने लगे कि देखा पंडितानी ! देखा महाराज ! देखा कुसुमा जी । कुसुम गेंद के समान किस प्रकार उछलती जारहीं थीं ॥ १८ ॥

Raja said to Pandita, "Look at this fun Pandita". "Yes sire, I have been watching Kusumaji", said Pandita. She was just rolling away like a ball *(18)*

पद्य—लज्जेयादुदुदेवतन्नेदेयाटद । हज्जेतोरितु परगेंदु ॥
सज्जनसतियरगुणवदुनीनाके । गुज्जुगिसिद वोधेयायतु ॥ १९ ॥

अर्थ—हे राजन् ! देखलिया । स्त्रियों के हृदय की वात आपके विना और कौन जान सकता है । हे स्वामिन् अपनी गुप्त वार्ता दूसरों के सामने प्रगट हुई-इसी से उसे लज्जा हुई । लज्जित होना यह कुलवती स्त्रियों का धर्म है, जो अपने को अपने ही से समझा दिया वहुत अच्छा हुआ, इस प्रकार पंडिता ने कहा ॥ १९ ॥

"Rajan" continued pandita, "who else can understand the secret of a woman's heart except you. It is correct she feels shy, as her secret has leaked out. But this is in the nature of high family girls. It is good you have yourself made the point clear. *(19)*

पद्य—अदकल्ल नोडोंदु नोंपियेंदम्म नो । प्पदिचाळिसु दोंदु बगेया ॥
अदु निन्न गेलतक्क तंत्रवे मुग्धे । चदुरतुँटिहुदुराजेंद्र ॥ २० ॥

अर्थ—सम्राट भरत कहने लगे यह बात जाने दो परन्तु देखो तो सही । व्रत का बहाना कर यह मुझे किस प्रकार ठग रही थी । पंडिता कहने लगी, स्वामिन् उसके पास आपको जीतने का और कोई तन्त्र नहीं है, इस तन्त्र से वह आपको जीत नहीं सकती क्या करे वह मूढ़ (मूर्ख) है । इसलिये उसने यहाँ दूरदर्शित्व से विचार नहीं किया । स्त्रियों का चातुर्य ऐसा ही रहता है ॥ २० ॥

'But apart from it', said Bharat "Just see in what manner she was trying to make a fool of me by presenting an excuse of performing a function."

"Sire", replied Pandita, "poor girl, she has no other device to get the better of you. She failed with this plan of hers. A woman is usually like this. She does not see beyond the nose". *(20)*

पद्य—एकांतदोळु वेसगोंत्राग मुग्धेग । नेककुशल कलेयिहुदु ॥
लोकांतदोळु केळ्लोंदुविल्लेनलिह । ळाकेगा गुण निजवल्ते ॥ २१ ॥

अर्थ—एकान्त में स्त्रियाँ अनेक प्रकार की कला कुशलताओं को प्रगट करती हैं परन्तु लोक समाज में पूँछनेपर उनका सब चातुर्यपना नष्ट हो जाता है यह स्त्रियों का खास गुण है ॥ २१ ॥

"When they are alone, the ladies display different kinds of arts with cleverness, but if they are asked to do so before others, their cleverness bids them goodbye. This is the special trait of a woman's character". *(21)*

पद्य—बाले मातरियळु मुग्धे मुंदरियळु । आलस्यविल्ल मध्यमगे ॥
लोले निस्सारे विदग्धे तंत्रिणि येंब । कील नीनेबल्लेनृपति ॥ २२ ॥

अर्थ—स्त्रियों की अनेक जाति होती हैं उसमें 'बाला' बोलना नहीं जानती है । 'मुग्धा' आगे जाने से संकोच करती है या दूसरे के सामने मूर्ख बन जाती है । 'मध्यमा' को आलस्य नहीं रहता है । 'लोला' चञ्चल स्वभाव की होती है वह सार रहित है इसीप्रकार 'विग्धा' तंत्रणी आदि कई जातियाँ स्त्रियों की हैं । इन सबके मर्म को हे राजन् आपही जानते हैं ॥ २२ ॥

"There are several types of woman. 'Bala' is one who speaks very little, 'Mugdha' is that who is very shy and poses to be an idiot before others.

The 'Madhyma' type has no idleness. 'Lola' is very fickle minded. Similarly there are Vidagoha, Tantrani, and others. Rajan, only you are able to read their minds". (22)

पद्य—बेडगाग्तु देवरु कुसुमाजियर हस्त । विडिदु निल्लिसिदु दिन्नाके ॥
ओडेय निन्नोत्ति नोल्गिरलु नाएचुवळ त । न्नोडहुट्टि दव रोत्ति लिरलि ॥ २३ ॥

अर्थ—स्वामिन, कुसुमाजी के हाथ को पकड़ कर आपने ठहराया यह अच्छा किया । परन्तु अकेली होनेके कारण वह आपके पास बैठे रहने में लज्जित रहती हैं । इसलिये उसको आप अपनी सहोदर के साथ बैठने की आज्ञा दीजिये । ऐसा पंडिता ने कहा ॥ २३ ॥

Pandita then said, "Sire, it is good you have caught hold of Kusumaji and made her sit near you, but being alone with you she is blushing. Kindly permit her to sit with her sister queens". (23)

पद्य—अहुदे यादरे होगु कुसुमाजिनीवेल्ल । महिळेयरोडनेंदिनंते ॥
सहजदि कुळ्ळिरेंदरस वीळ्कोडलाके । वहिलदिंदे यिद्दु कुळ्ळितळु ॥ २४ ॥

अर्थ— महाराज भरत ने कहा ऐसा है तो, प्रिये कुसुमा जाओ । तुम मेरे पास बैठने में लज्जित होती हो ? यदि हाँ, तो जाओ । अपनी बहन के पास सदा की भाँति बैठो । इस प्रकार आज्ञा देने पर कुसुमा वहाँ से उठी । और जहाँ अन्य रानियां बैठी थीं वहाँ जाकर बैठ गई ॥ २४ ॥

"Well, my dear Kusuma", said Bharat, "If this is the matter and you feel a little odd in sitting with me, you can go and sit with the other queens as usual". On this indication Kusumaji got up and sat near the other queens. (24)

पद्य—इन्नोदु काव्यवनेंदनापाड्व । कन्नेया होत्तिगे विडिदु ॥
कन्नेगोगिले ताने वायदेरेदुदोयेंव । चिन्नण बेसेये लोदिदळु ॥ २५ ॥

अर्थ—अब काव्य को पढ़ो, इस प्रकार सम्राट ने आज्ञा दी । तब एक कन्या ताड़-पत्र में लिखे गये ग्रन्थों को खोल कर बांचने के लिये बैठ गई ॥ २५ ॥

The Emperor said, "Dear Kusumaji, now let us hear the play". Then a young girl took the palm leaves on which the theme was written and sat down to read it. (25)

पद्य—पडलिगे गिट्ट होंगिगेयदार वनोत्ति । सडलिसि किरिदोलेगळनु ॥
एडगैयोळांतोदिदळुवलगैयिंद । मिड्वुत भारिदंडिगेया ॥ २६ ॥

अर्थ—सामने एक सुवर्णमयी चौकी रक्खी थी। उस चौकी पर मखमली गद्दी बिछी हुई थी। उसके ऊपर ताड़-पत्र पर लिखे गये ग्रन्थ को खोला। और बायें हाथमें वीणा को लेकर बहुत विनय के साथ निम्नलिखित काव्य को पढ़ने लगी ॥ २६ ॥

She placed the book on a small gold desk placed in front of her, opened its pages, took a violin in her hand, and with devotion sang the following couplet. (26)

पद्य—कुँजर मथनन मंडेय मेलप । रंजि दावरेय चंडिकेया ॥
रंजने सोंकदे निंदादि जिनपाद । कंजगळिगेनमिसुवेनु ॥ २७ ॥

तनुभार तवगिल्ल सुज्ञान तनुवागि । तनुवाततवेंब गाळियोळु ॥
अनुकाल सुखदोळोप्पुव सिद्धरडिगळ । नेनेवेनेन्न'त रंगदोळु ॥ २८ ॥

मूवरिल्लेनिसुव नवकोटि मुनिगळ । भावशुद्धियोळेरगुवेनु ॥
श्री वाणिगेरगुवेनुभयरतत्रय । भावने गैवेनर्ति योळु ॥ २९ ॥

विभु भरतेशन मनदोळु सुज्ञान । प्रमेय रुपागि काणिसुवा ॥
त्रिभुवनसार चिदंबर पुरुषगे । शुभचित्तदोळेरगुवेनु ॥ ३० ॥

अर्थ—सिंहासन के ऊपर जो सुन्दर सुवर्णमय कमल रक्खा हुआ है उसको स्पर्श न करते हुये जो उसमें निराधार खड़े हुये ऐसे श्री आदिनाथ भगवान के चरण कमलों को मैं नमस्कार करती हूं ॥ २७ ॥

अर्थ—शरीर भार से रहित अर्थात् ज्ञान ही जिनका शरीर है जो तनुवात वलय के बीच में स्थित सिद्ध शिला में विराजमान है उन सिद्ध परमेष्ठियों के चरण कमलों को हृदय से मैं स्मरण करती हूं। ॥ २८ ॥

तीन करोड़ मुनीश्वरों को मैं शुद्ध भाव पूर्वक नमस्कार करती हूं। एवं शारदा देवी को भी प्रणाम करती हूं। और भेदा भेदात्मक रत्नत्रय को मैं सदा भावना करती हूं। ॥ २९

अर्थ—सम्राट् भरत के हृदय में जो प्रकाश पुंज परमात्मा हैं, उन त्रिभुवनसार चिदंबर तथा सिद्ध भगवान को शुद्ध चित्त से मैं नमस्कार करती हूँ ॥ ३० ॥

"My obeisance to the feet of Lord Adinath,
who sits in the air unsupported,
Over the lotus beauteous,
above the throne gorgeous". *(27)*

"My respects to Siddhas
who are neither heavy nor light,
Omniscience is their body,
on Sidh Shila they reside,
in the Tanuwat sphere". *(28)*

"I bow with thoughts pure,
to the ascetics three crore,
"I bow to the Sharda goddess,
and contemplate the triple jewels". *(29)*

"I bow to the supreme light
that abides in the king's heart
the Chidamber Purusha, Tribhuvan sar
with the purity of heart". *(30)*

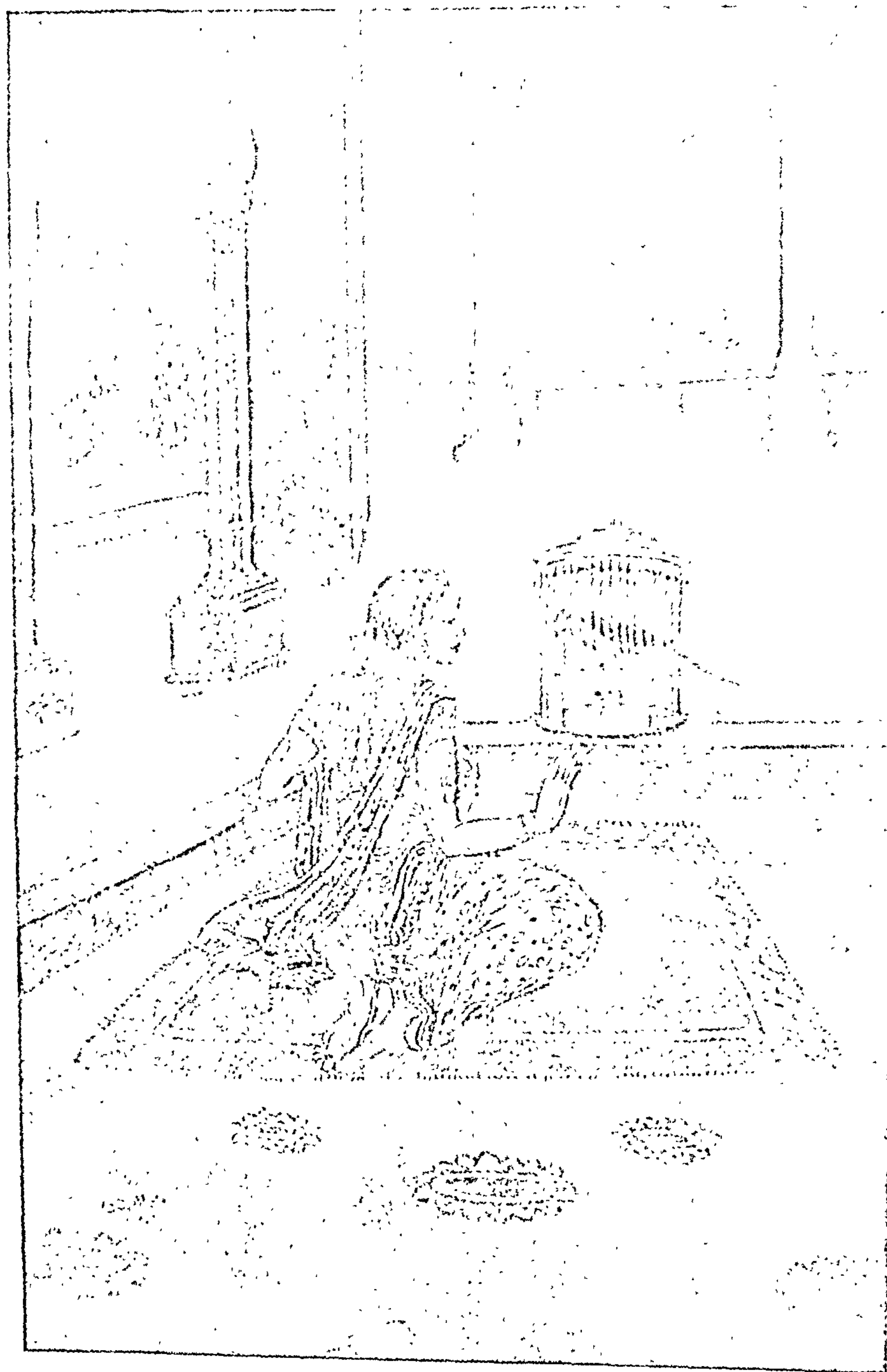
पद्य—हूच सोंकदेगगनदोप्पुवेम्मय । मावाजिरडिगळ नेनेदु ॥
भावाजि गेम्मक्कनमराजि याज्ञेयिं । दोविपेळ्ुवेनोंदक्रतिया ॥ ३१ ॥

अर्थ—कमल को स्पर्श न कर आकाश प्रदेश में खड़े हुये अपने श्वसुर (श्री आदिनाथ को नमस्कार कर अपनी बहन श्री अमरा जी की आज्ञा से इस चरित्र को वांच कर पतिदेव को सुनाऊँगी ॥ ३१ ॥

"I now bow to my father-in-law, Lord Adinath, who is standing in space without support above the lotus flower, and with the permission of my sister Amraji I shall read out the play". *(31)*

पद्य—श्रीगार हारन सोवगन नुडियवे । डंगनगिळियोडनेन्न ॥
तंगि योलिदु कुसुमाजि वन्निसिदुद । संगीत माडि पेळ्ुवेनु ॥ ३२ ॥

अर्थ—कुसुमा रानी जी ने जो अमृत वाचक तोते के साथ विनोद वार्ता की थी उसे एक चरित्र का रूप देकर यहाँ वर्णन किया जावेगा ॥ ३२ ॥



कुसुमाजी रानी अपने पतिदेव का वर्णन तोते के साथ अलग बैठकर कर रही हैं।

यह चित्र धर्मपत्नी सेठ नेमचंद जी जैन, छावड़ा बारादंको के द्वारा छपा।

"First I shall relate the pleasant discourse which Kusumaji delivered to Amrit Vachak parrot. *(32)*

पद्य—कुसुमाजि सरसकोंदमृत वाचकनेंब । हेसर गिळिय करे करेदु ॥
उसुरु तिद्ळु तन्न पतिय गुणवनद । रेसकवनेन वर्णिपेनु ॥ ३३ ॥

अर्थ—कुसुमाजी अमृत वाचक तोतेसे बार बार पुकारकर कहने लगी ! कि हे शुक ! मैं अपने पतिदेव के गुणों का क्या वर्णन करूँ ! ॥ ३३ ॥

Kusumaji- Dear parrot, in what manner should I describe the qualities of my beloved husband. *(33)*

पद्य—अमृत वाचक केळुभरतचक्रेश्वर । रमणीयरेल्लरमनवा ॥
भ्रमेगोळिसुव रूपनाव नोंपिय मुन्न । क्रमदल्लि नोंतु पडेदनो ॥ ३४ ॥

अर्थ—पुनः कुसुमाजी कहती हैं कि हे अमृत वाचक (तोते) कहो। भरत चक्रेश्वर ने सबको प्रमुदित करने वाला ऐसा सुन्दर रूपको कैसे प्राप्त किया ? इस स्वरूपके लिये पूर्वजन्ममें उन्होंने किस व्रत का आचरण किया होगा ? ॥ ३४ ॥

Dear Amritvachak, can you tell me how did the chakravarti acquire this all pleasing handsome person of his? What vows did he observe in his previous birth as a result of which he attained such a pleasing form ? *(34)*

पद्य—रूप रूपडेयलि रूपिगे तक्क श्रींगार । चापल विनय विडाय ॥
भूपति गेतारिंदादर्वितवर स्व । रूप हेळनगरगिळिये ॥ ३५ ॥

अर्थ—जगत् में रूप भी हर एक को प्राप्त होसकता है, परन्तु रूपके अनुसार शृङ्गार, चपलता व गम्भीरता को पाना प्रत्येकमें समान रूप से नहीं पाया जाता किंतु हे अमृत वाचक (तोते) राजा भरत में इन सभी गुणों का एक साथ ही कैसे प्रादुर्भाव (प्राप्त) हुआ ॥ ३५ ॥

People do acquire beauty of person in this world but generally, they do not possess other qualities of considerateness and cleverness along with it.

But dear Amritvachak, how is it that Raja Bharat possesses beauty as well as other qualities. *(35)*

पद्य—कीर केळी प्रायवी चेलवी सिरि । ई रमणीय रोडनिर्दु ॥
आरिगोळ्गु गाणिसदे नडेयोंदु ग । भीरतानेतरिंदायृतु ॥ ३६ ॥

अर्थ—इस तारुण्य पूर्ण अपूर्व सौन्दर्य को पाकर स्त्रियों के मध्य रहने पर भी अपने हृदय की इंगित (भाव) को न बताकर चलने वाली गम्भीरता उनको कैसे प्राप्त हुई ! लोक में यौवन तथा सम्पत्ति पाना कठिन नहीं है, परन्तु उसके साथ विनय आदि गुणों का प्राप्त करना कठिन है ॥ ३६ ॥

Dear parrot, it is inexplicable how in his full bloom of youth he is able to control his inner feelings inspite of the company of us women.

It is not difficult for people to acquire youth and wealth in world, but it is not easy to acquire other qualities such as humility at the same time. *(36)*

पद्य—अंबर दोळगिद् सूर्य नोब्बनु जल । तुंबिद् हलवु कुंभदोळु ॥
विंबिसुवंतेल्ल पेंगळेदेयोळीत । निंतुगोंडिहपरियेनु ॥ ३७ ॥

अर्थ—जैसे आकाश में रहने वाला एक ही सूर्य जल भरे हुए अनेक घड़ों में प्रति विम्बित होता है उसी प्रकार एक ही राजा भरत अनेक स्त्रियों के हृदय में प्रति विम्बित होता है ॥ ३७ ॥

There is only one sun in the sky, but its reflection can be seen in the water contained in numerous pots, In the same manner the reflection of my beloved husband is visiable in the hearts of all his wives. *(37)*

पद्य—सार तापस निद्वनदल्लिहुलिहुल्ले । वैरविल्लदेसुळिवंते ॥
नारियरेल्लरु सवति मत्सर विल्ल । दी रायागोलिदंद वेनु ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिस वन में उत्तम तपोधन रहते हैं वहाँ पर हिरन व हिंसक पशु आदि परस्पर के विरोधभाव को छोड़कर रहते हैं उसी प्रकार राजा भरत जैसे राजर्षि जहाँ रहते हों वहाँ पर स्त्रियाँ आपस में ईर्ष्या (वैर) भाव छोड़ कर रहती हों इसमें कौनसा आश्चर्य है ! ॥ ३८ ॥

In those forests where pious ascetics stay, deer and beasts of prey give up their mutual animosity and live peacefully. Exactly in the same manner, while a saintly king like Bharat lives, his wives do not entertain feeling of mutual jealousy and hatred but live with affection with each other. *(38)*

पद्य—तवरूर मरेयिसि निद्रेय तोरेयिसि । सविगळ नरियिसि नम्म ॥
दिवरात्रियन्नदे सुखदोळोलाडिसु । ववगडयातरिंदायतु ॥ ३९ ॥

अर्थ—हम लोगों को अपने माता पिता के घर को भुलवा कर एवम् निद्रा को भगाकर अनेक

प्रकार के सुमधुर वचनों से रात दिन न मालूम होते हुये ऐसा सुखमय आनन्द देने वाला ऐश्वर्य उनको (राजा को) कहां से प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥

He makes us forget our parents home and steals away our sleep by his sweet company in a manner that day and night fly away unnoticed. Well my parrot, how has he been able to secure this device ? *(39)*

पद्य—धरेयळोब्बरकंडुमत्तोम्मे कं । डरे मोदलनितोप्पविल्ल ॥
भरतेश दिन दिनकेम्म नोटके होस । पुरुप नागिय परियेनु ॥ ४० ॥

अर्थ—जगत् में एक बार एक व्यक्ति को देखने पर फिर कुछ काल पश्चात् उसी का दुबारा दृष्टिगोचर होने पर उसमें अनेक (वृद्धि हीन) परिवर्तन दिखाई देते हैं परन्तु राजा भरत हमारी दृष्टि में प्रतिदिन नवी नवी रूप-लावण्यता एवम् तरुणता में वृद्धि गत दिखाई देते हैं। यह अति आश्चर्य की बात नहीं है क्या ? ॥ ४० ॥

If you see a person once and then see him again, you find some change in him, but in the case of our sweetheart Raja Bharat, he is ever in his blooming youth. *(40)*

पद्य—मकुट वर्धनर नाळिद् नम्म प्राणना । यकन सर्वांग शोभेयनु ॥
मुकुट दिंदुगुँट मुट्टि वरिणसुवेनु । सुकराज केळु चन्नागि ॥ ४१ ॥

अर्थ—हे अमृत वाचक (शुक) षट्खण्ड के राज्य को पालन करने वाले पतिदेव का मैं मुकुट से लेकर चरण पर्यन्त तक का वर्णन करूंगी तुम सुनो ॥ ४१ ॥

Dear Amritvachak, now I shall give a detailed description of every part of his person from the crown of his head to the sole of his feet. Please hear with attention *(41)*

पद्य—पुरुप प्रमाणद केराव नडगिसि । सिरिदुरुविक्कि चुँगेसेये ॥
गरगरिके योळ् चिम्मुरि सुत्तिदोंदु सिं। गरवे सालदे नम्म नृपन ॥ ४२ ॥

अर्थ—पुरुप प्रमाण (आजानु बाहुपर्यन्त) केशों को छिपाकर उसे जूड़ा की तरह सुन्दरता से बाँधकर उत्तरीय वस्त्र पहिने हुये राजा भरत कितनी सुन्दरता को प्राप्त हो रहे हैं ऐसे पतिदेव का वर्णन कहाँ तक करूं ॥ ४२ ॥

Look at his lovely locks of hair of black colour and of the length of his

body. He has tied them into a knot so that one may not see their beauty. How sweet does he look with fine apparels on. Wonderful. Can't describe his beauty ? (42)

पद्य—नगेय चलिकेय मोहन कांतिर सग्नु । मोगवच ललेदु दत्तत्त ॥
मोगेदु मोगेदु चल्लवंते रायन मुद् । मोगवोप्पु तिह्रुद रगिळिये ॥ ४३ ॥

अर्थ—मधुर हास्य की शोभा मोहन कान्तिरस को अपने मुखार विन्द से चारो ओर फैलाने वाले राजा भरत की मुख कान्ति का वर्णन कहाँ तक करूं ॥ ४३ ॥

How to describe the beauty of his face-so smiling, and so inviting. (43)

पद्य—मोरे नोसलहुदादरापेरेयोळगण । करेयस्त व्यस्त वेंददनु ॥
जरेवंते कस्तूरे तिलक वोप्प दोळ्गेगु । वेरेयन पणेगेल्द् देन्ना ॥ ४४ ॥

अर्थ— उनके मुख की हर्ष मुद्रा व आकर्षण करने वाली स्वरूपता जिधर राजा मुख फेरते हैं सभी को आकर्षित करती है । किन्तु उनके ललाट पर लगा हुआ कस्तूरी युत केसरिया तिलक बराबर सभी को अपनी ओर जिस प्रकार आकर्षित कर रहा है । इस आश्चर्य को हे शुक ! मैं कहाँ तक वर्णन करूं ॥ ४४

The beauty of his smiling face attracts the attention of everyone towards whom the Raja turns its looks, but the beauty of the 'Kesariya' Tilak on his forehead keeps us spele bound. What a wonder ? (44)

पद्य—कब्बु विल्लगे कणेदोट्टु हेंगळ्नेसु । बुब्बसवेकेंदुकरेदु ॥
कब्बुविल्लगे हेळु भरत राजन निड्डु । हुब्बु नोलैसेंदु गिळिये ॥ ४५ ॥

अर्थ—हे शुक राज ! कामदेव को अपने बाणों के द्वारा स्त्रियों को वश करने का कष्ट क्यों दिया जाय । जावो उससे कहो कि तुम (कामदेव) हमारे भरतेश्वर के दर्शनीय भृकुटियों की सेवा करो तुम्हारा काम हो जावेगा ॥ ४५ ॥

"Tell Cupid. It is no use wasting his energies in shooting arrows from his bow of flowers at the ladies to win their hearts. He had better worship the brows on the forehead of Raja Bharat. He would achieve his object without botheration". (45)

पद्य—तिंगळ वेळ्गु सोंकलु कूडे शशिकांत । रंगिसुवंतेम्म नृपन ॥
कंगळ प्रभेताग लोडने कांतेय रंत । रंग वोसरुवुदु पक्कि ॥ ४६ ॥

अर्थ—हे पक्षी, जैसे चाँदनी के स्पर्शमात्र से चन्द्रकान्त शिला से पानी झरने लगता है उसी प्रकार हमारे राजा की आँखों का प्रकाश पड़ते ही कामिनियों का मन पिघल जाता है ॥ ४६ ॥

"Dear bird, just as Chandra Kant rocks eject water on the fall of moon-light on them, so our hearts melt down when the Raja's look fall on us". *(46)*

पद्य—कंपि नुसुरिगे कविद तुँविगळ् सुख । दिंपाद नृपन नसिकके ॥
कंपिगे सोतेरगिद भृंगगळ कोलव । संपगे पाटिये कीरा ॥ ४७ ॥

अर्थ—पतिदेव के सुगन्धित श्वासोच्छ्वास के वशीभूत होकर जो भ्रमर आकर गुंजार करते हैं। उस सुगन्धि के देखने पर अपनी सुगन्ध से आकर्षित करने वाले चम्पा पुष्प का भी कोई महत्व नहीं है ॥ ४७ ॥

"The fragrance of his breath attracts the humble bees, which swarm round him. The scent emanating from the Champa tree of the palace has no place before the fragrance of the breath of our husband". *(47)*

पद्य—मिरुगुव कन्नडियोळु हरहिद सरण । हरुवेय त्रित्तु गळंते ॥
तुरुगिद बवरियिंदेसेव गल्लगळोंदु । गेरहु सालदे चक्रधरन ॥ ४८ ॥

अर्थ—पतिदेव के कोमल कपोल दर्पण के समान चमक रहे हैं वह चमक ऐसी मालूम देती थी कि मानो नदी का भंवर चक्र ही चमक रहा हो ॥ ४८ ॥

"His tender cheeks are shining like mirror. The shine is like that of a vortex in a river" *(48)*

पद्य—चिरादिच्छेय कर्णदोळु पेंगळोरेवाग । पत्तिद वेळ्नगेयंते ॥
चिराज रूपन किविगळोळेसेवुवु । मुत्तिन चोकुळि गिळ्ळिये ॥ ४९ ॥

अर्थ—पतिदेव के कानों में जो मुक्ता कुन्डल शोभित होरहे हैं वह ऐसा प्रतीत होता था कि कदाचित् प्रिय स्त्रियों के अन्तरंग की इच्छा को कान में कहते समय का हर्ष चिन्ह है ॥ ४९ ॥

"The diamond ! kundals ! in tha ears of our beloved are simply fascinating. They remind us of his whispering into our ears of our hidden sentiments". *(49)*

पद्य—कडे गएण कांति कर्णाभरणद कांति । थेडे माडलवन पल्नेयोळ् ॥
गडगिसि कार मुगिलोळ्डेयाडुव । कुडुमिंचिनंतिहुदलते ॥ ५० ॥

अर्थ—नेत्र कान्ति एवं आभरणों की कान्ति जब उनके कपोलों पर पड़ती थी तो यह विदित होता था कि मानो आकाश में गर्जना करती हुई बिजली ही चमक रही हो ॥ ५० ॥

"When the light of the eyes and the ornaments is reflected in the cheeks, It appears like a flash from lightening". (50)

पद्य—कोब्बिद कोरि जव्वनद सोंकिन मद । बुब्बियोसरि हरिवंते ॥
हब्बिद चेल्व मीसेगळ साल्गळ दों । दोब्बुळि सालदे पतिय ॥ ५१ ॥

अर्थ—पति देव के शरीर में यौवनावस्था, ओत प्रोत भरी हुई थी। उनकी क्रमबद्ध बाहर फैली हुई मूँछों से युवावस्था प्रकट होती थी, इस प्रकार की शोभा से परिपूर्ण अपने पतिदेव का वर्णन कहाँ तक करूं ॥ ५१ ॥

"Every part of his body is bursting with youthfulness. The beautiful hair on the lips are obvious indication of it. I do not find words enough to express his beauty" (51)

पद्य—मकरंद तुंबिद तावरे रवियुद । यके मेल्लनरे देरेवंते ॥
सुकराज सोगयिपुदलते कर्पूर वी । टिकेय केवांयदेरे दोरेय ॥ ५२ ॥

अर्थ--हे शुक राज ! हमारे पतिदेव के मुंह खोलने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो मकरन्द से भराहुआ लाल कमल ही है। ऐसी कर्पूर वीटिका की अर्थात् मुंह की लाली की शोभा है ॥ ५२ ॥

"Dear Shukraj (parrot) ! When he opens his mouth, it appears as if the red lotus full of sweet juice has opened its petals. So attractive is the reddishness of his mouth". (52)

पद्य—मुत्तिन मणिगलतेयूडि कुँवळ । विनिनंददि कोरे कोरेदु ॥
तेत्तिसि दंतेसेवनकेंबलगळ । वित्तरवारसोलिसदु ॥ ५३ ॥

अर्थ—हमारे पतिराज जी की दन्त पंक्ति की शोभा इस प्रकार से होरही थी कि मानों किसी ने मोती की माला ही गूँथ कर रख दी हो ॥ ५३ ॥

"My God ! His teeth are so white and shining that it appears as if a rosary of pearls has been set there". (53)

पद्य—मरिगिळि केळेम्म नृपनोम्मे नुडिगे वा । यूदेरेये चेंदुटि जिव्हेयाटा ॥
नेरे कल्प वृक्षद तळिरु नेरिलहरणा । मरेयोळिहंतदेचित्रा ॥ ५४ ॥

अर्थ—हे शुकराज ! जिस समय राजा भरत मुख खोलकर बोलते थे, उस समय उनके दोनों लालिमा लिये हुये ओंठ के बीच में 'जीभ' ऐसी दिखाई देती थी कि मानों दो जामुन के बीच में कल्प वृक्ष का पत्ता ही छिपा है । यह कितनी विचित्रता है ॥ ५४ ॥

"Dear parrot, when he opens his mouth, his tongue visible between his two red lips, looks as if a leaf of Kalp tree was partly hidden by two fruits. How wonderful". *(54)*

पद्य—विंगद कुप्पिगेगिळिव कुँकुमद नि । रंगदि तांबूल रसवा ॥
नुँगुवागिदिरिगे तोरुवुदरसन । नुँगोरळेनवन्निपेनु ॥ ५५ ॥

अर्थ—कांच या अभ्रक की शीशी में उतरने वाले कुंकुम रस के समान ताम्बूल रस गले के नीचे उतरते समय राजा भरत का सुन्दर कण्ठ ऐसी शोभा को प्राप्त होरहा था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ५५ ॥

"When he swallows the betel juice, his neck looks simply charming as if red 'Kumkum' was being poured into a glass bottle". *(55)*

पद्य—वेडगिन पेंगळु सरसकेंकांतदो । ळेडेबलदोळु निंदु नृपन ॥
मुडइ पिडिदु जडिदुय्य लाडुव रागि । मुडुहिष्टु कठिणा वागिहुदु ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे शुकराज ! हमारे राजा की प्रिय स्त्रियाँ एकान्त में दोनों तरफ़ से खड़ी होकर उनके केश पाश द्वारा झूला झूलती हैं ऐसे उनके बलिष्ठ केशों का मैं कहाँ तक वर्णन करूं ॥ ५६ ॥

"Well dear bird, I do not know how to describe the strenght of his hairlocks. When we, his dear wives, are alone with him, we can use them as swings on either side i. e. the hairlocks can lift the weight of our bodies". *(56)*

पद्य—मोहिनियर मोह पाश होंवन्नद । राहुगळेणो वैरिशशिगे ॥
रुहिसि भृंगार चीर दोळ्जानु । बाहु गळेसेदुवा नृपन ॥ ५७ ॥

अर्थ—हमारे राजा की युगल भुजा, मोहनियों का मोहपाश हैं । वे स्वर्ण वर्ण से युक्त, राहु

के समान चन्द्रमा को भी तिरस्कृत करते हैं। वे दोनों आजानु बाहु शृंगार एवम् वीर रस को प्रकट करते हुये शोभा को प्राप्त होरहे हैं ॥ ५७ ॥

"What about his two long and powerful arms. They are like a grip of love for his sweet-hearts. They are the symbols of bot hlove and valour". (57)

पद्य—अरलंबगररसनिम्मडि चेल्वनवनेंदु । सरल नांतोडो हत्तु सरला ॥
दोरे पिडिवुदु मोडियेने करगळ हत्तु । वेरल्केसेदुवुसरलदोळु ॥ ५८ ॥

अर्थ—पाँच मोहनीय बाणों के धारण करने के कारण 'कामदेव' पंच बाण वाला कहलाता है किन्तु हमारे राजा तो उससे दुगुने सुन्दर हैं। उस राजा भरत के हाथों में दस बाण रूपी दश अंगुलियां, कामदेव के बाणों के तुल्य अत्यन्त शोभा को प्राप्त होरही हैं ॥ ५८ ॥

"Cupid is called 'Panch Ban' because he possesses five infatuating arrows. But our Raja is ten times more beautiful than him. Each finger of his hands is like the arrow of cupid". (58)

पद्य—करतलगळ केंपु नखगळ ढाळ वुँ । गुरगळ रस्मि विंबिसलु ॥
वेरेके वर्णद तावरेय नाळगळंते । दोरेय भुजगळोप्पुतिहवु ॥ ५९ ॥

अर्थ—करतल भी अरुणवर्ण से युक्त है, उसमें भी नख की श्वेत कान्ति एवम् पहने हुये अंगूठियों की रत्न कान्ति जब प्रतिबिम्बित होकर पड़ती है तो वे दोनों बाहु अनेक वर्ण मिश्रित कमल नाल के समान मालूम होते हैं ॥ ५९ ॥

"His hands are also reddish and when the reflection of the shine on the finger nails, and the rings falls on them, then the two arms look like two stems of multicoloured lotus". (59)

पद्य—भूवर निक्किद हारपदकद र । त्नावळि नेरेद पेरुरवु ॥
लावण्य जलधिय नडुविद रत्नद । दीवियोयेन लोप्पुतिहुदु ॥ ६० ॥

अर्थ—हे शुकराज ! राजा भरत के गले में पहिने हुये रत्नहार व पदक ऐसे मालूम होते थे मानो सुन्दर समुद्र के बीच रत्नदीपक प्रकाशित होरहे हों उनकी सुन्दरता का मैं क्या वर्णन करूँ ॥ ६० ॥

"The sparkle of necklace of pearls round the neck of our Raja looked as if lamps were glimmering in a beautiful lake. I do not know how to express the beauty". (60)

पद्य—कुक्षियक्कुळिसेबेंगडर्वुदुसहज दो । ळीक्षिसे पुट्टडोळ्ळिहुदु ॥
पक्षि भूवरन तेळ्वसि रेसेवुदु जीव । रक्षेय तळिरोयंबंते ॥ ६१ ॥

अर्थ—हे पक्षी ! हमारे पतिदेव का पेट देखा जावे तो वह इतना मुलायम और कोमल है अर्थात् इतने दयार्द्र हृदय हैं कि वह सब जीवों की रक्षा करने के लिये कोमल पत्तों के सदृश है ॥ ६१ ॥

"Oh birdie, the stomach of our beloved husband is as tender as new leaves on a tree". *(61)*

पद्य—ललनेय रक्षिगळेंदेंबमींगळु । सुळिवोंदु शृंगार जलद ॥
कोळ्नोयेंबंते रायन नामियेहुदर । गिळियेहेळदिरारिगिदनु ॥ ६२ ॥

अर्थ—हे पक्षी ! राजा भरत की जो नाभि है, स्त्रियों के नेत्र रूपी मछलियों के क्रीड़ा करने योग्य सुन्दर तड़ाग तट के समान है । हे शुकराज ! इसे किसी को न बताना ॥ ६२ ॥

"His navel looks like a small pool for the eyes of us wives to play like fish in it". *(62)*

पद्य—मरेयेके केळोम्मे नृपन तेळ्वसिरिन । किरुरोमराजियकंडु ॥
इरुहिनसालेंदुतोडेदनदके राय । नुरेनक्क नानु नाणिचदेनु ॥ ६३ ॥

अर्थ—पक्षी ! छिपाने की क्या बात है । एक बार राजा को सुन्दर कुक्षि की रोमावली को चींटियों का समूह समझकर मैंने हाथ से हटाने का प्रयत्न किया तब मेरी कृति पर राजा को हंसी आगई और मैं लज्जित होगई ॥ ६३ ॥

"Dear bird, there is nothing to conceal about. Once I mistook the hair on the chest for ants and tried to remove them by hand, when Raja laughed at me and I blushed". *(63)*

पद्य—वर विजयार्ध दिक्केलदारु खंडव । धरिसुवसूचनेयंते ॥
कोरलल्लि मूरु तेळ्वसिरल्लि मूरु न । म्मरस गोप्पि हुवारुरेखे ॥ ६४ ॥

अर्थ—हे पक्षी ! राजा भरत के कण्ठ की तीन रेखायें एवम् कुक्षि की तीन रेखायें, यह छहों रेखायें देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज श्रेष्ठ विजयार्ध पर्वत पर्यंत षट्खण्ड पृथ्वी के अधिपति हैं इस प्रकार उन रेखाओं से प्रतीत होता था ॥ ६४ ।

पद्य—बेगोडनाहितर्गे बेंगडे योळुविर्द । कंगळ कोडनु हेंगळिगे ॥
संगर मल्लन बेन्ने सेदेदु वीर । शृंगार वेरडाडग्गुडि ॥ ६५ ॥

अर्थ—शत्रुओं को हमारा राजा पीठ नहीं दिखा सकता । इसी प्रकार जिनकी आँखें पीठ पीछे हैं (यानि जिन्होंने राजा भरत को नहीं देखा है) इसी बात को सूचित करते हुये पतिदेव का पृष्ठभाग शृंगार और वीरता से शोभा को प्राप्त होरहा है ॥ ६५ ॥

"Enemies can not see his back in the battle field. His beautiful back gives an indication of that bravery". (65)

पद्य—नेररिगुसुरदिरु गजदकुँभद मेले । मरे सिंहनिंद रीतियोळु ॥
पोर वारगळकिरुनडुवेम्मभूपगे । मेरेवुवुकेळलेकीरा ॥ ६६ ॥

अर्थ—हे पक्षी ! दूसरे से मत कहना हमारे राजा के मध्यप्रदेश (नाभि-कुन्ड) के देखने पर ऐसा मालूम होता है कि हाथी के कुंभ के ऊपर कोई बालसिंह ही खड़ा है । इस प्रकार से शोभित होरहे थे ॥ ६६ ॥

पद्य—तोडेगळु सोंकिदर्पंगळासरिके । तोडेवुवुकदळिगळवके ॥
पडियेंब पदनुळ्ळरद तोडे रायन । कडुचेल्व नरिदिरु विहगा ॥ ६७ ॥

अर्थ—हमारे राजा की जंघाओं का स्पर्श जो स्त्रियाँ करती हैं उनकी थकावट दूर होजाती है कदली खम्भ भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता । अतः हे शुकराज ! हमारे पतिदेव के वर्णन को अच्छी तरह समझलो ॥ ६७ ॥

"The touch of his thighs removes our fatigue. Even the plantain trunk is no match to them in smoothness. Do you understand, birdie, the beauty of our beloved"? (67)

पद्य—भूनुत कांति गंगेय कूर्मगळ मेले । मीनुगळेरडुनिंदंते ॥
मानव पतिय मेगाल्ग ळेसेदु मेले । जानुगळेरडोप्पुतिहुवु ॥ ६८ ॥

अर्थ—(अपार कान्ति) अर्थात् पादपृष्ट के ऊपरी उठे हुये भाग की सुन्दर शोभा इस प्रकार से होरही थी कि मानो गंगा के ऊपर दो उत्तम कान्ति मछलियां खड़ी हों ॥ ६८ ॥

"The raised portions above the feet look like two fish peeping out of Ganga river". (68)

पद्य—अडगिद परडु नुन्मड सएण बेरलोप्प । वडेद पावुगे वेञ्जे नृपगे ॥
कडुपिनगुर्गळु पद्तळगळोळु तो । ट्टिडुवंते केंपु रंजिसितु ॥ ६९ ॥

अर्थ—राजा भरत के पाद नख की कान्ति एवम् पादतल की शोभा इस प्रकार है मानों 'शिशु कुमार' की लाली ही सुशोभित होरही हो ॥ ६९ ॥

"His finger nails and the sole of the feet are reddish". (69)

पद्य—हल कुलिशांकुश चक्र चामर शंख । कलश दर्पन चाप गोधे ॥
जलज मुंताद रेखेगळु रायन कर । तळ पादतळ दोळोप्पिहुवु ॥ ७० ॥

अर्थ—राजा के हस्तलत व पादतलमें कुलिसांकुश, चक्र-चमर-कलश-दर्पण-चाप-गोध कमल आदि अनेक शुभलक्षणों से लक्षित रेखायें शोभा को प्राप्त होरही हैं ॥ ७० ॥

"The palm of his hands and the soles of his feet have auspicious fate lines and other symbols". (70)

पद्य—बेळु मत्ति कोरुळ्ळु सुप्रदक्षिणा वाद । सुळि कडेगंगळ केंपु ॥
कुळियोळोंदेंदे तोरुवमैय रोम सं । कुळ वेसेदुव चक्रधरगे ॥ ७१ ॥

अर्थ—इसके अतिरिक्त मंत्र-तंत्र शुभ लक्षणो से युक्तिल एवम् शुभ प्रदक्षिणा से युक्तभंवरी, नेत्र की ललाई तथा रोमावली आदि भी अतीव शोभा को प्राप्त होरहे थे । ७१ ॥

"In addition there are auspicious signs on other parts of the body". (71)

पद्य—आरंगुलद नडु नल्कुंगुल कोर । ळूरि जंघेगे सल्व तोळु ॥
कीर तन्नुद्द केशदिंदा गाडि । कारनाकार मोहिसितु ॥ ७२ ॥

अर्थ—राजा के छः अंगुल प्रमाण का नाभि देश, चार अंगुल प्रमाण कण्ठ देश तथा आजान बाहु एवम् दीर्घकेश । हे पत्नी ! इस तरह हमारे पतिदेव शोभा में अद्वितीय हैं ॥ ७२ ॥

Raja's neck was very beautiful. (72)

पद्य—तेरपिन नोसलु तेरपिनेदे चलुवट्ट । पोरवारु कंबदोडेगळु ॥
मेरेदुवु भद्रलक्षण गळु पट्खंड । दोरेयन कोमलांग दोळु ॥ ७३ ॥

अर्थ—सुन्दर नाशिका, ललाट, अधर एवम् उनकी जंघायें पांव इत्यादि पर "भद्र लक्षण" पट् खण्ड पृथ्वी पति राजा भरत के शरीर में शोभा को प्राप्त होरहे हैं ॥ ७३ ॥

"His nose, forehead, lips, thighs, and feet are all beautiful" *(73)*

पद्य—गिंडियंदद नडु रक्त माणिक्यद । चेंदिनंतेसेव मडगळु ॥
पिंडायत तुँबिद मलांगदिंद भू । मंडलाधीश नोप्पिदनु ॥ ७४ ॥

अर्थ—कलश कण्ठ के समान उनकी कमर । माणिकरत्न के समान शोभायमान तथा गेंद के समान गोल नितम्ब भरे हुये पिंड के समान भूमण्डलाधिपति राजा भरत शोभा को प्राप्त होरहे थे ॥ ७४ ॥

"His neck and chest are charming". *(74)*

पद्य—नगेमोग दोड्ड नाशिक दोड्ड कण्णु का । डिगेमीसे वण्णदुटिगळु ॥
बगेगोंडवेम्मरसन तनुविनोळ्ळेले । खगराज कण्गे मोहिसुत ॥ ७५ ॥

अर्थ—पतिदेव के पिछले और अगले भाग में कहीं पर किसी प्रकार की त्रुटि (व्रण, घाव-आदि) नहीं है । सर्वत्र एकसा है । हे शुकराज ! क्या कहूँ । ॥ ७५ ॥

"All his body has the beauty of symmetry". *(75)*

पद्य—कायद हिंभाव मुँभाव दल्लि मे । लेय कीळायवेंबल्लि ॥
आयतवायुतु चेल्वायुतेंबु दल्लदे । रायगोंदिनिसुँटे कोरते ॥ ७६ ॥

अर्थ—किसी स्वर्ण पुतली को अच्छी तरह बनाकर एवं घिसकर तथा धोकर रखने पर उसमें जान आगई हो । उसी प्रकार स्वर्ण पुतले की तरह हमारे पतिदेव शोभायमान दीख पड़ते हैं एवम् हमारे अन्तरंग को आकर्षित करते हैं ॥ ७६ ॥

"He looks like a gold doll attracting our hearts". *(76)*

पद्य—तोळेदोप्प विट्ट परंजिय चेल्व पु । त्तळि जीव वडेदु द्दोयेनसि ॥
तोळगि तोळगि कण्गे पेण्गे काणिसिराय । तोळेव नेम्मंतरंगवनु ॥ ७७ ॥

अर्थ—क्या वह सुगन्ध द्रव्य से निर्मित पुरुष हैं ? अथवा क्या कान्ति से बने हुये पुरुष हैं तथा मन्द सुगन्धित वस्तु से निर्मित पुरुष हैं ? कौन जाने ? ॥ ७७ ॥

"Who knows whether he has been built from some scented substance". *(77)*

पद्य—कंपिन पुरुषनो कांतिय पुरुषनो । संपेगेयेसळ पुरुषनो ॥
तंपु गाळिय पुरुषनोयने पेएणेदे । गिंपुदोरुव नेननेंबे ॥ ७८ ॥

अर्थ—सभी स्त्रियों के हृदय को शान्त करने की शक्ति इनमें है इस प्रकार सर्वथा शारीरिक संगठन, सौन्दर्ययुक्त, शक्तिवान श्री भरतेश जी कहां से आये ! इसका वर्णन कैसे करूँ ॥ ७८ ॥

"He is capable of satisfying the hearts of all of us. He possesses that kind of beautiful, strong, and well built physique". (78)

पद्य—उडिगे तोडिगेयिंद नीति रीतिगळिंद । नुडिनोट सरसगळिंद ॥
अडिगडिग बलेयरंतरंगद तडे · । योडयि सुतिह नेननेंबे ॥ ७६ ॥

अर्थ—हे शुकराज ! वस्त्राभरण रीति नीति, बोल चाल सरस व्यवहार आदि से वे हम सभी स्त्रियों को आकर्षण करते हैं । जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकती ॥ ७९ ॥

"Dear parrot. He attracts us by his apparels, conversation, kind treatment etc.". (79)

पद्य—नोट चेटद नगेनुडिय सिंगरद तडे स । घाटिके योळगेम्म नृपगे ॥
साटिये अमृतवाचक हेळु हेळ्निन्म । मोट्टुगब्बिन बिल्लिनवनु ॥ ८० ॥

अर्थ—हे अमृत वाचक ! बोलो । हमारे पतिदेव का सौन्दर्य, हंसना, बोलना एवम् श्रृंगार का करना आदि क्या कामदेव के भाग्य में होसकता है ? ॥ ८० ॥

"Well dear bird, can even the cupid be lucky enough to acquire the beauty, the smile, the mode of conversation, and the ornamentation of the person ? No". (80)

पद्य—आयताक्षियर चेल्विंद सोलिसुदेम्म । रायन मुँदेले गिळिये ॥
स्त्रीयरनेच्चु जयसिदोंदु मूळ वि । डायवेतकेपंचशरगे ॥ ८१ ॥

अर्थ—अपने रूपसौन्दर्य द्वारा जब स्त्रियों को आकर्षित कर लेते हैं तब भला फिर कामदेव को स्त्रियों को जीतने का कोरा अभिमान क्यों ? ॥ ८१ ॥

"Cupid takes pride in winning over the female sex by his art. But Raja Bharat is able to capture their hearts by his beauty alone. Cupid has then no justification to feel proud of his achievment". (81)

पद्य—गाडि कातियर तन्नंग शृंगारद । गाडि गोडियोळु गेल्वेम्म ॥
गाडिकारण मुंद नुडिवरे डोंकु सिं । गाडि यिंदल्लु गेल्ववना ॥ ८२ ॥

अर्थ—हमारे राजा कामदेव को भी घबराहट पैदा कर सकते हैं, वे अङ्ग सौन्दर्यसे स्त्रियों को जीतने वाले और समराङ्गण में शत्रु को खड्ग (असि) से जीतने वाले हैं ॥ ८२ ॥

"Our Raja is capable of causing consternation to cupid even. He wins the women's heart by the attractiveness of his beauty and the battles by the force of his sword". *(82)*

पद्य—अंगज नलगु दोरुव नेम्म राय त । न्नंग कंतिय तोरि गेल्वा ॥
इंगित कुशल नारवनो नम्मरसो वि । हंग हेळेनगिद नीनु ॥ ८३ ॥
अँगसौंदर्यदिंद हेंगळ गेलवेकु । सँगरदोळु खड्गवेकु ॥
हेंगळ समरके खड्गवे हुविन । भँगार कग्निय काहे ॥ ८४ ॥

अर्थ—स्त्रियों के समर में पुष्पों के खड्ग की आवश्यकता है अर्थात् स्त्रियों को मोहित करने के लिये पुष्पबाण छोड़ने वाला कामदेव स्वरूप हो और सोने के लिये अग्नि की आवश्यकता है ॥ ८३-८४ ॥

पद्य—विंकद गिळिये केळेम्म नायक तन्न ॥ सोंकिदा क्षणवे नीरेयर ॥
मंकुमाड्व मतिदोरुव सुखदल्लि । तेंकाडिसुवनेननेंबे ॥ ८५ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! अमृत वाचक सुनो । पतिराजके स्पर्श होते ही हम लोग सुख सागर में मग्न होजाती हैं यह बात कहनी नहीं चाहिये लेकिन तुमसे गोपनीय तौर पर कह रही हूं ॥ ८५ ॥

"Oh dear Amritvachak, listen. Between me and you I tell you that we lose ourselves completely by his mere touch". *(85)*

पद्य—नुडिय बारदु नुडिवेनु केळु कीर न । म्मोडेयनंगनेयरसोंकि ॥
नुडिगेडिसुव कूडे नुडिसुव नुडिगळ । तडबड गोळिसिनगुवनु ॥ ८६ ॥

अर्थ—कहना तो नहीं चाहिये था, तथापि कहे देती हूं, वे (राजा) हम लोगों को वार्तालाप से हका, बका कर देते हैं । हे शुकराज ! अनेक प्रकार की बातों से हमें हंसाते हैं और भी मीठी वार्तालापादि से हमें आनन्द कर देते हैं इसका मैं कहाँ तक वर्णन करूं ॥ ८६ ॥

"He keeps us spell bound by his sweet talk and makes us laugh at his pleasure". *(86)*

पद्य—नोडेम्म रमनणाटव मुगुदेयनोड । गूड्वागल्मुन्नोम्मे ॥
नोडिसि नोटगेडिसिमत्तेनोडिसि । वोडिसुवनुलज्जेर्यिद ॥ ८७ ॥
हगलिरुळ्तु तन्न होरेयोळिद्दा गेवे । देगेवष्टु वेळेगाणिसुवा ॥
अगलिद वेळेयोळरेघळिगेय नोंदु । युग माळ्पना मायाकारा ॥ ८८ ॥

अर्थ—हे शुकराज देखो ! श्री भरतेश जी जब रातदिन हमारे साथ रहते हैं तो हमें रात दिन व्यतीत होते मालूम नहीं पड़ते वल्कि क्षण के समान मालूम होते हैं; किन्तु जब उनका (राजा का) वियोग होता है तव वही समय एक युग के समान मालूम होता है। हमारे पतिदेव तो मायावी हैं मैं कहाँ तक उनका वर्णन करूं ॥ ८७-८८ ।

"Dear bird ! when Bharatji is with us time slips away un-noticed, but when there is separation, a moment passes like an aeon" (87-88)

पद्य—मैयोळ् चुंबनकधरवे सिहियेंब । हुय्यलंतिरलि केळवन ॥
मैयेल्ल सिहियेंदरेन हेळ्लि नन्न । बय्यदिरेले पच्चे वर्णा ॥ ८९ ॥
नासिक दुसुरु कंपेंबरु गंधव । पूसि कंपेंबरेल्लरोळ् ॥
सोवगन तनुवेल्ल सहज दिव्य । वासनेयेन बणिणपेन् ॥ ९० ॥

अर्थ—शरीर चुम्बन तो मधुर है ऐसा कहते हैं, परन्तु हे पक्षी ! तुम आश्चर्य करोगे ! मेरे पतिदेव का सारा शरीर ही मधुर है। मुझसे नाराज मत होना। तथा मुझे गाली नहीं देना ॥ ८९ ॥

अर्थ—नासिकारन्ध्र का श्वासोच्छ्वास सुगन्धित है ऐसा लोग कहते हैं परन्तु हमारे राजा का सारा शरीर दिव्य गन्ध से सुगन्धित है उसका वर्णन मैं क्या करूं ॥ ९० ॥

"His whole body is sweet like his lips, and is fragrant like his breath". (89-90)

पद्य—ओलिदव लोपन हलवु चंददि पोग । ळ्दुलिद ळेंदेनदिरु गिळियें ॥
मलमूत्र विल्लद दिव्यदेहिय गुण । गळ पेळ्ला नेण्टरवळ् ॥ ९१ ॥

अर्थ—प्रत्येक अङ्ग का वर्णन करने के पश्चात् कहने लगी कि हे अमृत वाचक ! तुम ऐसा मत कहना कि भरतेश जी तेरे पति हैं तभी तू इतना वड़प्पन देरही है हाँ भरतेश जी ! मेरे पति हैं अतः प्रणयन के वश होकर मैंने प्रशंसा की है। परन्तु तनिक तुम भी विचार करो, जिनके शरीर में तनिक भी मलमूत्र नहीं है। ऐसे पवित्र शरीर की सुन्दरता का वर्णन करने में क्या मैं समर्थ हूँ ? ॥ ९१ ॥

"Look here Sri parrot. Do not be led away by the impression that I have been eulogizing Raja Bharat, because he is my husband or I am under infatuation. The point is his body is free from excretae and naturally you can just imagine what would be the limit of his beauty. At least I cannot express it". (91)

पद्य—पृथिवी पतिय कंडु हेब्बेब्ब गोंडितु । कथिसिदळेनदिरु खगवे ॥
प्रथम तीर्थेशन हिरिय कुमारन । कथनव पेळ्वळु नाने ॥ ९२ ॥

अर्थ—सम्राट को देखते ही यह स्त्री किंकर्तव्य विमूढ़ होगई, इसलिये चक्रवर्ती का वर्णन किया है ऐसा मत कहो । वे प्रथम तीर्थंकर श्री महेवाधिदेव श्री आदिदेव के पुत्र हैं ॥ ९२ ॥

"Do not say dear that I have been wonderstruck by the splendour of the Chakravarti and that is why I have been talking like this. You had better know that he is the son of the first Tirthankar, Lord Adinath". (92)

पद्य—नल्लर देव नीरर देव कलेगळ । वल्लर देवनेंदेंव ॥
सोल्लिगे तक्क वनिने गोव्व भरतेश । नल्लवे हेळरगिळिये ॥ ९३ ॥

अर्थ—वे सब मनुष्यों के स्वामी हैं, व्यन्तरों के अधिपति हैं । विद्वानों के राजा हैं । इस प्रकार ख्याति प्राप्ति संसार में श्री भरतेश जी हैं उनका वर्णन कौन कर सकता है ॥ ९३ ॥

"He is the king of all men, the leader of all Vyantars (peripetatic class of celestial beings,) and the head of learned persons. Who can describe his fame ? At least I am incapable of it. (93)

पद्य—गंडर गंड चेल्वर गंड . मलेवर । हिंडिन गंडनेंदेंव ॥
कोंडाट कोप्पुव नोव्वनी धरेगेम्म । गंडनल्लदे पेररुंटे ॥ ९४ ॥

अर्थ—वे सब राजाओं के महराजा हैं हम सभी स्त्रियों (रानियों) के पति व विद्वज्जनों के स्वामी हैं । तीनलोक में प्रशंसा के योग्य हमारे पतिदेव हैं । उनका वर्णन मैं किस प्रकार करूं ॥ ९४ ॥

"He is the Emperor of all Rajas and the lord of ninety six thousands queens". He deserves the praise of the whole world. How can I describe his glory. (94)

पद्य—कब्बुविल्लिल्लद कंदर्प करेमेंगे । हब्बिदोरद पूर्ण चन्द्र ॥
गब्बु जव्वनेयर कएण नोटद होस । हब्बवल्लवे नम्म राया ॥ ९५ ॥

अर्थ—वे पुष्प बाणों से रहित कामदेव हैं, कलंक रहित पूर्ण चन्द्रमा हैं यौवन संयुक्त होने से स्त्रियों की दृष्टि में आनन्द पूर्ण पर्व हैं। हे शुकराज ! सुनो ऐसे हमारे पतिदेव हैं ॥ ९५ ॥

"He is the cupid without arrows of flowers, is the full moon without its spot, and a pleasant treat for us women". *(95)*

पद्य—अवन गुणवनव नोप्पुव कडेगंडु । विवरिसलेन्नळवल्ल ॥
इवु सूचनार्थ वर्ण नेगळेंदरिदु नी । नव धरिसमृतवाचांका ॥ ९६ ॥

अर्थ—मैं उनके अनन्त गुणों की प्रशंसा करने में असमर्थ हूं। हे अमृत वाचक ! यह तो केवल मैंने उनके गुणों की सूचनामात्र ही कथा कही है। इस प्रकार से तुम समझो ॥ ९६ ॥

"It is impossible to describe his infinite qualities. I have so far merely touched upon the subject". *(96)*

पद्य—निन्नोळगिरलि ना नुडिद नुडि गळिव । नन्निगरिगे हेळवेड ॥
नन्नवनेंदु निन्नोडने हेळिदेनल्ल । दिन्नोब्बरिगे हेळ्वळल्ल ॥ ९७ ॥

अर्थ—परन्तु ध्यान रहे, मैंने जो जो बातें कही हैं, उनको अपने मन में रक्खो किसी से मत कहना। तुम्हें अपना ही समझकर उपरोक्त बातें कहीं हैं अन्यथा मैं किसी से कहने वाली नहीं थी ॥ ९७ ॥

"Take care, Sri parrot, do not disclose this to anyone. I have told you because you are my own". *(97)*

पद्य—अहुदल्ल वेन्नदे सुम्मनिर्दपेयेले । विहिग पेळिन्नय मनके ॥
बहुवो बारवो नन्न नुडिगळेंदसियळा । ग्रहिसि केळिदळद रोडने ॥ ९८ ॥

अर्थ—हे अमृत वाचक ! अभी तक तो तुम मेरी चुप चाप सब बातें सुन रहे हो और कुछ भी उत्तर नहीं दे रहे हो। मैं जो कुछ भी कह रही हूँ वह सच है या झूठ। तुम्हारा विश्वास है कि नहीं, बोलो तो सही इस प्रकार साग्रह पूछने लगीं ॥ ९८ ॥

"So far, Amritvachak, you have been hearing me all the time without

uttering a word. I wonder whether you believe me or not. Dear, just speak out". (98)

पद्य—अक्क निन्नी नुडि नन्न चित्तकेबार । दक्कद वंदरुगुरेंने ॥
पक्कि गेतके वहुदी जान्मेयेंदुद । चोक्कमातिन राजकीरा ॥ ६६ ॥

अर्थ—तब वह-अमृत वाचक पक्षी बोलने लगा कि हे बहन ! तुमने जो भी रहस्य कहा वह मेरे चित्त में आता ही नहीं और आया भी हो तो मैं उसे कह नहीं सकता हूं। पक्षी की जाति में जिसने जन्म लिया है भला उसमें क्या चातुर्यता होगी ॥ ९९ ॥

"Then the parrot said, "In the first instance I have not been able to grasp all what you have said and even if I have understood a little I am unable to express it properly. I have been born as a bird and do not possess the power of speech". (99)

पद्य—धरेयोळेल्लर नडेनेडिगळ कलिवेनें । दरे वहवक्क केळ्निम्म ॥
पुरुपन नडेनुडि निम्मय नडेनुडि । पररिगे बारवशक्य ॥ १०० ॥

अदरिंद सुम्मनालि सुतिद्दे नक्क नी । नोदवि पेळेंद मेलेन्न ॥
एदेयरिदानित सोल्लिपेनु केळेंदुदिं । तिदु राजलावण्य संधि ॥ १०१ ॥

अर्थ—लोक में सबके बोलचाल को देख सुनकर सीख सकता हूं परन्तु बहन ! तुम्हारी व आपके पति की बोल चाल कुछ विचित्र सी है यह किसी दूसरे को नहीं आसकती अतः मैं चुप चाप सुन रहा था। अब तुम अधिक आग्रह कर रही हो इसलिये मैं कहता हूं उसे सुनो ॥१००-१०१ ॥

' But dear sister, one thing I can tell you, something is peculiar in your and your husband's conversation. I do not find it with anyone else. For this reason I have been hearing you without causing any interruption. But since you are pressing me, I shall have to speak out". (100-101)

पद्य—ई जिन कथेयनु केळिद्वर पाप । बीज निर्नाशन वहुदु ॥
तेज वहुदु पुण्य वहुदु गुँदोलिप । राजितेश्वरण काणुवरु ॥ १०२ ॥

अर्थ—इस जिनेश्वर की कथा को जो सुनेगा उनका पाप बीज नष्ट होगा। तेज की वृद्धि होगी एवम् पुण्य बन्ध होकर अन्त में अपराजित पद को पावेगा ॥ १०२ ॥

Those person who will hear this glory of Raja Bharat with rapt attention will destroy the seeds of their sins, will get all the happiness and in the end attain un-conquerable position (liberation). (102)

पद्य—प्रेमदिंद नोदिदरे पाडिदरे केळ्द । रामोद वैदुवरवरु ॥
नेमदि सुररागि नाळे श्रीमंधर । स्वामिय काण्बरतिंयोळ् ॥ १०३ ॥

अर्थ—इस कथा को जो लोग प्रेमसे पढ़ेंगे तथा सुनेंगे वे आमोदको प्राप्त होंगे ओर नियमसे देवपद को प्राप्त कर अन्त में विदेह क्षेत्र में जाकर प्रेम से श्रीमन्दरस्वामी का दर्शन करेंगे ॥ १०३ ॥

Those who will read this with attention and recite it with devotion will have the 'darshan' of Simandhara Swami in Videha Kshetra. (103)

पद्य—घोर संसार कांतार दावानल । चारु केवल्य मांगल्य ॥
कोरैसु तेन्नंत रंग दोळिरु मेरु । धैर्य चिदम्बर पुरुषा ॥ १०४ ॥

अर्थ—अत्यंत घोर संसाररूपी दावानलको नष्ट करने वाले और उत्तम तथा सुन्दर केवलज्ञान युक्त और मंगल सहित, भव्यजीवों को भवसागर तथा संसार रूपी दावा नल से मुक्त करने वाले हे सिद्ध भगवान् ! आप हमेशा चमकते हुये धैर्य तथा मेरु पर्वत के समान मेरे हृदय में स्थिर रहो ॥ १०४ ॥

भव्य जीवों को प्रतीत होगा राजा भरत को इस प्रकार अतुल संपत्ति तथा भोग और भोग के साथ योग का भी साधन करते हुये संसार में तिल मात्र भी दुःख नहीं था, क्योंकि उन्होंने पूर्व भव में आत्मा और शरीर दोनों का भेद विज्ञान से अभ्यास किया था इस लिये उनको संसार में रहते हुये भी आत्म ज्ञानकी प्राप्ति हुई तथा संसार सुखको देवेन्द्र तुल्य भोग भोगते थे। इसलिये हे भव्यजीवों ! राजा भरत के समान आप भी भेद विज्ञान का अभ्यास करो तो आपको भी इस लोक तथा परलोक की सुख संपत्ति प्राप्ति होवेगी, यही उपदेश देशभूषण मुनिराज भव्य जीवों को बार बार संबोधन करते हैं कि तुमको भी इसप्रकार सुख शांति मिलेगी ॥

The destroyer of the fierce fire
of mundane wanderings
Invested with the glory of omniscience
and omni---potence
The Saviour of Bhavyas from the
fire of transmigration
Be fixed in my heart firm as Meru. (104)

॥ इति प्रथमः भागस्य पञ्चम सर्गः राज लावण्य संधि संपूर्णम् ॥

सप्तम् सर्ग:

ॐ शुकालाप संधि ॐ

पद्य—भव्यर गेच्चे निर्भव्यरिगेदेगिल्छे । अव्ययसिद्धिय मोदले ॥
सुव्यक्त मतिदोरु सुखदोरु सन्मुनि । सेव्यनिरंजन सिद्धा ॥ १ ॥

अर्थ—हे सिद्ध भगवान् ! भव्य जीवों के लिये आप इष्ट हैं । अभव्यों के लिये नहीं । एवं प्रथम अव्यय सिद्धि को प्राप्त करने वाले आपही हैं अतः तपोधन मुनिराज आपकी सेवा में निरत रहते हैं । कृपया हमें भी सुबुद्धि देकर, सुख का मार्ग बताइये ॥ १ ॥

O Siddh Bhagwan, you are the object of veneration for the Bhavyas (souls capable of attaining Nirvan) . You are the first to attain salvation, hence saints remain steadfast in their devotion to you. Please also show me the path of eternal bliss by bestowing real knowledge. (1)

पद्य—केळक्क कुसुमाजि निन्न मुँदिर्तेदु । हेळ्व दक्षनानल्ल ॥
हेळेंदु नीनेंद मेले निन्नाज्ञेय । तालि नुडिवेनु बल्लनिता ॥ २ ॥

अर्थ—बहिन कुसुमा जी ! आपके सामने मुझमें कथन करने की योग्यता नहीं है, किन्तु आपके अत्यन्त आग्रह वश मैं विवश हो कहता हूं । इसलिये जो मेरी समझ में आया है उसको मैं तुमसे कहूंगा ॥ २ ॥

Sister Kushumaji, I do'nt possess the ability to speak before you but because of your entreaties, I speak to you by sheer compulsion. Hence whatever has come to my mind, I will tell that to you. (2)

पद्य—अक्क नीनाडिद नुडियेल्ल नृपतिगे । तक्कवल्लदे टोळ्युँटे ॥
मुक्कोडे योडेयन हिरिय पुत्रगे दश । दिक्कि नोळेनेयहरारु ॥ ३ ॥

अर्थ—बहिन ! तुम जितनी भी बातें अपने पतिदेव के विषय में कह चुकी हो वे सब पूर्ण तथा सत्य हैं, इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं ।

रत्न त्रय छत्र धारी श्री महादेवाधिदेव श्री आदिनाथ के इन ज्येष्ठ पुत्र की बराबरी करने वाला दश दिशाओं में कौन है ? । ॥ ३ ॥

Sister, whatever you have spoken about your husband is entirely correct and true, there is not the least of doubt. Who is there in the ten corners of the earth to equal the eldest son of the God of the Gods Adinath, the possessor of jewel. *(3)*

पद्य—अत्रनिगे राजनादवनिगे साटियि । ल्लवनिगे राणियराद ॥
निवगेणेयिल्ल निम्मोड नाडि पाडिद । नवगारु सरियें दुदोडने ॥ ४ ॥

अर्थ—वास्तव में उनकी बराबरी करने वाला कोई राजा महाराजा नहीं है और इस प्रकार से तुम्हारे साथ बात चीत करने वाला मेरे समान भी कोई नहीं है, इसमें कोई अत्युक्ति नहीं समझनी चाहिये ॥ ४ ॥

Certainly, there is no king who can equal him and there is no body like me to talk with you in this manner, don't consider it as an exaggeration. *(4)*

पद्य—भूवळ यांविकेयल्ते यसस्वति । देवि पडेदळा नृपना ॥
नीवेल्लराव नोंपिय फलदिंद मा । देवियरादिरेंदरिये ॥ ५ ॥

अर्थ—जिसने इस षट् खण्डाधिपति को जन्म दिया है वह यशस्वनी जगन्माता है, एवं तुम जो उसकी रानियाँ हुई हो इसके लिये तुमने पूर्व जन्म में अतुल पुण्य का संचय किया होगा ॥ ५ ॥

The woman who has given birth to this ruler of six parts of the universe, is the world's mother Yashoshwati and you all who are his queens must have amassed limitless virtues in the previous birth. *(5)*

पद्य—उत्तम पुरुष नुत्तम सतियरु कूड । लुत्तम वदु नोडुवाग ॥
उत्तम कनक दोळुत्तम मणिगळ । तेत्तिसि दंत हुदक्का ॥ ६ ॥

अर्थ—उत्तम सतियों का उत्तम पुरुषों के साथ सम्बन्ध । उत्तम सुवर्ण के आभरण के बीच में उत्तम रत्न के चढ़ाव के समान है। यह अतिशय पुण्य का फल है ॥ ६ ॥

The relation of devoted wives with the virtuous persons is like the glow of the best jewel in the middle of ornaments. This is the result of immense virtue. *(6)*

पद्य—एळे वरेयद पुरुषनने ळेवेंगळु । नलिदोप्पि दोंदु विलास ॥
एळेभाव नप्पिद दुंडुमल्लिगे गळं । तिळे गोप्पुतिहुदंबुजाक्षि ॥ ७ ॥

अर्थ – बहिन ! तरुण या तरुणियों का सम्बन्ध सचमुच में आम्र वृक्ष पर लगी हुई चम्पा व चमेली के गुच्छे के समान है। अब मैं दोनों का कैसे वर्णन कर सकती हूं ॥ ७ ॥

Sister, the relation of young man and woman is really that of the bunches of Champa and Chameli attached to the mango tree. How can I attempt a description of both. (7)

पद्य—राजपुरुषनोळु राजीववदनद । राजांगनेय रोप्पिरलु ॥
जाजिय लतेगळु वनदोळशोकेय। भूजवनप्पिदंतिद्दु ॥ ८ ॥

अर्थ—सुन्दर भरतेश के साथ आप सदृश सुन्दर स्त्रियों का सम्बन्ध अशोक वृक्ष के साथ लगी हुई जाही-जुही लता के समान मालूम होता है ॥ ८ ॥

The relation of pretty damsels with the handsome Bhartesh seems like that of the creeper attached to the Asoka tree. (8)

पद्य—अल्प मध्येयरु नीवा भरतेशन । तोळु पसर दोळे सेवाग ॥
कल्प वृक्षद कल्पलते गळडरिद मं । कल्पदोळे मगे तोरुतिदे ॥ ९ ॥

अर्थ—'अल्प मध्यम' (एक प्रकार की स्त्री जाति) हो। जब राजा भरत तुम्हारी ओर हाथ बढ़ाते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि कल्प वृक्ष फल देरहा है ॥ ९ ॥

You are 'Alpa Madhyam' (a type of woman). When king Bharat stretches his hands towards you, it appears as if the celestial tree (Kalpa Briksha) is giving its fruits. (9)

पद्य—मलयजगंधन कर्पूर गंधिय । रेळसि नीवप्पिद भाव ॥
मलयज वृक्षव नेळे ले वाळे ग । ळोलिदडदंते तोरुतदे ॥ १० ॥

अर्थ—यदि भरतेशजी चन्दन के समान सुगन्ध युक्त हैं तो आप लोग कर्पूर के समान हैं। चन्दन वृक्ष पर लिपटी हुई सुगन्धित लता के समान आपकी अवस्था है ॥ १० ॥

If Bhartesh is as fragrant as a sandal tree then you all are camphor. Your condition is like that of the attached fragrant creeper to the sandal tree. (10)

पद्य—पुरुष रोळव रत्न स्त्रीय रोळगे नीवु । सुरुचिर रत्नगळक्का ॥
बेरसिद बगेयिदु रत्न रत्नवकूडि । सरमाडिदंते तोरुतिदे ॥ ११ ॥

अर्थ—राजा भरत पुरुषों में पुरुष रत्न हैं। आप लोग स्त्रियों में स्त्री रत्न हैं। अतः आप लोगों की जोड़ी रत्नों से रचित रत्नहार के समान हैं ॥ ११ ॥

King Bharat is a jewel among men. You are jewel among women. Hence your pair is like that of a necklace studded with jewels. *(11)*

पद्य—पति होल्ल सति लेसु सति होल्ल पति लेसें। वति विकृति गळ्ंटु परगें ॥
पति लेसु सतियर लेसुलेसेंवंते। नुतिवेत्तारारुनिम्मंते ॥ १२ ॥

अर्थ—लोक में अनेक प्रकार से स्त्री-पुरुषों में असमानता पाई जाती है यह कैसे ? यदि पति धार्मिक है तो पत्नी अधार्मिक है, एवम् पत्नी धार्मिक है तो पति धार्मिक नहीं। पति बुद्धिमान् हो तो पत्नी मूर्खी होती है। यदि पत्नी बुद्धिमती होती है तो पतिदेव मूर्खराज। एवम् पति शूरवीर हो तो पत्नी भीरू (डरपोक) होती है यदि पत्नी शूरवीर हो तो पति कायर होता है। यदि पति व्यवहार कुशल हो तो पत्नी भोली भाली होती है और पत्नी कार्य चतुर हो तो पति भोंदू होता है। इस प्रकार की विलक्षणता से संसार भरा पड़ा है। परन्तु बहिन ! पति पत्नी की समानता में तुम्हारे सदृश संसार में प्रसंशनीय कौन है ? तुम लोगों में पति के अनुकूल गुण वाली पत्नी हैं और पत्नी के अनुकूल गुण वाला पति है। इसलिये सब लोग तुम्हारी प्रसंशा करते हैं। अतएव तुम अवश्य ही प्रसंशनीय हो ॥ १२ ॥

Great disimiliarity is found among and men women in this world. If the husband is religious then the wife is irreligious, and vice versa. If the husband is intelligent then the wife is a fool. If the wife is intelligent then the husband is an idiot. If the husband is courageous then the wife is a coward and if the wife is courageous then the husband is a coward. If the husband is too clever then the wife is too simple and if the wife is very clever then the husband is a simpleton. Such type of disposities abound in this world. But sister in the alikeness between husband and wife who is in the world more praisworthy than you.? Among you there are wives with the qualities that well accord with the husband and there is the husband with the qualities that well accord with the wives. That is why all people shower their praises on you. Hence you are certainly praiseworthy. *(12)*

पद्य—कलेय नरिव पुरुषन पडेदुदु पूर्व। दोळ् नारि माडिद पुण्य ॥
कलेगनु कूलेय पेडेदुदा पुरुषन। नल्ल पुण्यचक्कनिन्नाणे ॥ १३ ॥

अर्थ—सर्व कला विशारद पति का पाना स्त्रियों का पूर्वोपार्जित पुण्य ही समझना चाहिये। कला में प्रवीण स्त्रियों का पाना भी पुरुष का पुण्योदय समझना चाहिये। लोक में परस्पर प्रकृति का मिलना अति दुर्लभ है। इसके लिये अनेक जन्मों के संस्कार एवं पुण्य की आवश्यकता है। बहिन कुसुमा जी! मुझे यह कहते महान् हर्ष होता है कि, तुम लोगों में व भरत जी में जो परस्पर अनुकूल प्रवृत्ति है वह आनन्द रूप है। इस प्रकार की दशा अन्यत्र दुर्लभ है। बहिन कुछ सोचिये तो सही, तुम लोगों ने कितना पुण्य किया है तथा कौनसा व्रत पालन किया है, जो अवर्णनीय है॥ १३॥

To get a husband with versatile genius must be considered the result of amassed virtues in the previous births of the women. To get women with ver: satile gifts must be considered the result of virtuous actions of the men. It is difficult to find couple with agreeable temperament . For this the virtuous actions of innumerable lives is needed. Sister Kusuma I have pleasure in telling you that the agreeableness of temperament found in Bhartesh and you people is a thing of pleasure. Such a condition is very difficult to find. Sister just, ponder, how much virtuous actions you have done and what fast you have under taken which is undescriable. *(13)*

पद्य—जाणे जाणनु कूडलदुतंतिगूडिद । वीणेय नुडिसि दंतिहुदु ॥
जाणे हेड्डनुकूडलिहुददुवीणेगे । नेण विगेदुमिडिदंते ॥ १४ ॥

अर्थ—बहिन! विद्वान् पति को विदुषी नारी का मिलना सचमुच दुग्ध में शकर के समान है। जिस प्रकार वीणा का तार मिलाकर सुमधुर स्वर निकलता है उसी प्रकार आप लोगों का सहयोग प्रतीत होता है। उसी प्रकार का सहयोग हाथी की सवारी के तुल्य है, मूर्खों का सहयोग बैल की सवारी के समान है विशेष क्या कहूं! तुम्हारी जोड़ी, मानो कामदेव व रति की जोड़ी ही है॥ १४॥

Sister for a learned man the partnership of an educated women is like the combination of sugar in milk. As by joining the strings of the violin enchanting music comes forth. Your pair is like that of Rati and Kamdeva. *(14)*

पद्य—नीरे नीरन कूट नृपन सांबाणिय। येराट दंतिहुदक्का ॥
नीरनु जडमति योळु कूडे नृपनेचे। नेराटदंतिहुदल्ते ॥ १५ ॥

अर्थ—चतुर पति पत्नी का परस्पर इंगित सारंग की सवारी के समान है मूर्ख स्त्री और पुरुष का व्यवहार गदहे की सवारी के तुल्य है ॥ १५ ॥

पद्य—नेमदानव बल्ल नीरे नीरन कूट । कामन रतियाटदंते ॥
कामतुर मात्रद्‌वराट सोगसल्ल । पामरजनदाटदंते ॥ १६ ॥

अर्थ—समयानुसार नियम तथा प्रेम से पति पत्नी का भोग, कामदेव के भोग के समान है और जो अत्यन्त कामातुर होकर भोग करते हैं वे पामर हैं, और उनको पशु के समान जानना चाहिये ॥ १६ ॥

पद्य—सरस कलेय बल्ल सति पुरुपर कूट । गरुडिकारर कूटदंते ॥
त्वरित सुखातुरिगर कूट डाग़ेय । परिवारगळ्कूटदंते ॥ १७ ॥

अर्थ—सरस कला व प्रेम पूर्वक वार्तालाप करते हुये आनन्द के साथ जो रति केलि करते हैं, वे मल्ल सदृश हैं और जो उसमें सदैव विषयानुरक्त होकर रति, केलि करते हैं, उनको नीच पशु के समान जानना चाहिये ॥ १७ ॥

पद्य—होत्त नरियबेकु होलब नरियबेकु । चित्तद नेलेगाण बेकु ॥
होत्तु होत्तिगे होसपरिय सिंगरबेकु । उत्तम सुखिगळंगविदु ॥ १८ ॥

अर्थ—बहिन ! समय को पहिचानना चाहिये । योग्यायोग्य को जानना चाहिये अपने पति की चित्तवृत्ति को देखकर, समय समय पर सुन्दर शृंगार करना उत्तम सती स्त्रियों के लक्षण हैं ॥ १८ ॥

Sister, one must understand the importance of occasion and discriminate between desirable and undesirables. An able woman would adapt herself to the mood of her husband. *(18)*

पद्य—रमणन सिंगर रमणीय करणर्ति । रमणीयसिंगर तन्न ॥
रमणन करणर्ति येंदंगशृंगार । गमकद गाडि बेकक्क ॥ १९ ॥

अर्थ—पति का शृंगार पत्नी को प्रिय हो और पत्नी का शृंगार पति को प्रिय हो, ऐसा ही आचरण करना पति पत्नी दोनों का धर्म है ॥ १९ ॥

The husband and wife should deport themselves in such a manner that the conduct of one is agreeable to the other. *(19)*

पद्य—योचने वेकु गंभीर वेकुग्रत्व । माचने वेकोजेवेकु ॥
आचारशील नकुत्तम भोग दो । लाचारिगुवर म.गॅ.वेदु ॥ २० ॥

अर्थ—स्त्रियों को प्रत्येक विषय की चिन्ता की आवश्यकता है वे गम्भीरता को प्राप्त कर, उग्रता को दूर करें। बहिन ! धीरता की भी आवश्यकता है और आचार शील होना उनका परम धर्म है ये उत्तम भोगियों के लक्षण हैं ॥ २० ॥

A woman has to be very considerate in her actions. She should cultivate sobriety and give up impetuosity. She needs to be courageous and of good conduct. *(20)*

पद्य—दीपाग्नित्र ह्वरिगदुंवर्नते सं । तापवरिदु कामसुखवा ॥
व्यापिस वेकल्लदनिरति सल्लदु । पाप भोरुगळ भोगविदु ॥ २१ ॥

अर्थ—बहिन ! कामसुख को अत्याशक्त होकर नहीं भोगना चाहिये । ज्यठराग्नि की मन्दता तथा उसकी तीव्रता को विचार कर तदनुसार ही भोजन करना हितकारी होता है अन्यथा अनेक प्रकार से रोगोत्पत्ति की सम्भावना रहती है यही उत्तम भोगियों के लक्षण हैं ॥ २१ ॥

Well sister, one must not indulge in sex pleasures in an unrestricted and unregulated manner. You know that unregulated diet results in diseases. *(21)*

पद्य—मदवेद जव्वन वेत्ति दप्टने सुर । तदोळु भोगिसि विडवेकु ॥
मदन कामेश्वरि मोदलाद तंत्रदिं । ददनति हेच्चिससल्ल ॥ २२ ॥

अर्थ—यौवनमद जितना चढ़े, उतना ही उसे भोगकर शान्त करना चाहिये मदन कामेश्वरी आदि तंत्रों से उस कामेच्छा को बढ़ाना ठीक नहीं है ॥ २२ ॥

Things must be allowed to have their natural course. One must not use artificial means to intensify sex passions. *(22)*

पद्य—सेविसिदन्नपानद शक्तियिंद स्व । भावोल्दहसुखसोगसु ॥
द्रावणस्थंभन मोदलाद तंत्र । भावित सुख ताने दुःख ॥ २३ ॥

अर्थ—बहिन ! तुम जानती हो कि भोजन किया हुआ अन्न यदि उचित रूप से पचकर शरीर के अवयवों में पहुँच जाय तो ठीक है । द्रावण स्तम्भनादि (दवाई-आदि) प्रयोगों के द्वारा उस आहार को पचाने का प्रयत्न करना सुख कर नहीं बल्कि दुःख कर है ॥ २३ ॥

You know, sister, it is healthy if the food can be digested without the aid of medicines. It is different otherwise. *(23)*

पद्य—नव यव्वन शक्तियिंदाद रति सुख । दिविजगंगेय जलदंते ॥
कवळमद्गुळ शक्तियोळाद सुखवदु । लववार्धिय जलदंते ॥ २४ ॥

अर्थ—नव यौवन में उत्पन्न कामसुख स्वर्गीय गंगाजल के समान रहता है, धातु पौष्टिक आदि अनेक औषधियों द्वारा भोगा हुआ काम भोग लवण समुद्र के जल के समान क्षार एवम् निरर्थक होता है ॥ २४ ॥

The satisfaction of sex appetite in a normal manner is superior like Ganga water; while the indulgence through its intensification by means of exciting food and medicines is distasteful like sea water. *(24)*

पद्य—तोडेसोंकि सहजदिंदोलिसदे लेपन । दोडेदोंदि केलरोलिसुवरु ॥
कडेग्गुट्टि निलदेडेयोळु बयलहुददु । तोडहदमोहनिंदपुदे ॥ २५ ॥

अर्थ—सहज ही में जंघा से जंघा को भी मिला कर ताड़न एवम् विनोद से समभाव पूर्वक (धीरे धीरे) अन्त समय तक उनकी (स्त्री की) अनुसार रति क्रीड़ा (विषयभोग) करते हुये जो शान्ति उनको मिलती है वह दोनों को आनन्द दायक है। यही उत्तम भोगियों की रति क्रीड़ा है ॥ २५ ॥

पद्य—इद्द सहज शक्तियिंदनु भविसदे । मद्दिन वलदिंद रमिसे ॥
खिद्दिसे नष्टेंद्रिय मोदलादवु । होद्दि नोयिसुववु कूडे ॥ २६ ॥

अर्थ—अपनी शक्ति के अनुसार रति क्रीड़ा का अनुभव न करते हुये अपने मद के द्वारा बलात्व रीति से जो रति क्रीड़ा करते हैं वे अन्त में शक्ति व बल को नष्ट करते हैं अथवा नष्टेन्द्रिय होकर अपने आप दुःखी होजाते हैं ॥ २६ ॥

Those who indulge in sex actions without having any consideration of the physical capacity, but led away by intensity of infatuation, spoil their physique. *(26)*

पद्य—हवनल्ल दन्नव नुँडरजीर्ण सं । भविसि नोयिसुवंते मदद ॥
हवणरिय दतिरति यागे रोग हु । ट्टुवदायुश्यत्तिकेडुवुदु ॥ २७ ॥

पद्य—श्रोगेद कातर तग्गुवानित भोगिसलदु । गोगगु वेग्गळिगि भोगिगदु ॥
भगेय कुदासरुदुगतिगेडुवुदु । पगेयकुदा सुखननगे ॥ २८ ॥
नोट सरस नुडियोळु होनु मलवेकु । कूट वेंवुदु स्वल्पकाल ॥
नोटिदरदु सुख वेगळ्विसिदरेदे । गोटलेयल्लदसुखवे ॥ २९ ॥
श्रोळ्गरि दोलवरि दंतरंगद शक्ति । मळगि कूडुव कुशलरिगे ॥
गेलवह दानंद वहुदरिवहुदु प । ज्जळिसुतिहुदु मुखकांति ॥ ३० ॥
करगांद्रियंगळ कंगेडिसदे तर । हरके तंदनु भविसदिरे ॥
सरस कवित्व वहुदु गागवहुदु सि । गरद विटाय मेरेवुदु ॥ ३१ ॥
दनिदु रति क्रीडे यिंदाद सुकवित्व । गणिकेय श्रृंगारदंते ॥
गणशब्द रचनेय छांदस कवितेत्रा । मणितिय श्रृंगारदंते ॥ ३२ ॥
चित्त सोलदोळोर्वरोर्व रोलिदुकूड । उत्तम सुखवदु सोगसु ॥
श्रोनावदिंद वेसरिपुदु कोरळिगे । कत्तेयानिसिकूडुवंते ॥ ३३ ॥
पेएगंडुगळु मनकरगि कूडिदोडच्च । वएगळ सविनोडिदंते ॥
नाएगेट्टु शक्तियिंदोत्ति कूडिदरोत्तु । वएगळ सविदंदवलने ॥ ३४ ॥
गुणके सोतोर्वरोर्वरु कूडे नीरोळ । गणगुँडनेत्तुवंतिहुदु ॥
हणहोन्न शक्तिय रतियाट नेलद मे । गण गुँडनेत्तुवंते ॥ ३५ ॥

अर्थ—जैसे उचित मात्रा में भोजन करने से अग्निमान्दादि रोगों की उत्पत्ति नहीं होती है। यदि वही भोजन अनुचित रीति से अधिक खाया जावे तो रोगोत्पत्ति का कारण होजाता है। वैसे ही शक्ति के बाहर रति क्रीड़ा करने वाले पुरुष को प्रमेह आदि रोगों की उत्पत्ति होकर आयु एवम् वल से नष्ट होजाता है ॥ २७

अर्थ—क्योंकि अधिक कातर होकर भोग भोगना हित कारक नहीं होता, किन्तु गर्मी व दाह उत्पन्न करता है। इसमें सुखानुभव अशक्य है मनः संतोष पूर्वक भोगते हुये भोग सुखदायी होता है ॥ २८ ॥

अर्थ—क्योंकि स्त्री, पति को प्रेमभरी सरस दृष्टि से और पति भी स्त्री को सरस दृष्टि से वशीभूत करें। किन्तु थोड़े ही समय के लिये जो ऐसा करते हैं वे अल्पसुखी हैं और इसमें विशेष सुखानुभव नहीं होता। ॥ २९ ॥

अर्थ—अन्तरंग शक्ति को दोनों आपस में जानकर रति क्रीड़ा करने वाले चतुर स्त्री पुरुषों को आनन्द उत्पन्न होता है और दोनों के मुंह पर तेज भी झलकता है ॥ ३० ॥

अर्थ—पांचों इन्द्रियों में आसक्त न हो करके और उसे नष्ट न करते हुये जितना चाहिये उतनी ही रतिक्रीड़ा करना ठीक है। श्रेष्ठ कविता के अनुसार तथा सुन्दर शृंगार एवम् श्रेष्ठ गायन के अनुसार सुख दायक होता है ॥ ३१ ॥

अर्थ—थकावट के साथ रतिक्रीड़ा से उत्पन्न हुई जो सुकविता है वह गरिमा के शृंगार के समान है। और गण, शब्द रचना-छन्द इत्यादि से जो मिश्रित बनाया जाता है वह ब्राह्मणी काव्य स्त्री के शृंगार के तुल्य है ॥ ३२ ॥

अर्थ--अपने आपस में दोनों के मन को थकावट न होते हुये जो रति क्रीड़ा की जाती है उसमें दोनों को सुख प्राप्त होता है, और दोनों ही आपस में भिड़कर शक्ति के बाहर जो रति क्रीड़ा करते हैं वह हाथी और गधे के समान है ॥ ३३ ॥

अर्थ—स्त्री और पुरुष दोनों का मन एक होकर के जो भोग भोगते हैं वह पक्के फल के समान रुचिकर प्रतीत होता है। लज्या के बाहर बलपूर्वक जो क्रीड़ा की जाती है वह खट्टे फल की भाँति है ॥ ३४ ॥

अर्थ—एक दूसरे के गुणों में आकर्षित होकर जो रति क्रीड़ा की जाती है वह पानी में पड़े हुये गोल पत्थर को उठाने के समान है, और सोना-चाँदी रुपया-पैसा के प्रभाव से जो रति क्रीड़ा की जाती है वह पृथ्वी के ऊपर पड़े हुये पत्थर के समान है ॥ ३५ ॥

Just as a person, who takes regulated diet, does not suffer from dyspepsia, but if he takes food in an unregulated manner, he develops many abdominal troubles. Similarly is the case with the sexual pleasures. If one indulges in them in a wild manner, one cantracts venereal diseases of different kinds and shortens his life. Such sort of indulgence is most undesirable. (27-35)

पद्य—समरूप समप्र.य समगुण निम्म । रमणगु निमगु चन्नागि ॥
समनिसित दरिंद निमगण्योन्य सं । भ्रममोह दोरे काँडुदका ॥ ३६ ॥

अर्थ—प्रिय बहिन कुसुमा जी ! तुम्हारे पति और तुम लोगों का रूप एक समान है और वय (उम्र) भी समान है, गुण भी समान है इन सब बातों की जोड़ी तुम लोगों को प्राप्त है। इसलिये दाम्पत्य में इतना प्रेम है। एवम् दाम्पत्य जीवन को निभाने की सर्व सामग्री अविकल रूप से तुम लोगों को प्राप्त है ॥ ३६ ॥

Dear sister, Kusumaji. in your case both of you are of equal qualities. That is the reason why you have such a mutual affection. (36)

पद्य—रूपिंद सोलिसिदनु मने मरम क । लापदिंदं दंगोळिसिदनु ॥
भूप रूपिन मनसिज निम्म मनद स । र्वापहरणवमाडिदनु ॥ ३७ ॥

अर्थ—राजा भरत ने रूपसे तुम लोगों को जीत लिया है । मनरञ्जक आलापों से तुम सबको प्रसन्न किया वह राजा के रूपमें कामदेव हैं, इसलिये उन्होंने तुम्हारा सर्वस्व ही हर लिया है ॥ ३७ ॥

The beauty of Raja Bharat has charmed you, and his sweet manners enchanted you. He is cupid in the form of Raja. *(37)*

पद्य—एल्लरोळगे नोडुवाग नीनें निन्न । नल्लगेनेरसोलळिद्दु ॥
अल्लादररसननितु वर्णिसुद्द । सोल्लनेके बङ्गक निनगे ॥ ३८ ॥

अर्थ—बहिन ! मुझे मालूम होता है कि तुम्हारे ऊपर राजा का प्रेम अधिक है अथवा तुम्हारा प्रेम भी राजा के ऊपर अधिक है, अन्यथा इसप्रकार चक्रवर्ती की सुन्दरता या अङ्ग प्रत्यङ्गों के वर्णन करने की चतुरता तुममें कहाँ से आई ॥ ३८ ॥

Sister, I know Raja loves you more than others and you reciprocate it. If it had not been so, you could not have been able to give such a vivid picture of his person. *(38)*

पद्य—मन मेच्चिदेडेवल्लि ततुमेच्चुवदु नुडि । यनुकूलवह्ददरिंद ॥
मनदिच्चेयरसन पोगळिदे लेसु स । ज्जनसतियर तलेवणिये ॥ ३९ ॥

अर्थ—जहाँ मन प्रसन्न हो जाता है वहीं कार्य अच्छा होता है और वहाँ तदनुकूल वचन कभी प्रवृत्ति हो जाती है । इसलिये हे कुलसती शिरोमणे ! तुमने जो अपने पति की प्रसंशा की सो उचित ही किया ॥ ३९ ॥

Only that work can be successfully done in which the mind feels interested, and only then the expressions spontaneously flow from the mouth. I think you have done your part in an excellent manner. *(39)*

पद्य—नीनेन नुडिवे निन्निनेयन लालने । ताने नुडिसितक्क निन्न ॥
आनंद रसव तन्नेदेगित्त पुरुषन । मानिनि वर्णिसि दिहळे ॥ ४० ॥

अर्थ—तुमने क्या कहा कि तुम्हारे पति का प्रेम ही ऐसा है जो विना बुलाये नहीं रह सकता है । ऐसी कौन स्त्री है जो पति से प्राप्त आनन्द का वर्णन नहीं कर सकती ? अपने पति के कृत्य पर किसे हर्ष न होगा इसप्रकार कुसुमा जी से तोते ने कहा ॥ ४० ॥

Kusumaji retorted, "what nonsense, you say that my husband's love is such that it attracts me. Is it peculiar to me alone? Who is such a wife who will not be pleased at the acquisitions of her husband and will fail to describe his qualities". *(40)*

पद्य—कष्ट पुरुषन काष्टांगनेयरु केळ्दु । देष्टादरुं डु लोकदोळु ॥
शिष्ट पुरुषन शिष्टांगनेयरु पेळ्दु । दिष्टे दुर्लभ काएबरेमगे ॥ ४१ ॥

अर्थ—कुसुमा जी ! लोक में दुःखी पुरुषों के और दुःखी स्त्रियों के अथवा निष्ठुर पुरुषों के व निष्ठुर स्त्रियों के उदाहरण हमारे सामने रातदिन आते रहते हैं । परन्तु शिष्ट स्त्री-पुरुषों का वर्णन सुनना ही दुर्लभ है । ऐसे स्त्री-पुरुष हमें देखने को नहीं मिलते ॥ ४१ ॥

"Dear sister", repeated the parrot, "It is difficult to come across instances of good couple. Such couples are many where there are incongruities and disparities between husband and wife". *(41)*

पद्य—सूरे होददु निन्न मनवेल्लवा गाडि । कारगे भरतेशगक्का ॥
बेरिन्नु केळ्लेतके निन्न नुडिगळे । सारुतिद्द पुवु निन्नोळगा ॥ ४२ ॥

अर्थ—बहिन ! तुम्हारे रोम रोम में भरतेश्वर पति का प्रेम भरा है । इस कारण तुम्हारा हृदय उनके लिये समर्पित है । यह सच है कि मैं तुमसे पूछना नहीं चाहती, तुम्हारे बचन ही इसको स्पष्ट कर रहे हैं ॥ ४२ ॥

"Sister, every part of your body reflects your love for the husband, and your heart has been captured by him. Although I have no intention to ask you about it, but your very expressions betray you". *(42)*

हद्य—निज पुरुषन निजसति मेच्चलाकेय । त्रिजगदोळारु वरिणपरु ॥
सुजनर चरितके सोल्वु देनदे सर । सिजमुखि केळ्ळु निरणाने ॥ ४३ ॥

अर्थ—अपने पति के कृत्य के ऊपर संतुष्ट होने वाली सुशील स्त्रियों की लोक में कौन प्रसंशा नहीं करेगा । बहिन ! मैं तुमसे शपथ पूर्वक कहता हूं कि मुझे सज्जन एवं सुशीला सती स्त्रियों के वर्णन में बड़ा आनन्द आता है उसे सुनकर मेरा चित्त भर जाता है ॥ ४३ ॥

"Who is in this world, who will not praise a wife who derives satisfaction and pleasure on the attainments of her husband. Sister, I feel a great joy in describing the qualities of such a lady". *(43)*

पद्य—केळुतिद्दळु कुसुमाजिया गिळिय वा । गुज़ालद मर्म कलेगळा ॥
ई लेसु होसतिदु गिळियेल्लवेंदाग । ळालोचनेय माडिदळु ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसप्रकार कुसुमा जी अमृत वाचक तोते के द्वारा वागजाल मर्मकला को सुनकर मन में बहुत प्रसन्न हुई और विचारने लगीं कि इतनी कथा वर्णन शक्ति इस तोते में कहाँ से आई। यह तोता नही है बल्कि कोई दूसरा ही बोल रहा है ॥ ४४ ॥

Kusumaji was very much pleased to see such a dexterity in expressions and she began to think that a parrot cannot possess it. There must be some one else, who is responsible for this. *(44)*

पद्य—कलसिदष्टने नुडिवुदु पक्किगुळ्ळदी । गिळि होसकलेय तानेनगे ॥
कलिसु तिद्दि पुदिदु गिळियल्लवेंदु त । नोळगे ता ननेदळा जाणे ॥ ४५ ॥

अर्थ—इसके भीतर कोई व्यन्तर प्रवेश कर गया है, अर्थात् कोई तोते के शरीर में देवकन्या आविष्टहोकर आई है, जो इसके भीतर से बोल रही है । तोते में इतना चातुर्य नहीं हो सकता है । देखो ! इस तोते में कहीं देवी ही तो नहीं है ! ॥ ४५ ॥

Some devil or goddess has entered its body and is speaking out all these thoughts. A parrot cannot be so expert. Let me see whether it is not some goddess. *(45)*

पद्य—व्यंतरनागलि सुरनागलिदर दे । हांतराळ दोळ्डेगोंड ॥
इंतु नुडिव नागवेकेंदु नेनदळा । कांते तानेनु कोविदेयो ॥ ४६ ॥
अवरोळु पुरुषर नुडियल्लवी नुडि । युवतिय नुडियदरिंद ॥
इवळावळेंदुनरिवेंनानेंदाके । सविनुडियिंद केळिदळु ॥ ४७ ॥
पक्कि निन्नी नुडि सत्य निन्नय वेष । टकागि ननगे तोरुतिदे ॥
चिक्क वेषव त्रिट्ट दोड्ड वेषव तोरि । चक्क नेन्नोडने माताडु ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसके बोलने के शब्द पुरुष के समान नहीं हैं स्त्री के समान हैं, यानी इसकी वाणी तरुण स्त्री के तुल्य है । अतः अब इस बात का पता लगाना चाहिये ऐसा विचार कर वे कहने लगीं ॥ ४६ ॥

अर्थ—हे पक्षी ! तुम्हारे वचन सब सत्य हैं परन्तु तुम्हारा भेष सत्य नहीं मालूम पड़ता है ॥ ४७ ॥



जब व्यंतर कन्या तोते के शरीर में प्रविष्टकर कुसुमाजी और राजा भरत की प्रशंसा कर रही थीं, तोते की वाक्य-चतुराई पर मन में विचार किया कि तोते के अंदर इतनी चतुराई कहाँ से आसकती हैं। कोई व्यंतर इसके शरीर में प्रवेश कर बोल रहा है। इसके बाद कुसुमा जी ने तोते से पूछा कि बोलते तुम कौन हो ? तुम तोता नहीं व्यंतर हो तुम अपने सच्चे रूप को बताओ। बाद में व्यंतर कन्या ने अपना असली रूप प्रगट होकर बताया। कुसुमाजी तोते के अंदर प्रविष्ट होकर बोलनेवाली कन्या को देखकर आश्चर्य चकित होगई।

यह चित्र देवेन्द्र कुमार एण्ड आदर्स सदर बाजार लखनऊ के द्वारा छपा।

अर्थ—इसलिये तुम अपने छोटे भेष को छोड़कर बड़े भेष को धारण कर मेरे साथ वार्तालाप करो ॥ ४८ ॥

From the manner of speech she appears to be a grown-up woman. Let me try to find it out. Then she said, "Well bird, your words are true but your form is spurious. Please give up this form, assume your real form, and then talk to me. (46-48)

पद्य—चिक्क वेषवदु चिक्कंदे होदुदु नन । गक्क केळ्दिदे दोड्डवेष ॥
ठक्किंन वेषवल्लिदुसत्यवेष वें । दुक्कि नगुत पेळ्दुदोडने ॥ ४९ ॥

अर्थ—पक्षी ने कहा आपने मुझसे छोटे भेष को छोड़कर बड़े भेष धारण करने को कहा है, परंतु मेरा भेष सत्य ही है। मेरा छोटा भेष तो बचपन में ही चला गया ॥ ४९ ॥

The parrot replied, "I am in my real form". (49)

पद्य—चदुरर कूडतिचातूर्य सल्लदु । सुदतियल्लवे नीनु निन्न ॥
सदमलाकारव तोरेंदु नुडिदळा । चदुररदेवनर्धांगि ॥ ५० ॥

अर्थ—देखो ? मेरे साथ ऐसी चातुरी करना ठीक नहीं, तुम मेरी प्रियसखी हो इसलिये अपने निज स्वरूप को प्रकाशित करो। ऐसा कुसुमा जी ने दृढ़ता के साथ कहा ॥ ५० ॥

Kusumaji then repeated with firmness. Look here, don't try to befool me: You are my dear friend, please reveal your genuine form". (50)

पद्य—भोंकने गिळिय केलदोळनुपमरत्न । संकुल भूषण वेसेये ॥
कुँकुमवर्णद कोरि जव्वन दोर्व । पंकजानने निंदळाग ॥ ५१ ॥
मरसिकोंडिर्द तन्नाकारव देवि । यरिद जान्मेगे मेच्चि नगुत ॥
नेरे शीलवतिय नीक्षिसुत निंदळु काँति । गरेवुत तन्न देहदोळु ॥ ५२ ॥

अर्थ—इतने में उस तोते के नीचे अनेक वस्त्राभूषणों से अलंकृत एक तरुणी हंसते हुये और अपने रूप को चातुर्य कुशलता से जानने वाली कुसुमा जी को देखती हुई देवकन्या के समान वहां एक व्यन्तर कन्या खड़ी होगई ॥ ५१-५२ ॥

On this, a celestial girl was seen coming out below the bird well decorated with ornaments, and stood before this clever queen. (51-52)

पद्य—अवले नीनारिल्लिगेतके वंदे यें । दंबुजाचि बोसगोंडळवळा ॥
सोवगे केळानु व्यंतर कन्ने गिरिवन । शिविर दोळिहेनेंदळांके ॥ ५३ ॥

अर्थ—तब कुसुमा जी पूछने लगीं कि सुन्दरी तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आई, बोलो ? तब वह बोली "मैं व्यन्तर कन्या हूं और इधर-उधर जंगलों में रहती हूँ" ॥ ५३ ॥

Kusumaji asked, "well my beauty, who are you ?" She replied, "I am a vyantar maidem and live in the forest nearby". (53)

पद्य—लीलार्थ गगदोळगे होगुतिर्देनु । बाले नीनीगिळियोडने ॥
सूळ्ळु नुडिवुतिरे वंदेना नुडिगळ । केळ्ळलेनगे प्रीतियागि ॥ ५४ ॥
पद्य—कन्नद हक्किक यंगव होक्कु निजरूप । नन्नल्लि कुसुमाजि माजि ॥
निन्नोडनुसुरु तिदे नु नीनु तिळ्ळिदुदु । चेन्नायतु जाणनर्धांगि ॥ ५५ ॥

अर्थ—विनोदार्थ मैं आकाश में जा रही थी, तब आप इस तोते से अपने पति की प्रसंशा का वर्णन कर रहीं थीं, वह हमको बहुत पसन्द आया, उसको सुननेके लिये इस तोते का रूप धारण कर यहाँ आकर सुनने लगी, इस प्रकार वह व्यन्तर कन्या कहने लगी अगर अलग खड़ी होकर सुनती तो सम्भव था तुम अपने मन की बात नहीं कह सकती। इस कारण इस पक्षी के शरीर में प्रविष्ट होकर मैं तुमसे वार्तालाप कर रही थी। तुम मेरे रहस्य को समझ गई, यह बहुत अच्छा हुआ। सचमुच तुम भरतेश्वर जी की विवेकिनी अर्द्धांगिनी हो ॥ ५४-५५ ॥

"I was flying across the sky, but hearing your conve sation with the parrot, I came down. "If I had tried to overhear you concealed somewhere nearby, you might not have poured out your inner feelings. That is why I took possession of the bird, and beguiled you into conversation. It is good you understood my craftiness. Really you are the intelligent partner of Raja Bharat". (54-55)

पद्य—रूपु योवन जाणमे सिरिय पडेय बहुदु । दी पति भक्ति संपदवा ॥
आ पुरुषोत्तम नर्धांगियरिर नी । वे पडेदिरि परगुंटे ॥ ५६ ॥

अर्थ—बहिन ! रूप, यौवन, संपत्ति, बुद्धि चातुर्य को प्राप्त करना कठिन नहीं, किन्तु ऐसी पति सेवा करना कठिन है, पुरुषोत्तम राजा भरत की अर्द्धांगिनी होकर तुमने ही उसे लाभ किया है। दूसरे को यह (ऐसी) पति भक्ति कहाँ मिल सकती है ॥ ५६ ॥

Sister, it is not difficult to acquire beauty, youthfulness, wealth, wisdom and intelligence, but it is difficult to practise such devotion towards the husband. Being the spouse of king Bharat you have acted up to it. It is not easy for others to do so. *(56)*

पद्य—जिनन कुमार नवनु नीवातन । वनितेयरदरिंद निम्म ॥
अनुपम चरित वेंबुदु निमगल्लदे । मनुजरेल्ल रिगेके बहुदु ॥ ५७ ॥

अर्थ—राजा भरत जिनेन्द्र भगवान् के पुत्र हैं, तुम लोग जिनेन्द्र भगवान् की पुत्र वधू हो इसलिये तुम लोगों का आचरण पुण्यमय है यह सौभाग्य सब लोगों को कैसे सुलभ हो सकता है ॥ ५७ ॥

Raja Bharat is the son of Lord Adinath, and you are his daughter-in-law. That is the reason why your conduct is so virtuous. How can other persons acquire it ? *(57)*

पद्य—आ राय नवगेरवल्लवेंतेने पर । नारि सहोदर नेंब ॥
वारते युंट दरिंदेमगण्णनु । नारि केळेंदळा दिविजे ॥ ५८ ॥

अर्थ—व्यन्तर कन्या कहने लगी, तेरे सम्राट् मेरे कोई नहीं हैं। वे लोकों में परनारी सहोदर के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस कारण मेरे सहोदर भाई हैं। अब मैं उन्हें अपने भाई के नाम से पुकारूँगी ॥ ५८ ॥

Raja Bharat has no relationship to me, but as he is the brother of every man's wife, he is my brother too. Henceforth I shall call him my brother. *(58)*

पद्य—अक्क केळिंदिप्टु होत्तु गिळिय मैय । होक्कु पेळ्वुदु गिळिगिरलि ॥
चोक्क नीनत्तिगे नादुनियेंदेंब । लेक्क विरलि निनगेनगे ॥ ५९ ॥

अर्थ—देवि ! अभी तक तोते के शरीर में प्रविष्ट होकर मैं तुम्हें बहिन के नाम से सम्बोधित कर रही थी, परन्तु मैं अब तुम्हें बहन न कहकर भाभी कहूंगी ॥ ५९ ॥

So far having accupied the body of the parrot, I was addressing you as my sister, but now I shall call you my sister-in-law. *(59)*

पद्य—अरिगे केळ नन्नण्णाजियोळ् नीनु । चित्तविट्टुद कंडु नन्न ॥
चित्त मेच्चितु मेच्चि ननगे ना नीवुदे । नुत्तमगुण भूषणांगि ॥ ६० ॥

अर्थ—भाभी ! मेरे भाई के प्रति जो तुमने स्वभाविक प्रेम दिखाया है, उसे देखकर मैं शपथ पूर्वक कह रही हूँ कि मुझे बड़ा ही हर्ष है । ऐ भूषणा जी ! इसके उपलक्ष्य में क्या भेंट आपको समर्पण करूँ । कुछ समझ में नहीं आता ॥ ६० ॥

Well sister-in-law, I can say on oath that the natural manner which you have given expression to your affection for my brother has pleased me very much. Darling, I am at wits end to decide how to reward you for it. (60)

पद्य—नवनिधि गोडेयनेन्नण्णाजि निनगमि । नव भूषणव मुन्निता ॥
सुविनय दिंदोद नानीवे नेंदरु । युवति नीनोल्ले वा वल्ले ॥ ६१ ॥

अर्थ—हमारे भाई नवनिधि के स्वामी हैं, वे तुमको ईप्सित रत्नमय आभूषण देते ही हैं । ऐसी अवस्था में मैं तुमको क्या दूँ ? अतएव वस्त्राभूषण देने की बात जाने दीजिये, जिस समय तुम्हें आवश्यकता हो स्मरण कर लेना, सेवा में उपस्थित हो जाऊँगी ॥ ६१ ॥

My brother is the Lord of ni. e Nidhis (treasures). You get all kinds of precious clothes and jewelleries from him. Then what should I offer you ? Very well, let alone these clothes and ornaments. Whenever you will remember me, I shall present myself before you. (61)

पद्य—उडिगे तोडिगे योंदु कोडुवे नीडुवेनेंब । नुडि साकु निनगोंदु चिंते ॥
एडेगोंड वेळेयोळेन्ननेनेवुदेंदु । नुडिदंळु वयलादळोडने ॥ ६२ ॥

अर्थ—वस्त्राभूषण देने से आप नहीं लेंगी, आप यही कहेंगी कि क्या कमी है । अतएव जब अवसर हो मुझे स्मरण कर लेना, यह कहकर वह व्यन्तर कन्या अदृश्य होगई ॥ ६२ ॥

You will refuse the offer of clothes and ornaments on the grounds that there is no dearth of them in your place. Consequently I shall offer my services whenever you will invoke me. Saying this the Vyantra girl disappeared. (62)

पद्य—बेक्कसवट्टळु कुसुमाजि केलवल । दिक्क नोडिदळु मत्तिनिसु ॥
नक्कळु जिनसिद्धयेंदळष्ट रोळु हे । म्मक्कळाटके चंदरोसेदु ॥ ६३ ॥

अर्थ—कुसुमा जी आश्चर्यचकित हो, इधर-उधर देखने लगीं, मनमें हंसते २ निस्तब्ध होगई, व्यन्तर कन्या कहाँ गई 'जिन सिद्ध' कह कर, विचारने लगीं कि, मैं कोई स्वप्न तो नहीं देख रही हूं ॥ ६३ ॥

Kusumaji began to look alround for the girl with surprise. She uttered 'Jin Sidh' and began to wonder where the girl had disappeared. She thought it might be a dream. *(63)*

पद्य—चंदक्क तंगियरिगे ब्रिनयव माडि । हिंदाद चोद्य वार्तेयनु ॥
ओंदनु नुडियद कुसुमाजि माजि कों । डेंदि नंतिह्र ळाटदोळु ॥ ६४ ॥

अर्थ—इतने में वहाँ बहुत स्त्रियाँ कुसुमा जी के साथ क्रीड़ा करने के लिये आई उनसे कुसुमा जी बीती हुई आश्चर्य पूर्ण घटना का वर्णन करके सदा की भाँति खेल में लग गई ॥ ६४ ॥

Meanwhile a number of other ladies came to enjoy the company of Kusumaji who related the wonderful incident to them. Then as usual she engaged herself in playing with them. *(64)*

पद्य—अमराजि बरेदळु कुसुमाजि नुडिदळु । सुमनाजि कृतिगैदळेंब ॥
गमकद नुडियल्ते चक्रिय पुण्य सं । भ्रमविंतु माडिदुदल्ते ॥ ६५ ॥

अर्थ—इस प्रकार कुसुमा जी के चरित्र को सुमना जी ने रचकर तैयार किया और अमरा जी ने उसे लिखा, यह सामान्य चरित्र नहीं है, यह चक्रवर्ती की पुण्य संपत्ति एवम् वैभव से पूर्ण है ॥ ६५ ॥

Sumnaji prepared this sketch of Kusumaji and Amraji depicted it in black and white. It is not an ordinary sketch. It contains a vivid description of the glory and the loftiness of the virtuous acts of Raja Bharat. *(65)*

पद्य—तप्पुळ्ळरी कृतियोळु तप्प तिद्दु । दोप्पवादरे केळ्बुदेमगे ॥
तप्पिल्ल तागिल्ल जिनशरणी काव्य । वोप्पुतिरलि सर्वकाल ॥ ६६ ॥

अर्थ—इसमें कोई दोष हो तो बुद्धिमान् इसका संशोधन करदें। राजा भरत ने कहा कि, इसमें कोई दोष नहीं है। यह काव्य सूर्य, चन्द्र मण्डल रहने तक सर्वदा जय वन्त रहे ॥ ६६

If there is any shortcoming, it may be overlooked.

Raja Bharat said, "There is no shortcoming in this. I pray that this poem may be treasured for time immemorial. (66)

पद्य—एंदु नांदिय नोदि मुगिदु गायकि नल । विंद होत्तिगेय कट्टिदळु ॥
मंदस्मित मुखगिनाराजेंद्रना । नंदिसुतिद्दनेनेंवे ॥ ६७ ॥

अर्थ—इस प्रकार उपर्युक्त चरित्र को पढ़कर उस सुन्दरी ने ग्रन्थ को बाँध दिया महाराज भरत भी इस चरित्र को सुनकर मन ही मन आनन्दित होरहे थे ॥ ६७ ॥

After reading the poem the girl, who was reciting it, closed the book. Bharatji was feeling very much pleased on hearing this play. (67)

पद्य—अवळरगिळियोळु नुडिदाडलामात । पवनिगेमाडिकोंडोंदु ॥
कविते माडिदरिवरतिनिपुणेयरेंदु । भुवनेश नुडियदे नेनेदा ॥ ६८ ॥

अर्थ—इस प्रकार भरत जी विचार करने लगे कि, कुसुमा जी वहुत चतुर हैं । किस कुशलता से तोते के साथ वात चीत कर रही थीं, उसे सुनकर कवितावद्ध करने वाली भी रानियां कम चतुर नहीं हैं ॥ ६८ ॥

He began to think that undoubtedly Kusumaji was very intelligent. In what clever manner she was talking to the parrot. But the part of the ladies who gave it the shape of a poem is no less important or Intelligent. (68)

पद्य—आ तळोदरियोंदु गिळियोळु नुडिदड । ली तरुणियरु तम्मोळगे ॥
माताडि सदरदि कृतिगैदरिवर वि । द्या तंत्रलेसेंदु नेनेदा ॥ ६९ ॥

अर्थ—तोते के साथ वात चीत करती हुई उसके स्वर से ही तोते के शरीर में प्रविष्ट व्यन्तर कन्या को जान लिया । यह आश्चर्य है और उनके कथानक को सुनकर जिन स्त्रियों ने उसे कविता-वद्ध किया, वे भी कम चतुर नहीं हैं इस प्रकार विचार करके भरत जी प्रसन्न होरहे थे ॥ ७९ ॥

Raja Bharat was experiencing an agreeable surprise at the manner in which Kusumaji was able to discover from the words of the parrot the existence of a Vyantra damsels in its body. But not less surprising, he said to himself, was the part of the ladies who had written the whole thing in the form of a play. (69)

पद्य—गिळियोडनांके माताडली गिळिय मै । योळगिद्द व्यंतरांगनेया ॥
तिळिदुदच्चरि स्वर मात्र दिंदेंदु त । न्नोळगे ता नेनेदना नृपति ॥ ७० ॥

अर्थ—तोतेके साथ बात चीत करने में कोई विशेषता नहीं है । किन्तु, तोते के शरीर में स्थित व्यन्तर कन्या को स्वरमात्र से जान लेना, यह बड़े आश्चर्य की बात है ॥ ७० ॥

There is nothing peculiar in talking with a parrot, but surprising is the detection of the presence of Vyantra girl in the body of the parrot by merely hearing the words coming from the mouth of the parrot. (70)

पद्य—अरगिळि योळगे हेण्णिद्दळेंदरिदु नि । र्धरिसि काणिसि कोंडळैसे ॥
पुरुष नादरे नेसगोळ्ळ लागळे बेच्चि । नेरेमने गेळ्वळेंदरिदा ॥ ७१ ॥

अर्थ—तोते के शरीर में कोई स्त्री है। यह भलीभाँति जानकर उन्होंने निश्चय किया, यदि उसके शरीर में स्त्री न होती, कोई पुरुष होता, तो घबराकर एक दम वहाँ से भाग कर राजसभा में आजातीं ॥ ७१ ॥

They could successfully determine the existence of a female inside the parrot. If there had been a male instead, he would have fled away and taken refuge in the Darbar. (71)

पद्य—सुरसति तन्नकोंडाड लतदनु मं । दिरके वंद वलेय रोडने ॥
ओरियदे माडिद गंभीर गुणके भू । वर मेच्चिदनु मनसिनोळु ॥ ७२ ॥

अर्थ—महाराज भरत अपने मन में विचार करते हुये सरस्वती (देवाङ्गना के तुल्य कुसुमा जी) के द्वारा रचे गये, काव्य को जिसने पढ़ा था उसको अनेक वस्त्राभूषणों से सत्कार किया, और उनके गुणों की गम्भीरता को देखकर बार २ आनन्दित होते थे। एवम् कुसुमा जी को फिर सम्मानित करने के लिये उत्सुक थे ॥ ७२ ॥

Raja Bharat gave gifts of precious clothes and ornaments to the girl who had read out the poem composed by goddess like Kusumaji. Again and again he would feel pleased at the high attainments of Kusumaji and was anxious to honour her again. (72)

पद्य—सरिस जाच्चियर लीलार्थ लेसी काव्य । दिरव निन्तुरे तूगि तोरि ॥
हिरिदु मन्नणे यीवेनेंदेणिसिद निल्लि । गरगिळि संधि सुगंधि ॥ ७३ ॥

अर्थ—"इस प्रकार काव्य रचयित्री कुसुमा जी और दोनों रानियों को भी यथाशक्ति पुरस्कृत करूँगा" यह विचार कर वह महल की ओर जाने के लिये उठे। इतने में अन्तःपुर व सभाभवन जै जैकार शब्दों से गूँज उठा ॥ ७३ ॥

With the idea revolving in his mind that he would reward Kusumaji and the two queens, he got up to leave for his palace. At this stage cries of Jai rent the air. *(73)*

पद्य—ई जिन कथेयनु केळ्दिवर पाप। वीज निर्नाशन वहुदु ॥
तेज वहुदु पुण्य वहुदु मुँदोलिदप। राजितेश्वरन काणुवरु ॥ ७४ ॥

अर्थ—इस जिनेश्वर की कथा को जो सुनेगा उनका पाप वीज नष्ट होगा। तेज की वृद्धि होगी एवम् पुण्य वन्ध होकर अन्त में अपराजित पद को पावेगा ॥ ७४ ॥

Those persons who will hear this glory of Raja Bharat with rapt attention will destroy the seeds of their sins, will get all the happiness and in the end attain un-conquerable position *(*liberation*). (74)*

पद्य—प्रेमदिंदिद नोदिदरे पाडिदरे केळ्द। रामोद वैदुवरवरु ॥
नेमदि सुररागे नाळे श्रीमंदर। स्वामिय काण्वरतियोळु ॥ ७५ ॥

अर्थ—इस कथा को जो लोग प्रेमसे पढ़ेंगे तथा सुनेंगे वे आमोदको प्राप्त होंगे और नियमसे देवपद को प्राप्त कर अन्त में विदेह क्षेत्र में जाकर प्रेम से श्रीमन्दरस्वामी का दर्शन करेंगे ॥ ७५ ॥

Those who will read this with attention and recite it with devotion will have the 'darshan' of Simandhara Swami in Videha Kshetra. *(75)*

पद्य—नुडिजाण नडेजाण नेरेजाण मरेजाण। कडुजाण जगके सुजाणा ॥
एडे विडदेन्नंत रंग दोळिरु जाण। रोडेय चिदम्बर पुरुषा ॥ ७६ ॥

अर्थ— हे आत्मन्! राजा भरत को इतनी अतुल सम्पत्ति कैसे प्राप्त हुई थी? इसका कारण यह था, कि महाराज अपने आत्मीयगुणों की प्राप्ति के लिये इस प्रकार प्रार्थना करते थे कि, हे आत्मन्! तुम बोलने में चतुर हो लोक में सबसे अधिक विवेकी हो, अतः हे विवेकियों के स्वमिन्! आप सदा मुझपर कृपा कर मेरे हृदय में विराजमान रहो, जिससे मैं भी तुम्हारे समान ही लौकिक तथा पारमार्थिक मार्ग में कुशल वन जाऊँ। यही भावना करते थे ॥ ७६ ॥

श्री देशभूषण महाराज भव्य जीवों को यही उपदेश देते हैं कि हे भव्य जीव तुम भी इस राजा भरत के वैभव को सुनकर उन्हीं के समान आत्म शरीर के प्रथक करने के लिये भेद विज्ञान को अभ्यास करें। जबही इस संसाररूपी समुंद्र को पार कर मोक्ष सुख की प्राप्ति होगी ॥

O Atman ! How did Raja Bharat attain such limitless acquisitions.

The reason was that he was always attentive to his soul and was making regular efforts to imbibe his attributes. He used to pray, "O Atman, the Lord of wisemen ! please be enshrined in the temple of my heart so that I may be able to attain proficiency in the worldly as well as spiritual conduct. (76)

॥ इति प्रथम भागस्य सप्तम् सर्गः शुकालाप संधि संपूर्णम ॥



अष्टम सर्गः

❀ सन्मान संधिः ❀

पद्य—कालनगंड कर्मद् मिंड दुर्मोह । जालांधकार मार्तंडा ॥
लीलांग मतिदोरु निजदोरु सुज्ञान । लोल निरंजन सिद्धा ॥ १ ॥

अर्थ—कालरूपी शत्रुओं के पति और कर्म शत्रु को नष्ट करने वाले तथा दुर्मोहरूपी जालांधर को हरण करने वाले सूर्य के समान हे सुज्ञान रूपी सिद्ध भगवान निरञ्जन सिद्ध ! मुझे सरलता पूर्वक सन्मति प्रदान करो ॥ १ ॥

The destroyer of the cycle
of death and birth and of Karma foe,
Remover of darkness like the sun
of delusion without ado.
Bestow on me wisdom,
Of spotless Knowledge, Halo.
Oh Lord, Niranjan Sidh, *(1)*

पद्य—तन्नेदेयोळगे ताना काव्य रचनेय । मुन्न भाविसि नोडि मेच्चि ॥
चन्नादुदी कृतियिदके विचार वुँ । टिन्नेंदु नुडिदना राया ॥ २ ॥

अर्थ—उस काव्य की रचना से राजा भरत वहुत ही आनन्दित हुये और साथ ही साथ प्रकट रूप से वोलने लगे कि इसमें कुछ विचारणीय विपय है ॥ २ ॥

The Emperor was pleased at the composition of the poem, but remarked that there was something worth considering about it. *(2)*

पद्य—इदु सुमनाजिय कवितेयल्लमराजि । पदेदु पेळ्दि कृतियेंदा ॥
अद केळुतिर्वरु नक्करोव्वव्वर । वदनवनोडि तम्मोळगे ॥ ३ ॥

अर्थ—इसमें सुमनाजी रानी की कविता नहीं है, यह अमराजी की रचना है । इसको सुनकर हंसती हुई दोनों रानियाँ एक दूसरे के मुख की ओर देखने लगीं ॥ ३ ॥

"This does not appear to be the work of Sumanji", said he, "It is Amraji's creation".

The two queens were taken aback on hearing this and began to look at each other's face. *(3)*

पद्य—आगळे पेळ्दे नानक्क नीनेन्न मे । लीगुट्टु होरिसदिरेंदु ॥
　ईगळादुदेयेंदु सुमनाजि नगुतोड । नाग वहुदुदेंदळुब्बि ॥ ४ ॥

अर्थ—सुमनाजी ने कहा वहन ! मैंने उसी समय कहा था, कि यह भार मेरे ऊपर नहीं रखना । किन्तु मैंने जान लिया कि यह रहस्य अब प्रकट हो गया है ॥ ४ ॥

Then Sumnaji said to Amraji, "Look here sister, I told you not to place the onus of its authorship on me. Now the cat is out of the bag". *(4)*

पद्य—तंगि नीनिद कृति माडेंदळा काव्य । दंग ननगे बिरिसेंदे ॥
　संगीत माडिद्ळ मराजि नानद । नंगी करिसि बरेदेनु ॥ ५ ॥

अर्थ—हे नाथ ! जो कुछ आप कह रहे हैं वह अक्षरशः ठीक है । वहन ने मुझसे इस काव्य को रचने के निमित्त कहा था । परन्तु मैंने कहा कि इसकी कविता करना नितान्त कठिन है । अतःमैं करने में असमर्थ हूं तब अमरा जी ने इसकी रचना की । मैंने तो केवल इसको लिखा है और कोई वात नहीं है ॥ ५ ॥

"My sire, whatever you are saying is quite correct to the letter. My sister had requested me to compose the play, but I confessed my incompetence to do it. Then Amraji composed it herself". *(5)*

पद्य—नानु सुरिदेनेंबुदेनक्का निन्नमि । धान वेयिरलल्लियेंदे ॥
　नानद केळ्दे मरसि हेळिदळद । केनायूतु हेळु हेळेंदे ॥ ६ ॥
　आरु मरस वहुदरस नेल्लर चित्त । दोरे कोरेय वल्लनेंव ॥
　धीरत्व विडिदु वरेदनक्क गुसुरदे । होरदे लेसु लेसेंदु ॥ ७ ॥
　जाणरनारु चाळिस वहुददुताने । काणेसितिल्ल कण्णारे ॥
　हूणिद होरे जारिदंता दुदेनगेंदु । जाने नुडिदळतियिंद ॥ ८ ॥

अर्थ—मैंने वहीं पर वहन से कहा था कि, इस वात को छिपाना नहीं ! जिन्होंने रचना की हो, उन्हीं का नाम पति के सन्मुख प्रकट करना, परन्तु, वहनने मेरी वात नहीं सुनी । मैं यह जानती थी कि पतिदेव के सामने यदि कोई वात छिपाई जावे, तो वह छिप नहीं सकती वे प्रत्येक के अन्तः करण को जानते हैं । अतएव वहन से व्यर्थ विवाद करने से क्या लाभ । ऐसा मन में विचार कर मैं

लिखती गई स्वामिन् ! लोकमें विवेकी पुरुषों को कौन वंचित कर सकता है । इस बात की सत्यता यहीं पर दिखाई दी, अच्छा हुआ,जो भार व्यर्थ का मेरे ऊपर आश्रित था, उसे आपने उतार लिया। इस भाँति सुमना जी ने सन्तोष के साथ कहा ॥ ६-८ ॥

"I had told her there and then that this fact should not be concealed, and the authorship should be disclosed before our beloved husband. But my sister would not agree. I knew that I can not conceal anything from you. You know what is in our heart. Without, however, entering into any controversy with my sister, I undertook to write the poem. I am glad you have relieved me of the burden of this lie by exposing the truth. The worldly saying that no one can deceive the wise people has now been justified". *(6-8)*

पद्य—मोदलर्धवबळ कवित्ववा कडेयर्द्ध । वदु निन्न सुकवित्वदंदा ॥
अदु तम्मदहुद हुदेंद ळंदमराजि । मुदर्दिद नगुत रायनोळ्‌ ॥ ६ ॥

अर्थ—मण्डलेश्वर श्री भरत जी कहने लगे, "पहले अर्ध भाग में सुमना जी की रचना है, और उत्तरार्ध में तुम्हारी रचना है" इसे सुनकर हंसते हुये अमरा जी बोल उठीं, "यह अक्षरशः सत्य है" ॥ ९ ॥

Raja Bharat said, "Look here dear, the first half has been composed by you and the latter by Amraji". On this Amraji smiled and said, "Yes, Rajan, whatever you say is correct". *(9)*

पद्य—ताई नीनु सुरेंद रोळ्ल दादळु मत्तु । पायव नेनेदनु किरिदा ॥
ओय्यारदिंद पेळ्दिंतु पेळेने वळि । कायतनेत्रे पेळिदळु ॥ १० ॥

अर्थ—सुमना जी ने कहा बहन ? "मैंने पहले ही कहा था, कि तुम्हीं इस रचना की पूर्ति करना इसे न सुनकर तुम तो चुपचाप बैठ गईं, फिर मैंने थोड़ी सी रचना कर आगे के लिये तुम्हें प्रेरित किया ॥ १० ॥

Sumnaji said, "Well dear sister, Amraji ! I had requested you to complete the composition, but you stopped in its middle. Then I had to do a little composing". *(10)*

पद्य—आदिमंगल नन्न दहुदंत्य मध्य दो । ळाद मंगलगळाकेयत्रु ॥
भेदिसि देवरिदुदिदु चित्रवे । नादीश नोळगे रुहिदनो ॥ ११ ॥

अर्थ—हे स्वामिन् ! आदि मंगल में तो मेरी रचना है, परंतु, मध्य मंगल और अन्त मंगल में सब कुछ अमरा जी की रचना है, आप इन सब बातों का भेद सुस्पष्ट रूप से समझ गये क्या ? आपको आदिनाथ भगवान ने तो आकर नहीं बतादिया ॥ ११ ॥

Sumnaji said, "My sire, the beginning has been composed by me, but for the rest Amraji is responsible. You have clearly understood the whole plot. I wonder whether Lord Adinath has not disclosed it to you". *(11)*

पद्य—एंतु जयिस वहुदक्क नोडरसने । म्मतंरंगद सुक्कुसुल्लुहा ॥
अंतरिसदेहेळ्तिद्दप नेंदेल्ल । कांतेयरोळगे नलिदरु ॥ १२ ॥

अर्थ—वहिन ! देखो तो सही, अपने पतिराज को हम लोग कैसे जीत सकती हैं। हमारे अन्तरंग को वे किस चतुराई से जानते हैं ! इस प्रकार कहती हुई सब स्त्रियाँ हर्ष मनाने लगीं ॥ १२ ॥

"Look here sister ! how can we get the better of our husband. He can read our minds without difficulty". *(12)*

पद्य—लेसाद्दी कृति निम्म कवित्वद । भ्यासवोळ्ळ्तु सतियरिरा ॥
ई सुकथेगे मेच्चिदेनु वेडि नीवेंदे । दी समय दोळीय वेकु ॥ १३ ॥

अर्थ—राजा भरत कहने लगे आप लोगों का काव्य सुन कर मुझे हर्ष हुआ। तुम्हें कविता करने का अभ्यास अच्छा है। मैं इस काव्य रचना से अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुम लोगों को इस समय क्या दूं ? जिस वस्तु की इच्छा हो। माँगो। मैं उसे दूंगा ॥ १३ ॥

Raja Bharat said,"I am glad with your performance. You have acquired sufficient proficiency in composing plays. I wish to offer you some gift as a token of my appreciation. Please ask what you would like to have, and I shall give it". *(13)*

पद्य—मेच्चिसि नावेंदु वस्तुव पडेवेवें । दुदुचरिसिद कृतियल्ल ॥
हेच्चाद वयके मनदोळिं दिगिल्लवा । मेच्चु भंडार दोळिरलि ॥ १४ ॥

अर्थ—स्वामिन् ! आपको प्रसन्न करके किसी प्रकार का धन वैभव पाने की अभिलाषा से हम लोगों ने इस काव्य की रचना नहीं की है, हम लोगों के मन में कोई लोभ नहीं है, आपके मन में जो हर्ष हुआ है वह आपके भन्डार में जमा रहे। दोनों रानियों ने यह बात कहीं ॥ १४ ॥

"Sire", pleaded both the queens, "we have not done this work with the desire of obtaining any reward from you. We have no avarice. If our work has given you pleasure, you may keep your promise in store". (14)

पद्य—आगलि मुँदे नीवा मेच्चुनुरे वेडि । दाग कोडुवेनदंतिरलि ॥
ईग नानिक्कि दाभरणवनीवेनें । दा गुणरत्न नुडिदनु ॥ १५ ॥

अर्थ—अच्छी वात है । इस प्रसन्नता के प्रति फल को आप लोग जब चाहेंगी तब मैं दे दूंगा । क्योंकि, इस समय जो वस्त्राभरण आप लोगों के पास है वह मेरा ही तो है ॥ १५ ॥

"Very well", replied the king. "You are at liberty to utilize this promise whenever *you like. Because whatever precious clothes and ornaments* you have are all mine". (15)

पद्य—भूपणावळि यीग कडिमेयिल्लेमगे वि । शेपवागिद्द विन्नवर ॥
घोपणेयंतिर लेंदात्म पतिगे सं । तोपव तोरि नुडिदरु ॥ १६ ॥

अर्थ—स्वामिन् ! हमें आपकी दया से आभरणों की न्यूनता नहीं, आवश्यकता से अधिक आभरण हमारे पास हैं । आभरणों के देने की वार्ता भी आपके भंडार में जमा रहे । इस प्रकार संतोप पूर्वक वे वोलीं ॥१६ ॥

"Sire", spoke the queens with contentment,"with your grace there is no dearth of precious clothes and ornaments with us. You should not worry about that". (16

पद्य—मुन्नुळ्ळ भूपण विरल दके नीग । नन्न भूपणव नित्तपेनु ॥
वन्नियेंदवर करेवुत भूपणकाग । तन्न कैयिक्किदनरसा ॥ १७ ॥

अर्थ—राजा भरत ने कहा कि, पहले के आभरण आपके पास हैं तो, क्या हुआ; परन्तु मैं इस प्रशन्नता के उपलक्ष में अपने आभरणों से देना चाहता हूं । आओ ! आओ ! लो यह कहकर अपने पास वुलाने लगे ॥ १७ ॥

Raja Bharat then said, "What does it matter. If you already have so many precious ornaments, I shall give you one of my ornaments. Please come near me dear ones". (17)

पद्य—वेडवेंदरु राय कोडुतिद्दनिदके ना । माडुवेवेनुतिब्बरेद्दु ॥
कूडण सतियर्गे सूचिसि साष्टांग । गूडितावेल्लरगिदरु ॥ १८ ॥
वळुगाळि वीसलु मरदिंद नेलके बि । द्देळ्ळलतेगळोयेंब तेरदि ॥
ललितांग निमिदु साष्टांग वेरगिद को । मलेयर भावरंजिसितु ॥ १९ ॥
कंडनरस निवरेल्ल रेतके साळु । गोंड रेगिदरेंदु नगुत ॥
पंडिते यास्यव नोडिदन वळेदे । गोंडु नुडिदळेदेयरिदु ॥ २० ॥
चितिप नीनाभरणवनीवेने नलदु । सतियर्गे रुचियादु दिल्ल ॥
पतिय लंकारव पाळ् माडि नोडरु । पति भक्तेयर चरितवदु ॥ २१ ॥

अर्थ—हाँ हम लोग तो बरावर नहीं करती जारहीं हैं, परन्तु पतिदेव नहीं मानते, तो हम सब क्या करें। ऐसा कह कर सभी रानियो को इशारा करती हुई उनके साथ आई और भरत महाराज के चरणों में साष्टांग नमस्कार करने लगीं। उस समय का दृश्य ऐसा दृष्टिगोचर हो रहा था, कि अन्धेरे में कोई वृक्षलता पत्र संयुक्त गिर पड़ी हो ॥ १८-१९ ॥

अर्थ—यह क्या हुआ ? मैंने तो पुरस्कार के निमित्त इन दोनों को बुलाया था, परन्तु ये आकर क्यों नमस्कार करने लगीं, इस प्रकार विचार करके राजा भरत पंडिता के मुख की ओर देखने लगे; पंडिता सम्राट् के मन की बात समझ कर बोली ॥ २० ॥

अर्थ—स्वामिन् ! आपने रानियों से जो आभरण देने की बात कही, वह उन लोगों को रुचि-कर नहीं हुई। उत्तम सतियों के ये लक्षण हैं कि, वे कभी भी पतिदेव को निराभरण करके अपने को शृङ्गारित नहीं देख सकतीं। ये पतिव्रता स्त्रियों के लक्षण हैं ॥ २१ ॥

"Well", said the queens, "what can we do now ? Our beloved insists on it inspite of our refusal". Thus saying they beckoned to other queens, and bowed to the king full length at his feet. From the scene it looked as if in the darkness a tree was lying on the ground with all its creepers. *(18-19)*

"What is all this ? ', thought Raja. "I had asked only two of them to come for the reward,but here all the queens have come and are bowing before me". With this thought in his mind Raja turned towards Pandita, the lady monitor. Pandita guessed his thoughts and said, "Rajan ! your proposal to give them your own ornaments has not appealed to the good sense of your wives. It is

the sign of the modest ladies not to deprive their husbands of his ornaments for the sake of decorating their own bodies". (20-21)

पद्य—निन्न संगरा तम्म कएणतिं नीनिट्ट रन्न दोडिगेगळ तेगिसि ॥
भिन्नागे माडिनोडुवरे तावदरिंद । निन्न मुंदेरगिदररसा ॥ २२ ॥

अर्थ—वे अच्छी तरह जानती हैं, कि तुम्हारा जो शृंगार है, वह उनके नेत्रों का शृंगार है, ऐसी स्थिति में आपके आभरणों को निकाल कर वे अपना शृंगार करना नहीं चाहतीं। उनके हृदय में सच्ची पतिभक्ति है अतः वैसा न करने की इच्छा से सबकी सब आकर आपको नमस्कार कर रहीं हैं। इतना ही उनका अभिप्राय है अधिक कुछ नहीं ॥ २२ ॥

"They know it very well that the decoration on your body is a treat for their eyes and for this reason they do not want to take away your ornaments for adorning their person. They have true devotion in their heart for their husband. They are bowing to you with respect with a view to express this feeling of theirs. There is no other object in their act. (22)

पद्य—ओल्लेवेंदरु बेडवेंदरवरु नीनु वल्लितु मिगे करेवाग ॥
वल्लभगिदिरुत्तरवा कोडलागदें । देल्लरेरगिदरु नृपति ॥ २३ ॥

अर्थ—उन लोगों ने बारंबार नहीं किया फिर भी आपने नहीं माना बल्कि आग्रह ही किया। ऐसी अवस्था में कोई उत्तर देना हमारा धर्म नहीं है, ऐसा समझते हुये आपके सन्मुख आकर साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगीं ॥ २३ ॥

"Since you are insisting on parting with your ornaments, they have no other suitable way of expressing their dissent but of prostrating them at your feet". (23)

पद्य—इर्वरिगी वेनेंदानु करेदरेके । सर्व रेरगिदरं तिवरु ॥
ओर्व रोर्वरिगेरविल्ल तम्मोळु स्नेह । पर्वियोंदागिहररसा ॥ २४ ॥

अर्थ—तब महाराज कहने लगे कि हमने तो दोनों रानियों को आभरण देने के लिये बुलाया था। वे सबकी सब आकर क्यों नमस्कार करने लगीं ? इसका भी तो कुछ कारण होना चाहिये ॥ २४ ॥

Raja Bharat then said, "I had asked only two of the queens to take the ornaments, but what is the reason for all the queens to come prostrating before me". (24)

पद्य—अरियेया नीनिद नगेकार बगेकार । मरेकार बलु टौल्किार ॥
अरियदंद दोळेन्न केळ्वेवेंदवळोळ । गरिदोत्ति नुडिदळु नृपना ॥ २५ ॥
देवियरेरगिहोत्तयूतु प । राकु बेडेळिरेंदिन्नु ॥
वाकु दोरेंदु भ्रांकिसिदळा पंडिते । भूकांत नसुनक्कनदके ॥ २६ ॥

अर्थ—स्वामिन् ! क्या आप इस बात को नहीं जानते हैं, अतएव ऐसी हंसी करते हैं एवम् न जानने का भाव प्रकट करते हैं । आपके पास सब विद्यायें हैं हास्यरस-विनयरस और कौतूहल खेल खिलवाड़ इत्यादि इस कारण आप हास्य कर रहे हैं, और अपने भावों को छिपा रहे हैं । मैं समझती हूं कि आप बहुत चतुर हैं । इन सब बातों को जानते हुये अजान बनकर पूंछ रहे हैं । आप क्या नहीं जानते है ? कि रानियों में परस्पर कोई भेदभाव नहीं है, एक पर आई हुई आपत्ति विपत्ति को सभी रानियाँ अपने ऊपर आई हुई समझती हैं । उन लोगों का स्नेह परस्पर में ऐसा ही है ॥ २५-२६ ॥

"Sire", said Pandita, "you know the reason well, you are only pretending ignorance and making a fool of me. I appreciate your joke. Don't you know that the queens have no mutual distrust or jealousy, but on the other hand have strong affection for each other. They consider the trouble of one of them as the trouble of all". (25-26)

पद्य—एळिरौ बळलिदिरेंदु नुडिदनु भू । पालनदके नसुनगुत ॥
वालेयरेद्‌ु निंदरु हेळ्लळवे त । त्काल दोंदधिकलीलेयनु ॥ २७ ॥

अर्थ—स्वामिन् ! देवियों को आपके चरणोंमें पड़े हुये बहुत विलम्ब हो चुका है, अब विशेष विनोद की आवश्यकता नहीं है, उनको उठने की आज्ञा दीजिये । राजा भरत उस समय हंसकर बोले "अच्छा" ! आप लोग बहुत थक गई होंगी, अब उठकर खड़ी होजाइये । इसबात को सुनकर सब रानियाँ उठकर खड़ी होगईं ॥ २७ ॥

"Rajan", pleaded Pandita, "much time has elasped. Let the fun stop now. Kindly allow to get up". On this Raja smiled and spoke to his queens, "Well dear ones, this must have been very tiresome to you, please now get up". On this all of them sprang to their feet. (27)

पद्य—नानिङ्ग तोडिगे माणलिवेरे निवगे न । वीन भूषण वीवेनेंदा ॥
एनोंदनिंदि गोझेनु व्रतवेंदु सं । धानिसि कट्टि नुडिदरु ॥ २८ ॥

अर्थ—भरत जी कहने लगे "अच्छी बात है"। यदि तुम लोगों को मेरे पहिने हुये आभरण रुचिकर नहीं हैं, तो और नवीन आभरण दूंगा। इतना संकोच क्यों कर रही हो। स्पष्ट क्यों नहीं कहतीं। तब उन्होंने उत्तर दिया, आज आप कुछ भी दें, हमलोग लेने को तत्पर नहीं हैं, यह हमारा निश्चय है ॥ २८ ॥

"Very well", said Bharatji, "If you don't like to have the ornaments, I am putting on, I shall order for new ones for you".

But all the queens declined to accept this proposal and said, "We are determined not to accept any ornament". (28)

पद्य—मुट्टितिवर मेले ननगर्त्ति ननोंद । कोट्टनेन लोल्लरिवरु ॥
कोट्टलदेन्नुब्बु निल्लदिन्नि दकेनु । तिट्ट वेंदेदेयोळु नेनेदा ॥ २९ ॥

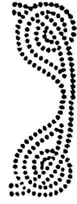
अर्थ—इस प्रकार दृढ़ता के साथ कहने पर भरत जी बहुत विचार में पड़ गये, "अब क्या करना चाहिये" इन लोगों के निमित्त मुझे आनन्द प्राप्त हुआ। उसके ही उपलक्ष में मैं इन्हें कुछ देना चाहता हूं, किन्तु ये लोग स्वीकार नहीं करतीं। इन लोगों को कुछ दिये बिना मेरे मन में उमड़ता हुआ आनन्द रुक नहीं सकता अतएव इसके लिये क्या उपाय है ॥ २९ ॥

This firmness on the part of the queens made the king think a little. He said to himself, "what should I do now ? They have been the source of pleasure to me for which I must repay them, but they are not willing to accept any gift. I must plan some contrivance to give them some thing in exchange". (29)

पद्य—भंगारव नोल्लदरे माणलिवरवा । लिंगिसि यादरु बिडुवा ॥
पांगाग्रु दोत्तिगे वाररेंदेणिसि तं । त्रांगव नोडनोंदकंडा ॥ ३० ॥

अर्थ—ठीक है, ये सोना चाँदी नहीं चाहती हैं तो न सही, इनको आलिंगन तो दे देना चाहिये, परन्तु ये तो मेरे पास आने में लज्जित होती हैं। ऐसी अवस्था में अब क्या करना चाहिये, ऐसा विचार कर युक्ति के साथ बुलाने का प्रयत्न किया ॥ ३० ॥

"Well never mind, If they do not like ornaments, I shall give them the pleasure of kisses, but they feel shy in coming near me. Let me try some trick for this". (30)



कुसुमा जी रानी की तोते के साथ की बात को कविता के रूप में भ्रमरा जी रानी व सुमना जी रानी ने राजा भरत जी को पढ़ कर सुनाया जिस पर राजा भरत प्रसन्न होकर कुछ भेंट देने की उतकंठा की वरन रानियों के इन्कार करने पर उन दोनो रानियों को कान में कुछ कहने केबहाने से पास वुला कर आलिंगन देकर सम्मानित किया——

(यह चित्र बाराबंकी निवासी ला० अशर्फीलाल जैन (सु १० फनोजीलाल जैन) की धर्मपत्नी के द्वारा छपा)

पद्य—अमरे वा सुमने वा कुसुमाजि चित्त वि । भ्रमदोळिद् पळदकोंदु ॥
ऋमव नेकांत दोळगे पेळ्वेनेंदु भू । रमण तन्नोत्तिगे करेदा ॥ ३१ ॥

अर्थ—अरी सुमना और अमरा ! 'तुम दोनों इधर आओ' तुम लोगों के काव्य को सुनकर कुसुमा जी के चित्त में भ्रम होरहा है । उसकी वात खुल जाने का उसे परम दुःख है । अतः उसके मनःशान्ति का उपाय गुप्त रूप से मैं तुम्हारे कान में कहना चहता हूं आओ ? ॥ ३१ ॥

"Look here Sumnaji and Amraji", Said the Raja, "dear Kusumaji's mind is much upset on the disclosure of her secret, please come here, I shall whisper in your ears the plan for removing her depression". *(31)*

पद्य—नडेदु समीपके बंद पेंगळनेड । गडे बलगडेयोळु निलसि ॥
नुडिवंते किविगे मोरेय तोरुतिब्बर । नोडनप्पि कोंडना नृपति ॥ ३२ ॥

अर्थ— ऐसा कहकर उन्हें पास में बुला लिया दोनों रानियां हंसती हुई सन्निकट आगई और आते ही अपने आगे से दोनों को दायें, वायें ओर खड़ी कर पहले उन दोनों के कान में कहने के समान अपना मुख लेजाकर पश्चात् दोनों को सहसा वेग से आलिंगन किया ॥ ३२ ॥

The queens came near him laughing. He made them stand on either side, thes pretending to say something in their ears, he gave them warm kisses. *(32)*

पद्य—कल्पलते गळेडवलदल्लि हब्बिद । कल्पवृक्ष वोयेंवसोवगा ॥
कलिपसुतिह्हना रायना पेएगळ । बळिप नोळमर्दप्पिदाग ॥ ३३ ॥

लीला नाटकदोळु कामनेरडु पां । चाळिकेगळ नप्पिदंते ॥
आ ललितांग नोप्पिदना सतियर । नालिंग सिद वेळेयोळु ॥ ३४ ॥

अर्थ—मानों कल्पवृक्ष के दाहिने तथा वाम भाग से कल्पलतायें लिपटी हुई हैं । इस प्रकार राजा भरत की शोभा दोनों रानियों से युक्त होरही थी, जो अवर्णनीय थी ॥ ३३ ॥

अर्थ—उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि, कल्पवृक्ष के दोनों ओर से दो कल्पलतायें ही हों या कामदेव विनोद विहार में दोनों ओर से पंचाली का आलिंगन कर रहा हो ॥ ३४ ॥

It was a fine sight. It looked as if creepers were clinging round the Kalap tree. *(33-34)*

पद्य—बेदरदिंतादरु पेंगळत्तिन मै । योदरि कोंबरु लल्लेयिंद ॥
अदिरदंता रायन मर्दप्पिकोंडु गे । च्चिदनेंदु बिट्टना नगणवे ॥ ३५ ॥

अर्थ—उस समय दोनों रानियाँ बहुत घबराईं, इधर उधर से बचने का प्रयत्न किया, परन्तु जी भरत ने अपने मन की बात पूरी करने तक उन्हें नहीं छोड़ा। अनन्तर उन्हें छोड़ दिया ॥ ३५ ॥

Both the queens got much upset. They tried to get away but all in vain. Bharat did not leave them till he had satisfied his desire of warm kisses. (35)

पद्य—घोळ्ळने सतियरेल्लरु नकरदके भू । वल्लभ तानसुनका ॥
ओळ्ळतं तायताग वेकेंदु कुसुमाजि । गेल्लवडेदु नकळोडने ॥ ३६ ॥

अर्थ—इस दृश्य को देख कर सभी रानियाँ हंसने लगीं। भरत जी ने भी हर्ष प्रकट किया, कुसुमा जी तो सबसे अधिक हंसी एवम् कहने लगीं "अच्छा हुआ ऐसा ही होना चाहिये" ॥ ३६ ॥

All other queens burst in to laughter at this sight. The Raja also joined company, but Kusumaji laughed the most, and, ',This is what they deserved". (36)

पद्य—कोगे योळानोंद नुडिदाडलद तंदु । चोणीशगरिके माडिदिरे ॥
काणदे दैवविल्लदे निवगा फल । काणिसितिंतु कणणारे ॥ ३७ ॥

अर्थ—मैं जो कुछ भी अपने महल में गुप्त रूप से बोली थी, उसे तुम लोगों ने पतिदेव से से यहाँ कह दिया। क्या तुमको देखने वाले कोई देव नहीं हैं? उसका प्रत्यक्ष फल तुमको मिलगया ॥ ३७ ॥

You disclosed my secret. Now reap the fruit of your action. (37)

पद्य—ओब्बर गूढ चरित्रव वाह्यके । हव्विसि नगुवा एंबवरा ॥
तव्विदैववे नगिसुवुदेंब नुडिगे नो। विब्बरे गुरियादिरक्का ॥ ३८ ॥

अर्थ – लोक में यह बात प्रसिद्ध है, कि किसी दूसरे की गुप्त वार्ता का प्रकाश ही हंसी का कारण हो जाता है। तुम लोगों के सम्बन्ध में दैव (कर्म) सदैव जागृत रहता है और किसी न किसी प्रकार हंसी का भजन बना देता है। बहिनों! तुम ने इसका अनुभव प्रत्यक्ष देख लिया ॥ ३८ ॥

It is well known that the betrayl of one's trust makes one the laughing stock of all. In your case the mighty Karma is always alive and puts you in that unenviable position. Now sister, you have gained practical experience. (38)

पद्य—सेरग मोगके साचि नगुवलु कंभद मरेगे होहलु कूडेवहलु ॥
एरेय निदिरो ळिप्टु नाएचुत नगत हों। मिरिदाडुतिर्द ळातरुणि ॥ ३९ ॥

अर्थ—अव कुसुमा जी वहुत लज्जित नहीं हैं पहले के समान खम्भे के पीछे नहीं छिपती हैं, हाँ पति के सामने कुछ न कुछ लज्जित होकर उन दोनों रानियों से कहने लगीं, कि पति के सामने तुमने हमें लज्जित करना चाहा था, परन्तु, दैव योग से उल्टी तुम्हारी ही हंसी हुई ॥ ३९ ॥

Kusumaji was not feeling so shy now, nor was she now hiding herself behind a pillar.

She said to her sister queens, You wanted to make a fool of me before our beloved, but by god's grace you have been served right". (39)

पद्य—अरस किक्कणिणद नोडुवनाकेय । सरस लीलेगे हिग्गि नगवा ॥
शिरि बागि कोंडिदे ळीगळुब्बि दलेंदु । हरुष वेदिंदनेदे योळगे ॥ ४० ॥

अर्थ—राजा भरत जी, कुसुमा जी से जो कुछ भी कह रहे थे, तिरछी दृष्टि से उन्हें देख रहे थे और उनकी सरस वातों को सुनकर मनमें आनन्दित होते हुये मुस्करा रहे थे अभी तक तो खम्भे के पीछे रहती थी अव खुल कर कैसी बातें कर रही है। ऐसा विचार कर मन में वहुत आनन्दित हुये ॥ ४० ॥

Raja Bharat was looking at Kusumaji and feeling pleased within himself. He was thinking that so far Kusumaji would hide herself behind the pillar, but now she was talking without any shyness. This made him very cheerful. (40)

पद्य—अमराजि सुमनाजियरु मुंदे निंदिप्टु नमित मुखलज्जेयरागि ॥
विमल कटाक्षदि नोडि लज्जेयोळातम । रमण नोळिंतु नुडिदरु ॥ ४१ ॥

अर्थ—अमरा जी और सुमना जी आई और कुछ नीचे मुख करके कहने लगीं स्वामिन् ! यह तो वहुत लज्जित होगई हैं। अव इन्हें छोड़ दो ॥ ४१ ॥

Amraji and Sumnaji came near thetr hnsband and said, " Dear sir, we have been put to lot of shamefulness. We may now be let off". (41)

पद्य—जनद् गोष्टियोळिद्नेनेय वहुदे देव । रेनुततविर्वरुतम्म ॥
मनदोळु संतस मातिनोळिनिसुरं । जनेय नाडिदरु गाडियोळु ॥ ४२ ॥

अर्थ—स्वामिन् ! सब लोगों के सामने क्या ऐसा व्यवहार करना आपको उचित है ! इस पर आपही विचार करें । वह मन में सन्तुष्ट होते हुये बाहर व्यंग रूप से ऐसे वचन बोल रही थी ॥ ४२ ॥

"Does it become you to give this treatment to us before everybody ? Just think of it". They were saying this without meaning anything serious. *(42)*

पद्य—अरिवरोळगन्यरिवरेन्नसेवेय । नारियरेन्न राणियरु ॥
नारियरेल्लरु नानोब्ब पुरुष नि । वोरंते नाएचलेकेंदा ॥ ४३ ॥

अर्थ—भरत जी बोले इनमें दूसरा कौन है, ये सब की सब रानियां अपनी ही तो हैं और सब तुम्हारी ही वहिनें हैं । पुरुषों में तो मैं ही केवल अकेला हूं ऐसी अवस्था में तुमको लज्जा क्यों होती है ॥ ४३ ॥

Bharatji said, "Dear, there is no stranger. All the queens are your sisters. I am the only male member. Why do you feel upset then" *(43)*

पद्य—ओप्पवादोंदु काव्यके मेच्चि करेदु कों । डोप्पि देनदकेनु* दोष ॥
अप्प लागदे नन्न पेंडिर नानिल्लि । तप्पिद कार्यवेनेंदा ॥ ४४ ॥

अर्थ—मुझे तुम लोगों की काव्य रचना से अतीव हर्ष हुआ है तब मैंने आप लोगों को कुछ देना चाहा परन्तु नहीं लिया इसलिये आलिंगन देने में क्या अनुचितता है ? ॥ ४४ ॥

"I was very much pleased at the poem composed by ynu, and in token of that p easure I offered you a few kisses, since you refused to accept any other offer. What is wrong please in kissing one's wives". *(44)*

पद्य—कुसुमाजि गोंदु तंत्रव पेळ्व नेंदेम्म । हुसिगिंतु करेयलदेके ॥
कुसुमाजि नक्कळ्लवे तंत्रवदु ताने । हुसि यावुदेन्नोळगेंदा ॥ ४५ ॥

अर्थ—स्वामिन् ! इस विषय पर हमें कुछ कहना नहीं है, परन्तु कुसुमा जी के सम्बन्ध में "कुछ उपाय कहेंगे" ऐसा वहाना वताकर अपनी चालाकी से हम लोगों को क्यों पास में बुलाया ॥ ४५ ॥

* कोरते

The queen said, "We have nothing to say on this point, but why did you call us near you by playing a trick". *(45)*

पद्य—गेललरिदक्का नावरसननेंदु त । म्मोळगे ताविर्वरु नुडिदु ॥
ओळसरि दोय्यने गद्‌ुगे योत्तिंद । तोलगि पेण्गळु सार्दरत्त ॥ ४६ ॥

अर्थ—इस सम्बन्ध में मेरा तन्त्र झूंठा कैसे हुआ इस प्रसंग पर क्या कुसुमा जी नहीं हंसी यही तो मैं चाहता था इसी का जो उपाय था करके दिखाया, इसमें क्या विगड़ा जरा विचार करो ऐसा राजा भरत ने उत्तर दिया ॥ ४६ ॥

Bharat said, "I had told you that I have to think out a plan for pleasing Kusumaji, and I succeeded with the trick, What is wrong in this ?" *(46)*

पद्य—नोडिदरा कुसुमाजिय तंगि नी । नाडिद नुडि हसनायतु ॥
नोडु निन्नतु नावु स्तुति माडलाफल । कूडे काणिसितेंदरवरु ॥ ४७ ॥

अर्थ— तव दोनों परस्पर में कहने लगीं बहन ! आप लोग पतिदेव को नहीं जीत सकतीं हैं। ऐसी अवस्था में अधिक वातें उनसे करना अपना अपमान कराना है ऐसा कहकर जाने लगीं ॥ ४७ ॥

Then the queens said to each other,"Sister, there is no point in arguing with our husband. He is too clever for us. It is best to keep quiet and go away. *(47)*

पद्य—अहुदु नानाव गुणज्ञे नीवेन्नतु । त्सवदिंद कीर्तिस लेके ॥
बहु गुणिगळु स्वल्प गुणिगळ कोंडाड । बहुदेयेंदलु शशिवदने ॥ ४८ ॥

अर्थ—कुसुमा जी को सामने देखकर कहने लगीं वहन ! तुम जो कुछ वोली थीं वह सत्य ही निकला हम दोनों ने तुम्हारी स्तुति की उसका यह प्रतिफल हमको मिला, कैसी विचित्रता है ॥ ४८ ॥

Finding Kusumaji in front of them, they said, "This is the reward we have received for the pains we took in praising you." *(48)*

पद्य—नानोम्मे किरियळु निम्म कीर्तिस वहु । दीनुत कृति ननगेके ॥
हीनाधिकरेंब हेच्चु कुँदिल्लवे । येनक्क नीवरियबहुदु ॥ ४९ ॥

अर्थ—ठीक वात है वहनो ! तुम लोगों ने मेरी झूंठी प्रसंशा क्यों की मेरे भीतर ऐसे कौन से गुण हैं। विशेष गुणवान लोग हीन गुण वालों की प्रसंशा कभी न करें, अन्यथा परिणाम ऐसा ही होता है। यद्यपि मैं छोटी हूँ यदि आप लोगों की प्रसंशा करूं तो कुछ अनुचित नहीं है ऐसी अवस्था में आप लोग मेरी प्रसंशा करें तो क्या अच्छी वात है ? क्या छोटे वड़े में कोई भेद नहीं है ? वहन ! क्या आप इसे नहीं जानती हैं ? ॥ ४९ ॥

"Sister", said Kusumaji, "You invited it on your ahead. Why should have lavished undeserved praises on me. What special qualities do I possess ? Superior persons should not praise their inferiors unless they want to court trouble.

I am younger than you, and if I praise you, it would be in the fitness of things. There is certainly some difference between seniors and juniors. Do you not know this ?" (49)

पद्य—विनदकेंदेवुतंगि नोयदिरेंदरे । वनितेयराउ निम्मंते ॥
विनदकाडिदेनक्क येंदळदकेके राय । मनवुब्बि नगुतिद्द नोळगे ॥ ५० ॥

अर्थ—तव वे दोनों कहने लगीं वहन कुसुमा तुम इतनी अप्रसन्न क्यों हो रही हो, विनोद से हम लोगों ने तुम्हारी प्रसंशा की थी। यह कोई ऐसी वात नहीं है। तव तो मैं भी विनोद के निमित्त ही रुष्ठ होगई थी कुसुमा जी ने कहा, कोई वात नहीं है। भरत जी इन दोनों वहनों के विनोद पूर्ण व्यवहार को देखकर मन ही मन प्रसन्न थे ॥ ५० ॥

Then both the queens said, "Dear Kusumaji, why are you getting annoyed. It was out of fun that we lauded you".

"The same is the case with me, dear, I am not at all displeased", replied Kusumaji. Raja Bharat was enjoying this conversation between the ladies very much. (50)

पद्य—साकिदरोळु वंद कोरते यावुदु पेंग । ळेके वाचळिपुदेंदु ॥
आ केलवल दोळ्दिरसिय राडलु । मूकते वडेदिर्द रोडने ॥ ५१ ॥

अर्थ—इतने में कोई रानी कहने लगी, वहनों इसमें क्या हानि है ? आप लोग ऐसी वार्ता क्यों कर रही हैं। विशेष वाचाल होना स्त्रियों के अशुभ लक्षण हैं ॥ ५१ ॥

At this stage several other queens intervened and said, "Well sister, what is all this. Why are you getting so talkative ? It is not a good quality in a lady". *(51)*

पद्य—सौजन्य पुरुष नेंदंते कैविडिद स । रोजच्चियरुकेळ्वेकु ॥
सूचिय बळिय नूलंते पतियोळिहु । दोजेयल्लवे सतियरिगे ॥ ५२ ॥

अर्थ—भली स्त्री को सौजन्य पुरुष का हाथ पकड़ने पर सौजन्यता से रहना चाहिये। सुई के डोरे के समान अपने पति की आज्ञा कारिणी होना स्त्रियों का धर्म है॥ ५२॥

"It behoves a gentle lady to be considerate in the company of her husband. She should be like a thread to a needle". *(52)*

पद्य—स्वामिय मनकेनु मेच्चादुदे नम्म । कामिनियरिगे मेच्चल्ते ॥
ई महाविभववनेल्लि कंडपेवेंदु । प्रेमवट्टेल्ल राडिदरु ॥ ५३ ॥

अर्थ—जो पति को इष्ट हो (पति जिस बात को कहे) उसी को हितमानकर स्त्रियों को अपना व्यवहार करना चाहिये, क्योंकि, ऐसा पति सुदुर्लभ है। अपने पति के समान वैभव अन्यत्र देखने को नहीं मिल सकता है॥ ५३॥

"Ladies should conduct themselves in a manner liked by their husband. For it is but fortunate to have a husband. You cannot get this pleasure elsewhere". *(53)*

पद्य—एंदेंदु स्वामि सभेयोळिंतु बाय्देरे । दोंदि प्रसंगिसितिल्ल ॥
इंदु महाप्रसन्नवादुदुहोस । तेंदेल्ल रतिं माडिदरु ॥ ५४ ॥

अर्थ—कभी भी हमारे पतिदेवने सभामें मुंह खोलकर प्रसंशा नहीं की थी। आज उन्होंने जो प्रसन्नता प्रकट की है,वह हमलोगों के सौभाग्य की बात है। इसप्रकार कहते हुये सब रानियाँ बहुत हर्षित हुई॥ ५४॥

"Never before did our beloved commend any one of us so openly. It is our good luck that he has expressed his pleasure in this manner", spoke all the queens with great joy. *(54)*

पद्य—लीला गोष्टियादुदु होसकाव्यव । केळिदेवरसनमेले ॥
एळि नाविन्नु निवाळिय निडुवे वें । दा लोचिसि सार्देरेल्ल ॥ ५५ ॥

अर्थ – यह कैसी विनोद पूर्ण बात हुई कि, नवीन कव्य को आप लोगोंने सुन लिया। पतिदेव को भी हर्ष हुआ। अब चलो, वहाँ चलकर स्वामी की सेवा में भेंट रखते हुये आनन्द से नमस्कार करें। ऐसा कह कर सब रानियाँ सम्राट् भरत के पास गईं ॥ ५५ ॥

"How nice it was that you heard a new poem and our husband also enjoyed it. Now let us pay respects to him after offering our gifts". Thus saying, they approached the Raja. *(55)*

पद्य—ओर्व रोंदोंदे भूपणतेगेदु राय। गुर्वि निवाळिसि मुँदे ॥
उर्वियोळिविडलाभरणगळोंदु । पर्वत वादुदेनेंवे ॥ ५६ ॥

अर्थ—तदनंतर हर एक रानी एक २ आभरण अपने गले से निकालकर बहुत विनय पूर्वक श्री भरतेश्वर के चरण कमलों में श्रद्धा भक्ति सहित अर्पण करते हुये साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करने लगीं, क्षणमात्र में ही वहां आभरणों का ढेर लग गया ॥ ५६ ॥

Thereafter each queen came forward, placed one of her ornaments at the feet of the Raja as their offer, and bowed before him. *(56)*

पद्य—चित्त वल्लभगे निवाळियर्चने गैदु। मत्तकाशिनियरु निलछ ॥
उत्तुँग भूपणराशिय होरेगट्टि। होत्तरूळिगद नारियरु ॥ ५७ ॥

अर्थ—भेंट चढ़ाकर रानियाँ अलग खड़ी होगई। इतने में दासियां वहाँ आकर आभरणों की गठरियाँ बाँध २ कर हटाने लगीं ॥ ५७ ॥

Soon a heap of ornaments was *piled* near him. The queens thereafter withdrew and the maid-servants removed the ornaments tying them in bundles. *(57)*

पद्य—ममतेयोळ बलेयरेल्लरु कूडि सं। भ्रमदि निवाळिसुवाग ॥
अमरे सुमने कुसुमेयर जगळवेत्त। गमिसितेंदनु नरनाथ ॥ ५८ ॥
शत्रु भावदोळीग होरिदरागळे। मित्रभाव भावदोळोडुगूडि ॥
सूत्रिसिदंतिवरिहुदेनुपंडिते । चित्रविंतिदनुसुरेंदा ॥ ५९ ॥
राज विग्रह सुसनाजि योळगे कुसु। माजि योळगे नोवु वहुदे ॥
अजियेंदरे कदनके हेसरेंदरि। दा जान्मेगरस मेच्चिदनु ॥ ६० ॥



पंडिता कहने लगी कि तुम्हारे काव्य को तुम्हारे पतिदेव को सुनकर बहुत हर्ष हुआ है। इसलिये तुम लोग उनके चरणों में एक २ रत्न आभरण को भेंट चढ़ाकर नमस्कार करो और चलो। तब सभी रानियां अपने गले में से एक २ रत्नहार को उतार कर भेंट चढ़ाने लगीं। क्षण मात्र में ही वहां आभरणों का ढेर लग गया।

यह चित्र मातेश्वरी सेठ लाधूलालजी जैन डालीगंज लखनऊ के द्वारा छपा।

अर्थ—रानियाँ जिस समय प्रेम के साथ राजा भरत को भेंट चढ़ा रहीं थीं उह समय राजा ने पूँछा कि क्या कुसुमा जी अमरा जी और सुमना जी का झगड़ा शान्त होगया इसका क्या कारण है ? ॥ ५८ ॥

अर्थ—स्वामी ठीक है ! क्या सुमनाजी और कुसुमाजीका कभी मन मलीन रह सकता है?हां शस्त्र युद्ध से घाव हो सकता है परन्तु फूल युद्ध में यह कैसे सम्भव है। असुरों के युद्ध में कठोरता भले ही हो, किन्तु सुर युद्ध में यह कठोरता कैसे होसकती है। पंडिता के मुख से ऐसी वात सुनकर राजा वहुत आनन्दित हुये ॥ ५९-६० ॥

When the queens were offering their gifts, Raja enquired whether Kusumaji,Sumnaji, and Amraji had patched up their quarrels. "What was the trouble", he said,

"Sire" said Pandita, "there can never be ill-will between these queens. A wound can be inflicted in an armed fight, but not where only flowers are used. Fight between the demons can be fiendish, but not so in the case where gods are concerned".

This reply pleased the Raja *(58-60)*

पद्य—अहुदे चन्नायतदु खड्गदाजियोळु नो । वहुदैसे हूविनाजियोळु ॥
महियोळगारु नोंदवरु टेनुत राय । गहि गहिसुत मेच्चि नुडिदा ॥ ६१ ॥

अर्थ—हां, ठीक है ! वहुत अच्छा तुमने कहा। शस्त्र प्रहार से घाव होता है, यह वात लोक प्रसिद्ध है। परन्तु फूलों के युद्ध से कभी घाव सम्भव नहीं। अतः इन स्त्रियों के युद्ध में भी कोई घाव नहीं होगा। यह कह कर राजा भरत मन में आनन्दित हो मुसकराने लगे ॥ ६१ ॥

He smiled and said, "You are right. It is a well known saying that arms cause wounds. But flowers cannot inflict any such injury." *(61)*

पद्य—असुराजिगुँट्टु कर्कश ममराजि यो । ळेसेवुदे कर्कश वरसा ॥
होसतायतु सुररिगे कदना विल्लोम्मे सं । धिसिदरु मृदुवेंदेयलते ॥ ६२ ॥

अर्थ—असुरों में कर्कश भाव रहता है। अतः अमराजी में कर्कश भाव होना सम्भव है। हमने तो यह वात विल्कुल नवीन ही सुनी कि असुरों में झगड़ा नहीं होगा। शान्त होगया। अर्थात् सुमना जी, अमरा जी आदि स्त्रियों में झगड़ा होता था वह समाप्त होगया। असुरों में कठोरता रही तो थी, परन्तु स्वर्गके अमरोंमें कठोरता नहीं होती। अतः इनका नाम अमराजी है तव भला इनके युद्ध में कठोरता कैसे सम्भव है ॥ ६२ ॥

The Asurs have a fiendish temperament. Is it that Amraji has such a temperament? To me it looks rather strange that the quarrel between the Asurs could be patched up so soon.

I think this was a quarrel between Amars (gods) of heavens. They have no harsh or malicious temper like Asurs, and that is why amraji could be pacified so quickly" (62)

पद्य—नालगे मिसुकदे सुम्न सुँगद्दि नी । नालोचिसदुसुरिदुदु ॥
भूलोक मदन विस्मयवेंदु पंडिते । कालिगेरगिदळा नृपना ॥ ६३ ॥

अर्थ—उस समय जब राजा भरत कह रहे थे । उसे पंडिता सुन रही थी, अतः कहने लगी कि राजा से कोई वात छिपी नहीं रहती । इस प्रकार कहकर पंडिता नीचे मुख करके राजा के चरणों में गिर पड़ी ॥ ६३ ॥

Pandita was hearing all this very closely. She said, nothing was hidden from the Raja and thus saying she fell at the feet of the king. (63)

पद्य—जिननाणे चन्नायूतु निन्न जाणनुडियेंदु । जनपति पंडितेगोल्दु ॥
कनक भूषण वित्तनु कूडे मूवरु । वनितेयरित्त रुचितवा ॥ ६४ ॥

अर्थ—पंडिता के इस वचन-चातुर्य को सुनकर श्री भरतेश जी आनन्दित हुये और कहने लगे कि तुमने वहुत अच्छा कहा । लो तुम्हें यह स्वर्ण निर्मित आभूषण भेंट में देता हूं । यह कह कर पंडिता को पुरस्कार दिया ॥ ६४ ॥

Bharatji was very much pleased at the cleverness of her reply and told her that he had very much appreciated it. He gave her reward of gold ornaments intoken of his appreciation. (64)

पद्य—ई गुण निधि गळेनिप पेंड्डि रोडनेले । नागरि कोत्तम नीनु ॥
भोगसाम्राज्यव नाळेंदु पंडिते । सागि निंदळु सुन्निनंते ॥ ६५ ॥

अर्थ—हे स्वामिन् ! नारी रूप मणियों के वीच में गुणनिधि स्वरूप (सर्वोत्तम मणि) होते हुये चिरकाल तक आप आगे साम्राज्य का पालन करें । यह कहकर पंडिता अलग खड़ी होगई । तत्पश्चात् रूप लावण्य युक्त, तेजस्वी, राज तिलक सहित भरतेश जी ने पंडिता से दो एक वात पूँछी ॥ ६५ ॥

"Sire", said Pandita, "may you long reign our us. You are like a jewel among the pearllike queens".

Thus saying she withdrew on one side. The handsome and glorious king then put a couple of questions to her. (65)

पद्य—दळतळिसुव मोगदिंद लीलेयोळिद्द । ललनेय रेल्लर नोडि ॥
वळिकोंदु मातनाडिदनु सुजानर । तिलकना पंडिते योडने ॥ ६६ ॥
पंडिते नावेम्म मनेयोळिद्दन्नव । कोंड रोळ्ळितो शुक्तिगेम्म ॥
पेंडिरो ळोर्वळ मनेगे होहुदु लेसो । कंडदनुसुरुनीनेंदा ॥ ६७ ॥
अरिदळागळे चित्त कुसुमाजि योळु तन । गेरक वाय्ताकेय मनेगे ॥
ओरगलेयुदुवेनेंबगोनेहविदेंदद । मरसि कोंडितु नुडिदळु ॥ ६८ ॥
इंदिगारोगणेदेवर गृहदल्लि । चंदवल्लोर्वळमनेगे ॥
संदरुत्तम वेंदळरसिगे मनसिन । गंदेय तुरिसिदंताय्तु ॥ ६९ ॥

अर्थ—फिर न जाने भरत जी के मन में क्या भाव आया वे पंडिता को बुलाकर पूँछने लगे कि, हम आज अपने महल में भोजन करें या किसी रानी के महल में, बताओ कि मैं किस रानी के महल में जाऊँ ॥ ६६-६७ ॥

अर्थ—फिर चतुर पंडिता समझी कि राजा के मन में कुसुमा जी के घर भोजन करने की इच्छा है। अत्याधिक प्रेम उनके ऊपर है। इस प्रकार इधर उधर शिर हिलाकर एवम् आंख मींच कर कहने लगी कि ॥ ६८ ॥

अर्थ—आज हमारे स्वामी का भोजन अपने घर में न होकर किसी एक रानी के वहाँ करने की इच्छा है। यदि मैं किसी का नाम कहती हूं तो उनकी इच्छा पूर्त्ति कदाचित् न हो सके मन में इस प्रकार का विचार करने लगी ॥ ६९ ॥

Then all of a sudden something flashed through his mind and he called Pandita near him and asked her, "Should I take food today in my own place or in some queens and if so in whose" ? (66)

The clever Pandita lost no time in guessing that the king wanted to take food at Kusumaji's palace, because he loved her most,

Closing her eyes and turning her face from one side to another, she began to think whether she should indicate the name of the queen. But she had some hitch least her guess might not be correct. (67-69)

पद्य—हेळदरावळ मनेगेयुद् वहुदेंदु । केळ्दिदनोडने पंडितेया ॥
आलोचिसिकोंडु विन्न विसुवनेंदु । कौळिकमौनवडेदळु ॥ ७० ॥

अर्थ—तव पंडिता ने कहा, मैं कुछ विचार करके कहूंगी अतएव विचार करने के निमित्त थोड़ी देर मौन मुद्रा धारण करली ॥ ७० ॥

Pandita said, "Sire let me think a little on this problem". (70)

पद्य—मूगिनमेले बेरळनिट्ट कणमुच्चि । तूगाडि तलेय नोंदिनिसु ॥
योगिगळंतिष्टु जानिसि कणदेरे । दागळे नुडिदळा कुटिले ॥ ७१ ॥
ओडेय विन्नहविंदु कुसुमाजियरमने । गडियिट्ट रुत्तमवेंदु ॥
नुडिदळें तुत्तम वायतेंदु हेळेंदु । नुडिसिदनवळ वायिंद ॥ ७२ ॥
होसकाव्य मूवरिंदादु दिव्वरने म । न्निसिदेयिन्नोव्वळिगिल्ल ॥
असियळमनेगेयिद् मन्निपुदुचितवें । दुसुरिदेनेंदळा जाणे ॥ ७३ ॥

अर्थ—नासिकाग्र भाग में अंगुली दवाते हुये विचार करने लगी, एवं शिर हिलातेहुये गर्दन झुका ली। जैसे योगी जन अपने नेत्रोंको वन्द करके फिर खोलते हैं, ऐसे ही पंडिता अपने नेत्रों को खोल कर कुटिल भाव से कहने लगीं ॥ ७१ ॥

अर्थ—हे राजन्! मेरी वात सुनो। आज कुसुमाजी के महल में आप पधारगे तो अत्युत्रीत उत्तम होगा। तव राजा भरत ने कहा यह क्यों? दूसरी रानियों को छोड़कर इन्हीं के महलमें जाने के लिये क्यों कहा। तव पंडिता ने उत्तर दिया कि, नूतन काव्य को इन तीनों ने ही वनाया था, उसमें दोनों को तो आप सभा में ही भेंट दे चुके अव कुसुमा जी अवपिष्ट हैं। अतएव उनको सन्तुष्ट करने के हेतु आप उनके यहाँ पधारेंगे तो अच्छा होगा ॥ ७२-७३ ॥

She placed her finger on the tip of her nose, shook her head, an bentd her neck. Then she opened her eyes as if some ascetic would open his eyas after self-absorption, and said, "Sire, it would be best if you visit Kusumaji's palace".

"Why Kusumaji's please", asked the Raja, "why not other queens". She replied, "well Sire, the three queens, Kusumaji, Amraji, and Sumnaji all took part in composing the poems. The last two have already been rewarded before all. Now it is the turn of Kusumaji. It would be proper if her palace is visited to-day and she is given a proper reward". (72-73)

पद्य—अदु लेसु लेसेंतुटाग वेकेंदु त । प्पदे पेरगळेल्ल राडिदरु ॥
एदेयोळानंद मुखदोळिष्टु मांद्य भा । वदोळोडवट्टना कुशला ॥ ७४ ॥

अर्थ—पंडिता के वचनों को सुनकर सभी रानियों ने अनमोदन किया । महाराज को कुसुमा जी के ही वहाँ जाना चाहिये । इस बात से अतीव आनन्दित भरत महाराज ऊपर से कुछ संकुचित होकर मौन होगये ॥ ७४ ॥

Pandita's proposal was seconded by all the queens. Bharat was glad to hear this, but felt a bit embarrassed and became quiet. *(74)*

पद्य—अम्मरायनगिंदु निन्नरमनेयल्लि । सम्मान मुँदे नीनेय्दि ॥
जुम्मने जोके माडेंदळु पंडिते । हेम्मक्कळेल्लर मुंदे ॥ ७५ ॥

अर्थ—तब पंडिता सभी रानियों के सन्मुख कहने लगी कि वहन कुसुमा तुम पहले सन्मान करने के लिये जाओ क्योंकि आज तुम्हारे वहां भोजन होगा, अतएव भोजन की सामग्री करो ॥ ७५ ॥

Then Pandita said in the presence of all the queens, "Look here Kusumaji, please go to your palace and keep all arrangements ready. Rajaji will take food at yours to-day. *(75)*

पद्य—सवति परेडेयोळु सति नाणचुतिद्दळा । सवतियरेनु जाणेयरो ॥
अवरा तंत्रव बल्लरहुददहिक्कदे । सुविनव मिगे कळुहिदरु ॥ ७६ ॥

अर्थ—ऐसा कहने पर कुसुमा जी और भी लज्जित होगई, अन्य स्त्रियों ने भी इस भाव को जान लिया कि यह तो हमारे सामने लज्जित होरही है ॥ ७६ ॥

Kusumaji blushed red on hearing this and other ladies could see throuhg it. *(76)*

पद्य—तंगि होगक्क होगाणमनारोगणे । गंगणेगेडे माळ्प भाग्य ॥
संगडिसितु निनगदु नम्म भाग्यवें । दिंगितमिगे कळुहिदरु ॥ ७७ ॥

अर्थ—तब उन चतुर स्त्रियों ने लज्जा दूर करने के हेतु कहा वहन ! जाओ । जाओ सामग्री करो । आज पतिदेव को भोजन कराने का सौभाग्य तुमको प्राप्त है । ऐसा कहकर कुसुमा जी को भेज दिया ॥ ७७

To save Kusumaji from embarrassment they said, "Go dear. To-day it is your good luck to have the husba. d in your palace for taking meels". And they sent her away. *(77)*

पद्य—दारि देगेदु कुसुमाजि निंदळु वेत्र । धारिणियरु वेळेयरिदु ॥
मार नोडेय रति देवियोडतिय क । एणारे चित्तविसेंद रोडने ॥ ७८ ॥

अर्थ—तब सब रानियों ने कुसुमा जी के जाने के लिये मार्ग छोड़ दिया वेत्रधारिणी (स्वयं से विकायें) दासियाँ उठकर खड़ी होगईं और कहने लगीं कि वस्तुतः कुसुमा जी भाग्य शालिनीं और गुणवती हैं ॥ ७८ ॥

They left the room for Kusumaji to go out. At that stage the ladies with canes also got up saying that Kusumaji was extremely lucky. (78)

पद्य—नुडिय चल्लिकेयिंद गगणदोळगे होह । मडदिय तिरुगिसि तन्न ॥
नुडिवक्किययोळगडगिसि सवि । नुडिय लतांगिय नोडु ॥ ७९ ॥

अर्थ—व्यन्तर कन्या के जिसकी मुक्तकंठ से प्रसंशा की और जिसने अपने मनोगत सुन्दर भावों से भरत महाराज के हृदय को द्रवित कर दिया इसी हेतु भरत महाराज ने भोजन करने की स्वीकृति दे दी ॥ ७९ ॥

Raja Bharat gave his consent, because the sweet manner in which the Vyantra maiden had given the description had unbalanced him. (79)

पद्य—स्वर मात्रदिंद गिळिय मैयोळडगिंद । सुर सुदतिय नेले यरिदु ॥
दर हासदिंद काणिसिकोंडजाणे वें । डिर तलेवणिय चित्तैसु ॥ ८० ॥

अर्थ—स्वरमात्र से, शुक के अन्तः हृदय में रहने वाली व्यन्तर कन्या को पहिचानने वाली कुसुमा जी ! "तुम्हारी जय हो" ॥ ८० ॥

"Jai to Kusumaji", shouted the maid servants lauding her intelligence in detecting the presence of the Vyantra girl in the body of the parrot. (80)

पद्य—व्यंतर कामिनियिंद कीर्तिसिकोंड । होंत कातिय निट्टि सरसा ॥
अतांद महिमेय नुब्बि नोळाडद । त्यंतगंभीरेय नोडु ॥ ८१ ॥

अर्थ—व्यन्तर कन्या के द्वारा पूजनीय पतिदेव और लक्ष्मी के समान कुसुमा जी की महिमा को देखो ? इस प्रकार वे दासियाँ कहती जारहीं थीं ॥ ८१ ॥

"Look at the greatness", said they, "of this happy couple as depicted by the Vyantra girl. (81)

पद्य—गरुविके गाडि विन्नणद वेडगु मै । सिरियाद देविय नोड्ड ॥
भरत चक्रेशन मनवनल्लाडिसि । दरसिय कळुहेंद रोडने ॥ ८२ ॥

अर्थ—वेत्रधारी (दासियों) ने कहा गम्भीर चतुर तथा देवकन्या के समान सुशोभित गुणवती एवम् राजा भरत के मन को मोहित करने वाली कुसुमा जी को भेजो ॥ ८२ ॥

The cane bearing maid servants let Kusumaji go for the Raja's welcome. She had captured the heart of her husband by her cleverness, considerateness and virtues. *(82)*

पद्य—पेन्न कळुहु श्रृंगार वृत्तद तनि । वरण कळुडु मुंदे मनेगे ॥
हरिगणनडेगे हक्कि होहंते होगि नी । नुरणाकेयमनेयल्लि ॥ ८३ ॥

अर्थ—देवकन्या को भेजो, उत्तम कल्पवृक्ष में लगे हुये सपक्क फल के समान कुसुमा जी को भेजो। हे राजन् जैसे वृक्ष में पका हुआ फल देखकर पक्षी वहाँ पहुँच जाते हैं। उसी प्रकार आप कुसुमा जी के वहाँ पधारकर भोजन करके आनन्दित हों ॥ ८३ ॥

"Let Kusumaji, who is like the ripe fruit of Kalap tree, go to her palace, and sire you may also grace her palace by your presence, just as birds fly to the tree laden with fruits." *(83)*

पद्य—एंदु कीर्तिसे वेत्र धारिणियर नुडि । गंदेदेयोळु गहगहिसि ॥
होंदोडिगेय नित्तनागळे करेदु जी । येंदनल्लचितविनोदा ॥ ८४ ॥

अर्थ—ऐसी कीर्ति गाती हुई वेत्रधारी स्त्रियों अर्थात् दासियों की बात सुनकर कुसुमाजी मन में बहुत प्रसन्न हुई और मनमानी भेंट देकर उनको सन्तुष्ट करदिया ॥ ८४ ॥

Kusumaji was very much pleased on hearing such praises from the maid-servants and gave them ample rewards. *(84)*

पद्य—नलविंद कुसुमाजि कैमुगिदळु राय । नोळु नोटदिंद चीळ्कोट्टा ॥
गेळु हेंगळरसि येंदोडने कट्टिगे वेंग । ळुलिवुतिदरुहोदळाके ॥ ८५ ॥

अर्थ—पश्चात् कुसुमा जी ने महाराज भरत को नमस्कार किया। महाराज ने उन्हें आन्तरिक आशीर्वाद दिया यह किसी को ज्ञात न होसका ॥ ८५ ॥

Thereafter, Kusumaji bowed to the king who gave her blessing in a manner, others could not understood. *(85)*

When the queens passed by them the servants were heard saying, "these queens had composed the poems on the king". The king began to laugh when he heard this, which made Amraji and Sumnaji to laugh as well. *(93)*

पद्य—नगेयल्लवे निमगिंदु रायन तोळ । दुगेलदमन्नणेगोंडु ॥
नगुत होगुविरेंदु नगिसिदरोडने कै । मुगिदु कट्टिगे देंगळवरा ॥ ९४ ॥
वन्नि देवियरेल्ल कळुहिसि कोळ्ळिरा । कन्नेयरुगळ चित्तैसु ॥
सन्नि तेरपुगोडि सागि मेल्लगेयेंदु । चेन्नचेन्नने सोल्लिसिदरु ॥ ९५ ॥
संमुखदोळु निंदु कैमुगिद रसगे । तम्म मैसागिसि कोळुत ॥
सम्मानदिंद होदरु हेंगळेल्लरु । होम्मरियंदिदहोळेदु ॥ ९६ ॥

अर्थ—इन्हें हंसी आने पर कहने लगीं कि आज तुम्हें हंसी क्यों नहीं आवेगी, क्योंकि राजा भरतेश के दोनों वाहुपाशों में रहकर तुम्हें पारितोपिक प्राप्त हुवा है। इस प्रकार पारस्परिक विनोदानन्द के साथ अमरा जी सुमना जी चली जारही थीं ॥ ९४ ॥

अर्थ—तव सव रानियाँ परस्पर कहने लगीं हे देवियाँ ! आओ, अरी आओ इनको भेजो, उनको वुलाओ तुम आओ इस प्रकार सव स्त्रियाँ परस्पर वातचीत करते हुये एकत्रित हुईं ॥ ९५ ॥

अर्थ—पुनः राजा भरत के सम्मुख हो सभी रानियां विनय पूर्वक नमस्कार करती हुई धीरे से पीछे हटने लगीं। स्वर्ण कमल के समान मुखाकृति वाली सभी रानियां धीरे धीरे चलीं गईं ॥ ९६ ॥

Looking at the laughing queens the maidservants remarked, "This laughter is but natural since yeu have received your rewards in the king's embrace. Amraji and Sumnaji were then going on thcir way to their palaces.

The rest of the queens gathered together bowed respectfully before the king and gradually withdrew. *(94-96)*

पद्य—पंडिते कळुहिसि कोंडाळाकेय वळि । गोंडु गायकियरेरिदुदरु ॥
दंड धारिणियरु तावोंदु मरेयोळ । गंडुगोंडरु वेळ्येयरिदु ॥ ९७ ॥



भरत महाराज ने अभी तक अपने समय को खेल-तमाशा, गायन इत्यादि अनेक मनोरंजन में स्त्रियों के बीच में विताया और बाद में सभी रानियों के अपने २ स्थान में चले जाने के बाद, आत्म-ध्यान से सुवर्ण मूर्ति के समान ध्यानारूढ़ हो मग्न हो गये हैं।

यह चित्र धर्मपत्नी ला० पदमचन्दजी जैन गोटे वाले, चौक लखनऊ के द्वारा छपा।

अर्थ—पुनः पंडिता ने सब गायिकाओं को बुलाया उसी समय दण्डधारी लोग समयानुसार अपने २ स्थान को चले गये और कुछ कार्यक्रम करने के अनन्तर पंडिता भी चली गई और सब लोग भी चले गये ॥ ९७ ॥

Pandita then called the singers and after the usual routine they left. The volunteers who were posted for making arrangements also went away. *(97)*

पद्य—ऊळिग वेंगळु कडेसार्दररसना । जोलियेल्लवु निंद मेले ॥
कालोचितदात्म योगव नेसगिद । ना लेस नेन वर्णिपेनु ॥ ९८ ॥

अर्थ—पश्चात् भरतेश जी सभी रानियों को आदर सत्कार पूर्वक पारतोषिक वितरण कर विदा किया अनन्तर में राजा भरत विचारने लगे, कि अभी तक मेरा समय स्त्रियों के मध्य में व्यतीत हुआ और आत्म विचार के निमित्त कुछ भी समय नहीं मिला। केवल विनोद लीला में ही समय व्यतीत हुआ अतः कुछ आत्म चिन्तन में भी समय लगाना चाहिये ॥ ९८ ॥

The Raja then bade farewell to the queens and thereafter he thought that he had spent the whole time in enjoyment with his queens and it was necessary that he should spend a little time in self contemplation. *(98)*

पद्य—पल्यंकासन दोळगे गद्गे योळु । शल्यवर्जितनु कुळितनु ॥
कल्याण मूर्ति कण्मुच्चि तन्नोळगे धा । वल्य योगव कंडनोडने ॥ ९९ ॥

अर्थ—तदनन्तर समस्त शल्य (सांसारिक वार्तों) को त्यागकर राजा भरत जी पल्यंकासन से आँख मींच कर बैठ गये। कल्याण मूर्ति (भरत जी) ने पंचकल्याण प्रतिमा के समान नासिकाग्रभाग में ध्यान लगाकर अन्तरंग में आत्मरूप धवल बिन्दु को देखा ॥ ९९ ॥

Excluding all worldly matters from his mind and with eyes closed, he sat down in the Palyank posture and like an idol with looks fixed at the tip of the nose, visualized the spotless halo of atman in his innerself. *(99)*

पद्य—एत्तु होदुदो हेंगळोडनुब्बिनिंदिप्टु । होत्तु तानाडिद मेले ॥
हत्तु साविर कालतपसु माडिद मुनि । पोत्तम नंतिर्दनाग ॥ १०० ॥

अर्थ—कहते हैं कि भरतेश जी अभी तक स्त्रियों के मध्य में विनोद लीला कर रहे थे, वहीं पर उनका मन ध्यान में चला गया। अब बताओ वह विचार विनोद लीला कहाँ चली गई ? उस

लीला का लेशमात्र भी बात हृदय में नहीं रहा। मानो ध्यान की सामग्री को देखकर ऐसा मालूम होता है, कि दस हजार वर्ष पर्यन्त ध्यान करने वाले मुनि के समान इनके चित्त की पवित्रता है। क्यायह आश्चर्य नहीं है ? क्या वे सामान्य मनुष्य हैं ? ॥ १०० ॥

So far Bhartesh was enjoying the gay company of women and now his mind was absorbed in meditation. See this strange change. All merry making had disappeared and not a trace of it remained in his mind. Judging from the manner of self contemplation one felt that his mind had the purity of a saint who has spent ten thousand years in penance. Is it not surprising ? Could he be an ordinary person ? *(100)*

पद्य—दोरेयिद् होगेने होगि वारेंदरे। बरुतिहसेवकरंते ॥
करण नालकेंद्रिवेंद वनु सुरिदिं । तिरुतिह वेन बगिणपेनु ॥ १०१ ॥

अर्थ—हाँ ये चक्रवर्ती हैं। इनकी आज्ञा को कौन उल्लंघन कर सकता है, इन्द्रियों को आज्ञा देते थे कि "तुम सब अपना काम करो" तब सभी इन्द्रियां अपने काम में लग जाती थीं। यदि वे आज्ञा दें कि अब तुम सभी इन्द्रियां जाओ तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। तुरन्त ही सब इन्द्रियाँ अन्तर्हित हो जाती थीं। अर्थात् स्वामी की आज्ञा के अनुसार नौकर के समान इन्द्रियाँ काम करती थीं। अतः उनका कोई उपयोग नहीं प्रतीत होता ॥ १०१ ॥

Yes he is Chakravarti. Who can disobey his orders ? When he ordered his senses to do their respective functions then all the senses busied themselves in their work. If he ordered them to cease working they atonce stopped. The senses were thus working like servents under the orders of their master. He had no other use for them except this. *(101)*

पद्य—वेकादराडिसि गाळिपटवनर्ति । साकागे सुरुळुव नंते ॥
नूकि चित्तव होरगाडिसुवनु तन्नो । ळेक वागिरिसुवनोम्गे ॥ १०२ ॥

अर्थ—जैसे बालक खेल की इच्छा से पतंग उड़ाने लगते हैं, यदि उनकी इच्छा न हो तो वे पतंग की डोरी को लपेट लेते हैं। तदनुसार ही राजा भरत की मनोवृत्ति थी। जब वे चाहते थे, इद्रिन्यों को वश में कर लेते थे। जब विषय की अभिलाषा होती थी। तब बाह्य रूप से इन्द्रियों को तद् विषय में लगा देते थे। सारांश यह है, कि सब इन्द्रियाँ अपने वश में ही थीं ॥ १०२ ॥

Children fly kites when they want to enjoy the game. When they do not

want it they wrap up the thread and stop it. Similiar was the case with Bharat. Whenever he wanted, he controlled his senses. When he felt inclined towards sense desires, he concentrated his senses in them. In short, he had full control over his five senses and mind. (102)

पद्य—होळेदोम्मे होरगे करिणक्कि सेवकरिंद । केलसव कोंबनु मेगे ॥
ओळगे करिणक्कि हंसगे करनेंद्रिय । गळ्कैयसेवेयकोंबा ॥ १०३ ॥

अर्थ—कभी आँखों के सयनों (इशारों) से बाहर सेवकों से काम कराते हैं और कभी २ इन इन्द्रियों से अन्तरंग में भी अपना काम कराते हैं ॥ १०३ ॥

Sometimes he would order his servants merely by his looks to do his work, at others he would order his senses to carry out his wishes. (103)

पद्य—इंद्रिय भोगव होरगेभोगिसुवन । तींद्रिय सुखव तन्नोळगे ॥
चंद्रिका सुखव चकोरंबोलुंड जि । तेंद्रिय नंतिरुतिहनु ॥ १०४ ॥

अर्थ—भोगों को भोगते हुये भी अन्तरंग में अतीन्द्रियसुख का अनुभव होना सामान्य बात नहीं है। इसी का नाम जितेन्द्रियता है। जिस प्रकार उदय चन्द्र के सुख को चकोर पक्षी ही अनुभव कर आनन्दित होना जानता है। उसी प्रकार उदित अतीन्द्रिय सुख को जितेन्द्रिय पुरुष ही अनुभव-करके आनन्दित हो सकता है ॥ १०४ ॥

It is not an ordinary thing for one to realise the supreme bliss in one's innerself while engrossed in the enjoyment of worldly pleasures. This is called the control of senses. Just as Chakor bird derives immense pleasure at the sight of moon, in the same way the conqueror of senses experiences bliss on c ncentrating his attention on the soul substance. (104)

पद्य—मंडे परिदु मय नोणगिसि बाह्यव । कंडु माडुव बाह्य तपसि ॥
दंडिसि मनव कर्मव नोनगिसि तन्न। कंडु माडुव तपसवगे ॥ १०५ ॥

अर्थ—लोक में ऐसे अनेकों तपस्वी हैं, जो अपना सिर मुड़ाते हैं 'एवम् शरीर सुखाते हैं, अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करते हैं, परन्तु यह सब बाह्य तप है। भरतेश जी ने अपने मन पर आधिपत्य जमा लिया है उनके विचार में शिर *मुन्डन के अतिरिक्त मन मुन्डन अधिक आवश्यक

*पंच वि इन्द्रिय मुंडा, वचि मुंडा, हत्थ पाय तणु मुंडा ।
मण मुंडेण य सहिया दसमुंडा वणिणदा समए ॥

है। शरीर सुखाने के अतिरिक्त उन्हें कर्म को सुखाने में अत्यधिक आनन्द प्राप्त होता है। वाह्यद्रव्यों को देखते हुये किये जाने वाले तपों की अपेक्षा आत्म दर्शन पूर्वक की जाने वाली तपश्चर्या उन्हें अधिक प्रिय है।॥

अर्थ—शास्त्रों में दश प्रकार का मुण्डन कहा है, पाँचों इन्द्रियों का मुण्डन, वचन मुण्डन, हाथ पाँव और शरीर का मुण्डन मन मुण्डन आदि इन सब में मन मुण्डन प्रधान और महत्वपूर्ण है। इस प्रकार राजा भरत ने सभी मुण्डन गृहस्थाश्रम में ही कर लिया था ॥ १०५ ॥

There are many saints in this world who shave their heads and dry their bodies and suffer various kinds of tribulations but this all is only outward penance. Bhartesh had acquired control over his mind. In his opinion, the shaving of mind is more essential than the shaving of head. He experiences greater pleasures in drying by the Karmas than in drying the body. He would rather much prefer the penance with a proper understanding of the inner self to a penance without the right knowledge. Ten kinds of shaving have been described in the sacred books, shaving of five senses, shaving of speech hands and legs, body and mind. Of all these the shaving of mind is the main and the most important King Bharat had all these shavings while in his family life. *(105)*

पद्य—शास्त्रद गडवडेयोळ्गाडिदेहद । वस्त्र मात्रव बिट्ट मुनिये ॥
वस्त्रदंदद मूरु तनुव वेर्पडिसिंद । संस्तृप्तनाराजयोगि ॥ १०६ ॥

अर्थ—शास्त्र के मर्म को न समझकर केवल वस्त्रत्याग करने वाले मुनि,मुनि नहीं हैं। वस्त्र के समान ही तीन लोक एवं शरीर भी परिग्रह है। ऐसा समझकर केवल आत्मा में ही तृप्त होने वाले योगी, योगी हैं। इस प्रकार भरतेश जी तीन लोक और शरीर को परिग्रह समझते हुये गृहस्थाश्रम में भी आत्मत्यागी योगी थे। परिग्रहों के मध्य में रहते हुये भी परिग्रह से अलिप्त हैं। शरीर सहित होते हुये भी शरीर से भिन्न हैं। क्या वस्तुतः वे अलौकिक शक्तिमान् पुरुष नहीं हैं ? ॥ १०६ ॥

Saints who do not understand the true significance of sacred canons and only forsake the clothes are not saints. The three worlds and body are as much of unnecessary possessions as are the clothes. Those who realize this and absorb them selves in the contemplation of soul are real yogis *(saints)*. In this manner Bhartesh realised the futility of three worlds and the body and was

a saint though enjoying family life. Living in the midst of material possessions, he was apart from them. Being with the body, he was separate from it. What? Is he not rally a person of extra-ordinary acquisitions. *(106)*

पद्य—पोडवि वेंगळ विट्टु सग्गवेंगळि गोल्द । जडब्रह्मचारिया अवनु ॥
पिडिदात्म रति योंदनु ळिद वेल्लव विट्ट । कडुब्रह्मचारिया नृपति ॥ १०७ ॥

अर्थ—संसार में अनेक लोग स्वस्त्री व परस्त्री को छोड़ कर ब्रह्मचारी हो जाते हैं। लोग उसे जड़ वेषधारी ब्रह्मचारी समझते हैं। राजा भरत उस प्रकार जड़ ब्रह्मचारी नहीं थे। बल्कि केवल आत्मरत ब्रह्मचारी थे ॥ १०७ ॥

There are many persons in the world who give up all connections with their wives and the wives of others. They are called Brahamchari. King Bharat was not a celibate of this kind. He was absorbed in Brahama and hence he was a Brahamachari. *(107)*

पद्य—बगेयलात्मगे ब्रम्हवेसरुंटु तन्नाप्त । गगनदोळगे तन्न मनवा ॥
मिगे चरियिसलदु बल्ल ब्रम्हचरिय मु । त्तिगे बीजवदुनृपगुँटु ॥ १०८ ॥
हेंगळ तोरेवुदु व्यवहार ब्रम्हच । र्यांग चित्तव नात्म नोळगे ॥
हिंगदं तिरिसलु निश्चय ब्रम्हच । र्यांगवेंदवनरिदिहनु ॥ १०९ ॥

अर्थ—वस्तुतः विचार करने पर आत्मा का नाम ही ब्रह्म है। अपने आत्मरूपी आकाश में अपने मन का संचार कराना ही ब्रह्मचर्य है और यही मुक्ति का बीज है। स्त्रियों का त्याग करना यह व्यवहार ब्रह्मचर्य है अपने चित्त को आत्मानुरत करना निश्चयात्मक ब्रह्मचर्य है ॥ १०८-१०९ ॥

Truly speaking, Brahma is the synonym for Atma. To make the mind fly in the sky of soul is Brahmcharya and this is the seed of salvation. To give up all connection with women is practical celibacy, to concentrate mind in the soul is the real celibacy. *(108-109)*

पद्य—कोंडाडे होरगे विट्टोळ गेल्लवनु तुँबि । कोंडिरु डंबक मुनिये ॥
कंडरेहोरगेल्ल विहुदोळगेल्लव । खंडिसिदाचार्यनवनु ॥ ११० ॥

अर्थ—बाह्य सर्व परिग्रह छोड़ अन्तरंग परिग्रह से परिपूर्ण दम्भाचारी मुनि जगत् में बहुत हैं। क्या राजा भरत भी इसी प्रकार हैं? नहीं, नहीं! बाह्य रूप से देखा जाय तो भरत के पास

सब कुछ है क्योंकि सर्व परिग्रह होते हुए भी आन्तरिक परिग्रह उन्होंने दूर कर दिया है अतएव यह आश्चर्य की बात है ॥ ११० ॥

अन्यत्र (श्री समन्त भद्राचार्य ने भी कहा है:—)*

There are many saints in the world who have given up external possessions, but are unable to get rid of internal ones such as anger pride, greed etc. Was Raja Bharat a yogi of this kind. No. If we see outwardly, Raja Bharat possessed everything. But what is surprising was that he had given up all internal possessions. (110)

पद्य—उंडुपवासि बळ्सि ब्रम्हचारि भू । मंडलविदु निस्संग ॥
मंडे बेळेदु मनवोळाद तपसिय । कोंडाडलळवे चक्रियनु ॥ १११ ॥

अर्थ—राजा भरत की क्या प्रशंसा की जाय ? भोजन करते हुए भी उपवासी हैं और भोग भोगते हुए भी ब्रह्मचारी हैं । हाथ में भूमण्डल होने पर भी निष्परिग्रही हैं । शिर में बालों की वृद्धि होने पर भी उनका मन मुण्डित है इस प्रकार अद्भुत तपस्वी के समान बैठे हुए थे ॥ १११ ॥

What praises many not be showered on king Bharat. He is on fast even when he takes food. He is a celibate (Brahmachari) even while enjoying sex pleasures. He is possessionless, even though he holds the whole world under his thumb.

He has long and rich hair on his head but his mind was shaved. He was sitting like a wonderful yogi (ascetic) (111)

पद्य—जिन जिन कण्मुच्चि तन्न मैयोळगेत । नने ताने कंडनाचणवे ॥
जिन जिन कंडनु सिद्धननल्लिये । अनुभविसिद नात्मसुखवा ॥ ११२ ॥

---

*गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो, मोहिनो नैव मोहवान् ।
अनगारो गृहीश्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥

अर्थ—मोक्षमार्गी गृहस्थ घर में रहकर भी निर्मोही मुनि के समान है और मुनि घर छोड़ने के अनन्तर अन्तरंग में परिग्रही होने से गृहस्थ के समान मोही है ॥

C.F. Shri Samantbhadracharya has also written that a worldly man who is on the way to salvation inspite of his family life can be like a saint when he gives up attachment, and a saint who has left his house but has not given up attachment is no better than a householder.

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! कितने आश्चर्य की बात है कि भरत ने आंख मींचते ही अपने को देखा और तत्क्षण वहां सिद्ध परमेष्ठी का दर्शन किया तथा आत्मसुख का अनुभव किया ॥ ११२ ॥

O Lord Jinendra. How surprising that closing his eyes Raja Bharat saw his own vision within himself, and had atonce the view of the liberated Parmatma and thus realized the Supreme bliss within himself. (112)

पद्य—सर्वांग दोळु तळ तळिसुव तन्नात्म । तोर्व नात्मगे तोरलोडने ॥
जार्वुदुकर्मवेर्वुदुसुप्रकाशव । पूर्वद सुख हुट्टुतिहुदु ॥ ११३ ॥

अर्थ—इस समय राजा भरत को सर्वाङ्ग में देदीप्यमान आत्मा ही लक्षित हो रहा है, ज्यों-ज्यों आत्मदर्शन होता जा रहा है त्योंही कर्म ढीले होते हुए जीर्ण होकर निकलते जाते है और जिस प्रकार कर्म निकलते जाते है उसी प्रकार चैतन्य प्रकाश बढ़ता जाता है। इस समय भरत जी को अपूर्व सुखानुभव हो रहा है ॥ ११३ ॥

As the vision of soul advanced the Karmas got lossended, lost their strength and shed away and just as Karmas shed themselves, the light within became brighter. At this time Bharat was experiencing unique bliss. (113)

पद्य—पुरुषाकार दोळगे तोर्पु दोडनोम्मे । हरिदोम्मे प्रभेय रूपागि ॥
इरुतिहु दोडनळिवुदु कूडे तोर्पुदे । भरतेशगंतरंगदोळ् ॥ ११४ ॥

अर्थ—कभी वह आत्म ज्योति पुरुषाकार दिखाई देती है, कभी केवल प्रकाश रूप में दिखाई पड़ती है कभी मध्य में चंचलता भी आती है एवम् कभी अन्धकार होते हुए प्रकाश मलीन भी हो जाती है ॥ ११४ ॥

Sometimes that light of soul would appear in the form of a man, sometimes only as light without form, sometimes there was a little flickering and sometimes it wnuld become dim with darkness surrounding it (114)

पद्य—कत्तलेय हुदोम्मे बेळग हुदुदुसालि । मत्तोंदु तंपिन सोडरा ॥
होरिसि दंतिहुदा भरतेशन । चित्तदोळात्म योगवदु ॥ ११५ ॥

अर्थ—इस प्रकार कभी अन्धकार कभी प्रकाश कभी मलिन कभी शान्तमय दीप प्रकाश के समान राजा भरत के चित्त में आत्मानुभव होता है ॥ ११५ ॥

Raja Bharat was in this manner having a vision of his soul. Sometimes as bright light, sometimes as light dimmed and sometimes like placid light of a lamp. (115)

पद्य—जुम्मेनु तिहुदु सर्वांग दोळ्ळेल्लियु । उम्मुतिहुदु सुखवोळगे ॥
मंमायिदोंदु विस्मय वेंदेनुत पर । बोम्म दोळ्ळोलाड़तिहनु ॥ ११६ ॥

अर्थ—जब उनको अपूर्व आत्म ज्योति स्वरूप का दर्शन होता है, उस समय रोमाञ्चित होते हुए अन्तःकरण में सुख को वृद्धि होजाती है। इस प्रकार भरतेश्वर जी आनन्दानुभवयुक्त आश्चर्य में मग्न थे ॥ ११६ ॥

Whenever he caught the vision of this matchless light, sensation of pleasure thrilled his body and his bliss increased. In this way, Bharteshwar was absorbed in experiencing the wonderful blissfulness. (116)

पद्य—ओळगे तन्नात्मन ता नोडे होसतोंदु । वेळगु तोर्पुदु तोर लोडने ॥
मळ्ळंते जरिवुतिहुदु कर्म निजसुख । होळेयंते होळेदेळुतिहुदु ॥ ११७ ॥

अर्थ—जिस समय राजा भरत को आत्मा दिखाई देती है, उन्हें उस समय नवीन प्रकाश लक्षित होते हैं और वालुका के समान कर्म धीरे धीरे क्षीण होते जाते हैं एवम् साथ ही साथ आनन्द रूपी नदी की बाढ़ बढ़ती चली जाती है ॥ ११७ ॥

Whenever Raja Bharat got the vision of the soul he saw new light, the Karmas shed like particles of sand and the river of blissfulness overflowed. (117)

पद्य—तनगल्लदन्यरि .गरिय वारदुभव्य । जनकल्लददु साध्यवल्ल ॥
जिनशास्त्र सिद्धवी वाक्य निर्भव्यर । मनकेल्ल परमविरुद्ध ॥ ११८ ॥

अर्थ—इस प्रकार से भरत जी की चित्तवृत्ति होरही थी। परन्तु इस बात को सब लोग मानने को प्रस्तुत न होंगे। क्योंकि वह आत्मतत्व का अनुभव स्वसंवेदन ज्ञान के आभ्यन्तर है। भव्यों को ही इसका अनुभव होसकता है अभव्यों को नहीं। यह जैन शास्त्र का कथन एवम् जैन सिद्धान्त का रहस्य है। अभव्योंके चित्त को यह विषय परम रूढ़ (बहुत कठिन) प्रतीत होता है ॥ ११८ ॥

This was the mental state of Bharat but few, will be prepared to accept

this statement. The point is that this realization of soul substance can be achieved by realization of self. Only the Bhavyas (souls capable of attaining liberation) and not Abhavya can achieve this This is the saying of the Jain scriptures and herein lies the mystery of Jain principles. It appears to be very difficult of achievement to the souls incapable of attaining salvation. (118)

पद्य—आभरतेश्वरनात्मयोगामृत । शोभेयोळादि मनद ॥
लोभ मुँताद दोष व तोळ्वेुत सुख। लाभदोळिद नंतिरलि ॥ ११६ ॥
गुणके मत्सरिसदे कांतेय रोंदु ल । त्तणकाव्यवनुपेळ्लवरा ॥
प्रणयविनोददि मन्निसलायतु म । न्नणे योंदु संधि सुगंधि ॥ १२० ॥

अर्थ—इस प्रकार राजा भरत जी अपने आत्म योगामृत में डुबकी लगाते हुये अपने मन के लोभादि दोषों को परिमार्जित कर रहे थे जिस प्रकार दोष धुलाते जाते थे, वे अधिक सुखी होते जा रहे थे। सभी रानियां राजा भरत के गुणों की काव्य रचना करके अपने पति के सम्मुख वर्णन किया था। उसे सुन कर राजा भरत आनन्दित होगये। जो कि अवर्णनीय था इस प्रकार पति और पत्नी के मध्यमें जो भाव था आगे किसी समय किसी को यह भाव होना कठिन है। क्योंकि यह सब पूर्व पुण्योदय से प्राप्त होता है। इस कारण राजा भरत और रानियों ने पुण्य संचय किया था उसी का है यह फल है। राजा भरत तद्भव मोक्षगामी थे, और रानियाँ दोभवावतारी थीं, इसलिये दोनों के अन्तर्यामि व मोक्षमार्ग में संलग्न थे ॥ ११९-१२० ॥

Diving in the nectar of soul realization Raja Bharat was washing off the dirt of passions, greed etc. from his mind and his happiness was increasing progressively with every trace of dirt removed. It had given king Bharat much pleasure to hear the poem composed by the queens which was really very excellent too. Such a mutual devotion of husband and wife would hardly be found in future generations. This was the result of good deeds performed in the previous births. (119-120).

पद्य—ई जिन कथेयनु केळ्दिवर पाप । बीज निर्नाशन वहुदु ॥
तेज वहुदु पुण्य वहुदु मुँदोलिदप। राजितेश्वरन काणुवरु ॥ १२१ ॥

अर्थ—इस जिनेश्वर की कथा को जो सुनेगा उनका पाप बीज नष्ट होगा। तेज की वृद्धि होगी एवम् पुण्य बन्ध होकर अन्त में अपराजित पद को पावेगा ॥ १२१ ॥

Those persons who will hear this glory of Raja Bharat with rapt attention will destroy the seeds of their sins, will get all the happiness and in the end attain un-conquerable position (liberation). (121)

पद्य—प्रेमदिंदिद नोदिदरे पाडिदरे केळ्द । रामोद वैदुवरवरु ॥
नेमदि सुररागि नाळे श्रीमंदर । स्वामिय काणवरतियोळु ॥ १२२ ॥

अर्थ—इस कथा को जो लोग प्रेमसे पढ़ेंगे तथा सुनेंगे वे आमोदको प्राप्त होंगे और नियमसे देवपद को प्राप्त कर अन्त में विदेह क्षेत्र में जाकर प्रेम से श्रीमन्दरस्वामी का दर्शन करेंगे ॥ १२२ ॥

Those who will read this with attention and recite it with devotion will have the 'darshan' of Simandhara Swami in Videha Kshetra. (122)

पद्य—मैयेल्ल कण्णु मैयेल्ल मनसु निन्न । मैयेल्ल नल्सुख शक्ति ॥
मैयेल्ल प्रभेयाद महिमनन्नेदेयोळि । रय्य चिदम्बरपुरुषा ॥ १२३ ॥

अर्थ—हे आत्मन् ! लोगों को देखने के निमित्त तुम्हें इन जड़ नेत्रों की आवश्कता नहीं है । तुम्हारे संपूर्ण शरीर में नेत्र हैं । पदार्थों के विचार करने के हेतु तुम्हें मन की आवश्यकता नहीं । तुम्हारे शरीर में ज्ञान रूपी मन है । आत्माङ्ग में सर्वत्र विचार शक्ति है, अनंत सुख एवम अनन्त कार्य है। अतः तुम अपने प्रकाश के साथ मेरे हृदय में सदा निवास करते रहो । इस प्रकार यह सार है ॥ १२३ ॥

अर्थ—श्री देशभूषण महाराज भव्य जीवोंको यही उपदेश देते हैं, कि हे भव्य जीव तुम भी इस राजा भरत के वैभव कथा को सुन कर उन्हीं के आत्म शरीर के प्रथक करने के लिये भेद विज्ञान को अभ्यास करो । जल्दी ही इस संसर रूपी समुद्र को पार कर मोक्ष सुख की प्राप्ति होगी ॥

O Soul, for seeing the people you do not need these physical eyes. You have eyes in the entire body. You don't stand in need of mind for the study of substances, for you are knowledge incarnate. The soul is omniscient, omnipotent and ever blissful. Just keep my heart enlightened with thy light. This is the sum and substance of the whole matter.

Knowledge and conation are thy
Attributes O Atman,

Knowledge and conation are thy
Reflection O Atman;
To persons in delusion
O Atman,
The benefactors of Bhavyas
O Atman,
Reside in me forever
O Atman.

॥ इति प्रथम भागस्य अष्टम सर्गः सन्मान संधि संपूर्णम् ॥



नवम् सर्गः

❀ सरस संधिः ❀

पद्य—दुर्वार संसार दुःखं निवारण । सर्व कलाधर शांता ॥
निर्वाण मतिदोरु निजदोरु लोकैका । पूर्व निरंजनसिद्धा ॥ १ ॥

अर्थ—दुस्तर संसार को नष्ट करने वाले, सभी जीवों का दुःख दूर करने वाले सर्व कलाधार, शान्त, लोक में आप ही एक अपूर्व हैं । इस कारण निरञ्जन सिद्ध भगवान् ! सच्चा मार्ग प्राप्त करने के लिये एवम् निर्वाण पद प्राप्त करने के हेतु मुझे सद्बुद्धि दीजिये ॥ १ ॥

पद्य—नानात्मनिदु देह नाने सुज्ञानिय । ज्ञानियी देह वेंदरिदु ॥
ज्ञानाक्षियिंद हंसन नोडुतिद्दना । भूनाथ तन्न देहदोळु ॥ २ ॥

अर्थ—मैं आत्मा हूं । ज्ञान मेरा स्वभाव है, और यही मेरा शरीर है । इस प्रकार चिंतवन करते हुये अपने ज्ञान नेत्र के द्वारा भरत जी परमात्मा का दर्शन कर रहे हैं ॥ २ ॥

पद्य—मोदलोम्मे देह वेरात्म वेरेंदु त । न्नेदे योळु स्मरिसिद नहुदु ॥
अदुमत्ते होयु्तु तन्नात्मन ताकंडु । पदुळ्दोळिद्दना राया ॥ ३ ॥

अर्थ—सबसे पहले वे आत्मा, शरीर से भिन्न हैं । इस प्रकार अपने हृदय में अनुभव किया । तदनन्तर वह विचारानुभव तो स्थगित होगया । अब वे केवल अपने आत्मामें निमग्न होने लगे ॥३॥

पद्य—संकल्पविल्ल विकल्प विल्लोंदर । सोंकिल्ल तन्नने तानु ॥
सोंकि तन्नोळु हुट्टिदानंद रसदोळु । तेंकाडु तिद्दना भोगि ॥ ४ ॥

अर्थ—उनके हृदय में कोई संकल्प, विकल्प नहीं है, और न बाह्य विचार है ! अब तो वे आनन्दरस में निमग्न होरहे हैं । उस समय राजा भरत अपने आभ्यन्तरिक उत्पन्न होने वाले आनन्द रस में सन्तरणकर रहे थे, उस भोगी राजा का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ ॥ ४ ॥

पद्य—होगुतिर्दुदु कर्मरज विळिदिळि दोड । सागुतिर्दुदु होसबेळ्कु ॥
लागिसुतिर्दुवु सुज्ञान सुखगळु । योगद सिरिय नेनेंबे ॥ ५ ॥

अर्थ—उस समय कर्म रूपी रज आत्मा से पृथक् होरहा था, आत्मा का नूतन प्रकाश दिखाई देता था, उस आत्मेश्वर्य का अनुभव आत्मानुभवी ही कर सकते हैं, अन्य कौन कर सकता है ॥ ५ ॥

पद्य—राजव मरेदनु सतियर तोरेदनु । त्याज्य वादुदु मैय नेनहु ॥
राजाधिपति यिद्दन मलात्म योग सा। म्राज्य दोळगे सिद्धरंते ॥ ६ ॥

अर्थ—अब राजा भरत अपने राज को भूल गये हैं और सभी रानियों को विस्मरण कर दिया है। उनको अपने शरीर की भी स्मृति नहीं है। इस प्रकार राजा भरत सिद्ध भगवान् के समान निर्मल आत्म साम्राज्य में निमग्न थे ॥ ६ ॥

पद्य—मिसुकनल्लाडनु गद्‌ुगेयोळ्गोंडु । होसहोन्न देल्वपुत्ताळिया ॥
ओसेदु सिंगरिस कीलिसिदरोयेंदेन । लेसेवुतिद्दनु राजयोगि ॥ ७ ॥

अर्थ—उस समय राजा भरत रंच मात्र भी हिल डुल नहीं रहे थे देखने वालों को यह आश्चर्य मालूम होता था कि, कोई स्वर्ण प्रतिमा लाकर सिंहासन पर कीलित कर दी गई हो ॥ ७ ॥

पद्य—मनेयोळिद्दनु राय गद्‌ुगे योळिद्द । तनुविनोळिह नेंबरेल्ल ॥
मनेयोळिलिल्ल गद्‌ुगेयोळु मैयोळि। ल्लनुपमात्म नोळिद्दनाग ॥ ८ ॥

अर्थ—अगर कोई प्रश्न करता कि, 'सम्राट् कहाँ हैं' तो उत्तर मिलेगा कि 'महल में हैं'। महल में किस स्थान पर हैं? तो उत्तर मिलेगा कि अन्तःपुर के दरबार में हैं, वहाँ भी किस जगह हैं? सिंहासन पर बैठे हैं, इस प्रकार सिंहासन पर आसीन होते हुये भी अपने शरीर के आभ्यन्तर हैं, परन्तु यह सब कथन मिथ्यार्थ प्रकाश है। उस समय भरत जी न तो महल में और न अन्तःपुर में एवम् न सिंहासन पर तथा न देह में थे, किन्तु अपनी आत्मा में ही विराजमान थे ॥ ८ ॥

पद्य—अंबर ताने पुरुषरूप कैकोंडु । तुंबि सुज्ञान कांतिगळा ॥
इंबु गोंडुदो मैयोळ्ने तोरुतिद्दनु चि । दंबरपुरुषनानृपगे ॥ ६ ॥

अर्थ—उस समय भरतेश्वर को ऐसा अनुभव होरहा था कि आकाश स्वयम् पुरुषाकार होकर ज्ञान और प्रकाश रूप से उनके शरीर में आगया है, इस भाँति वे परमात्मा का अनुभव कर रहे हैं ॥९॥

पद्य—ध्यान तत्परनागि होरग मरेदु तन्न । ताने तन्नोळु लीननागि ॥
आ नरपतियिरे धळियार दोळु शंख । ध्यान घूर्णिसितु होत्तरिदु ॥ १० ॥

अर्थ—बाह्य जगत् की सभी बातों को भूलकर राजा भरत अपने आप आत्मा में अत्यधिक लीन होते हुये आत्मानन्द का पूर्ण पान कर रहे हैं इतने में उच्च स्वर से शंखध्वनि होने लगी ॥ १० ॥

पद्य—नरनाथ केळ्दना शंखनिनाद व। गुरुहंसनाथगात्तणवे ॥
परमभाव दोळ्ष्ट विधदर्चनेयमाडि। स्मरिसि वीळ्कोट्ट कण्देरदा ॥ ११ ॥

अर्थ—उस शंखध्वनि का नाद उच्चस्वर से हुआ था। अतएव राजा भरत के कानों में भी पहुँचगया। राजा भरत ने उस समय वहुत भक्ति के साथ मन में अष्ट द्रव्यों से भाव पूजा की और अपने गुरू, हंस नाथ को नमस्कार करके नेत्रोन्मीलन किया अर्थात् नेत्र खोल दिये ॥ ११ ॥

O Lord Naranjan Sidh
Whose wanderings have come to an end mundane
Whose prayers bring relief from misery and pain
Who possesses all virtues bliss peaceful
Is unparalled, unequalled and truthful.
Pray reflect in my heart thy light pure
To dispel darkness and make salvation sure
Body is separate and so is the soul
Bharat concentrated on this his attention whole.
He advanced a step further and forgot the tenement
Visualized the soul and on it fixed his full intent
His heart was pure and so was his mind
No external thoughts did his mind bind.
He had traversed into the realm pure
To enjoy the supreme bliss to the core
I am the soul and knowledge is my attribute
Knowledge is my form and nothing else to impute.
He opened his eyes of knowledge saw the vision
Of the lord! hallowed God! inspiring a new mission
This force of self concentration
Loosened the hold of Karmic matter.
On the soul. Its particles began to shed
Leaving the soul purer, higher and better
He forgot his kingdom and his wives chaste
He forgot his person, it was all a waste.

He sat in a posture motionless
Like a statue of gold soul less
If any one asked where was the king
The reply was see his palace wing.
The wing was vacant see ladies parlour
Came the reply with great ardour
The parlour was vacant, forlorn and alone
Then go to see him on the throne.
The throne was empty too then where
He had flown up the realms none knew where
Bharat was experiencing a new bliss
As if light and knowledge entered his.
Body in the form of a new vision.
Casting the whole world into oblivion.
A shrill sound from a conch shell
Disturbed his close attention well.
He bowed in his mind to the Lord
And opened his eyes with the name of God. (1-11)

पद्य—राजयोगींद्र राजित हंस तत्व नी । रेज भास्कर भवसथना ॥
नैजनिष्टित जयवेंदु कट्टिगे हेंग । ल्रोजेयिंदुग्गडिसिदरु ॥ १२ ॥

अर्थ—इतने में ही योगीन्द्र राज ! राजित हंस तत्व, नीरज वासकर, हे भव मथन ! इष्ट फल को प्राप्त होने वाले तुम्हारी जय हो, इस प्रकार से दण्डधारी दासियाँ महाराज की स्तुति करने लगीं ॥ १२ ॥

When the Raja opened his eyes, the lady volunteers sang praises of the king calling him by such epithets as High Saint, the knower of the soul substance, the destroyer of transmigration, "Victory may touch your feet" shouted the volunteers. (12)

पद्य—मुनि सुक्ति वेल्येयादुदु स्वामियेंदु मे । ल्लने सेवकियरु विन्नविसे ॥
जिन सिद्ध शरणु निरंजन सिद्ध थें । देनुतेदना सार्व भौमा ॥ १३ ॥

अर्थ—और करबद्ध प्रार्थना करने लगीं कि स्वामिन्! मुनि चर्या का समय होगयाहै तत्पश्चात् सार्व भौम राजा भरत, जिन सिद्ध शरण, निरञ्जन सिद्ध भगवान, इस प्रकार मुख से उच्चारण करते हुये राजा भरत वहाँ से उठ गये ॥ १३ ॥

They respectfully submitted "Sire. It is the time for the saints to come for taking food"

Raja Bharat said, "May Lord Niranjan Siddh protect me" and he got up. (13)

पद्य—होन्न वेट्टय नेरि तपसु माड्व मुनि । रन्न भूतळ किळिवंते ॥
होन्नुप्परिगेयिंदिळिदिर्दनु । त्पन्नात्मरसिक नायकनु ॥ १४ ॥

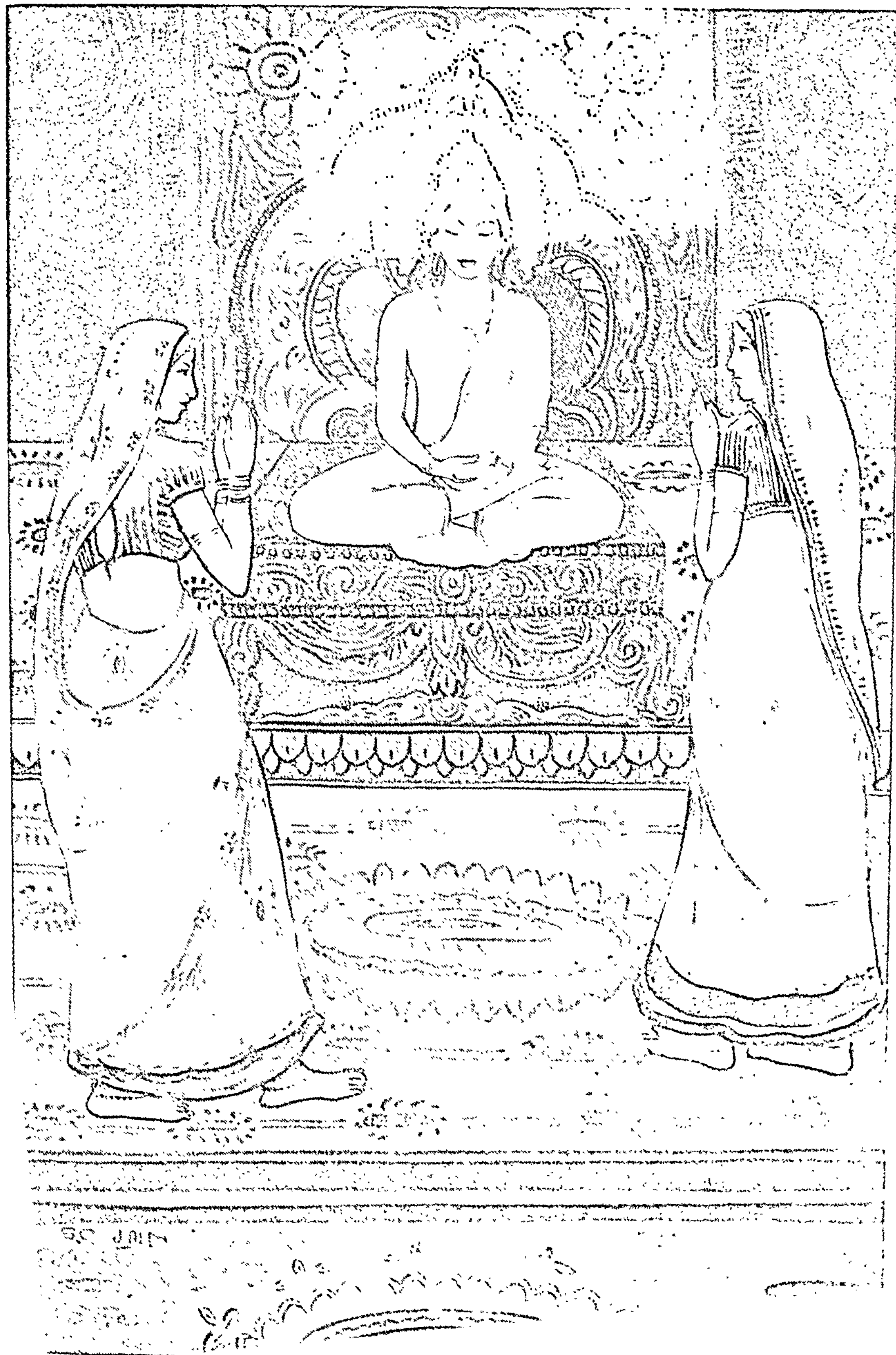
अर्थ—जब राजा भरत महल से नीचे उतरने लगे तो यह प्रतीत होता था कि, कोई तपस्वी मुनि स्वर्ण पर्वत से नीचे उतर रहे हैं। इस प्रकार से आत्मरसी नामक राजा भरत स्वर्ण महल से उतर कर नीचे आये ॥ १४ ॥

He got down from his palace. When he was descending from the stair case it appeared as if some poius ascetic was coming down from a golden mount. (14)

पद्य—पादावधान वेच्चरिके यारैके यें । दोदे कट्टिगेय कांतेयरु ॥
मेदिनीपति यिळिदनु स्वर्गदिंदिंद्र । मेदिनिगिळिदुवहंते ॥ १५ ॥
उप्परिगेयि निळिदेंदिसंदद क्रम । तप्पदे नडेदु योगिगळा ॥
चप्प वट्टेय कादु कंडनागळे मन्न । ओप्पुवध्यात्म योगिगळा ॥ १६ ॥
मुनिगळ निलसि तन्नर मनेगेयिदसि । तनगे शाडिद परिकरद ॥
अनुपमान्न वनित्तु तनिपि बीळ्कोट्टर । मनेयोळिद्दनु रायनिरलु ॥ १७ ॥

अर्थ—उस समय जागृत होकर आओ, पाँव धीरे २ रक्खो, सम्भलकर आओ इत्यादि वचन दण्डधारी दासियाँ बोल रहीं थीं। महाराज भरत ने ऊपर से नीचे उतरते ही सबसे पहले मुनियों को प्रतिग्रहण किया। पश्चात् अपने घर में लाकर उच्चासन पर बैठाया और नवधा भक्ति तथा अष्ट गुण सहित भाव द्वारा उन मुनिराज को आहार दान देकर आदर पूर्वक विदा किया ॥ १५-१६-१७ ॥

The lady voulunteers were directing the arrangement on all sides.



[illegible] मुनि वर्षों का समय होगया है, [illegible]

(यह चित्र [illegible] समवशरण [illegible] के द्वारा हुआ।)

The first act of the Raja after coming from his palace was to offer welcome to the saints, then to take them inside his dining place, to offer high seat to them, to offer prayer to them there after to offer food with the purity of mind, body and speech with all devotion, satisfying all the conditions of the donor and in the end to give them a respectful send off. (15-17)

पद्य—चंदळु कुसुमाजि थोड हुट्टिदवळु मक । रंदाजियोंबोर्व नीरे ॥
चंदरे वरुत्रके प्रायके थिहळिवळें देंब । पाटिय कन्ने ॥ १८ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् राजा भरत अपने महल में बैठे थे इतने में रानी कुसुमा जी की छोटी बहन मकरन्दा वहां आई, जो कि बहुत सुन्दर तथा कुछ छोटी थीं ॥ १८ ॥

After the respectful farewell he sat cosily in his palace. At that time his sister-in-law, Kusumaji's sister Makrandaji came there. She was yet to attain full bloom but was exceedingly beautiful. (18)

पद्य—वेळवे यहुदु जाणयहुदु शृंगार मं । गळेशागि सखियरु गूडि ॥
ललितांगि बंदु कंडळु तूगुमंच दो । ळोले दाडुतिर्द भावननु ॥ १९ ॥
गेळदिय कैय हॊंदट्टय तानोयुदु । मलयज वीटिकाक्षतेया ॥
नळितोळ नीडि भावगे कोट्टळरसना । गळे कैकोंड नर्तियोळु ॥ २० ॥
अनुकूल वादुदारोगणेगिन्नेम्म । मनेगेळु भावाजियेंदु ॥
तनुमध्ये नुडिदळदके रायनगुत ना । दुनियोळु नुडिदर्नितेंदु ॥ २१ ॥

अर्थ—फिर भी चतुर है एवम् सयानी है. सुन्दर वेष शृङ्गार से युक्त अपनी दासियों के साथ आती हुई उसने स्वर्ण झूले पर बैठे हुये राजा भरत को देखलिया। पश्चात् अपनी सखियों से सुगन्ध, पुष्पाक्षतादि अपने हाथ में लेकर राजा के हाथ में देते हुये कहने लगी कि, बहनोई जी ! "भोजन की सब तैयारी होगई है। हमारे महल में पधारिये" उस समय राजा भरत मुस्करा कर कहने लगे कि— ॥ १९-२०-२१ ॥

She was very clever for her age. Gorgeously dressed and well adorned with ornaments she was a treat for the eyes to see.

She saw Raja Bharat sitting on a golden hammock. She approached him with her companions and presented her gifts of scents and flower in his hands.

She then said "Brother-in-law the meal is ready. Kindly come and grace my palace. (19-21)

पद्य—इंदानुनिन्नमनेगे बहुदुचितवे । ओंदरेवरुपद मेले ॥
बंदु नीनेन्न करेदरानु बहेनु हो । गेंदनु नृप दुनिया ॥ २२ ॥

अर्थ—मकरंदा जी ! आप के घर में मेरा आना उचित है ? 'नहीं नहीं' अभी उचित नहीं है यदि एक साल के अनन्तर आकर बुलाओगी तो मैं आऊँगा अतएव इस समय तुम्हारे घर नही आऊँगा, तुम जाओ ॥ २२ ॥

"Virgin" said the king, "Is it proper for me to go to your palace. I think not. It is yet too early. I may go if you come to call me after a year. At present I regret my inability to comply with your wishes. You may go". (22)

पद्य—अक्काजियरमनेगेळेंदे नीनिंतु । ठक्किन मातनाडिदिये ॥
ठक्कु कातिये निन्न मनेगेंदेयेसे नि । न्नक्कन हेसर हेळिदेय ॥ २३ ॥

अर्थ—जीजा जी ! मैंने आपको अपनी बहन के घर बुलाया अपने घर में नहीं, आप झूठी हंसी कर रहे हैं । महाराज ने कहा पहले तुमने अपने घर के लिये कहा, वाह, अब बहिन के घर का नाम ले रहीहो, क्या वह अतथ्य नहीं है ॥ २३ ॥

पद्य—अक्कन हेसर हेळुवराके पडेदरे । मक्कळु पेळ्वुवु मुंदे ॥
दिक्किनोळेनगेनु संबंध साकेळु । सिक्किन मात नाडिदरु ॥ २४ ॥

अर्थ—पुनः राजा भरत ने विनोद पूर्वक कहा कि, 'बहिन का नाम क्यों लेती हो । तुम्हारी संतान होगी वह तुम्हारा नाम ले लेगी । मकरन्दा जी बोली, हमसे तुम्हारा सम्बन्ध ही क्या है । क्यों नाम लें ॥ २४ ॥

पद्य—साकेळु सलहेळु नीनेंदु तानेन्न । नाकरुपणमाडुतहळे ॥
ईके तानेनु कातरेयोयेंदनु राय । ना कांतेतळुन्नागिन गळु ॥ २५ ॥
कातरगोतरवनुनीवुनिम्मंनु । जाताक्षियरुवल्लिरैसे ॥
आतळिळवळिळय नावेन वल्लेनु । मातु साकिन्नेळु भावा ॥ २६ ॥

अर्थ—अनेक प्रकार के प्रश्नोत्तर होचुके, अब बस करो । नाना प्रकार की विनोद वार्ता से शर्मिन्दा हुई मकरन्दा जी, शिर झुकाकर कहने लगीं कि, यह सब तुम जानों और तुम्हारी रानियाँ

जानें । मैं किस पेड़ की पत्ती हूँ । बस कीजिये, इस विनोद को रहने दीजिये, बहुत समय हो चुका है भोजन के लिये चालिये, बहिन कुसुमा जी आपकी प्रतीक्षा कर रहीं हैं ।।२५-२६ ॥

"Brother-in-law" explained Makrandaji, "I have come to invite you to my sister palace and not mine. Please don't cut jokes with me."But reported the king, "you first said it was your palace and now you say it is your sister's. Why all this misrepresentation. When any issue is born,it will be called yours and not your sisters. Why bring your sister in at all.

"Pray don't say all this brother-in-law protested the girl" "I have no connection with you whatsoever".

There were parries and counter-parries in this playful wordy warfare till Makrandaji got annoyed anb blushed red.

She said, "I do not understand all this nonsense. It is for your queens to enjoy such jokes. It is now getting very late, sister Kusumaji is impatiently waiting for you. Please do not delay any further. *(23-26)*

पद्य—एनलतिसरसगळागदेंबुद नेने । दनित रोळेद्ना राया ॥
सिनुगुव हावुगेगळ मेद्दि नडेदनं । गनेय मनेगे नलमेयिंद ॥ २७ ॥

अर्थ—अच्छी बात है, चलो । ऐसा कह कर सम्राट् कुसुमा जी के घर की ओर चलदिये । पाँव में चमकते हुये सुन्दर खड़ाऊँ, मन्द २ जाने की गति, अतीव शोभा को प्राप्त होते हुये भोजन करने के लिये जा रहे हैं ॥ २७ ॥

पद्य—कुसुम विद्देडेगे मधुव्रत होहंते । कुसुमाजियर मनेगागि ॥
कुसुमायुध जितलावण्य नडेदनु । ल्लसदिंद नादुनियोडने ॥ २८ ॥

अर्थ—उस समय देखने वालों को ऐसा प्रतीत होता था कि कुसुमरस लेने के लिये भ्रमर जा रहा हो, ऐसे सम्राट् भरत भी कुसुमायुध के समान मकरन्दा जी के साथ चल दिये ॥ २८ ॥

"Very well." said Bharat *accompanying her to Kusumaji's palace.* He was putting on golden sandals in his feet, his gait was impressive and it looked as an humble bee was flying to enjoy the juice of sweet flower *(*Kusuma*). (27-28)*

पद्य—देवनेयत रुतिप्पनेंदु हरिदु होगि । सेविकियरु हेळ्लोडने ॥
भावेवंदळ कुसुमाजि तानिदिरागि । भाविकियर वळसि नोळ ॥ २९ ॥

अर्थ—दूर से, सामने आते हुये सम्राट् भरत को देखकर, दासियों ने सहसा कुसुमा जी को सूचना दी तत्काल ही कुसुमा जी अपनी दासियों सहित पूज्य पतिदेव के स्वागतार्थ आगे बढ़ीं ॥ २९ ॥

The moment the maid servants of Kusumaji saw the king they informed their mistress. The queen immediately came out with her maid servants to welcome their honoured guest, her beloved husband. *(29)*

पद्य—तनुगंध केरगि तुँबिगळु भेंकरिसलो । य्यनेहंसेगळु हज्जेविडिदु ॥
अनुगति बडेयलु दंदळु जगद मो । हन शक्ति नडे दुबहंते ॥ ३० ॥

अर्थ—कमल मकरंद से आकर्षित होकर जैसे गुंजार करते हुये बहुत भ्रमर उसके पास आजाते हैं उसी प्रकार अपनी अनेक दासियों सहित कुसुमा जी भरत जी के चरण कमल की सुगंधि से आकर्षित हो स्वागतार्थ आरही हैं, जगत को वश करने वाले मोह राजा के मोहनी देवी ही हो ॥ ३० ॥

The juice of lotus flower attracts swarms of humble bees. In the same manner the fragrence of the lotus like feet of Raja Bharat has attracted the queen and her horde of attendants. They are coming forward to accord reception to Raja Bharat. While he was the conqueror of the world, she was the capturer of every one's heart. *(30)*

पद्य—अळवट्ट नूतन शृंगार करतल । दोळ् रत्नदारति सहित ॥
ललने चंदरसगार तियेत्तिदळु तळ । तळिसुव मुखकांतियेसेये ॥ ३१ ॥

अर्थ—अनेक प्रकार के नूतन शृंगार और हाथ में चमकती हुई सुन्दर आरती सहित मुख कमल को विकसित करती हुई उस दिव्य ललना ने बहुत गौरव तथा आनन्द के साथ महाराज की आरती उतारी ॥ ३१ ॥

पद्य—दुगुल निवाळियनिट्टग्रिगेरगलें । दोगुमिगे तलेवागुवाग ॥
नगुत हा हा येंदु नडुव मंडेयनेत्ति । तेगेदु कैविडिदना राया ॥ ३२ ॥

अर्थ—फिर उसी समय एक रेशमी वस्त्र से महाराज भरत को निछावर किया और विनय के साथ नमस्कार करने लगी । तब राजा ने हा, हा, शब्द से हंसते हुये कहा, प्रिये कुसुमा इतनी विशेष भक्ति करने की क्या आवश्यकता है ? उठो ॥ ३२ ॥

The beautiful queen stepped forward and offered arti with great devotion and grace. As a sacrifice for the sake of her husband she gave away a silk cloth and bowed at the feet of the king with great humility.

"Get up dear Kusumaji said the Raja laughing, "Where is the necessity of this special devotion darling." *(31-32)*

पद्य—मुट्टि मुँदेळेंटु मरैदे तन्न कै। मुट्टि तोळेदळु पादगळ ॥
उट्ट दुकूलद सेरगिंद पतिगंग । दट्टविक्किदळु भक्तियोळु ॥ ३३ ॥

अर्थ—सात, आठ हाथ आगे बढ़ने पर फिर उसने भरत जी के चरण धोये और बहुत भक्ति के साथ अपने वस्त्रों से उन्हें प्रक्षालित किया, इसके अनन्तर महाराज ने कुसुमा जी के महल में प्रवेश किया ॥ ३३ ॥

After Bharat had proceeded a few yards more, Kusumaji washed his feet with respect and wiped them with her own apparel. The Raja then entered her palace. *(33)*

पद्य—आवासदोळ होक्कनारायनक्कक्का । भाव बंदनु नम्म मनेगे ॥
देवि गद्दु गेयिक्कु मन्निसेंदोरेदुदं । दावेळेयोळु राज कीरा ॥ ३४ ॥

अर्थ—भीतर पहुँचते ही राजा भरत ने पिंजड़े में टंगे हुये एक तोते को देखा। उसी समय चक्रवर्ती को देखकर तोता कहने लगा कि, बहन! हमारे घर में जीजा जी आये हैं। उनको विराजने के लिये सिंहासन तो उठा लाओ और इनका सत्कार करो ॥ ३४ ॥

He saw there a parrot in a cage, who on the sight of the Raja said "Well dear sister, Rajaji has come in our own house. Please place a chair for him and pay proper attention to him." *(34)*

पद्य—इवने अमृत वाचकनु कुसुमाजियें । दवनीश नुडिवुताकेयोळु ॥
भवनदोळिट्ट गद्दुगेयल्लि कुळितनु। रवि पूर्व गिरियेरुवंते ॥ ३५ ॥

अर्थ—तब राजा भरत ने आनन्दपूर्वक जाकर पूँछा कि क्या कुसुमा जी का यही अमृतवाचक तोता है? इस प्रकार कहते हुये अपने सिंहासन पर विराजमान हुये, उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि, जैसे उदयाचल पर्वत पर सूर्य चढ़ आया हो॥ ३५ ॥

Raja Bharat looking like rising sun enquired of Kusumaji whether this was her parrot Amrit Vachak and sat on the seat offered to him. *(35)*

पद्य—बंदेय भाव बंदेय सुप्रभाव अ। येतंदेय सुगुण स्वभावा ॥
वंदद्दु लेसु महानुभावायेंदु । दंदु मुदिन राज कीरा ॥ ३६ ॥

अर्थ—तोता कहने लगा कि पधारिये ! आप बड़े गुणवान् हैं ! आज यहाँ आये सो बहुत अच्छा हुआ, आप जैसे महानुभाव हैं, वैसे ही अपार कीर्ति भी है, इस प्रकार सुमधुर में सने हुये वचन तोता बोलने लगा॥ ३६ ॥

The parrot said in a sweet tone, "You are welcome, you are very able. It is a pleasure to see you here. You are great both in qualities and glory." *(36)*

पद्य—क्षेमवे भावाजि मत्तुनिमगे परि । क्षामवे हेळु भावाजि ॥
ईमनेयत्तलेकडिगडि गेय्तरे । भूमीशयेंदुदा पक्षि ॥ ३७ ॥

अर्थ—कहिये जीजा जी ! (बहनोई जी) अच्छे हैं, कुशल तो है, आप बार २ क्यों नहीं आते हैं ? इस प्रकार से तोते को राजा भरत के साथ वार्तालाप होरही है ॥ ३७ ॥

पद्य—धरिय नाळ्दिदनेंब गर्व वो नम्मक्क । नरमनेगडि गडिगेके ॥
बरलोल्ले बंदिन्नु पोपेय निन्न का । लगुरुलनिक्कुवेनेंदुदाग ॥ ३८ ॥

अर्थ—क्या ! आपको राजा होने का स्वाभिमान है ? क्या ! पट्खण्डाधिपति होने का गर्व है ? आप हमारी बहिन के महल में बार बार क्यों नहीं आते ? अस्तु, आज तो मेरे जाल में आगये । अब देखता हूं कि आप किस प्रकार निकल भागते हैं । यदि आप जाना चाहेंगे तो हम अपनी बहिन के अंगुली क नख रूपी जाल में आपको बन्द कर देंगे। ऐसा सुनकर भरतेश्वर जी हंसने लगे ॥ ३८ ॥

How do you do, hope you are in the best of health, why do you ot come to our house every day. Perhaps you are proud of your position as a chakravarti and this haughtness of yours is apparently responsible for your stray visits here. But today you have come in my meshes. Let me see how you get out of them. I shall entangle you in the net of my sisters 'love' Raja laughed on hearing this. *(37-38)*

पद्य—नक्कनदके राय नगेयलते निनगे न । म्मक्कनसुब सूरेगोंड ॥
पक्केगेय्ददे दूरदोळगिद्दे नीनिंदु । सिक्किददे लेसादुदे मगे ॥ ३९ ॥

अर्थ—तब तोता कहने लगा कि जीजा जी आपको हंसी आरही है ! आप अभी तक दूर थे, अब आप समीप: आगए हैं। अब देखिये कि मेरी वहिन आपको हंसी के जाल में किस प्रकार बाँधती है ॥ ३९ ॥

"Don't laugh please, you will just find how my sister binds you in her ties. *(39)*

पद्य—सुळिगुरुळेंबुरुलुंडु नम्मक्कन । नळितोळ पाशगळुंडु ॥
होळे दिन्नु होह भावन काएवेनेंदर। गिळि नुडिदुदु सरसदोळु ॥ ४० ॥

अर्थ—मेरी वहिन के दोनों हाथ फाँस के समान हैं, अब मैं देखता हूं कि उस हस्त फाँस से आप कैसे बचकर जायेंगे। इस प्रकार अमृतवाचक (तोता) हंसी करते हुये कहता है ॥ ४० ॥

Her arms are likelocks. You will know soon how you are interlocked in them. It will be well nigh impossible for you to get away. *(40)*

पद्य—सोंकि नम्मक्कनोत्तिनोळिद्दरिरु मीरि । भोंकनेपोपनेंबाग ॥
पंकजाक्षिय कडेगएण कांतिय वेळ्ळि । संकलेगळनिक्किसुवेनु ॥ ४१ ॥

अर्थ—आपको प्रेम पूर्वक वहिन कुसुमा के साथ रहना तो उचित है, यदि निकल भागने का प्रयत्न करेंगे तो वहन के द्वारा नेत्र कटाक्ष रूपी चाँदी की साँकल में बंधवा दूंगा ॥ ४१ ॥

If you agree to live with my sister, so and well good, otherwise I shall have to use the silvery chain of her piercing glances. *(41)*

पद्य—पंजर दोळागिद्दु निनगिण्टे येनदिरु । मांजि नीनगलवाग निन्न ॥
होंजेळेसैयळ दंतकांतिय होन्न । पंजरदोळु कूडिसुवेनु ॥ ४२ ॥

अर्थ—मैं तो पिंजड़े में बन्द हूं। यदि आप निकल कर जायंगे तो वहिन के दन्तपंक्ति रूपी प्रकाश वाले सोने के पिंजड़े में बन्द करवा दूंगा ? समझ लिया ॥ ४२ ॥

I am enclosed in the cage, but if you would try to escape, I shall have to shut you too in the golden cage of her sparkling teeth. *(42)*

पद्य—ईष्टेके कोप निम्मक्कगाणेसगिद । कष्टवे नमृत वाचांका ॥
शिष्टरैयेतंदेवकट नीविब्बरु । दुष्ट रल्लवे येंदनोडने ॥ ४३ ॥

अर्थ—राजा भरत कहने लगे, कि हे अमृतवाचक ! तुमको एवम् तुम्हारी वहिन को कौनसा कष्ट दिया है, जो तुम इतने क्रोध के साथ बोल रहे हो तुम लोगों के शिष्ट व्वहार से मैं यहां आया हूँ, परन्तु तुम दोनों दुष्ट मालूम होते हो ॥ ४३ ॥

Raja Bharat said, "After all what harm have I done to you or your sister to deserve your displeasure. I expected a good treatment and polite behaviour, but I find just the reverse of it. Both of you are so vicious. *(43)*

पद्य—नोवायृते भावाजि नम्मक्कनधर सं । जोवनामृतव नीनुँडु ॥
जीव सिद्धिय पडेदिरु नम्म मनेयोळि । न्नीवाक्य लेसले नीनगे ॥ ४४ ॥

अर्थ—तोता बोला, जीजा जी ! आपको मेरी वात से अवश्य दुःख हुआ होगा । अस्तु, तो कोई वात नहीं, रहने दीजिये । अब आप तो हमारी वहिन के महल में अधरामृत को पीते हुये जीव सिद्ध को प्राप्त करो ॥ ४४ ॥

पद्य—ननगे नेरिल हएणु वनदोळुँटक्क ना । ननदोळु नेरिल हएणु ॥
निनगुँडु सुखिसि कोंडिरु नानु नीनिंतु । विनद दोळ्रिति हेविल्लि ॥ ४५ ॥

अर्थ—अब तो, आपको यह वाक्य अच्छा लगा होगा, मुझे जंगल में जामुन का फल मिलता है और आपके लिये वहिन का मुख ही जामुन का फल है । मैं जंगल में जाकर खाता हूं । आप यहीं पर खाकर (मुख चुम्बन कर) सुखी रहिये । ॥ ४५ ॥

पद्य—नडुताने सिंगळदेश कुँतलदेश । सुडिकर्ण कर्णाट देश ॥
कडुगंपु काश्मीर देशवक्कन मैय । पोडविय नळेत्त पोपे ॥ ४६ ॥

अर्थ—वहिन का मध्य भाग सिंहल देश है, देश वन्धन, कुंतल देश है, कर्ण कर्नाटक देश है, दोनों स्तन काश्मीर देश हैं, अतः वहिन के शरीर रूपी राज्य का पालन (भोग-विलाश) करो । यहाँ से क्यों जाते हो ? ॥ ४६ ॥

पद्य—असियळ योवनवनवुँडु लावण्य । रसद तण्णोळेरुँडु भावा ॥
ओसेदु वनक्रीडे वारि क्रीडेयनाडि । विसिल नारिसिको कातरद ॥ ४७ ॥

अर्थ—और भी सुनो । उसका यौवन नववन के समान है और सौन्दर्य, जल पुरित नहीं एवं सरोवर के समान है, इसमें वनक्रीडा करके अपनी काम रूपी तृषा को शान्त करिये ॥ ४७ ॥

"Brother-in-law" uttered the parrot, "I am sorry your feelings have been hurt. May you now enjoy the sweet bliss of my sister's lips. I presume this expression of mine must have given you much pleasure. I like the Jamun fruit and you love my sister's face. I go to the forest to eat it, and you can enjoy the sweetness of her lips here."

The middle part of my sister's body is Singhal province, her braid Kuntal province, ears,Karnataka,the bosms Kashmere. Enjoy the kingdom of this country. Why go away at all. And hear furthermore, her blooming youth ts like a new forest, her beauty like an overflowing river or a placid lake. Enjoy yourself freely in them and satisfy your appetite of pleasure. *(44-47)*

पद्य—ई नुडिगळु निनगुचित गळहुदिन्नु । मानिनियास्य दोळोंदु ॥
जेनेय्य कोडनुँड निनगदेंतहुददु । जैन नल्लवे भावा नीनु ॥ ४८ ॥

अर्थ—जीजा जी ! अब भली भाँति वन क्रीडा और जलक्रीडा से अपने सन्ताप को शान्त कीजिये, क्यों यह तो वचन अब अच्छे लगते होंगे, परन्तु एक बात और भी है वह तो सुनिये। मेरी बहिन के मुख में एक मधु का घड़ा है वह अत्यन्त मीठा है। परन्तु जीजा जी ! आप कैसे स्वाद ले सकते हैं। आप तो जैन हैं न ॥ ४८ ॥

"Brother-in-law," I think these words of mine must have given immense joy to your heart, but there is one more thing. There is a pot of full of honey in the mouth of my sister. How will you taste that please, you are a Jain you know. *(48)*

पद्य—एने नक्क नरसनी नुडिगळ् गिळियवो । चनेयल्ल सतियोर्व ळिदके ॥
चिनदके कलासिद ळावळेंदे् गिसि ना । दुनिकलिसिदळेंदे् तिळिदा ॥ ४९ ॥

पद्य—ई जूड् नुडिसरस गळिवु मकरं । दाजिय तंत्रवें दरिदु ॥
आ जाणमेगरस मेच्चिदनद नुसुरदे । माजि तन्नोळगिंतु नेनेदा ॥ ५० ॥

अर्थ—भरत जी, उसकी बात सुनकर हंसे; और समझ गये कि यह तोते की चतुराई नहीं है, बल्कि किसी ने इसको सिखाया है। सिखाने वाला कौन है ? कुसुमा की बहिन, मकरन्दा जी का ही यह कार्य है, उसी ने यह तंत्र रचा है, ऐसा विचार कर वे उस (मकरन्दा जी) पर प्रसन्न हुये ॥ ४९-५० ॥

Bharat lauged on hearing this and immediately understood that this could not be the cleverness of the parrot. Some one else is resposible for this. "Who could this person be" said he, "this must be the doing of Kusumaji's sister Makrandaji and she has arranged all this plot". *(49-50)*

पद्य—ना दुनियनु तानु तक्किसिकोंवत्ति । यादुदु तन्नोत्तिगवळु ॥
वेदिसि वारळदके कंडनोंदु तं । त्रोदयवनु मनदोळगे ॥ ५१ ॥

अर्थ—मकरन्दा को, अपना प्रेमालिंगन देकर अपने संतोष को व्यक्त करूँ यह इच्छा भरतेश जी को उत्पन्न हुई, परन्तु वह समीप में किस प्रकार आवें । उसका उपाय सोचकर राजा कहने लगे कि हे देवि ! तोते के वचन चातुर्य से मैं प्रसन्न होगया हूं । भला उसे मेरे पास तो ले आइये ॥ ५१ ॥

He was much pleased with Makrandaji for her cleverness and a strong feeling devloped in him for expressing his pleasure on this work by giving Makrandaji an embrace and kiss. But the problem was she would not come near him. He thought out contrivance and said "Devi, I am pleased with this parrot, pray bring it near me". *(51)*

पद्य—चंददि नुडिवुतिद्दु गिळियनु सक । रंदाजी कोंडु बारेंदा ॥
तंदु गिळिय कोडुवाग नादुनिय ना । नंददोळ मर्दप्पिकोंडा ॥ ५२ ॥

अर्थ— यह सुनकर मकरन्दा जी तोते को लेकर भरतेश जी के पास आगईं । जिस समय राजा के हाथ में वह तोते को देरही थीं, उसी समय भरत जी ने उन्हें सहसा पकड़ लिया और आलिंगन किया ॥ ५२ ॥

Makrandaji fell into the trap and brought the parrot near the king. When she was just handing over the bird to him be suddenly caught hold of her hugged her to his bossom and gave her a kiss. *(52)*

पद्य—अत्तित्त मैय नोलेदळाके मिसुकद । तेत्ति तानमर्दप्पि कोंडा ॥
मुत्त कोट्टनु कोरळिगे कंठमालेय । मुत्ति मेच्चिदेनेंदुबिट्टा ॥ ५३ ॥

अर्थ—तब मकरन्दा जी स्त्रियोचित लज्जा के कारण मुँह छिपाकर इधर उधर भागने का प्रयत्न करने लगीं । परन्तु भरत जी ने उन्हें शक्ति पूर्वक पकड़ लिया था । फिर उनका एक चुम्बन लेकर के गले में रत्नहार डाल दिया । बस ! मैं प्रसन्न होगया । यह कहकर उन्हें छोड़ दिया ॥ ५३ ॥

This non-plussed the maiden completely. Out of shyness usual with the fair sex she hid her face and struggled to get out of the clutches but all in vain. Raja was too strong for her. He kissed her, put a necklace of precious stones round her neck and said" Devi I have expressed my appreciation of your work". Thus saying she let her go. (53)

पद्य—देवरवळिगेन कंडु मेच्चिदिरेंदु । भावकि कुसुमाजि नगुत ॥
भाविसि केळ्ळु निम्म तंत्रवनिष्टु । नाडवल्लेनुकाणेयेंद ॥ ५४ ॥

अर्थ—तब रानी कुसुमा जी पूँछने लगीं कि स्वामिन् ? आप इतने शीघ्र वहन पर कैसे प्रसन्न होगये। तब राजा बोले, कुसुमा जी ! बस रहने दो। तुम लोगों के सभी तन्त्र मैं जानता हूं। क्या तुम नहीं जानती हो ? ॥ ५४ ॥

पद्य—होसनुडियन्नवे गिळिगीकेयिंदु ता । नोसे दोदिसिदळ्लतेयिवनु ॥
हसनायतु जाणमेयदके मनमेच्चि त । क्किसिकोंडु बिट्टे नानेंद ॥ ५५ ॥

अर्थ—आज इस तोते ने नई वात कही है, उसमें मकरन्दा जी का हाथ है क्या उसने उसे नहीं सिखाया है ? बताओ तो सही ! अतः मैं उसकी बुद्धिमत्ता से प्रसन्न होकर, उसका आलिंगन कर लिया है, और कोई वात नहीं है ॥ ५५ ॥

पद्य—आदुदे तंगे नानागळे वेडवें । दोदिदे नीनोप्पदादे ॥
होद गाळिय हज्जे गाणबरोडनेंतु । वाद माडुवेयेंदळाग ॥ ५६ ॥

अर्थ—तब रानी कुसुमा जी अपनी वहन मकरन्दा जी से कहने लगीं कि वहन ! देख लिया, मैंने उसी समय तुमसे कहा था कि यह काम तुम मत करो। हमारे पतिदेव वायु की चाल को भी पहिचानने वाले हैं। तुम उनके सामने अपने चातुर्य को मत दिखाओ। यह तुमसे कह दिया था। फिर तुम न समझ सकी। इस कारण तुम अधिक वादाविवाद मत करो ॥ ५६ ॥

पद्य—नानाग माडदिदिल्लिगैतरलागि । या नम्म वार्तेय केळुदु ॥
तानु गिळिय होस नुडिवेळुतिद्ळि । देन हेळुवे तंगियिंदे ॥ ५७ ॥

अर्थ—पतिदेव के आने का समाचार सुनकर एवं मुझे घर के कार्य में संलग्न देख तुम बैठकर तोते को सिखाने लगीं थीं। मैंने पूछा था कि वहन ! क्या कर रही हो। और कहा था कि ऐसा मत करो ॥ ५७ ॥

His queen Kusumaji enquired "How is it that you got pleased with Makrandaji so soon". Raja said, "Darling do not make a fool of me. You too know the reason. You have arranged all this plot and now you plead innocence".

Whatever new things have been uttered by this parrot were taught by Makrandaji. Am I not correct ? I am pleased at her cleverness and have given her a kiss in token of that appreciation. This is all.

Kusuma turned towards his sister Makrandji and said, "Sister now you see what your indiscretion has resulted in. I told you not to do this work as husband is too intelligent not to understand such things. You need not show your cleverness to him. But yon would not stop. It is better now you keep quiet. The moment you heard the news of my husband's arrival and saw me getting ready for his visit you began to tutor the parrot inspite of my warning not to do so. *(54-57)*

पद्य—अक्क भावाजियिंदेम्म मनेगे बंदु । होक्काग गिळियिंद नानु ॥
मिक्कु सरस वाडिसुवेनीग जाणून्डि । लेक्क दोरुवेनेंदळदके ॥ ५८ ॥

अर्थ—तुमने उत्तर दिया कि वहन ! जीजा जी अपने ही घर भोजानार्थ आने वाले हैं जब आकर इस महल में प्रवेश करेंगे, तब इस तोते से सरस बात कराऊँगी । इस हेतु मैंने कुछ बात सिखाई थी । अतः उन्होंने मुझे बुलाकर एकाएक पकड़ करके आलिंगन कर, छोड़ दिया और रत्नहार पुरस्कार में दिया ॥ ५८ ॥

पद्य—जयिस लरिदु तंगि निन्न भावनु बट्ट । बयलोळु रूप बरेवनु ॥
बयलिगे प्रयास गोळ्वेडवेंदेने । नय मात मीरिदळाग ॥ ५९ ॥

अर्थ—कुसुमा जी ने उत्तर दिया कि बहन ! तुम पतिदेव के सामने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रकाश मत करो । वे तो कोरे आकाश में भी रूप लिखने तक का सामर्थ्य रखते हैं । अतः इस कार्य में व्यर्थ प्रयास मत करो । ऐसा कहने पर भी तुमने नहीं माना ॥ ५९ ॥

पद्य—बेड बेंदेनु केळर गिळियनु नानु । बेडिदे कोंडेदळदनु ॥
कूडे सखियर विट्टरे हिडियेंदनु । बोडिदळेम्म हिचालिगे ॥ ६० ॥

अर्थ—तोते को मुझे देने के लिये कहा। परन्तु तुम उसे भी लेकर उठी सखियों को भेजा तो उनके भी हाथ नहीं आई, और तुम शीघ्र ही विपिन की ओर भाग गई ॥ ६० ॥

पद्य—इवळोडनाटद्वेळेयेल्लेंदेन्न । भवनकृत्यदोळिद्दे नानु ॥
अवळरगिळियनोदिसिकोंडुबंदळु । त्सवदिंद मत्ते मंदिरके ॥ ६१ ॥

अर्थ—इसके साथ खेलने के हेतु यह समय नहीं है, ऐसा विचार कर मैं अपने गृह कार्य में लगी थी, यह उद्यान में जाकर सब कुछ सिखलाकर हंसती २ आई ॥ ६१ ॥

पद्य—मुन्न नानी नुडिगळ केळ्देनादरु । निन्न मेलाने केळ्रसा ॥
कन्नेयेयियळुकौटलकातियेंदळु । चेन्ने रायनोळु तंगियनु ॥ ६२ ॥

अर्थ—हे देव ! मैंने इस वचन को कभी नहीं सुना, आज ही इस तोते के मुख से ये वचन सुन रही हूँ। यह बात मैं आप से शपथ पूर्वक कहती हूं कि इसकी वृत्ति को देखकर कन्या कहना या कुटिला, कामिनी कहना, समझ में नहीं आता। इस प्रकार कुसुमा जी अपनी बहिन के विषय में श्री भरतेश जी से कहने लगीं ॥ ६२ ॥

You said that when brother-in-law would come inside the palace you would make the parrot give some sweet discourse".

"But that should be no reason" protested Makrandaji "for his behaving like this".

Kusumaji said, "please do not try to show your wisdom before my husband. He is capable of inscribing figures in the space. He asked me to give the parrot to him, but you took it yourself with precipitation.

Kusumaji turned towards her husband and said, "I realized it was not the time to play with the bird and thereafter I busied myself in the other important household duties but this girl gave all the coaching to the parrot. Sire I say on oath that this is the first time I an hearing such words from this parrot. I do not know what should I call my sister, a maiden or a wicked girl. (58-62)

पद्य—एन माडिदेनक्का निनगु निन्नरसगु । नानिल्लि कुटिल तंत्रवनु ॥
मानिनि गिळिय तारेंदु चेष्टेय माडु । वीनिन्न पतियीग कुटिल ॥ ६३ ॥

अर्थ—मकरन्दा जी कहने लगीं कि, मैंने तुम्हारे या तुम्हारे राजा के साथ क्या कुटिलता की, क्या बता सकती हो ? देवि ! भला तोते को लाओ तो । यह कह कर मुझे पकड़ने वाले क्या तुम्हारे राजा कुटिल नहीं है ? ॥ ६३ ॥

This infuriated Makrandaji. She said, "what wickedness have I done to you or to your husband ? Can you tell me. Is not your husband wicked who asked me to bring the parrot and with that device caught hold of me." *(63)*

पद्य—मुच्चु मुच्चति घूर्ते निन्नवायनु स्वामि । मेच्चनित्तलेचेष्टेयेंबे ॥
मेच्चदु निनगेरलानीतनरसिये । बेच्चते त्रिगिदप्पुवाग ॥ ६४ ॥

अर्थ—कुसुमा जी कहने लगीं, कि 'धूर्ता' ! अपने मुख को अधिक मत चलाओ । मुंह बन्द करो, तुमसे प्रसन्न होकर राजा ने तुम्हारा सम्मान किया । अब तुम उनकी कुटिलता कह रही हो ॥ ॥ ६४ ॥

पद्य—अक्कन नोडुवेनेंदु निन्नय बीड । होक्करे फलतोरितेनगे ॥
चेक्क नेम्मूरिगेयुदु वेनिन्नु निन्नूर । दिक्कनोडिदरानुहेसरे ॥ ६५ ॥

अर्थ—बहन को देखने की इच्छा से आपके घर आने पर मुझे यह फल मिला, अब मैं अपने घर चली जाऊँगी । पुनः मैं तुम्हारा एवं तुम्हारे गाँव का नाम भी न लूंगी । बहन कुसुमा जी यह सम्मान तुम्हें ही भाता हो । मुझे आवश्यकता नहीं । क्या मैं इनको रानी हूं ! जो इस प्रकार पकड़कर आलिंगन किया यह कुटिलता नहीं तो और क्या है ॥ ६५ ॥

पद्य—मानिय मुंदके तंदते नोडेम्म । मान भंगव माळ्पनीतं ॥
आ नेयंतोयुद मंदप्पुतिदनु दोड्ड । भूनाथ नेंब हेम्मेयोळु ॥ ६६ ॥

अर्थ—अपनी बड़ी बहन को देखलूँ । इस अभिलाषा से मैं यहाँ आई । परन्तु मुझे यहाँ आकर यह प्रतिफल मिला, अब चुप चाप अपने गाँव को जाऊँगी और फिर इस गाँव का नाम लिया तो मैं (मकरन्दा) कन्या नहीं । देखो तो सही । मानियों के सामने आने पर जिस प्रकार मान भंग किया जाता है उसी उसी प्रकार यहाँ मेरा अपमान किया गया हाथी के समान खींचकर ले जाने वाला क्या यह राजा है । इनका तो यह अभिमान है ॥ ६६ ॥

Kuṣumaji said,"Impertinent girl. do not talk toomuch. Raja has shown his appreciation and you call it wickedness". Shouted Makrandaji,' 'Is it not his viciousness that he should catch hold of me embrace me and kiss me. Such

appreciation may be welcome to you. I am not his wife to tolerate all this nonsense. I shall just leave your place and will not even dream of visiting it again. I had merely come to meet my sister and this is the reward I have received. I shall not be myself if I again repeat my visits. He has humiliated me. It is due to his pride that like an elephant he caught hold of me. (64-66)

पद्य—अळुवंते मोगव किरिदु माडिकोंडाग । तलेवागि कण्ण नोसेवळु ॥
ओळगे संतसवुँटु कण्णनीरिल्ल बि । क्कुळिसुत नुडिवळु सटेगे ॥ ६७ ॥
नोडुवळोंडनोरेगणिंद भावन । कूडड्ड मोरेदेगेवळु ॥
नोडु वागिष्टु चिंतेय तोरि मोगवड्ड । माडिकोंडुरे नगुतिहळु ॥ ६८ ॥
शिरदूगुवनु मुगुळ्नगुवनु कुसुमाजि । गरस कण्सन्नेदोरुवनु ॥
तरळेय ठक्किनळ्केयेंदु नेनेव त । न्नरसियुवेरगागुतिहळु ॥ ६९ ॥

अर्थ—ऐसी बातों को कहती हुई मकरन्दा जी बार बार अपनी मुखाकृति को रोने के समान कर रही हैं, कभी आँखों को मलती है तो कभी रोने की हिचकी लेती हैं, किन्तु यह सब व्यापार उनका कृत्रिम था अन्तरंग में संतुष्ट थी, केवल बहाना मात्र कर रही थी। कभी भरत की ओर टेढ़ी आँखो से देखती हैं, और फिर लम्बी सांस लेकर मुंह छिपाते हुये कुछ मुसकराती भी हैं।

रानी कुसुमा जी कहने लगीं हे बहिन ! हमारे विवेकी पतिदेव के सामने तुम्हारी कृत्रिम बातें नहीं चल सकती। वे तो हर एक के भाव को भली भाँति जानते हैं। तुम्हारी आंखों की अश्रुधारा को देखकर उन्हें बहुत दुःख होरहा है। रोना बन्द करो। बस बहुत होगया ॥ ६७–६८–६९ ॥

पद्य—एकिष्टु व्याकुल मकरंदे निनगेंद । ळाके होगक्क निन्निंद ॥
काकादे नानेंदळक्कटक्कट तंगि। गी कोरतेयेंदळाके ॥ ७० ॥
जाति चात्रिय पुत्रियिंदाडुवळे वैश्य । जातियो नीनु शूद्रिकेयो ॥
ओतन्यरप्पळुसावलतेकोरतेय । मातावुदेंदळा तंगि ॥ ७१ ॥
कोविद निदिरोळु कृतक सल्लदु निन्न । भावाजि भावज्ञ नरिय ॥
तीविद निन्न कंगळ नीर कंडेदे । नोवुतिद्दनु साकु तंगि ॥ ७२ ॥
एन लोड नरिदागळे कण्ण तिक्कुतो । य्यनेयेवे वोंद्रेळमुरिये ॥
अनित रोळगे कण्ण नीरोक्कुवुद कंडु । जननाथ भापेंद नगुत ॥ ७३ ॥

अर्थ—बहिन मकरन्दा इतनी व्याकुल क्यों होरही हो ? क्या यह सोचती हो कि बहिन के

घर आने पर मैं अपमानित हो चुकी हूं। क्या तुम्हारा अपमान होगया है ? क्या ! वनिये की कन्या है जो रोती है ? क्षत्रीय कन्या तो इस प्रकार नहीं रोतीं।

मकरन्दा जी स्वतः यह सोचने लगीं कि मेरा रोना तो कृत्रिम है ही। यह सब बात स्फुट होगई। आँखों से आंसू नहीं आये। आँखे मल मल कर अश्रुधारा निकालने की चेष्टा की, परन्तु सब प्रयास व्यर्थ होगया, आँसू नहीं निकले ॥ ७०—७३ ॥

Makrandaji would distort her face as if she was about to weep would then rub her eyes, would sob a little and heave sighs. But this was all artificial. In the heart of hearts, she was very much pleased. She would look with side glances at Bharat, then hide her face and smile a little.

Kusumaji said, "None of your contrivances would serve any purpose before my able husband. He knows well what is in your mind. Now better stop. He is sorry to see your tears. Why do you feel so embarrassed. Do you really feel you have been dishonoured in coming to your sister's place. Have you been insulted. You are weeping like the daughter of a Bania (merchant class). A Kshattria (warrior class) girl does not weep like this. Makrandaji realized that she had been exposed and that inspite of rubbing the eyes she could not get tears out of them. (67-73)

पद्य—नम्मरसन मुँदे दुःखद कण्णीरु । हेम्मक्कळिगे बारवलगे ॥
सुम्मानदिंद कण्वनियुँडु निनगीग । लुम्मिद श्रु गळु लेसलते ॥ ७४ ॥

अर्थ—चक्रवर्ती भरत इस दृश्य को देखकर हंसने लगे, इस पर कुसुमा जी कहने लगीं कि बहन। हमारे पतिदेव के सामने किसी के आँसू नहीं निकल सकते धन्य धन्य अब तो तुम्हारे आनन्दाश्रु निकलने लगे बहुत अच्छा हुआ ॥ ७४ ॥

Bharat began to laugh at this scene. On seeing this Kusumaji said to her sister "Look here Makranda. No one has to weep before my husband. If tears come at all thay will be of joy as is the case with you and I congratulate you for that (74)

पद्य—गंडनन नु बन्निपे ननगातन । कंडरे सेरुवुदिल्ल ॥
कंडु दिल्लवे निन्न गंडनाटव नम्म । भंड माडुव बगणियनु ॥ ७५ ॥

अर्थ—मकरन्दा जी कहने लगीं। बहन ! तुम अपने पतिदेव की प्रशंसा करती हो पर मैं मुंह भी देखना पसन्द नहीं करती। क्या तुमने अपने पतिदेव की चित्त वृत्ति को नहीं देखा है, वे तो मेरी हंसी उड़ाते रहते हैं ॥ ७५ ॥

पद्य—साकु निन्नय चेष्टे मरसिद गिळियोद । लोक वरिके गेय्दनरिया ॥
ई कोंडु नृपनोळु सळबुदे तंगियें । दाके नाणिचसि* नगुतिहळु ॥ ७६ ॥

मरसिदि गिळियोद कंडते पेळ्दनें । दरिपिद नुडि तागितवळ ॥
वरि यळ्के याटव तोरेद ुदलेवागि । किरुनगेनगुतिद्द ळोडने ॥ ७७ ॥

अर्थ—कुसुमा जी ने कहा। रहने दो तुम अपनी माया को। तुमने ही तोते को सिखाया, पुनः उससे कहलवाया। तो तुम इतनी लज्जावती क्यों हो रही हो। ऐसा कहने पर मकरन्दा ने लज्जित होते हुये कुछ भी उत्तर नहीं दिया, पुनः नीचे शिर करते हुयें हंसने लगीं ॥ ७६–७७ ॥

"Shut up darling" said Kusumaji" You made the parrot utter all that nonsense and now you feel ashamed of your action. Who else can be responsible for this, Makrandaji on hearing this blushed red bent her head down and began to laugh within herself. *(76-77)*

पद्य—एंजलु कोट्टनु थू थू एंदुगुळ्वळु । कंजाक्षि तुटिय तोडुवळु ॥
एंजलेंबरे धूर्ते संजीवनद रस । पुँजवनित्तनम्मरसा ॥ ७८ ॥

अर्थ – महाराज भरत ने, अपना खाया हुआ ताम्बूल पत्र मकरन्दा जी के मुंह में दिया। और उसने तिरस्कार पूर्वक थू थू करते हुये नहीं खाया। कुसुमा जी कहने लगीं, मूर्खे तू ! यह क्या करती हैं। हमारे पतिदेव का उच्छिष्ट (जूठा) ताम्बूल अमृतके समान है। उस ताम्बूलामृत का क्यों तिरस्कार करती है ॥ ७८ ॥

Bharat in a playful mood thrust the betel he was chewing in Makrandaji's mouth. She threw it out and began to spit allround. On this Kusumaji said, "What is all this idiocy, my husband's chewed betel is sweet as nectar. Why are you rejecting it so insolently. *(78)*

पद्य—निनगे संजीवन वेनगन्नवेंदाग । कणक भृंगारद जलवा ॥
जनर काणवंते मुक्कुळिसि युगुळ्वळु । जिनयेंदु जपिसिकळेवळु ॥ ७९ ॥

* तिरुहिदलु ।

अर्थ—मकरन्दा जी कहने लगीं बहन ! तुम्हारे निमित्त अमृत होगा। मेरे लिये नहीं। ऐसा कहते हुये सुवर्ण कलश से जल लेकर कुल्ला करने लगी और जिना जिना बड़ा अनर्थ हुआ इस प्रकार ओष्ठों को ऊपर नीचे करते हुये मंत्र जप करने लगी। (परन्तु मन में आनन्दित होरही थी) ॥ ७९ ॥

"It may be nectar for you" retorted Makranda "not for me". She took water from the nearby jar and began to gargle and closing her eyes began to recite Lord's prayer to purify herself. She said, "O Lord Jinendra what an outrage" But in the heart of hearts she was enjoying the fun with great pleasure. (79)

पद्य—कणमुच्चु वळिष्टु जानिसुवळु तुटि । बणमिडुकि जपिसुवळु ॥
कणु देरेदु भावन नोडुवळु नाणिच । हेणु बागुवळाग तलेया ॥ ८० ॥

अर्थ—बड़ा अनर्थ हुआ। ऐसा कहते हुये, ओष्ठ हिलाकर ध्यान करने लगी मानो किसी महान पाप की निवृत्ति कर रही हो। तत्पश्चात् आँखें खोलकर भरत जी की ओर निरखती रहीं पुनः लज्जित होकर सिर झुका लेती है ॥ ८० ॥

"What a calamity" she said and moving her lips lookeb absorbed in god's contemplation as if she was expiating for some ugly sin. Then she would open her eyes, look at Bharat and again close them. (80)

पद्य—एलगे जोगर विष्टु सल्लदेम्मरसनें । जलु सोंकिदागळे निन्न ॥
कुलकोटि पावनवेंदरु कुसुमाजि । कुलसतियर कुलतिलके ॥ ८१ ॥

अर्थ—कुसुमा जी चिढ़ाने के लिये फिर कहने लगीं कि बहन ! इतना ढोंग क्यों करती हो। हमारे पतिदेव के उच्छिष्ट के स्पर्श होने मात्र से तुम्हारी कुलपरम्परा पवित्र होजायेंगी। इसमें दुःख की क्या बात है ? ॥ ८१ ॥

To irritate her further, Kusumaji said, "Why all this empty show your whole geneologica. tree has been purified by the very touch of my husband. Where is the necessity of feeling miserable. (81)

पद्य—एनु तुडिवेयक्क नीनात गुरे सोतु । हीन दोरुवे तवरूरा ॥
ई नृप नाळ्वप्डु नेलनिल्ल नम्मव । गेनु कडिमे वंशदल्लि ॥ ८२ ॥

अर्थ—मकरन्दा जी कहने लगीं कि, वहन क्या कहती हो, क्या भरतेश के साथ विवाह होने से अपने माता, पिता और देश को नीच दृष्टि से देख रही हो? भले ही इनके समान धन, वैभव हमारे माता, पिता के पास न हो परन्तु क्या हमारा देश (वंश) वेष इनसे न्यून है॥ ८२॥

Kusumaji feigned annoy ance and said, "What ro t are you talking sister, you are looking down upon your ancestors merely because of your marriage with the Raja. It may be that our parents are not so very rich, but our geneology is in no way inferor to his. *(82)*

पद्य—नल्लगोलिदु तानु सुखिश्रादे नेननेकु। येल्लर चीणगाणिपुदु॥
वल्लविकेयेंदु चत्रियातम जेयेंत्र। वल्लित तोरिनुडिद्ळु॥ ८३॥

अर्थ—पति के गुणों से मुग्ध होकर मैं स्वयं सुखी होगई हूं, ऐसा कह सकती हो परन्तु सबको नीचा दिखाना क्या तुम्हारा कर्त्तव्य है? अथवा क्या इस प्रकार क्षत्रिय कन्याओं का धर्म है? इस प्रकार मकरन्दा जी ने कहा॥ ८३॥

You can surely say that you feel happy because of your infatuation for your husband but that is no reason why you should humiliate others. Is it your duty or does it become good girls? *(83)*

पद्य—मेच्चिरुतिहळु भावन रूपु कुल शील। हेच्चेंदु तन्नेदेयोळगे॥
वच्चेयगोदाग तवरूर मेलन। हेच्चु गारिके गाडुतिहळु॥ ८४॥

अर्थ—यह कहते हुये भी मकरन्दा जी के अन्तरंगमें प्रसन्नता होरही थी। परन्तु उस प्रसन्न-भाव को छिपाकर अपने माता, पिता के घर की प्रशंसा करते हुये कहने लगी कि— ॥ ८४॥

All the time Makrandaji was feeling sensation of pleasure, but merely to make a show she began to praise her own family. *(84)*

पद्य—चीण भाग्यद राजसुते दोड्ड रायगे। राणियादरे तानु तन्न॥
जान तनदि तवरूर नातगे सरि। गाणिसदिहळे हेळक्क॥ ८५॥

अर्थ—बहन! क्या कोई हतभाग्या राज कुमारी (छोटे राजा की लड़की) किसी बड़े भाग्यवान राजा की रानी होजाय तो वह अपने चातुर्य एवं वंशगुण से माता पिता के घर को उसकी (पति के) समता को नहीं कहेगी। यदि अपने पति के प्रेम से अपने माता पिता के घर की प्रशंसा नहीं करती है तो उसे राज पुत्री ही नहीं कहना चाहिये॥ ८५॥

Well if some girl is married to a king, will she look down upon her parents family ? If she does so, she is not fit to be called a Raja's daughter. *(85)*

पद्य—चडदोरे यात्मजे बल्लदोरेयनु कै । विडिवाग पुरुषन नोलिसि ॥
एडविडदीम नेगामने सरियागि । नडेयिसदिरे राजसुतेये ॥ ८६ ॥
कट्टाणि वेरणेनिसुव क्षत्रियात्मजे । पट्टवर्धन कैविडिदु ॥
हुट्टिदमने होक्क मनेगळेरड सरि । गट्टि नडिसुवु दोंदरिदे ॥ ८७ ॥

अर्थ—उत्तम क्षत्रिय कुल में उत्पन्न कन्याओं का यह कार्य होना चाहिये कि कितने ही सम्पत्ति शाली राजाओ के घर में व्याही जांय अथवा चक्रवर्ती के घर में ही क्यों न पहुँचे. परन्तु वहाँ भी अपने मातृ गृह. पति धन, मन एवं अपने आनन्द के विषय में उसे अपनी बुद्धि चातुर्य के समान प्रतिष्ठा लानी चाहिये । यही राज कन्याओं के लक्षण हैं ॥ ८६ ॥

अर्थ—इस कारण क्षत्रिय कुलोत्पन्न कन्याओं का यह कर्त्तव्य है, कि सार्वभौम पट्टवर्धन षट्खण्ड विजयी राजा भरत ही क्यों न हों । इनके हाथ पकड़ने पर भी अपने जन्म लिये हुये घर एवं माता पिता की भूलकर भी निन्दा न करना अपनी अथवा अपने पतिके ऐश्वर्यकी प्रशंसा करना यह क्षत्रिय कन्याओं के गुण हैं । किन्तु सामान्यतया यही उत्तम है ॥ ८७ ॥

This is the duty of girls of high Kshattriya families, that even thought they may be married to mighty kings, even Chakravartis, they should not be contemptuous, for her parent's family. You should have thought of this duty before uttering derisive expressions for your parents. *(86-87)*

पद्य—तवरूर मनेय तन्नपतिय मनेय तन्न । धवन मनव तन्न मनवा ॥
युवति नेळगवेकु वेळगादेद्वळु मा । नव पति पुत्रिये हेळु ॥ ८८ ॥

अर्थ—अपनी माँ का घर, पति का घर, पति का धन, अपना धन, अपना मन, पति का मन, यह सभी समान मानना चाहिये, यही मानव पुत्री का धर्म है ॥ ८८ ॥

This is the duty of every sensible girl to consider her parents home wealth and character as good as those of her husband's. *(88)*

पद्य—राजपुत्रियर लक्षण विदु नीनिन्न । रोजेयेल्लव विट्टु निन्न ॥
राजने घननेंदु होगळ तिद्ये कुपु । माजि हेळिदु बल्लतनवे ॥ ८९ ॥

अर्थ—राजपुत्री का लक्षण छोड़कर अपने गौरव एवं मर्यादा को छोड़कर, अपनी जन्मभूमि का गौरव छोड़कर अपने पति की ही सदैव प्रशंसा करना एवम् उनकी कीर्ति गाना इत्यादि । क्या कुसुमा जी यही आपकी बुद्धिमत्ता है ? ॥ ८९ ॥

Does it become you Kusumaji to throw to fhe winds all discretion and always eulogise your husband's qualities and glory, (89)

पद्य—निनगहुदा गुण जाणे नीनोब्ब भू । पन कैविडिदाग निन्ना ॥
जननि जनकर बलमेयनल्लि तोरिसु । ननगे बारदु बारि हेम्मे ॥ ९० ॥

अर्थ—पति के गुण का वर्णन केवल आपके निमित्त ही है, राजा भरत के हाथ पकड़ने से अपने माता, पिता का गौरव सुरक्षित किया । प्रथम तो यह बताओ, हमें यह सब गर्व नहीं होना चाहिये ॥ ९० ॥

It may do you some good to talk tall about your husband, but how will glory of your parentage increase by his catching hold of my hand is a question for your to reply. This is a l your haughtiness. (90)

पद्य--नाड नाडिगळिगे नाडाडिगळनु सरि । माडवहुदु कूडवहुदु ॥
नाडनेल्लव नोंद कोडेयोळाळ्वगे सरि । माडुवुदेंतु मिक्कवरा ॥ ९१ ॥

अर्थ—यह सब सुनकर कुसुमा जी कहने लगीं कि यह सब बुद्धि कौशल अपने पास रहने दो, जब तुम्हारा विवाह किसी राजा के साथ होगा तब तुम राजकन्याओं के से गुण चातुर्य बताना । मैं केवल गर्व ही करना नहीं जानती प्रत्युत लोक में अन्य राजाओं की बराबरी वर्णन कर सकती हूँ परन्तु सब राजाओं का एक छत्र संरक्षण करने वाले पतिदेव का अन्य लोगों के साथ समानता प्रदर्शन करना असम्भव है ॥ ९१ ॥

"Keep your arguments with you" replied Kusumaji, time is not far when you will be some Raja wife, I shall see how act then. Other Rajas can be compared with each other, but what equality can be between the protector of all Rajas and the Rajas themselves. None. (91)

पद्य--प्रथम तीर्थेशन हिरिय कुमारगे । प्रथम चक्रिगे कट्ट कडेय ॥
प्रथुळ मनुविगार सरियेंड बहुदेले । शिथलवेणि सोल्लिसेनगे ॥ ९२ ॥

अर्थ—बहन ! आपही कहो, प्रथम तीर्थंकर के जो ज्येष्ठ पुत्र हैं वे आदि चक्रवर्ती हैं, तथा १६ वें मनु हैं । उनकी बराबरी करने वाला संसार में कौन हो सकता है ॥ ९२ ॥

Sister, think what cilmness who can equal my husband in this world. He is the first born of the first Tirthankara, is the first Chakravarti and the sixteenth Manu. *(92)*

पद्य—दुर्गंध वोडल मूळरिगे मूळर तंदु । वर्गिसि सरिमाडवहुदु ॥
नेर्गिरियळे मलमूत्र वव्दिद् देह । वर्गगाणेरेयेनवहुदु ॥ ९३ ॥
होरग मेच्चिद कुरुवरिगे कुरुवर तं । दुरे सरिहोलिस वहुदु ॥
अरिदोळगात्म तत्त्व मेच्चि सुखिसुवे । म्मेरेयगारणेयेनवहुदु ॥ ९४ ॥

अर्थ—दुर्गन्धित शरीर की जोड़ी दुर्गन्धित शरीर वाले के साथ मिल सकती है,एवम् मूर्ख की जोड़ी मूर्ख के साथ हो सकती है, परन्तु क्या मल-मूत्र रहित दिव्य शरीर की कोई जोड़ी होसकती है वाह्य विषय से प्रसन्न विषयी पुरुषों की जोड़ी होसकती हैं परन्तु परमात्मपद के अनुभव करने वाले आत्मसुखी पतिदेव का साम्य कौन कर सकता है ॥ ९३-९४ ॥

An ordinary mortal can be matched against an ordinary mortal, a fool can be matched against a fool but where can you find a match for a person whose body is free from all excretae. No where. *(93-94)*

पद्य—कंडुद पेळ्वेनु केळेम्म नृप नोल्दु । कंडरे धरेयरसुगळु ॥
मंडळिकरु मत्ते मुनिदु नोडिदरेल्ल । तोंडरु साकु विडाय ॥ ९५ ॥
निगठणे वेडेले मकरंदे नृपनोळु । पगठणे सल्लदु तंगि ॥
निगठ पगठणे नटणे गळन्यरो । ळगे सलुविल्लिमेरेयवु ॥ ९६ ॥

अर्थ—वहन ! मैंने जो कुछ भी देखा वही वस्तुतः ! कहा भी है । इसमें स्तोक मात्र भी असत्य नहीं है । दुनियाँ में जितने भी राजा हैं, वे सभी मण्डलीक हैं यदि वे हमारे पतिदेव के अनुकूल रहते हैं तव तो वे राजा हैं । अन्यथा दुष्ट हैं, यह मैं जानती हूं ॥ ९५ ॥

अर्थ—अतः वहन मकरन्दा ! हमारे पतिदेव के सामने व्यर्थ की वात मत करो । यहां पर तुम्हारा अभिमान नहीं चल सकता । अभिमान करने के लिये अन्य जगह ढूंढ लो ॥ ९६ ॥

Dear sister I have only narrated facts and there is no trace of untruth in this. All the Rajas in this world are under the subjugation of my husband. If they act according to his words they are good, otherwise they are unworthy of their position. For this reason do not show your haughtiness here. You had better find other quarters for the same. *(95-96)*

पद्य—विडुनिन्न केड्ड निन्नय तवरूर के । डोडनाडितनदसोक्किंकद ॥
नुडिवु तिद्दपे नम्म स्वामियो ळेंदळा । कडुशील वतिराय मेच्चि ॥ ९७ ॥

अर्थ—हे मकरन्दा ! तुम जो केवल अभिमान पूर्ण वचन कहती हो । इससे तुम्हारा एवं तुम्हारे माँ बाप का अहित है । मेरे पतिदेव के समक्ष क्यों इस प्रकार बात कर रही हो । अपना मुंह बन्द करो । ये सब बातें जो (कुसुमा जी और मकरन्दा जी) दोनों बहनों में परस्पर हो रही थीं । इसको श्री भरतेश जी सुनकर मन में बहुत प्रसन्न हुये ॥ ९७ ॥

Makrandaji all this tall talk will do you and your parents much harm. Better shut your mouth.

Raja Bharat was enjoying all this alteraction between the two sisters. *(97)*

पद्य—एनोलि सिदनक्क निन्नती राजाभि । धान वेषद मायाकार ॥
तानल्लदन्यरु निन्नेंदे योळगिल्ल । हानियादुदुनम्म वल्पु ॥ ९८ ॥
मनव नीतगे मारलित्तेइंद्रिय वैंद । ननुराग मिगे तूरेयित्ते ॥
तनुन दंडवतेत्तेतवरूरविडवुदु । निनगे गण्यवे सुखमग्ने ॥ ९९ ॥

अर्थ—मकरन्दा जी कहने लगीं हे बहन ! कितने आश्चर्य की बात है, राजा भरतेश ने तुम्हारे ऊपर वशी करण मंत्र चलाया है अतः तुम्हें इनके बिना अन्य कोई दिखाई ही नहीं देता है । तुमने अपने मन को राजा के हाथ विक्रिय किया है । पाँचों इन्द्रियों का अनुराग इस पर स्पष्ट दिखाई देरहा है । शरीर को सर्वथा अर्पण कर दिया है सुख में मग्न होकर तुमने अपने माता, पिता एवं उनके घर को स्वप्न में भी नहीं देखा और न स्मरण किया है । इसमें आश्चर्य ही क्या है ! ॥ ९८-९९ ॥

"Sister" said Makrandaji "There is nothing surprising in the attitude you have adopted. Rajaji has charmed you with some mantras (incantation) as a result of which you can see all the good qualities in him and him alone. You have sold your heart to him and its effect can be seen on every part of your body. You have completely surrendered your person to him. Lost in that bliss you have completely forgotten your parents. *(98-99)*

पद्य—नीळेय दोळगे मेद्दंटो निन्नसना । तोळ्ळोळुँटो वश्ययंत्रा ॥
वेळ्ळुवेयुंटो तिलक दोळ्ळ दरिंतु । वेळ्ळगे नीनु सिक्कुवेय ॥ १०० ॥

अर्थ—बहन ! क्या तुम्हारे पतिदेव के ताम्बूल में कोई औषधि या मद्य तो नहीं है ? या उनके भाव (वाणी) में कोई वशीकरण तो नहीं ? अन्यथा तुम इस प्रकार कैसे फंस सकती थी अथवा उनके तिलक में कोई आकर्षण है ? अगर औषधि, मद्य, या वशीकरण मंत्र आदि न होते तो तुम इस प्रकार फंस ही नहीं सकती थी ॥ १०० ॥

There must be some medicine in his betels or some spell in his words that you have completely lost yourself. *(100)*

पद्य—हुसियल्ल नन्ननागिनिसप्पुवाग डि । व्लिळसितेदे जुम्मनोसरिसि ॥
नसुमुत्त कोडुवाग मूर्च्छे संधिसितु सा । हसदि बीळ्दे निंदेनानु ॥ १०१ ॥

अर्थ—बहन ! मैं असत्य नहीं कह रही हूं । उन्होंने जब मुझे तनिक आलिंगन किया तो, मेरे सारे शरीर में रोमाञ्च हो उठा और जब मुझे चुम्बन किया तब मैं मूर्च्छित हो गिरना ही चाहती थी ; परन्तु बड़ी सावधानी से संभल सकी ॥ १०१ ॥

Sister, I am speaking the truth and truth alone. When he embraced me a current of excitement passed through my body and when he kissed me, I felt a swooning sensation and could keep myself in senses with great difficulty. *(101)*

पद्य—मान हनिय नेनेदत्तरु कण्णीरु । तानु बारदु ननगाग ॥
एन हेळुवें निन्न गंडन मायव । नीनोलिवुदु चोद्यवल्ल ॥ १०२ ॥

अर्थ—मैं अपनी मानहानि के कारण इतनी क्षुब्ध होगई, इसलिये आंखों में अश्रु लाने की चेष्टा पर भी, वे अश्रु न निकल सके । तुम्हारे पतिदेव की माया का क्या वर्णन करूँ ? ऐसी अवस्था में तुम उनके वश होगई तो क्या आश्चर्य है ॥ १०२ ॥

But I got so dumbfounded on account of humiliation that inspite of my efforts tears would not come into my eyes. When this was my condition there cauld be no wonder ab ut his complete control on your person and senses. *(102)*

पद्य—केळुतिद्दनु राय कुसुमाजि योडनाके । हेळुव गमकद नुडिय ॥
सोलवादुदु तन्न चित्तवा तरुणिय । मेले तानिंते निसिदनु ॥ १०३ ॥

पद्य—मुरुक मुनिसु लज्जे गंभीर जान्णुडि । केरे मरे भयभक्ति गर्व ॥
अरिके विडायवनेल्लि कलितळेंदु । देरगागितलेदूगुतिद्दा ॥ १०४ ॥

अर्थ—राजा भरत । मकरन्दा जी की बातें अधिक ध्यान से सुन रहे थे और विचार कर रहे थे कि छोटी अवस्था में इस कन्या ने कहाँ से इतनी बातें सीख ली । अभी तो अविवाहिता है । जाने विवाह के पश्चात् क्या व्यवस्था होगी । इसने चतुरता, लज्जा वाणी बोलने की रीति, गाम्भीर्य, सुन्दर बातें, अन्तरंग भक्ति, प्रेम करना आदि बातें कहाँ से प्राप्ति की हैं । इस प्रकार साश्चर्य भरतेश जी मन में विचार करने लगे ॥ १०३-१०४ ॥

Raja Bharat was hearing this conversation with attention and was wondering that although she was yet a virgin and young where did she learn all these things. If this is her condition now what would it be after marriage. It is surprising that she has acquired this dexterity of conversation, this shyness beautiful expression, love making and devotion, at this stage. (103-104)

पद्य—नेरे जव्वन वैसे निंदजव्वनव । कुरुहरियल्लु रतिसुखद ॥
होरिगे गाणिसि नेमवल्लुगुतिदल्लु मक्क । तरमिंडियादरिन्नेंतो ॥ १०५ ॥

अर्थ—अभी तो इसकी अवस्था अल्प है, तरुण अवस्था भी नहीं है, विवाह योग्य भी नहीं है, अभी केवल बालिका ही है, एवम् लड़कपन भी है । पुनः इतनी बातें तरुणावस्था में पहुँचकर जाने क्या दशा होगी ॥ १०५ ॥

She is of tender age, so far she is not yet mature, not fit even for marriage. She is still a child, but she has so much knowledge of worldly matters. What would happen when she would reach maturity. (105)

पद्य—एळुव मोळेयोळे कोंदु कूगुवळिवल्ल । ळेळेलेवोद मेलेम्म ॥
बाळ्लीवळेयेंदु नेनेदनंदा नर । पालक तन्न चित्तदोळु ॥ १०६ ॥

अर्थ—धान्यांकुर उत्पत्ति के समय बहुत ही सुन्दर लक्षित होती है इसी प्रकार जब वह प्रौढ़ होगी तब इसकी बाल्य काल की सुलभ एवं सरस बातें नष्ट होकर कठिनकता में परिणत हो जायगी । इसी प्रकार भरतेश जी इसकी अवस्था को विचार कर मन में सोचने लगे कि इसे कहने दो ॥ १०६ ॥

He was thinking that when she would attain her youth, these childish manners will assume hardness and dryness.

"Let her go on with her talk" said he to himself. (106)

पद्य—नोंदळ्हुदु दिट कुसुमाजिकरे मक। रंदाजियनुमन्निसुवेनु ॥
एंदनदके तंगि वारेंदळ्ररसि हो। गेंदु कोपिसिदळा तरुणि ॥ १०७ ॥

अर्थ—महाराज भरत बोले। हे कुसुमा! तुम्हारी बहन बहुत ही रूष्ट होगई है उसे बहुत कष्ट पहुँचा है! उसको इधर बुलाओ किंचित् सत्कार तो कर दूं, जिससे उसका दुःख दूर हो जाय ॥ १०७ ॥

The king said, "Kusumaji, your sister is very angry, send her here I shall placate her. (107)

पद्य—मुन्नोम्मे निन्न वल्लभनोळिगानेय्दि। मन्नणे वडेदेनु साकु ॥
इन्नरियेने होगु होगेंदु म्ङंकिसि। कन्ने नुडिदळरसियनु ॥ १०८ ॥

अर्थ—तब कुसुमा जी बोली कि हे बहन! किंचित् इधर हमारे पतिदेव के पास तो आजाओ। मकरन्दा जी बोली, रहने दो! जाओ, मैं नहीं आऊंगी। मुझे तुम्हारे पतिदेव के पास आने का फल पहले ही मिल चुका है। और भली भाँति सत्कार भी होचुका है। क्या? अब भी मुझे ज्ञान नहीं है। जो मैं फिर भी आऊँ। जाओ मैं नहीं आसकती ॥ १०८ ॥

"Go near my husband" said Kusumaji, "No dear" replied Makrandaji, I have already had sufficient experience and would in no case allow its repetition. (108)

पद्य—मोदल मन्नणे निन्न नोयिसितदनु मी। रिद् मन्नने यनीवेनेंदा ॥
केदरिसदिरुनिन्न चित्तवनेंदु को। पदोळाडिदळु भावनोडने ॥ १०९ ॥

अर्थ—राजा भरत कहने लगे हे देवि! पहले के सत्कार से तुम्हें दुःख तो अवश्य हुआ परन्तु अबकी वार तुम्हें प्रथम भेंट से भी उत्तम उपहार दूंगा। तुम मत घबड़ाओ। यह सुनकर मकरन्दाजी कहने लगीं अब मुझे मत दुलाचो, इस प्रकार क्रोध से उत्तर दिया ॥ १०९ ॥

Raja said with annoyance, "This time I shall give your a much better gift". (109)

पद्य—एनु तंत्रय कंडेयय्यय्यो नीनोव्व। मानवपति यंदे धरेगे ॥
मानिनियर् कंडरप्पि कोंबुदे तन्न। ध्यानवेंदोलेदु नुडिदळु ॥ ११० ॥

अर्थ—मकरन्दा जी बोल उठीं कृपया व्यर्थ की बातों से मेरे मन में क्रोध उत्पन्न न कीजिये! मुझे आश्चर्य है। आपने संसार में जन्म लेकर कैसा मायाचार विस्तृत किया है। स्त्रियां को देखते

ही आलिंगन की चेष्टा करते हैं। क्या यही आपका ध्यान रखना उचित है। इस प्रकार आवेग से उत्तर दिया ॥ ११० ॥

"Pray donot excite my temper" reported Makrandaji. How deceitful is your conduct. The moment you see a lady you think of embracing her. (110)

पद्य—ओब्बरिब्बरे निनगेनु कडिमेयायुतु । सब्बलगे योळिदे हेएणु ॥
हब्बुव बळ्ळियंतिदिर हेंगळ कंडु । तब्बिकोंबुदे होत्तु तनगे ॥ १११ ॥
ओलिदोडबट्टळ नप्पुवुदुळ्ळुदु । तले वाचि हेंगळ पिडिवा ॥
कळेवंत नीनल्ल दिन्नुँटेयेंदु मू । दलिसि नुडिदळु भाववनु ॥ ११२ ॥
जगुळ्व हेंगळनेत्ति तक्कैसि मोगवड्डा । देगेये चुँबिसुतिह निन्न ॥
बगेय कंडरे हुच्चुनगे रुदिदेयेंदु । नगुवळोडने किलकिलने ॥ ११३ ॥

अर्थ—क्या हजारों स्त्रियों के रहते हुये भी इस प्रकार का आचरण करना आपको उचित है? जो आप से प्रसन्न है उसी के साथ यह व्यवहार सम्भव है, किंतु जो आप से दूर है उसे हठात् पकड़कर आलिंगन एवं अथक चुम्बन करना उचित नहीं है। और उपहासका कारण है। इस प्रकार कहती हुई एक एक उच्च स्वर से स्फुट हास किया ॥ १११–११३ ॥

Does such a conduct become one who has thousands of wives. It may be relishing to those who love you, but there is no sense in showering such a behaviour on others, by forcibly catching hold of them giving a kiss and making them a laughing stock. She laughed at Bharat on saying this. (111-113)

पद्य—अड्ड मोरेय निक्कि नगुवळु नोडुव । ळोड्डोड्डि नुडिदेडिसुवळु ॥
दोड्ड तनवे भाव निनगिदेंब ळुराय । सड्डेमाडदे केळुतिहनु ॥ ११४ ॥

अर्थ—(मकरन्दा) पुनः मुंह घुमाकर हंसती हैं और भृकुटि विलास द्वारा चंचल नेत्रों से देखती हैं एवं बड़ी चतुराई से बातें करती हैं। वह आश्चर्यकारक तथा हास्यास्पद बातें श्री भरतेश जी बैठे हुये सुन रहे थे ॥ ११४ ॥

Makranda would laugh then, cast a side glance at Bharat and again pass some touching remarks. Bharat was hearing all this with interest. (114)

पद्य—कुसुमाजि यरिदळु नृपगे नादुनिपोळु । वेसुगे याददु चित्तवेंदु ॥
हुसि जगळव नोडुतिद्दळु तानद । नु सुरदे पुरुष भक्ति योळु ॥ ११५ ॥

अर्थ—उपरोक्त नाटकीय वार्तों से कुसुमा जी ने समझा कि मकरन्दा जी और भरतेश जी में प्रेम होगया है। यह चित्रण केवल अभिनय मात्र है ॥ ११५ ॥

Seeing the dramatic turn in the manner of conversation Kusumaji at once realised that the pair had fallen in love, and this hot exchange of words was a mere show. *(115)*

पद्य—एलेधूर्त्ते निनगे मन्नणे यीवेनेंदरे । हळ्ळिवु देकेम्म नीनेंदा ॥
वळु धूर्त होगु मन्नणे निनगिरलि यें । दुळ्ळिदळ्दके राय नक्का ॥ ११६ ॥
अहुदे अहुदे नाजु धूर्त्त नीने धूर्त्ते । यहुदाद दर्थ वेनायतु ॥
वहुदो नोडिदरदु कडेगेंदुनुरेगह । गहिसिदळवळोरेमोगदि ॥ ११७ ॥
एल्लिरि सिदे निन्न गंभीर गर्व रा । जोल्लास गमकव भावा ॥
चेल्लाट कतियादुदे येंदु जरेदळ । देल्लवु सविरायगाग ॥ ११८ ॥
सभेयोळु कुळ्ळिताग नाल्केंडु वचन दु । र्लभ वागि हत्तु भाव निनगे ॥
अभिमुख वडे दीग वचन सुलभ वागि । प्रभ विसिदंद विदेनु ॥ ११९ ॥

अर्थ—तब भरतेश जी ने कहा कि, अरी धूर्ता ! मैं तुझे पुरस्कार देकर सत्कार करना चाहता हूं, परन्तु तू मेरा तिरस्कार करती है यह क्यों ? तब मकरन्दा जी ने कहा कि, हे राजन् ! आप धूर्त हैं आपका यह पुरस्कार आप के ही पास रहे। मुझे अब इसकी आवश्यकता नहीं । तब भरतेश जी हंस पड़े और कहने लगे कि "हाँ मैं धूर्त हूं" ! अरे मैं धूर्त्त हूं या तू । यहतो अपने आप प्रत्यक्ष होजायगा । इसप्रकार विनय पूर्वक दोनोंकी परस्पर विनोद वार्ता होरही थी। अब मकरन्दाजी बोली कि आज आपकी गम्भीरता कहाँ चली गई । क्या क्रीडा की भावना होरही है ? अब तो लक्षित होता है कि सभा में आपके मुंह से दो चार शब्दों का निकलना भी कठिन है। परन्तु आज यह वचन वर्षा क्यों होरही है ॥ ११६-११९ ॥

Bharat said, "You insolent girl. I want to give you a gift and you refuse it like a rustic, Why is it so ?"

"Rajan" replied Makranda, "You are a rustic yourself, you can keep the gift to yourself. I do not need it." Bharat laughed and said, "Very well, we shall see who is a rustic."

Makrandaji said, "What has happened to your serious nature today, are you in a playfull mood. You donot utter even a few words in the court but today you have cast all seriousness to the winds and a torrent of words is gushing out from your mouth. (116-119)

पद्य—नोंदनेंबुदके मन्ननेयीवेनेंदेनि । न्ननोंदागि नुडिवेनल्लेंदा ॥
निंदु तानदके नगुत नोड्ड मत्त त । न्नंदव बिडनेंदवळु ॥ १२० ॥

अर्थ—श्री भरतेश जी ने कहा । "तुम दुखी होरही हो । इस कारण मैं तुम्हें पुरस्कार देकर सन्तुष्ट करना चाहता था । परन्तु तुमने कुछ और ही समझा है" । पुनः फिर मकरन्दा जी हंसते हुये कहने लगीं कि मुझे आपका पुरस्कार नहीं चाहिये ॥ १२० ॥

Bharatji said, "You looked much aggrieved and therefore I wanted to please you. But you interpreted the whole thing differently". Makrandaji laughed and said, "Thanks for your considerateness. I do not need your appreciation. (120)

पद्य—हिंदे नीनित्तुदु भारवागिदे नन । गेंदु कामिनी कंठ सरवा ॥
मुँदरि सुवेनेंदुं तेगेदळतंदु कोर । ळिंद बारदु चित्रवाग ॥ १२१ ॥
तिळिदळु स्तंभनेगेय्दनु भावनें । दोळ गुब्बि नक्क ळंतदके ॥
वळिक भावन मोगनोड्डत विस्मय । गोळुतिद्दळरियदंद दोळु ॥ १२२ ॥
एके बारदु भाव निन्न कोरळ हार । वाकुळि तानु निन्नंते ॥
साबु विडेंदरु बिडदिदे नोडेनु । ताके नुडिदळु चल्लदोळु ॥ १२३ ॥

अर्थ— मकरन्दा जी ने कहा कि, आपने पहले जो रत्नहार दिया था । मुझे वही भारवत् प्रतीत होरहा है, गले से उतारते हुये कहा कि यह लीजिये, फिर झुंझलाती हुई कहती हैं कि अरे ! यह तो निकलता ही नहीं । अब मैं क्या करूँ ॥ १२१ ॥

अर्थ—मकरन्दा जी ने कहा कि हे सम्राट् आपने यह रत्नहार मेरे गले में स्तम्भित कर दिया और विस्मित दृष्टि से राजा की ओर निहारने लगीं ॥ १२२ ॥

अर्थ—पुनः कहने लगी हे राजन् ! आपका यह हार मेरे गले को क्यों नहीं छोड़ता है ? यह भी आप की भाँति हठवादी प्रतीत होता है । देखो तो सही कितना दुष्ट हैं, इसको मैं निकाल कर छोड़ना चाहती हूँ परन्तु यह मुझे छोड़ता ही नहीं ॥ १२३ ॥

"The necklace" continued Makrandaji is like a milestone round my neck. She tried to take it out, then said with irritation. "This does not come out." It appears it has got fixed to my neck. She looked at Bharat in surprise.

"Why does it not leave my neck" enquired she of Bharat. It appears to be as obdurate as yourself. How wicked it is. I want to discard it but it would not leave my neck. *(121-123)*

पद्य—कोडुवागकोरळ्गिोंदेदे गोंदु वायगोंदु । तोडिगेय नानित्ते नीनु ॥
मडगि कोडेरडनोदं नेयींवे नेनलदु । बिडिदि दे येंदना राय ॥ १२४ ॥
कोट्टडवेय नावु तेगेदुकोंववरल्ल । मुट्टदिरौ निनगिरलि ॥
वेट्टे तट्टे योंळेम्म नीनेंदुदके तक्क । तिट्टव माळ्पे मानेंदा ॥ १२५ ॥

अर्थ—भरतेश जी ने उत्तर दिया कि मकरन्दा जी ! मैंने तुम्हें पुरस्कार देते समय तीन आभूषण दिये थे । एक कण्ठ के लिये, दूसरा हृदय के लिये, और तीसरा मुख के लिये, परन्तु तुम तो दो अपने पास रख कर एक ही वापिस कर रही हो अतः वह तुम्हारे गले से नहीं निकलता है और कहता है कि अकेला जाकर क्या करूँगा ॥ १२४ ॥

अर्थ—दूसरी बात यह है कि, दिये हुये भेंट को हम पुनः परिवर्तित नहीं करते । इस कारण इस रत्नहार को निकालने का प्रयत्न मत करो, वह तो तुम्हारा ही है ॥ १२५ ॥

Bharat said, "I had given you three ornaments in reward one for the heart, the other for the neck and the third for lips. But you are returning only one retaining the other two with you. That is the reason why the necklace does not leave your neck. It does not want to come out alone. Secondly we donot take back the reward once given. You can keep it with you. *(124-125)*

पद्य—आरु तिंग ळिन्नु सैरिसु मकरंदे नि । न्नुरुभिनाटव निलिसुवेनु ॥
निरु वेद्रारिगे भाव नीनुरे कंड । तेरनेनु हेळु हेळेनगे ॥ १२६ ॥

अर्थ—यह ध्यान रहे कि, तुम आज हमारे साथ मनमानी अनेक ढंग से उदाहरण पूर्वक बोल चुकी हो । अतः इसका बिना प्रतिकार किये नहीं छोड़ूँगा । मकरन्दा ! तुम छः मास और ठहरो । अन्त में तुम्हारी अनेकानेक उछल कूद और दर्प समाप्त हो जायेंगे । किंचित धीरज तो धरो ॥ १२६ ॥

"Look here Makrandaji, you have indulged in all sort of free talk and I

shall take full revenge for this. You have to wait for it only for six months. I shall put an end to all your mischieviousness. Have patience." *(126)*

पद्य—हिस्क हेळ्लेवेके वेकु केळ्निन्ननि । म्मक्कगे सावति माडुवेने ॥
नक्क ळोडिद्ळु कंभव मरे गोंडळु । जक्कुलि संतोष गोळुत ॥ १२७ ॥

अर्थ—मकरन्दाजी कहने लगी कि जीजाजी ! आपने क्या कहा पुनः तो कहिये मुझे बतलाओ तो सही । राजा भरत ने कहा, क्या नमक मिर्च सभी डालकर कहा जाय ? नहीं समझी तुम सुनो । तुम्हारी बड़ी बहन कुसुमा जी के समान तुमको बना लूँगा । समझी ! ॥ १२७ ॥

Makrandaji said, "What did you say brother-in-law repeat it please."

Raja Bharat replied, "I thought you were intelligent enough to understand it. Now listen. I shall make you like your sister Kusumaji six months hence. *(127)*

पद्य—हरुष वेरिद् ळाग कुसुमाजि तंगि के । ळरसन वाक्य हुसियदु ॥
करे सुवे नाळे नम्मप्पाजियनु होस । सिरि माळ्पे निनगेंद् ळोसेदु ॥ १२८ ॥
धारिणीशन पाणियोळु निन्न पाणिय । सेरिसि पितन कैयिंद ॥
धारेयेरसुवेनु निमगिब्बरिगे बंद । होराट होळ्देदु होहंते ॥ १२९ ॥
मंगळोत्सव वादुदेंदु नगुत तन्न । तंगियोत्तिगे ताने होगि ॥
अंगने पुरुषगुत्तर वित्त दोषव । हिंगिसें दोरेद्ळो जेयोळु ॥ १३० ॥

अर्थ—इस बात को सुन कर वह लज्जा के कारण खम्भे के पीछे होगई । साथ ही मन में कुछ हर्ष भी हुआ, इस वचन को सुनकर कुसुमाजी हर्षित हुई और मकरन्दाजी से कहने लगीं कि बहन ! हमारे पतिदेव की बात कभी असत्य नहीं हो सकती । इस कारण कल ही पिता जी को बुलवाकर तुम्हारे विवाह की व्यवस्था करूँगी ॥ १२८ ॥

अर्थ—विशेष क्या कहूं । सम्राट् के हाथ से तुम्हारा हाथ सम्मन्वित कराकर पिता जी के हाथ से जलधारा डलवाऊँगी जिससे तुम दोनों का विवाद समाप्त होजाय । ऐसा कह कर कुसुमा जी पास में ही जाकर पुनः कहने लगीं हे बहन ! अब तो मंगलोत्सव होगया, ऐसा समझलो परन्तु पुरुषों को उत्तर देना स्त्रियों का धर्म नहीं है इस कारण जो दोष तुमसे होगया है उसे ही किसी प्रकार दूर करो ॥ १२९-१३० ॥

Hearing this Makrandaji blushed and hid herself behind a pillar, but felt a current of joy in her heart. Kusumaji was also pleased to hear this and

said, "Makranda my husband's words never prove untrue. I shall send for the respected father tomorrow and make preparations for your marriage.

What more can I say, father will give your hand to Bharat in marriage and you will become husband and wife. But look here Makrandaji, it is not proper for ladies to argue with menfolk. Better express regret for your indiscretion. (128-129-130)

पद्य—ननगिष्टु होत्तु नीनुसुरिदे बुद्धिम । निनगे नीनरिय जाने ॥
इनेय गेरगुदोषवळिवदु वारेंदु । वनिते कैविडिदु करेदळु ॥ १३१ ॥

अर्थ - इतने समय तक तुम मेरे निमित्त उपदेश देरही थी, परन्तु स्वयं तुम बुद्धिमती होकर क्या नहीं जानती हो आश्चर्य है ! आओ कुसुमाजी, हाथ पकड़कर कहने लगीं कि, पतिदेव को नमस्कार करो, तो तुम्हारे सब दोष दूर हो जायेंगे, ऐसा कहकर मकरंदाजी को बुलाने लगीं ॥१३१॥

So far you were lecturing me on the duties of ladies. But it is surprising that you do not know them yourself. She caught hold of Makranda's hand and said, "Come and salute the king for expiation of your faults. (131)

पद्य—ओल्लदंतित्तं लोलेवळु नाणचुव । ळल्लल्लि निल्वळा कन्ने ॥
वल्लितागिरलक्क तेगेदरे वंदतें । मेल्लने वंदळिदिरिगे ॥ १३२ ॥

अर्थ—मकरन्दा जी लज्जा के मारे नहीं आरही हैं। कुसुमा जी के बहुत आग्रह करने पर बीच में ठिठुकती हुई धीरे २ राजा भरत के सामने आकर खड़ी होगई ॥ १३२ ॥

Makrandaji felt very bashful and stepped forward with hesitation. (132)

पद्य—एल्लि होददो मोदलाडिद नुडि नोट । चल्लाट नगेय सोक्किवळा ॥
नल्लन नोडलंजुत लज्जे गोळुतेळे । हुल्लेयंतिद्दळेनेंबे ॥ १३३ ॥

अर्थ—अब मकरन्दा जी की पहले की भाँति बोल चाल नहीं है और न तो पूर्ववत क्रीडा ही करती हैं। भरत जी को देखने पर लज्जित होती हैं। उसके पहले की बोल चाल आदि की लीला कहाँ चली गई कुछ समझ में नही आता ॥ १३३ ॥

Now Makrandaji was different. She was not very talkative. She felt very shy. What has now happened to all her restlessness. (133)

पद्य—पादकेरगु नडेरेंवळोत्तिगे होग । ळादरिल्लेरगेंबळदके ॥
आदरिसुतनिळ्वोलोत्ति बग्गिगसिदंते । वेदिस लोडिनेरगिदळु ॥ १३४ ॥

अर्थ—कुसुमा जी कहने लगीं कि बहन ! पतिदेव के चरणों में नमस्कार करो, उनके पास जाओ परन्तु मकरन्दा जी को लज्जा आरही है पुनर्वार भी बड़ी बहन उसको हठ कर के लाई, तब बहुत आग्रह करने पर उसने नमस्कार किया ॥ १३४ ॥

Kusumaji said, "Come and bow at my husband's feet". But Makrandaji was very hesitant, but in the end bowed to Bharat. (134)

पद्य—तप्प पालिपुदेन्नु तंगेयेंदळु होगु । तप्पेनगिल्ल निन्निनेया ॥
तप्पदे गिळिय तंत्रव पेळ्दरेरगिदे । नोप्पुगोळ्ळेनुतेद्दळोडने ॥ १३५ ॥

अर्थ—कुसुमा जी कहने लगीं कि बहन ! अपने दोषों के हेतु इनसे क्षमा याचना करो ! तब मकरन्दा जी कहने लगीं कि, जाओ । मैंने कोई दोष नहीं किया क्षमा किस बात की माँगू ? नमस्कार कर लिया यही बड़ी बात है और पहले तोते को सिखलाया था, इसी कारण नमस्कार कर लिया, अब कौन सा दोष रहा जो क्षमा माँगूँ ॥ १३५ ॥

"Now beg forgiveness". said Kusumaji.

Makrandaji said, "What fault have I committed that I should ask pardon far. It is more than sufficient that I have saluted him, and that because I had tutored the parrot. Now what other fault remains for which I should beg forgiveness. (135)

पद्य—मनदोळुल्लास मैयोळगे पराकिंद । तनगेरगिद पेण्ण नोडि ॥
मोनेगाति बळुमोडि गाति मुरुक गाति । गोनेयकाति मंमायेंदा ॥ १३६

अर्थ—परन्तु मकरन्दा जी मन में हर्षित तो थीं हीं । अतएव नमस्कार करते हुये देखकर भरत जी प्रसन्न हुये, वे भी बीती हुई बातों को स्मरण कर मन में हंस रहे थे ॥ १३६ ॥

But Makrandaji was feeling a great joy in her heart and Bharat was also feeling pleased on what had transpired. (136)

पद्य—रालदेइवळोड नाट भोजन क्रिन्तु । वेळे वेग्गळिसिदे देव ॥
मेलण नेळेय माळिगेगे चित्ते सेंदु । लोलाक्षि विन्न विसिदळु ॥ १३७ ॥

अर्थ—कुसुमा जी कहने लगीं हे स्वामिन् ! इसके साथ बहुत विनोद एवं क्रीडा इत्यादि हो चुकी है, भोजन में अतिकाल होरहा है, कृपया महल में पधारिये ॥ १३७ ॥

Kusumaji said, "Sufficient time has now elapsed in playing with this girl, now kindly come to my dining room. It is getting very late for the meals. *(137)*

पद्य—होरेयोळिद्मृतवाचकन मैदडविद । सुरसनै नीनेंदु नुडिदा ॥
तरिसि कोट्टनु नवरत्न पंजरवन । लिलरिसेंदु कोट्टना गिळिया ॥ १३८ ॥

अर्थ—पिंजड़े में बैठा हुआ अमृत वाचक (शुक) तटस्थ होकर सब सुन रहा था । भरत जी ने कहा अमृत वाचक । तुम बड़े सरस हो । तुम से मैं बहुत प्रसन्न हूं ऐसा कहते हुये नव रत्नमय पंजर मंगवाकर उसके रहने के उपलक्षमें दे दिया ॥ १३८ ॥

The parrot was hearing all this conversation with attention. Bharat addressed the parrot and said he was very sweet and he sent for a gold cage for the parrot. *(138)*

पद्य—सरस कांतेय हस्त विडिदनु जिनसिद्ध । शरणेनुतेद्दना चणत्रे ॥
भरतेश मेलुनेलेगडियिट्टनल्लिगे । सरस संधि सुगंधि ॥ १३९ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् सभी वार्तालाप विसर्जित कर के अनन्तर 'जिन शरण' । ऐसा मुख से उच्चारण करते हुये राजा भरत वहाँ से उठे और अपनी प्रिय रानी के साथ ऊपर अट्टालिकामें चले गये ॥ १३९ ॥

Raja uttered the words "Jin Sidh" and getting up accompanied his queen Kusumaji to her room. *(139)*

पद्य—ई जिन कथेयन्नु केळ्दिवर पाप । बीज निर्नाशन वहुदु ॥
तेज वहुदु पुण्य वहुदु मुँदोलिदप । राजितेश्वरन काणुवरु ॥ १४० ॥

अर्थ—इस जिनेश्वर की कथा को जो सुनेगा उनका पाप बीज नष्ट होगा । तेज की वृद्धि होगी एवम् पुण्य बन्ध होकर अन्त में अपराजित पद को पावेगा ॥ १४० ॥

Those persons who will hear this glory of Raja Bharat with rapt attention will destroy the seeds of their sins, will get all the happiness and in the end attain un-conquerable position *(liberation)*. *(140)*

पद्य—प्रेमदिंदिद नोदिदरे पाडिदरे केळ्द । रामोद वैदुवरवरु ॥
नेमदि सुररागि नाळे श्रीमंदर । स्वामिय काणवरतियोळु ॥ १४१ ॥

अर्थ—इस कथा को जो लोग प्रेम से पढ़ेंगे तथा सुनेंगे वे आमोद को प्राप्त होंगे और नियम से देवपद को प्राप्त कर अन्त में विदेह क्षेत्र में जाकर प्रेम से श्रीमन्दरस्वमी का दर्शन करेंगे ॥ १४१ ॥

Those who will read this with attention and recite it with devotion will have the 'darshan' of Simandhara Swami in Videha Kshetra. *(141)*

पद्य—हगलिरुळिन सूर्य हारि हारद हंस । हगेगेळेयळिदहम्मीर ॥
अगलदेन्नंत रंगदोळिरु बळु । बिगड चिदम्बर नुरुषा ॥ १४२ ॥

May Chidambar Purush remain enshrined in my heart for ever.

अर्थ—गगन में रहने वाले सूर्य के समान, आत्मरूपी सूर्य और स्तिमित हंसके समान । हृदय कमल में विराजमान हे चिदम्बर पुरुष ! मेरे हृदय कमल से पृथक न होकर सर्वदा मेरे हृदयाभ्यन्तर में निवास करो ॥ १४२ ॥

Seen
24.8.78

॥ इति प्रथम भाग का नवम् सर्गः सरस संधि सम्पूर्ण ॥

॥ प्रथम भाग का प्रथम खंड समाप्त ॥



भरतेश वैभव का शुद्धाशुद्ध सूची पत्र

(श्लोक)

॥ अध्याय पहिला ॥

पृष्ठ	श्लोक नं०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१२	१ ला	वभव	वैभव
४	८	१ ला	शियिल	शिथिल
७	१७	१ ला	मेच्चु	मेच्चु
८	२२	१ ला	स्पेह्निप	सोह्निप
८	२३	२ रा	मू त्रु	मूत्र
९	२५	२ रा	वुक्कुब	वुक्कुव
१०	२७	२ रा	घद्दोळु	बंददळू
११	३१	२ रा	गाया	राया
१३	३१	२ रा	गुणगळेंव	गुणगळेंवु
२०	६५	१ ला	वोबरु	वोवरु
२१	७०	१ ला	गोंडते	गोंडंते
२२	७४	२ रा	यिदुव	यिंदुव
२६	८९	१ ला	धर्मकया	धर्मकथा
३२	११३	२ रा	डोलि	डोलि्ल

॥ अध्याय दूसरा ॥

पृष्ठ	श्लोक नं०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	१ ला	संगीस	संगीत
४५	१८	२ रा	जिवाह्य	निर्वाह्य
६२	७६	१ ला	वग्गिदागले	वोग्गिदागले
६४	८२	१ ला	वेदरे	वेंदरे
६९	९६	१ ला	उडव	उद्दंड
७०	१०१	१ ला	निन्नतम	निन्नातम
७१	१०५	१ ला	भोकनेट्टु	भोंकनेद्द

॥ अध्याय तीसरा ॥

पृष्ठ	श्लोक नं०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८१	२४	१ ला	कुरुकद	कुसुकद
९९	८४	१ ला	वेरदेव	वेंरव

भरतेश वैभव का शुद्धाशुद्ध सूची पत्र

(अर्थ)

अथ प्रथम सर्ग

पृष्ठ	श्लोक नं०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२	१	सिद्ध	सिद्ध
२	,,	२	सिद्ध	सिद्ध
२	,,	३	सिद्धि	सिद्धि
२	,,	४	बुद्ध	बुद्ध
२	,,	५	सिद्ध	सिद्ध
२	,,	७	सिद्ध	सिद्ध
२	,,	८	सिद्ध	सिद्ध
३	३	५	०	होते हैं
४	७	१	वस्तु	वस्तु
७	१८	१	सिद्धम्	सिद्धम्
९	२५	३	श्रेष्ट	श्रेष्ठ
१०	२८	१	वर्रा	वर्ण
१५	४६	४	खड़ा	खड़ी
१५	४७	२	अः	अतः
१६	४९	१	अङ्कन	अङ्कित
१६	४९	२	स्वत्रकर्ता	सक्रकेद्वारा
२९	९९	१	हेगाद्रि	हेमाद्रि
३७	१२७	१	मत	अभिमत
प्रथम, अध्यायसमाप्ति में			प्रथमो सर्गः—	प्रथम सर्गः

द्वितीय सर्ग

पृष्ठ	श्लोक नं०	पँक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६	४	१	राजन्	राजन् !
४१	११	टिप्पणी	अमक्ष्य	अभक्ष्य
४६	२१	१	वस्तु	वास्तु
५३	४३	२	अपने	आपने
५६	६३	१	प्रति	तत्त्व
,,	७६	२	वस्तु	बाँस
७०	१०१	१	०	कि

॥ अथ तृतीय सर्गः ॥

पृष्ठ	श्लोक नं०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८६	५०	१	०	को
६२	५८	३	शब्दोऽचारण	शब्दोच्चारण
६३	६३	१	प्राङ्कन	प्राङ्गण
६६	७५	३	जलताङ्गना	लताङ्गना
१००	८६	३	०	के
१०५	१०३	२	०	होते
१०८	११४	४	कदाषि	कदापि
१११	१२४	४	आत्म	आत्मन्

॥ अथ चतुर्थ सर्ग ॥

पृष्ठ	श्लोक नं०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११६	३	३	है	हो
१२५	३६	१	कहीं	कई
१३८	८०	२	यथेष्ठ	यथेष्ट
१४३	१०१	३	किञ्जित्	किञ्चित्
१४६	१२०	१	के	की

॥ अथ पंचम सर्ग ॥

पृष्ठ	श्लोक नं०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६०	३४	१	पुष्यों की	पुष्पों का
१९०	७०	२	मुर मण्डल	मुखमण्डल

॥ अथ अष्टम सर्गः ॥

आंठवां अध्याय प्रारम्भ में	सन्मान संधिः	उपहार संधिः
,, ,, समाप्ति में	सन्मान संधिः	उपहार संधिः

Corringendum

Page.	Chapter No.		Paragraph No.	Line.	Errata	Corringendum
17	First Chap.		48-53	4	every	very
”	”	”	54	2	detween	between
”	”	”	”	”	absorbed	absorbed
”	”	”	55	1	admires	admirers
30	”	”	100-101	2	sains	saints
33	”	”	113	1	tongtue	tongue
48	Second	”	28	3	stadfastly	steadfastly
53	”	”	45	1	sathisfied	satisfied
56	”	”	54	2	sing	sink
67	”	”	91	1	contrversy	controversy
”	”	”	”	”	no	on
70	”	”	99	1	bestowes	bestowed
70	”	”	99	1	jwellery	jewellery
135	4		71	2	appered	appeared
143	”		99	3	sepocating	seperating
156	5		19	2	meat	meet
158	”		23-24	3	rab	rub
189	6		14	2	withought	without
199	”		49	1	tha	the
228	7		53	2	maidem	maiden
247	8		38	1	betrayl	betrayal
257	”		76	1	through	through
278	9		14	2	poius	pious
288	”		45-50	1	lauged	laughed